

# दो शब्द



हरिवंश पुराण के दूसरे खण्ड में मुख्य चार बड़े-बड़े उपाख्यान हैं।

(१) प्रद्युम्न-प्रभावती-मायावती उपाख्यान, अनिरुद्ध-उपा की कथा, पौंड्रक का, सहङ्कार और वध तथा हंस डिम्बक उपाख्यान। इन कथाओं से यह विदित होता है कि भगवान् वृष्ण के नेतृत्व में यदुवशियों ने कैसी प्रगति की और अधिकांश अहङ्कारी और युद्धलिप्सु राजाओं को हराकर साम्राज्यवादियों के मनसूबे नष्ट कर दिये। यद्यपि इन कथाओं की रोचकता की दृष्टि से बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया गया है, तो भी इनसे यह अवश्य अनुमान किया जा सकता है कि उस काल में हमारा देश छोटे-बड़े अनेक राजाओं के शासनाधिकार में विभाजित हो गया था और ये लोग प्रायः अपनी महत्ता प्रकट करने के लिए युद्ध छेड़ते रहते थे। इससे देश में अशान्ति फैली रहती थी और इसका सबसे अधिक कुफल साधारण जनता को ही भोगना पड़ता था।

भगवान् वृष्ण जैसे जन-नायक को यह अवस्था असहनीय प्रतीत हुई और उन्होंने छोटी अवस्था से ही आतताइयों के विनाश और सत्पुरुषों के संरक्षण का सकल्प कर लिया। उन्होंने अपना कार्यक्रम कस जैसे घोर महत्त्वाकांक्षी और क्रूर शासक के विरुद्ध विद्रोह करके आरम्भ किया और शीघ्र ही जरासंध जैसे भारत-सम्राट बनने का स्वप्न देखने वाले शासक की शक्ति को छिन्न-भिन्न करके साम्राज्यवाद की जड़ पर कुठाराघात किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने आर्य और अनार्य के बीच भी भेदभाव नहीं किया, क्योंकि भ्रष्टाचारी शासन चाहे गोरो का हो और चाहे कालो का, जनता के लिये तो वह शोषण और दमन का पुरस्कार ही प्रदान कर सकता है। इसलिये श्रीवृष्ण ने जिस प्रकार जरासंध, पौंड्रक तथा हंस डिम्बक जैसे दानिय नरेशों की अहङ्कता का प्रतिफल दिया वैसे ही राम्वरामुर, वाणामुर, वसुनाभ जैसे अनार्य नरेशों की

सत्ता का भी अन्त कर दिया। उनके इन युद्धों के गूढ आशय पर किया जाय तो मालूम होता है कि वे आरम्भ से ही देशव्यापी प्रजातन्त्रों की वृद्धि के इच्छुक थे और उसकी जो योजना उन्होंने अपने मस्तिष्क में रखी थी उसकी पूर्ति के लिये वे एक-एक करके सैनिक शक्ति के मदमातेओं को कुचलते रहते थे। इस प्रकार जब उन्होंने अधिक उद्वृष्ट और उच्छ्वल जाते जाते का खात्मा कर लिया तो फिर शेष सबके सामूहिक दिग्गम के लिए ही की रचना की और एक ही बार में निरकुश राज-शक्ति की जड़ ही काट डाली। इसी तथ्य के आधार पर गांधारी ने श्रीकृष्ण को ही महाभारत का बीज बतलाया था और शाप दिया था।

जैसा प्राचीन काव्य-ग्रन्थों का नियम है यद्यपि हरिवंशकार ने भी प्रत्येक युद्ध में दो-करोड़ सैनिक और लाखों रथ तथा हाथी, घोड़ों का ही वर्णन किया है, पर इसको अधिक महत्त्व देना अनावश्यक है। इसी प्रकार बार-बार भयंकर शस्त्रों से शरीरों का कटते रहना, मर्मभेदी चोट खाते रहना और फिर नूरे दिन जैसा का तैसा बना रहना भी प्रशंसा और उत्साह की वृद्धि की दृष्टि से ही माना जा सकता है। यो तो यादव-सेना की संख्या ही ५६ करोड़ बतलाई गई है और प्रत्येक राजा के पास करोड़ों ही सेना बतलाई गई है, पर सौ-सौ, दो-दो सौ कोस या इससे कम परिमाण वाले राज्यों में इतनी सेना का होना आबादी की निगाह से ही सम्भव नहीं। सेना की संख्या कुछ भी रही हो पर हरिवंश की कथाओं से यह अवश्य प्रकट होता है कि उस समय के राजाओं ने अपने मुख्य कार्य लड़ने रहना और सैन्य-शक्ति बढ़ाते रहना ही निश्चय कर लिया था और इससे प्रजातन्त्र की दुर्दशा होती थी, जिसका उद्धार अन्त में भ० श्रीकृष्ण की योजना से ही हुआ और इस प्रकार उनकी 'परिनाणाय साधूनाम विनाशायाच दुष्टताम्' वाली प्रतिज्ञा सत्य सिद्ध हुई।

कथा-वस्तु की दृष्टि से हरिवंश वास्तव में बड़ी विशेषताओं से युक्त है। इसके कथानक ग्रन्थ पुराणों में नहीं मिलते और इस दृष्टि से इसे 'महाभारत' का 'मूल' (पूर्ति करने वाला) कहना यथार्थ ही है।

# श्री हरिवंश पुराण

( दूसरे खण्ड की )

## विषय-सूची

१. निकुम्भ-बध	...	१
२. वज्रनाभ का वरदान	...	२०
३. प्रद्युम्न आदि का वज्रपुर को प्रस्थान	...	२६
४. प्रद्युम्न-प्रभावती मिलन	...	३५
५. प्रद्युम्न-प्रभावती विवाह	...	३७
६. श्रीकृष्ण द्वारा शिवजी की स्तुति	...	४२
७. शम्बरामुर द्वारा प्रद्युम्न का अपहरण	...	४६
८. प्रद्युम्न द्वारा शम्बर की सेना का सहार	...	५०
९. प्रद्युम्न को नारद का परामर्श	...	५२
१०. प्रद्युम्न द्वारा शम्बर-बध	...	५६
११. प्रद्युम्न-मायावती का द्वारका-आगमन	...	६३
१२. बाणामुर का वरदान प्राप्त करना	...	६८
१३. उपा की विरह-कथा	...	७३
१४. चित्रसेखा का द्वारका गमन	...	७६
१५. बाणामुर के साथ अनिरुद्ध का युद्ध	...	८७
१६. श्रीकृष्ण का शोणितपुर को प्रस्थान	---	१०७
१७. कृष्णजी का अग्नि के साथ युद्ध	...	१२०
१८. श्रीकृष्ण और ज्वर का युद्ध	...	१२५
१९. वैष्णव-ज्वर तथा शिव-ज्वर मे युद्ध	...	१३१
२०. श्रीकृष्ण-शिव-युद्ध	...	१३३
२१. हरिहरात्मक स्तोत्र	---	१३५
२२. श्रीकृष्ण-बाणामुर युद्ध	...	१३७

२३	उपा-अनिरुद्ध विवाह	...	१४१
२४	श्रीकृष्ण और अनिरुद्ध का द्वारका गमन	...	१४२
॥ भविष्य-पर्व ॥			
२५	जनमेजय की सत्तति	...	१४३
२६	जनमेजय-व्यास सवाद	...	१४४
२७	व्यासजी द्वारा कलियुग वर्णन	...	१४५
२८.	राजा जनमेजय के यज्ञ में विघ्न	...	१४६
२९	सनातन ब्रह्म का वर्णन	...	१४७
३०	शुभाशुभ कर्मों का फल	...	१४८
३१	सनातन जगत का प्रमाण	...	२०४
३२	कर्मफल वर्णन	...	२०५
३३	मधु और विष्णु भगवान का युद्ध	...	२१७
३४	भगवान विष्णु द्वारा मधु का वध	...	२१८
३५	समुद्र-मन्थन वर्णन	...	२२४
३६	भगवान वामन का बलि को छलना	...	२२५
३७	वाराह भगवान द्वारा पृथ्वी का उद्धार	...	२३१
३८	हिरण्यक्ष और इन्द्र का सग्राम	...	२३७
३९	वाराह भगवान द्वारा हिरण्यक्ष वध	...	२४१
४०.	नृसिंहावतार की कथा	...	२४४
४१	प्रह्लाद को नृसिंह का दर्शन	...	२५०
४२	कर्मपत्र-वर्णन	...	२५३
४३	नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का वध	...	२५३
४४	श्रीकृष्ण का कर्नाम पर जाने का विचार	...	२५६
४५	श्रीकृष्ण का बदरिकाश्रम-गमन	...	२६१
४६	श्रुतियों द्वारा भगवान की स्तुति	—	२६१
४७	मयभीत मृगों और दा पिशाचों का आना	—	२७१
४८.	घण्टाकर्ण को समाधि-नाम	...	२७१
४९	घण्टाकर्ण को भगवान का माया-कार	...	२७४

५०. श्रीकृष्ण की कैलास पर तपस्या	...	२८०
५१. श्रीकृष्ण को शिवजी का दर्शन	...	२८३
५२. शिव द्वारा श्रीकृष्ण-स्तुति	...	२८८
५३. श्रीकृष्ण का बदरिकाश्रम लौटना	...	२९४
५४. पौण्ड्रक के दर्पपूर्ण वचन	...	२९६
५५. पौण्ड्रक-नारद सवाद	...	३०२
५६. पौण्ड्रक का द्वारका पर आक्रमण	...	३०५
५७. यादवों द्वारा पौण्ड्रक की सेना का सहार	---	३०८
५८. पौण्ड्रक-सात्यकि सवाद	...	३१३
५९. पौण्ड्रक-सात्यकि युद्ध (१)	...	३१६
६०. पौण्ड्रक-सात्यकि युद्ध (२)	---	३२४
६१. एकलव्य की सेना का सहार	...	३२८
६२. बलदेव-एकलव्य युद्ध	...	३३१
६३. श्रीकृष्ण-पौण्ड्रक युद्ध	---	३३३
६४. श्रीकृष्ण द्वारा पौण्ड्रक वध	...	३४०
६५. पौण्ड्रक-वध के पश्चात्	---	३४४
६६. हस-डिम्भक उपाख्यान	...	३४७
६७. हस-डिम्भक की तपस्या	...	३५१
६८. हस-डिम्भक का दुर्वासा से वार्तालाप	...	३५५
६९. हस-डिम्भक का दुर्वासा से दुर्व्यवहार	---	३५६
७०. महर्षि दुर्वासा का क्रोध	...	३६२
७१. दुर्वासा का द्वारका जाना	...	३६५
७२. दुर्वासा का श्रीकृष्ण से सम्भाषण	...	३६८
७३. भगवान के यहाँ मुनियों का भोजन	---	३७८
७४. हस के वृत्त का श्रीकृष्ण के यहाँ आना	...	३८१
७५. विप्र जनादेन की द्वारका यात्रा	---	३८५
७६. विप्र-दूत की श्रीकृष्ण से भेंट	...	३९२
७७. भगवान कृष्ण का सात्यकि की भोजना	---	३९८

७८. सात्यकि का हंस के समक्ष भाषण	...	४०१
७९. हंस-डिम्भक की गर्वपूर्णा उक्ति	...	४०७
८०. भगवान् कृष्ण की पुष्कर यात्रा	...	४११
८१. हंस-डिम्भक का पुष्कर पहुँचना	...	४१३
८२. हंस-डिम्भक और यादवों का संग्राम	...	४१७
८३. श्रीकृष्ण का महान् पराक्रम	...	४२१
८४. हंस और बलभद्र का भीषण युद्ध	—	४२४
८५. डिम्भक-सात्यकि संग्राम	...	४२७
८६. डिम्भक-वध वर्णन	...	४३१
८७. हंस और श्रीकृष्ण का युद्ध	...	४३७
८८. हंस और डिम्भक का वध	...	४४४
८९. भगवान् का नन्द-मशोदा से मिलना	...	४४८
९०. भगवान् कृष्ण का द्वारका प्रत्यागमन	...	४५१
९१. हरिवंश श्रवण-फल	...	४५३
९२. त्रिपुर वध वचन	...	४६५
९३. युग और मन्वन्तर वचन	—	४७६
९४. एकार्णव मे विष्णु भगवान् की स्थिति	...	४८३
९५. नारायण और मार्कण्डेय सम्वाद	...	४९६
९६. नारायण की नाभि से कमल की उत्पत्ति	...	४९९
९७. मृट्टि रचना के निमित्त पुष्कर का प्रादुर्भाव	...	४
९८. ग्रन्थ-श्रवण फल	...	

### भूल-सुधार—

प्रेम-वर्मेचारियों की अभावधानी से पृष्ठ ३८५ पर ७५ वें अक्षर 'व' की जगह 'श्रीकृष्ण द्वारा पीण्डुव वध' छाप गया है। वास्तव में यह 'विप्र' जनार्दन की द्वारका यात्रा' होना चाहिये था। इसी भूल के कारण अगले तीनों पृष्ठ ३८७-३८९ और ३९१ के ऊपर भी अध्याय का नाम गलत छाप दिया गया है।

# श्री हरिवंशपुराण

## ( द्वितीय खण्ड )

॥ निकुम्भ का वध ॥

तेषा क्रीडाप्रसक्ताना यदूना पुण्यकर्मणाम् ।

छिद्रमासाद्य दुर्बु द्विर्देवशत्रुर्दुरासद ॥१

कन्या भानुमती नाम भानोर्दुहितर नृप ।

जहारात्मवधाकाक्षी निकुम्भो नाम दानव ॥२

अन्तर्हितो मोहयित्वा यदूना प्रमदाजनम् ।

मायावी मायया राजपुर्वैरमनुस्मरन् ॥३

आर्तुर्हि वज्रनाभस्य तस्य कन्या प्रभावती ।

प्रद्युम्नन हृता वीर वज्रनाभस्तथा हत ॥४

भानोरेव तथाऽरण्ये वसत्यवसरेण हि ।

अस्वाधीने दुराधर्षे छिद्रज्ञो दानवाधम ॥५

कन्यापुरे महानाद सहसा समुपस्थित ।

तस्या ह्यियन्त्या कन्यायां रुदन्त्या समितिजय ॥६

वसुदेवाहुकौ वीरौ द शितौ निर्गतावुभौ ।

आर्तनादमुपश्रुत्य भानो. कन्यापुरे तदा ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! पुण्यात्मा यादवों को क्रीडामत्त देख कर निकुम्भ नामक दैत्य ने अपनी माया के बल से भानु की कन्या भानुमती को हर लिया ॥१-२॥ इसके पूर्व उस दुरात्मा निकुम्भ के भाई वज्रनाभ को प्रद्युम्न ने मार दिया था और उराड़ी पुत्री प्रभावती को बलात् हरण करके ले आये

थे, उसी का बदला लेने के लिये निकुम्भ ने भानुमती का हरण कर लिया ॥३-४॥ वह दुरात्मा दानव भानु के उद्यान में रहा करता था । एक समय पुरी को सूनी देख कर उसने उस कन्या का अपहरण किया तब उसके रोने और स्त्रियों की आर्त पुकार से अन्त पुर गूँज उठा ॥ ५-६ ॥ भानु के अन्तःपुर में चीख-चिल्लाहट को सुन कर वसुदेवजी और उग्रसेनजी कवच धारण एवं शस्त्रास्त्र ग्रहण पूर्वक उधर आये ॥७॥

न दृष्टिगोचरो तो तु ददृशातेऽपकारिणम् ।  
 तथैव दशितौ यातौ यत्न कृष्णो महाबलः ॥८  
 श्रुतार्थः स्वं विमानं तदारुरोह जनार्दनः ।  
 पार्थेन सहितस्ताक्षर्यं नागशत्रुमरिदमः ॥९  
 रथो त्वमनुगच्छेति सदिश्य मकरध्वजम् ।  
 त्वरेति गरुड वीरः सदिदेश च काश्यपम् ॥१०  
 वज्रं नगरमायान्तं निकुम्भं रणदुर्जयम् ।  
 पार्थकृष्णौ महात्मानावासेदतुररिदमौ ॥११  
 प्रद्युम्नश्च महातेजा मायिना प्रवरो नृप ।  
 निकुम्भश्चाथ तान्दृष्ट्वा त्रिधाऽऽत्मानमयाकरोत् ॥१२  
 तान्सर्वान्योधयामास निकुम्भः प्रहसन्निव ।  
 बहुकण्ठकगुर्वीभिर्गंदाभिरमरोपमः ॥१३  
 सव्येनालम्ब्य हस्तेन कन्यां भानुमतीं नृप ।  
 दक्षिणेनाथ हस्तेन गदया प्राहरत्पुनः ॥१४  
 कन्यार्थं न च कृष्णो वा कामो वा नृपसत्तम ।  
 निर्दय प्रहरन्ति स्म निकुम्भे च महासुरे ॥१५

परन्तु, उस समय उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया, तब अपने कर्तव्य का निश्चय न कर पाने के कारण वे दोनों श्रीकृष्ण के पास पहुँचे ॥८॥ उस वृत्तान्त को सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के सहित गरुड पर विराजमान हुए और प्रद्युम्न को रथ में द्वारा पीछे-पीछे आने का आदेश देकर गरुड से बोले कि शीघ्रता-



पूर्वक चलो, तब गरुड उन्हें लेकर चल दिया ॥६-१०॥ जिस समय वह दुर्जय दैत्य निकुम्भ अपने वज्रपुर में धुस रहा था, उसी समय कृष्ण और अर्जुन ने वहाँ पहुँच कर उस पर आक्रमण किया ॥११॥ घोर भायावी निकुम्भ ने अपने तीन रूप धारण किये और उन तीनों रूपों से ही युद्ध करने लगा । उसने बाँधी वाँस में भानुमती को दबा रखा था और दाँये हाथ में काँटों से युक्त गदा ले रखी थी, उसी गदा से वह इन तीनों पर प्रहार करने लगा । परन्तु, कन्या को आघात न पहुँचे, इस भय से इन तीनों ने कुछ देर तक उस पर प्रहार नहीं किये ॥१२-१५॥

समर्थास्ते महात्मानः शत्रुं हन्तुं दुरासदाः ।  
 निशस्त्रसुनरपने दयाभारावपीडिताः ॥१६  
 श्रेष्ठो धनुष्मता पार्थ सर्वथा कुशलो युधि ।  
 नागोष्ट्रविधिना दैत्य शरपक्त्या जघान ह ॥१७  
 ते नु वैतस्तिकैर्वाणैर्विविधान्दानवान्युधि ।  
 न कन्या कलया युक्त्या शिक्षया च महीपते ॥१८  
 ततः स कन्यया साद्धं तत्रैवान्तरधीयत ।  
 आसुरीमाश्रितो माया न च ता वेत्ति कश्चन ॥१९  
 त कृष्णौ रौक्मिणेषुश्च पृष्टतोऽनुययुस्तदा ।  
 हारितः शकुनो भूत्वा तस्थावय महासुर ॥२०  
 त बाणैः पुनरेवाथ वीरो भूयो धनञ्जय ।  
 वैतस्तिकैर्मर्मशिद्धिः कन्या रक्षन्ताडयत ॥२१  
 स इमा पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा महासुरः ।  
 बभ्रामानुगतश्चैव तैर्वीरैररिमर्दनः ॥२२

यद्यपि निकुम्भ को मारने में वे पूर्ण समर्थ थे, फिर भी भानुमती को रक्षा का ध्यान रखते हुए उन्होंने प्रहार नहीं किया और क्रोधपूर्वक दीर्घ श्वास छोड़ने लगे ॥१६॥ अर्जुन ने असाधारण वीरता थी, परन्तु सर्प द्वारा ऊँट को लपेट लिये जाने पर सर्प को इस प्रकार मारा जाता है, जिससे ऊँट को चोट न

लग जाय, उगी प्रकार उन्होंने अत्यन्त सावधानी से निकुम्भ पर अपने बाणों को छोड़ा ॥ १७ ॥ इस प्रकार इन तीनों ने अपने वैतस्तिक बाणों का प्रयोग करते समय इसका प्रयत्न किया कि भानुमती के देह से बाणों का स्पर्श न हो पावे ॥ १८ ॥ तभी उस कन्या के महित निकुम्भ अपनी माया के प्रभाव से ऐसा अदृश्य हुआ कि कोई भी यह न समझ पाता था कि वह कहाँ गया ? ॥ १९ ॥ फिर बहुत प्रयत्न करने पर उन्होंने उसे हारीत पक्षी का रूप धारण किये वही बैठा हुआ देखा ॥ २० ॥ जैसे ही यह दिखाई दिया, जैसे ही अजुन ने अपने मर्मभेदी वैतस्तिक बाणों को कन्या का बचाव करते हुए चलाया ॥ २१ ॥ तब वह दैत्य इस सम्पूर्ण पृथिवी का चक्रर काटने लगा और इन तीनों ने भी द्रुत वेग से उसका पीछा किया ॥ २२ ॥

गोकर्णस्योपरिष्ठात् पर्वतस्य महामुरः ।

पपता विलां गङ्गायाः पुलिने सह कन्यया ॥ २३ ॥

न देवा नासुराश्चापि लङ्घयन्ति तपोधनाः ।

गोकर्णं तेजसा गुप्तं महादेवस्य भारत ॥ २४ ॥

एतदन्तरमासाद्य प्रद्युम्नः शीघ्रविक्रमः ।

कन्यां भानुमतीं भूमौ जग्राह रणदुर्जयः ॥ २५ ॥

अथुरः सोऽदितो राजनृष्णाभ्यां निशितैः शरैः ।

त्यक्त्याऽथोत्तारगोकर्णं निकुम्भो दक्षिणा दिशम् ।

जगाम पृष्ठतो याती कृष्णो ताक्ष्यंगतौ तदा ॥ २६ ॥

विवेश पटपुरं चैव ज्ञातीनामालयं तदा ।

तत्र वीरो गुहाद्वारि कृष्णो रात्री तदोपतुः ॥ २७ ॥

रौक्मिण्योऽपि कृष्णेन संदिष्टो द्वारकां पुरीम् ।

अनयद्भ्रानुतनयां प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ २८ ॥

नयित्वा चाययौ रात्री पटपुरं दानवाकुलम् ।

ददर्श च गुहाद्वारि कृष्णो भीमपराक्रमी ॥ २९ ॥

ऊपतुर्द्वारिभाक्रम्य पटपुरस्य महाबली ।

कृष्णो प्रद्युम्नसहिती निकुम्भवधः ॥ ३० ॥

इस प्रकार चक्कर काटने कागते जब बड़े दैत्य गोजर्ण पर्वत को लाँघ रहा था, तभी उस वन्या के साथ चेल गंगा के किनारे जा गिरा ॥२३॥ क्योंकि उस गोजर्ण पवन पर भगवान् शंकर का निवास था और उनके प्रतापयश कोई भी दैत्य अथवा देवता उस पर्वत को लाँघने में समर्थ न होता था ॥२४॥ जैसे ही उस पर्वत को लाँघता हुआ वह दैत्य गिरा वैसे ही प्रद्युम्न ने शीघ्रता पूर्वक घर्षा जाकर भानुमती को उससे छीन लिया ॥२५॥ तभी धीकृष्ण और अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों की उस पर भीषण वर्षा की, तब वह अत्यन्त पीड़ित हुआ दैत्य उत्तर पश्चिम उस गोजर्ण पर्वत को छोड़ कर दक्षिण की ओर भागा । यह देख कर कृष्ण और अर्जुन भी गरुड पर चढ़ कर उसका पीछा करने लगे ॥२६॥ तब वह दैत्य पृथिवी के विषम में होकर अपने पटपुर में चला गया उस समय रात्रि होने कारण कृष्ण और अर्जुन को व दरा के द्वार पर ही टिकना पडा ॥२७॥ इधर प्रद्युम्न ने अपने पिता का आदेश पाकर भानुमती को साथ लिया और द्वारका को चले गये ॥२८॥ वहाँ भानुमती की रक्षा का प्रबन्ध करने के बाद प्रद्युम्न फिर बड़ी लौट आये और उ होने वहाँ कृष्ण और अर्जुन को निकुम्भ का द्वार रोक, रात्रि के समाप्त होने की प्रतीक्षा करते हुए देखा ॥२९॥ तब प्रद्युम्न भी उस दैत्य के मारने की अभिलाषा में तत्पर हुआ ॥३०॥

ततोऽनन्तरमेतस्माद्द्विनादतिवलस्तदा ।

निर्जंगाम वली योद्गु निकुम्भो भीमविक्रम ॥३१

तस्य निर्गच्छतस्तस्माद्त्रिलात्पार्थो विशाम्पते ।

हरोद्य सर्वतो मार्गं शरैर्गण्डीवनि सृतं ॥३२

सोऽभिसृत्य गदा घोरामुद्यम्य बहुकण्ठकाम् ।

शिरस्यताडयत्पार्थ निकुम्भो वलिना वर ॥३३

अदृष्टेनाहतो वीर शिरस्यथ मुमोह स ।

गदयाऽभिहते पार्थे रक्त वमति मुह्यति ।

हसित्वा सोमुरो हृष्टो रीक्षिमण्यमनाडयत् ॥३४

त प्राङ्मुखमुद्य वीर मायिना वरम् ।

अदृष्टेनाहतो वीर शिरस्यथ मुमोह स ॥३५

तथागतौ तु दृष्ट्वा तौ मुह्यमानौ सुताडितौ ।  
 अभिदुद्राव गोविन्दो निकुम्भ क्रोधमूर्च्छित ॥३६  
 कौमोदकी समुद्यम्य गदपूर्वोद्भवो गदाम् ।  
 तावन्यो न्य दुराधपौ गर्जन्तावभिपेततु ॥३७

बुद्ध कालोपरान्त दैत्यराज निकुम्भ युद्ध करने की इच्छा से गदा के बाहर आया ॥३१॥ उसको निकलता देखते ही अर्जुन ने अपने गाण्डीव से उस पर भीषण बाण-वर्षा करते हुए उसे बीध दिया ॥३२॥ तब निकुम्भ ने अपनी काँटों वाली गदा से अर्जुन के मस्तक पर भीषण प्रहार किया, जिससे रुधिर वमन करते हुए अर्जुन मूर्च्छित होगये । उनकी इस दशा पर हँसते हुए निकुम्भ ने प्रद्युम्न के मस्तक पर भी उसी गदा से आघात किया, जिससे प्रद्युम्न की भी मूर्च्छा आ गई ॥३३-३४॥ अर्जुन और प्रद्युम्न की ऐसी दुर्दशा हुई देख कर श्रीवृष्ण अत्यंत क्रोधित हुए और अपनी गदा लेकर निकुम्भ की ओर तेजी से दौड़े । यह देख कर निकुम्भ भी उनकी ओर दौड़ पड़ा और तब उन भीषण गर्जन करते हुए वीरो ने एक दूसरे पर गदा प्रहार किया ॥३६-३७॥

ऐरावतगत शक्र सर्वे देवगण सह ।  
 ददर्श तन्महायुद्ध घोर देवासुर तदा ॥३८  
 दृष्ट्वा देवान्दृषीकेशश्चित्रं युद्धं ररिदम ।  
 इयेष दानव हन्तु देवाना हितकाम्यया ॥३९  
 स मण्डलानि चित्राणि दर्शयामाम वेशव ।  
 कौमोदकी महाबाहुर्नामगन्धुद्वयोविद ॥४०  
 तवैवासुरमुरयोऽपि गदा ता बहुश्रुण्वाम् ।  
 निशया भ्रामयाणोऽप्य मण्डलानि चचार ह ॥४१  
 वृषभाविष गर्जन्ती वृ हताविष युञ्जरी ।  
 दपितान्तरमासाच क्रुद्धी शालातृणाविष ॥४२  
 आजघात निकुम्भन्तु गदया गदपूर्वजम् ।  
 मण्डलाष्टपण्डया योर नाः मूर्त्तगर्जतिदाग्णम् ॥४३

तत्कालमेव कृष्णोऽपि भ्रामयित्वा महागदाम् ।  
 निकुम्भमूर्द्धनि तदा पातयामास भारत ॥४४  
 अवष्टम्भ्य मुहूर्तं तु हरिः कौमोदकी गदाम् ।  
 तस्थौ जगद्गुरुर्धामान्मुमोह पतिनः क्षिती ॥४५  
 हाहाभूत जगत्सर्वं तत्कालमभवत्तदा ।  
 तथा गते वासुदेवे नरदेव महात्मनि ॥४६

उधर देवेन्द्र सभी देवताओं के सहित वहाँ आकर उस भीषण संग्राम को देखने लगे ॥३८॥ उन्हें देख कर भगवान् कृष्ण ने उस दैत्य को मारने की इच्छा से कौमोदकी गदा चलाते हुए पैतरा बदला ॥३९-४०॥ तब वह दैत्य भी अपनी फाँटी वाली गदा लेकर उनके चारों ओर घूमने लगा ॥४१॥ तब गर्जन-शील बेलो, बिघाडने वाले हाथियो या क्रोधित हुए शृगालो के समान दोनों ही चक्कर काटने लगे । तब निकुम्भ ने श्रीकृष्ण पर अपनी गदा से आघात किया और श्रीकृष्ण भी भयकर सिहनाद करके आगे बढ़े तथा उन्होंने अपनी कौमोदकी गदा उसके मस्तक पर दे मारी ॥४२-४४॥ उसके बाद वह कुछ देर तक तो निश्चेष्ट खड़े रहे और फिर मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े, इससे समस्त ससार में हाहाकार होने लगा ॥४५-४६॥

आकाशगङ्गातोयेन शीतेन च सुगन्धिना ।  
 सिपेचामृतमिश्रेण कृष्णं देवेश्वरः स्वयम् ॥४७  
 नूनमात्मेच्छया कृष्णस्तथा चक्रे सुरोत्तमः ।  
 को हि शक्तो महात्मान युद्धे मोहयितु हरिम् ॥४८  
 कृष्णः प्रत्यागतप्राणश्चक्रमुद्यम्य भारत ॥  
 प्रतीचेति दुरात्मानमुवाच रिपुनाशनः ॥४९  
 निकुम्भोऽप्यतिमायावी उत्पपात् दुरासदः ।  
 शरीरं तत्परित्यज्य न तु त वेत्ति केशवः ॥५०

श्रीकृष्ण की ऐसी स्विति देख कर इंद्र ने तुरन्त ही उनके मुख पर आकाश गंगा का अमृतमय जल छिड़क दिया ॥४७॥ स्वयं श्रीकृष्ण ने ही मूर्च्छित होने का

भाव धारण किया था अथवा ससार में उन्हें मूर्छित करने वाला कौन हो सकता है ? ॥४८॥ कुछ भी हो, उन्हें चेत आगया और वे तुरंत ही अपना चक्र लेकर निकुम्भ से बोले—अरे पापात्मन् ! सावधान हो जा ॥४९॥ श्रीकृष्ण की गदा के आघात से वह भी मूर्छित हुआ पड़ा था, परंतु उसने अपने उस शरीर को छोड़ कर दूसरा देह धारण किया और वह देह वहीं पड़ा रहा ॥५०॥

मुमुपंति मृतो वायमिति मत्वा जनार्दन ।  
 ररक्ष स्मरमाणोऽथ वीरो वीरव्रत विभो ॥५१  
 अथ प्रद्युम्नकौन्तेयावागतौ लब्धचेतनौ ।  
 स्थितौ नारायणाभ्याशे निकुम्भवधनिषिचतौ ॥५२  
 प्रद्युम्नोऽप्यथ मायावी विदित कृष्णमत्रोत् ।  
 निकुम्भस्तात नास्त्यत्र गत क्वापि सुदुमति ॥५३  
 प्रद्युम्नेनैवमुक्ते तु तन्ननाश कनेवरम् ।  
 प्रह्लासाथ भगवानर्जुनेन सह प्रभु ॥५४  
 तदाऽप्युतसहभ्राणि निकुम्भाना जनाधिप ।  
 ददृशुस्ते ततो वीरा क्षिती दिवि च सर्जत ॥५५  
 सहस्राण्येव वृष्ण तु तथा पाथमरिदम ।  
 रीणिमणेय तथा वीर तद्द्रुतमिवाभवत् ॥५६

श्रीकृष्ण ने मुद्दम पतित हुए शत्रु पर प्रहार करना उचित न समझ कर उगरे उठन की प्रतीक्षा की, इतने में ही अर्जुन और प्रद्युम्न भी स्वस्थ होकर उनके पास आगये तथा निकुम्भ को मारने की इच्छा करने लगे ॥५१-५२॥ फिर प्रद्युम्न ने निकुम्भ की माया को समझ लिया और उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—हे राजा ! निकुम्भ इस समय रंग दह को त्याग कर वही अयत्न चला गया है ॥५३॥ प्रद्युम्न अभी जाता ही था पाये थे कि तभी यह शत्रु भी अदृश्य हो गया, यह देना कर कृष्ण और अर्जुन अदृष्टान्त कर उठे ॥५४॥ तभी निकुम्भ के दम हजार शरीर वृषिनी और आपाण पर प्रथम हुए दिखाई दिये ॥५५॥ फिर हजारों कृष्ण, अर्जुन और प्रद्युम्न भी प्रवृत्त होकर विपरण करने लगे, यह दम कर सब । अयत्न विराम हुआ ॥५६॥

पाण्डवस्य धनु केचित्केचिदस्य महाशरान् ।  
 अन्येऽस्य जगृहुर्हस्तावन्ये पादौ महासुरा ॥५७  
 एव ग्रहाय त वीरमगमस्ते विहायसि ।  
 पार्थानामपि कोटवस्तु गृहीताना तदाऽभवन् ॥५८  
 नान्त ददर्श कृष्णश्च कार्पिणश्च रिपुनाशनी ।  
 विच्छिद्य तौ शरैर्पीरो निकुम्भ पार्थवर्ज्जितौ ॥५९  
 एकैकस्तु द्विजाच्छिन्नो द्वेषा भवति भारत ।  
 दिव्यज्ञानस्तदा कृष्णो भगवाननुदृष्टवान् ॥६०  
 निकुम्भ तत्त्वतश्चापि ददर्श मधुसूदन ।  
 पटार सर्वमायाना हर्तार फाल्गुनस्य च ॥६१  
 स चक्रेण शिरस्तस्य चकर्त्ताऽमुरसूदन ।  
 पश्यता सर्वभूताना भूतभव्यप्रदो हरि ॥६२

तदनन्तर उन निकुम्भ शरीरो में से किसी ने अर्जुन वा धनुष, किसी ने बाण, किसी ने दोनों हाथ और किसी ने दोनों पात्र पकड़े और उन्हें आकाश मार्ग में ले उड़े । सभी एक साथ करोड़ों अर्जुन प्रकट होगये ॥ ५७-५८ ॥ तब कृष्ण और प्रद्युम्न व उप दैत्य को खोजा परन्तु उसका कहीं भी पता न चला । फिर उन्होंने निकुम्भ को बाणों से काट-काट कर दो दो टुकड़े किये तो वे सभी टुकड़े निकुम्भ बनने लगे । यह देख कर श्रीकृष्ण ने दिव्य दृष्टि का सहारा लिया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि निकुम्भ द्वारा अर्जुन का अपहरण किया जा रहा है ॥५९-६१॥ यह जानते ही उन्होंने अपने मुदर्शन चक्र के द्वारा उसके मस्तक के दो टुकड़े कर डाले ॥६२॥

स मुक्त्वा फाल्गुन राजञ्छि ने शिरसि भारत ।  
 पपातासुरमुटयोऽय च्छिन्नमूल इव द्रुम ॥६३  
 अथाकाशगत पार्थ पतमान विहायस ।  
 वृष्णवाक्येन जग्राह कार्पिण्यवयति मानद ॥६४  
 निकुम्भे पतिते भूमौ समाश्वास्य धनञ्जयम् ।

जगाम द्वारका देव पार्थकामसमन्वित ॥६५  
 समियाय दशार्होऽथ द्वारका मदितो विभु ।  
 नारद च महात्मान ववन्दे यद्गुनन्दन ॥६६  
 नारदोऽथ महानेजा भानु यादवमब्रवीत् ।  
 भानो मा कार्षीमंन्यु त्व श्रूयता भूमनन्दन ॥६७  
 क्रीडन्त्या रैवतीक्षाने दुर्वासा कोपितोऽनया ।  
 स शशाप ततो रोषान्मुनिर्दुहितर तव । ६८  
 अतिदुर्ललितं कन्या शत्रुहस्त गमिष्यति ।  
 सुतार्ये ते मया साद्धं मन्तिभि स प्रसादित ॥६९  
 बाला व्रतवती कन्यामनागसमिमा मुने ।  
 शप्तवानसि धर्मज्ञ कथ धर्मभृता वर ।  
 अनुग्रह विप्रत्स्वात्र वय विज्ञापयामहे ॥७०

हे राजन् ! तब उस दैत्य ने अर्जुन को छोड़ दिया और मूल में से कटे हुए वृद्ध के समान वह स्वयं आकाश से गिर कर घराशायी होगया ॥६३॥ इधर अर्जुन को गिरना हुआ देख कर प्रद्युम्न ने उन्हे बीच में ही सभाल लिया, जिससे उन्हे कोई चोट नहीं लगी ॥६४॥ इस प्रकार निकुम्भ के मारे जाने पर अर्जुन को साथ लेकर भगवान् द्वारका में लौट आये ॥६५॥ वहाँ आकर प्रसन्न हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने नारदजी को देखा और उनके चरणों में प्रणाम किया ॥६६॥ उसक पदचातु देवर्षि नारद ने यादव श्रेष्ठ भानु से कहा—हूँ यदुवशियो में श्रेष्ठ । तुम अपनी कन्या के विषय में किसी प्रकार की शका मत करो ॥६७॥ एक समय जब वह रैवतीक्षान में बालक्रीडा कर रही थी तभी उनके किसी अपराध पर महर्षि दुर्वासा क्रोधित होगया और उन्होंने उसे शाप दे दिया कि तू इस चञ्चलता के दोष से अपने शत्रु के हाथ में पड़ेगी । तब मैं अन्यान्य ऋषियों के साथ महर्षि दुर्वासा के पास गया और तुम्हारी कन्या को शाप से मुक्त करने के लिये उनसे अगुनय विनय करने लगा । मैंने कहा कि—हे धार्मिकों ! मैं श्रेष्ठ महर्षि । यह गर्विका भानुगनी अभी नितान्त अबोध और चञ्चल स्वभाव की है, इसलिये इस-



के अपराध पर आप रुष्ट न हों। जिस प्रकार भी समझ हो सके आप उसे क्षमा करके शाप से छुड़ा दें ॥६८-७०॥

अस्माभिरेवमुक्तस्तु दुर्वासा भैमनन्दन ।  
 उवचाधोमुखो भूत्वा मूर्हतं कृपयाऽन्वितः ॥७१  
 यदवोचमह वाक्य तत्तथः न तदन्यथा ।  
 रिपुहस्तमवश्य हि गमिष्यति न सशय ॥७२  
 अद्रूपितानुधर्मेण भर्तारमुपलप्स्यति ।  
 बहुपुत्रा बहुव्रता सुभगा च भविष्यति ॥७३  
 सुगन्धगन्धा च सदा कुमारी च पुन पुन ।  
 न च शोकमिमं घोर तन्वङ्गी धारयिष्यति ॥७४  
 एव भानुमती वीर सहदेवाय दीयताम् ।  
 श्रद्धधानः स शूरश्च धर्मशीलश्च पाण्डव ॥७५  
 ततो भानुमती भानुर्ददौ माद्रीमुताय वै ।  
 सहदेवाय धर्मात्मा नारदस्य वचः स्मरन् ॥७६  
 आनीत सहदेवश्च प्रेषितश्चक्रपाणिना ।  
 विवाहे च तदा वृत्ते सभार्यं स पुरी गतः ॥७७  
 इमं कृष्णस्य विजयं य पठेच्छृणुयादपि ।  
 विजयं सर्वकृत्येषु श्रद्धधानो लभेन्नरः ॥७८

हे यदव श्रेष्ठ ! हमारी बात सुन कर महर्षि दुर्वासा नीचा मुख बिये हुए कुछ देर तक सोचते रहे। फिर उन्होंने दयापूर्वक वहाँ कि मेरा वचन तो कभी मिथ्या नहीं हो सकता, इसे शत्रु के हाथ में तो अवश्य जाना होगा, परन्तु वह उससे किसी प्रकार द्रुपित न हो सकेगी और जब उसके पास से लौटेगी तब अपने पति को प्राप्त होती हुई महान् वैभव, पुत्र, और सौभाग्य श्री को प्राप्त करेगी ॥७१-७३॥ उसके देह से सदैव सुगन्ध निकलेगी और उसे जिस शाप की प्राप्ति हुई है, उसके कारण उसे किसी प्रकार का शोक नहीं होगा ॥७४॥ हे वीर ! अब तुम अपनी शाप से मुक्त हुई इस बन्धा को सहदेव को दे दो, क्योंकि

वह श्रद्धालु धार्मिक और वीर पाण्डुपुत्र है ॥७१॥ हे राजन् ! देवपि नागदजी के वचनों पर विश्वास करते हुए यादवों ने इसका अनुमोदन किया और तत्र श्रीकृष्ण ने सहदेव की हस्तिनापुर स बुनवा कर भाग्य की बया भानुमती का विवाह उनसे करा दिया । विवाह कार्य के सम्पन्न होने पर सहदेव अपनी बहू को लेकर हस्तिनापुर लौट गये ॥७६-७७॥ भगदन् श्रीकृष्ण की इस विजय-रथा का जो कोई मनुष्य श्रद्धा सहित पठ अथवा श्रवण करता है, उसे अपने सभी मनोरथों में विजय की प्राप्ति होती है ॥७८॥

### ॥ वज्रनाभ को वरदान ॥

हन्त ते वर्तयिष्यामि वज्रनाभवध नृप ।  
 विजय चैव कामस्य सायस्यै च भारत ॥१॥  
 मेरो भानी नरपते तपश्च क्रे पह सुर ।  
 वज्रनाभ इति ख्यातो निश्चित समितिजय ॥२॥  
 तस्य नुष्टो मह तेजा ब्रह्मा लोऋपितामह ।  
 वरेण च्छन्दयामाम तपसा परितोषित ॥३॥  
 अवध्यता म देवेभ्यो वक्रे दानवसत्तम ।  
 पुर वज्रपुर चापि सर्वरत्नमय शुभम् ॥४॥  
 स्वच्छन्देन प्रवेशश्च न वायोरपि भारत ।  
 अचिन्तितेन कामानामुपपत्तिर्नराधिप ॥५॥  
 शाखानगरमुद्याना सवाहाना शतानि च ।  
 नगरस्थाप्रमेयस्य समन्ताज्जनमेजय ॥६॥  
 तथा तदभवत्तस्य वरदानेन भारत ।  
 उवास वज्रनगरे वज्रनाभो महासुर ॥७॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अब मैं वज्रनाभ-वध तथा साम्ब और प्रद्युम्न की विजय गाथा तुमसे बहना दूँ उसे सुनो ॥१॥ एक वज्रनाभ नामक प्रसिद्ध दानव न सुमेरु पर्वत की गुफा में जाकर घोर तप किया ॥२॥ इस प्रकार बृद्ध बाल तप बटित तपस्या करने पर ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और उसके सामने

प्रकट होकर उ होने उससे घर मांगने को बहा ॥३॥ तब उसने देवताओं द्वारा अवध्य होने, अत्यन्त सुन्दर यज्ञपुर नामक नगर के विहित होने, उसमें सभी मुख्य साधनों के होने, पुर के चारों ओर उपनगरी और सैंकड़ों सुरम्य उपवनो के बनने तथा पुर में वायु तक के बिना आज्ञा प्रवेश न कर सकने आदि का वर उनसे मांगा ॥४-५ ६॥ तब ब्रह्माजी 'ऐसा ही होगा' कह कर वही अन्तर्धान होगये । उनसे वर प्राप्त होने पर उनकी सभी इच्छाएँ पूरी हुईं तथा वह अत्यन्त आनन्दपूर्वक अपने उस यज्ञपुर में रहने लगा ॥७॥

कोटिशो वरत्रय तमसुरा परिवार्य ते ।  
ऊर्ध्वयज्ञपुरे राजन्सवाहेषु तथैव च ॥८  
शाखानगरमुत्थेषु रम्येषु च नराधिप ।  
हृष्टपुष्टप्रमुदिता नृप देवस्य शत्रव ॥९  
वज्रनाभोऽथ दुष्टात्मा वरदानेन दत्तित ।  
पुरेऽस्य चात्मनश्चैव जगद्वाप्सितुमुद्यत ॥१०  
महेन्द्रमन्नवीद्गत्वा देवलोक विशापते ।  
अहमीशितुमिच्छामि त्रैलोक्य पाकशासन ॥११  
अथवा मे प्रयच्छस्व युद्ध देवगणेश्वर ।  
सामान्य हि जगत्कृत्स्न काश्यपाना महात्मनाम् ॥१२  
स बृहस्पतिना सार्द्धं मन्त्रयित्वा महेश्वर ।  
वज्रनाभ सुरश्रेष्ठ प्रोवाच कुर्वन्शज ॥१३  
सत्रेषु दीक्षित सौम्य कश्यपो न पिना मुनि ।  
तस्मिन्वृत्ते यथा न्याय्य तथा स हि करिष्यति ॥१४

फिर सब ओर ने बरोड़ो दैत्य वहाँ आकर उनके आश्रय में बस गये । कुछ असुर उपनगरी में और कुछ उपवनो में निवास करने लगे । वे सभी दैत्य विशालकाय प्रसन्न मुख और हृष्टपुष्ट थे ॥८ ९॥ इस प्रकार सभी दानव आनन्द पूर्वक निवास कर रहे थे, तब वह दैत्य ब्रह्माजी के वर से गर्वीं होकर सत्तार को दस देने में तत्पर हुआ ॥१०॥ उस दैत्य ने एक बार स्वर्ग में जाकर इंद्र

से कहा कि—हे महेन्द्र ! अब मैं तीनों लोकों पर राज्य करना चाहता हूँ इसलिये तुम मेरी इस बात को नहीं मानना चाहते तो मुझसे युद्ध करलो । वैसे इस विश्व पर राज्य करने का अधिकार हम कश्यप वंश वालों की ही है ॥ ११-१२ ॥ तब इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पतिजी से परामर्श करके उसे उत्तर दिया कि—हे सोम्य ! हमारे पिता कश्यपजी ने यज्ञ की दीक्षा ले रखी है जब उनका यज्ञ पूर्ण हो जायगा तब उनसे आदशानुसार ही सत्र निर्णय हो सकेगा ॥ १३-१४ ॥

तत स पितर गत्वा कश्यप दानवोऽब्रवीत् ।  
 यथोक्त देवराजेन तमुवाचाथ कश्यप ॥१५  
 सत्रे वृत्ते ऋषियामि यथान्याय भविष्यति ।  
 त्व तु वज्रपुरे पुन वस गच्छ समाश्रित । १६  
 एवमुक्ते वज्रनाभ स्वमेव नगर गत ।  
 महेन्द्रोऽपि ययौ देवो द्वारका द्वारशालिनीम् । १७  
 गत्वा चानर्हितो देशे वामुदेवमथान्नवीत् ।  
 वज्रनाभस्य वृत्तात् तमुवाच जनार्दन ॥१८  
 शीरैरुपस्थितो देव वाजिमेधो महाक्रतु ।  
 तस्मिन्वृत्ते वज्रनाभ पातयिष्यामि वासव ॥१९  
 तन्नोपाय प्रवेशे तु चिन्तयाव सता गते ।  
 नानिच्छया प्रवेशोऽस्ति तत्र वायोरपि प्रभो ॥२०

फिर उस दैत्य ने अपने पिता कश्यपजी के पास जाकर उन पर अपना अभिप्राय प्रकट किया । तब वे उससे बोले—हे वेटा ! अभी जब तक मैं यज्ञ के अनुष्ठान में लगा हूँ, तब तक तुम आनन्द से वज्रपुर में निवास करो, जब यज्ञ सम्पूर्ण हो जायगा, तब इस पर विचार करूँगा ॥ १५ १६ ॥ पिता की बात सुन कर दैत्य अपने पुर को चला गया और इधर इन्द्र ने द्वारका जाकर श्रीकृष्ण को सब वृत्तात् बताया । तब श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—हे देवेन्द्र ! महात्मा वसुदेवजी शीघ्र ही अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करने वाले हैं, उस यज्ञ के अवसर पर ही मैं उसका वध कर दूँगा ॥ १७ १८ १९ ॥ परन्तु ब्रह्माजी के वर के कारण उसके

पुर मे वायु भी उसकी आज्ञा के बिना नहीं घुस सकता, इसलिये कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिये कि ब्रह्माजी के वचन का भी उल्लंघन न हो पावे और पुर मे भी प्रवेश हो सके ॥२०॥

ततो गतो देवराजो वासुदेवेन सत्कृत ।  
 वाजिमेधे च संप्राप्ते वसुदेवस्य भारत ॥२१  
 तस्मिन्यज्ञे वर्तमाने प्रवेशार्थं सुगोत्तमौ ।  
 चिंतयामासतुर्वीरौ देवराजाच्युताबुभौ ॥२२  
 तत्र यज्ञे वर्तमाने सुनाट्येन नटस्तदा ।  
 महर्षीस्तोषयामास भद्रनामेति नामत ॥२३  
 त वरेण मुनिश्चेष्टाश्छन्दयामासुरात्मवान् ।  
 स वव्रे तु नटो भद्रो वर देवेश्वरीरम ॥२४  
 देवेन्द्रकृष्णच्छन्देन सरस्वत्या प्रचोदित  
 प्रणिपत्य मुनिश्चेष्टानश्वमेधे समागतान् ॥२५  
 भोज्यो द्विजाना सर्वेषा भवेय मुनिसत्तमा ।  
 सप्तद्वीपा च पृथिवी विचरेयमिमामहन् ॥२६  
 प्रसिद्धाकाशगमन शक्नुवश्च विशेषत ।  
 अवध्य सर्वभूताना स्थावरा ये च जङ्गमा ॥२७  
 यस्य यस्य च वेपेण प्रविशेयमह खलु ।  
 मृतस्य जीवतो वापि भाव्येनोत्पादितस्य वा ॥२८  
 सतूर्यस्तादृश स्या वै जरारोगविवर्जित ।  
 तुष्येयुमु नयो नित्यमन्ये च मम सर्वदा ॥२९

इस प्रकार के वार्तालाप के पश्चात् भगवान के द्वारा सरकार को प्राप्त हुए देवराज स्वर्ग लोक को चले गये और इधर कुछ समय मे ही वसुदेवजी का यज्ञ आरम्भ होगया ॥२१॥ इसी अवधि मे श्रीकृष्ण और इन्द्र दोनो ही देवराज के वज्रपुर मे घुसने के उपाय पर विचार करने लगे ॥२८॥ जिस समय वसुदेव-जी का वज्र निर्विकल्प रूप से सम्पन्न होने को था, तभी इन्द्र नामक एक नट ने

नाम की पुत्री प्रभावती के समान सो दयमयी कन्या तीनों लोको मे कही भी नहीं है उसकी मुक्त कान्ति चन्द्रमा के समान है ॥२८॥ सुना गया है कि उसकी माता को उसकी प्राप्ति भगवती पावतीजी के वरदान से हुई थी । अब उसके बधुओ ने उसका स्वयवर करना स्थिर किया है । वह कन्या स्वेच्छापूर्वक जिस पुरुष को चाहेगी, उसे वरण कर लेगी ॥३९-४०॥ इसलिये, तुम्हे उस बावली मे रहने हुए उस कन्या के आगे प्रद्युम्न के रूप, शील तथा गुणो का वर्णन करते रहना है ॥४१॥ वचनाभमुता प्रभावती जब प्रद्युम्न के रूप को प्रति आसक्त हो जाय, तब उसकी सूचना मुझे यहाँ आकर देना ॥४२॥

## ॥ प्रद्युम्न आदि का वज्रपुर प्रस्थान ॥

ते वासववच श्रुत्वा हसा वज्रपुर ययु ।  
 पूर्वोचित हि गमन नेपा तत्र जनाधिप ॥१॥  
 ते दीर्घिकासु रम्यासु निपेतुर्वीर पक्षिण ।  
 पद्मोत्पलैरावृतासु काञ्चनै स्पर्शनक्षमै ॥२॥  
 ते वै नदन्तो मधुर सस्कृतापूर्वभाषिण ।  
 पूर्वमप्यागतास्ते तु विस्मय जनयन्ति हि ॥३॥  
 अन्त पुरोपभोग्यासु चेर्वापीपु ते नृप ।  
 दृष्टास्ते वज्रनाभस्य त्रिविष्टपनिवासिन ॥४॥  
 आलपन्त सुमधुर धार्तराष्ट्रा जनेश्वर ।  
 स तानुवाच दैतेयो धार्तराष्ट्रानिद वच ॥५॥  
 त्रिविष्टपे नित्यरता भवन्तश्चाहमाषिण ।  
 यदैवेहोत्सवोऽस्माक भवद्भिरवगम्यते ॥६॥  
 आगन्तव्य जालपादा स्वमिद भवता गृहम् ।  
 विस्त्रय च प्रवेष्टव्य त्रिविष्टपनिवासिनि ॥७॥

वैतम्पायनजी ने कहा—हे राजर् ! इन्द्र की बात सुन कर सभी हतगण उस वज्रपुर मे जा पड़े, जहाँ से वे पूर्व परिचित थे ॥१॥ वहाँ जाकर उहाँ

एक अत्यन्त रमणीक बावली में निवास किया ॥२॥ इससे पहिले भी वे मधुर स्वर में बलरव करते हुए घूमते थे, तब उन्हें देख कर वहाँ के निवासी बड़े प्रसन्न होते थे । इसलिये, इस समय भी वे उसी प्रकार बल-रव करते करते हुए अन्त-पुर की बाधलियों में घूमने लगे । उन्हें देख कर वज्रनाभ ने स्नेह प्रदर्शित करते हुए उनसे कहा—हे हसगण ! तुम स्वेच्छापूर्वक स्वर्ग में रहते हो तो रहो, परन्तु, मेरे यहाँ किसी उत्तमव के अवनर पर अवश्य आज्ञाया करो । तुम इसे अपना घर समझ कर चाहे जब आने के लिये स्पतन्त्र हो ॥३-७॥

ते तथोक्ता शकुनयो वज्रनाभेन भारत ।

तथेत्युक्त्वा हि विमिश्रुर्दानन्दनिवेशनम् ॥८

चक्रुः परिचय ते च देवकार्प्यव्यपेक्षया ।

मानुपालापिनस्ते तु कथाश्चक्रुः पृथग्विधा ॥९

वशवद्धा काश्यपाना सर्वकल्याणभागिनाम् ।

स्त्रियो रेपुर्विज्ञेपण श्रुष्वन्त्य सङ्गता कथाः ॥१०

विधरन्तस्तातो हमा दृशुश्चारुहासिनीम् ।

प्रभावनी वरारोहा वज्रनाभसुता तदा ॥११

हसा परिचिता चक्रुस्ता ततश्चारुहासिनीम् ।

सखी शुचिमुखी चक्रे हमी राजसुता तदा ॥१२

सा ता कदाचित्प्रच्छ वज्रनाभसुता सखीम् ।

विश्रम्भिता पृथक्सूक्तौ राख्यानकशतैर्वराम् ॥१३

त्रैलोक्यप्रसुन्दरी वेद्मि त्वामह हि प्रभावति ।

रूपशीलगुणैर्देवि किञ्चित्त्वा वक्तुमुत्सहे ॥१४

व्यतिक्रामति ते भीर यौवनं चारुहासिनि ।

यदतीत पुनर्नेति गत स्रोत इवाम्भस ॥१५

हे राजन् ! वज्रनाभ की बात सुन कर हमो ने 'जो आशा' कह कर उसे स्वीकार किया और पुरी में पहुँच कर देवताओ का कार्य सिद्ध करने के लिये वहाँ की सब वस्तुओ को देखने लगे । उनके कलरव से अन्त पुर की स्त्रियो की

यहाँ आकर अपना नृत्य दिखलाया, जिससे यज्ञ में उपस्थित सभी ऋषिगण  
 उत्पन्न प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को बहने लगे। देवताओं के समान उस  
 नट ने जैसे ही वर माँगना चाहा, वैसे ही श्रीकृष्ण और इन्द्र की प्रेरणा से सर-  
 स्वतीजी ने उसके कंठ पर अधिकार कर लिया। इसलिये वह नट उन ऋषियों  
 से बोला ॥२३-२६॥ आकाश भ्रमण में मेरी अबाध गति हो, स्यावर-जंगम किसी  
 भी प्राणी के द्वारा मैं मर न सकूँ, मैं अपनी इच्छा से मरे हुए, जीवित अथवा  
 भविष्य में होने वाले शरीर धारियों का रूप धारण करके जहाँ जाना चाहूँ, वही  
 चला जाऊँ, वृद्धावस्था मेरा स्पर्शन कर सके और सभी मुनि आदि मुझ पर सर्वत्र  
 प्रसन्न रहे। वस, मेरी यही कामना है, इसलिये ऐसा ही वर मुझे प्रदान कीजिये  
 ॥२७-२८-२९॥

एवमस्त्विति सप्रोक्तो ब्राह्मणैर्न पते नट ।  
 सप्तद्वीपा वसुमती पर्यटत्यमरोपम ॥३०  
 पुराणि दानवेन्द्राणामुत्तराश्च कुरु स्तथा ।  
 भद्राश्वान्केतुमालाश्व कालाभ्र द्वीपमेव च ॥३१  
 पर्वणीषु तु सर्वासु द्वारका यदुमण्डिताम् ।  
 आयानि वरदत्त स लोकवीरो महानटः ॥३२  
 ततो हसान्धार्तराष्ट्रान्देवलोनिवासिन ।  
 उवाच भगवान्शक्र सान्त्वयित्वा सुरेश्वर ॥३३  
 भवन्तो भ्रानरोऽस्माक काश्यपा देवपक्षिण ।  
 विमानवाहा देवाना मुकृतीना तथैव च ॥३४  
 देवानामस्ति कर्तव्य कार्यं शनुवद्यान्वितम् ।  
 तत्कर्तव्यं न मन्त्रश्च भेत्तव्यो व. कथंचन ॥३५

मुनियों ने 'ऐसा ही होगा' कह कर उसे वर प्रदान किया और तब वह  
 नट इस सप्तद्वीपा पृथिवी पर अपनी इच्छानुसार विचरण करने लगा ॥ ३० ॥  
 इस प्रकार वह दैत्यो की सभी पुरियों में, उत्तरकुरु में तथा केतुमाल और  
 कालाभ्र द्वीपादि स्थानों में घूमने लगा ॥३१॥ फिर वह यादवों की द्वारकापुरी में



भी प्रत्येक पर्व अथवा महोत्सव के अवसर पर जाने लगा ॥३२॥ एही अवसर पर इंद्र ने स्वर्ग लोक में ही निवास करने वाले हसी को बुला कर उससे कहा कि—हे हमगण ! आप महात्मा कश्यपजी के वंशज होने से कारण मेरे भी भाई हो और स्वर्ग में निवास करते हुए तुम देवताओं का भया अभय पुष्पारमाओं के यानों का भी तुम स्वेच्छानुसार उपभोग कर सकते हो ॥३३-३४॥ इस समय रात्रियों के मारन विषयक देवताओं का एक कार्य उपस्थित होगया है, उसे तुम ही पूरा कर सकने हो । परन्तु मैं तुम्हें जो कहता हूँ, उस रहस्य को किसी पर प्रकट मत कर देना ॥३५॥

न कुर्वता देवताशामुग्रो दण्ड पतेदपि ।

सर्वत्राप्रतिषिद्धो वो गमन हससत्तमा ॥३६

गत्वाऽप्रवेश्यमन्येषा वज्रनाभपुरोत्तमम् ।

इतोऽन्त पुरवापीपु चरद्यमुचित हि प. ॥३७

तम्यास्ति वन्यारत्न हि त्रैलोक्यातिशय शुभम् ।

नाम्ना प्रभावती नाम चन्द्राभेव प्रभावती ॥३८

वरदानेन सा लब्धा माता किल वरानना ।

हैमवत्या महादेव्या सकाशादिति न श्रुताम् ॥३९

स्वयंवरा च सा कन्या बन्धुभि र्वापिता रासी ।

आत्मेच्छया पतिं हसा वरयिष्यति शोभना ॥४०

तद्भुवद्भिर्गुणा वाच्या प्रद्युम्नरय महात्मनः ।

सद्भूता कुलरूपस्य शीतरय तयसरतथा ॥४१

यदा सा रक्तभावा च वज्रनाभमुता रासी ।

तस्या सकाशात्सदेशो नयितव्य समाधिना ॥४२

हे हस श्रेष्ठो ! देवताओं की आशा का उपलक्षण करने वाली को तदा दण्ड भय उपस्थित रहता है । तुम सभी स्थानों पर जाने में समर्थ हो, इसलिये मैं उस देवताओं को तुमसे कहता हूँ, गुणों—तुम गुरुरत ही वज्रनाभ की गुरुरीत नगरी में जाकर यहाँ की मायवी में निवास करो ॥३६-३७॥ दानवराज पश्य-

बड़ा आनन्द आने लगा ॥८-१०॥ फिर उहोने सुन्दर मुसकान वाली अत्यत रूप-वती वञ्चनाभमुता प्रभावती को देखा तो एक-एक हस ने उससे परिचय प्राप्त कर लिया और उनमें जो एक शुचिमुखी हसी थी, उससे तो उमकां सहेली भाव ही होगया ॥११-१२॥ तदनन्तर एक दिन उस हसी और प्रभावती के मध्य विविध वात्तयिं छिड़ गईं और तब अवसर पाकर हसी ने उससे कहा—हे सखी ! तुम रूप, गुण, स्वभाव आदि में तीनों लोको में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हो । मैं देखती हूँ कि तुम्हारी यौवनावस्था व्यतीत होती जा रही है । जैसे जल का प्रवाह पीछे षो नहीं लौटता, वैसे ही गया हुआ यौवन पुन नहीं आता ॥१३-१५॥

कामोपभोगतुल्या हि रतिर्देवि न विद्यते ।  
 स्त्रीणा जगनि कल्याणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१६  
 स्वयवरे च न्यस्ता त्व पित्रा सर्वाङ्गशोभने ।  
 न च वाश्चिद्वरयसे देवासुरकुलोद्भवान् ॥१७  
 व्रीडिता यान्ति सुश्रोणि प्रत्याख्यातास्त्वया शुभे ।  
 रूपशौर्यगुणैर्युक्तान्सदृशास्त्व कुलस्य हि ॥१८  
 आगतान्नेच्छसे देवि सदृशान्कुलरूपयो ।  
 इहैष्यति किमर्थं त्वा प्रद्युम्नो रविमणीसुत ॥१९  
 त्रैलोक्ये यस्य रूपेण सदृशो न कुलेन वा ।  
 गुणैर्वा चारुसर्वाङ्गि शौर्येणाप्यति वा शुभे ॥२०  
 देवेषु देव सुश्रोणि दानवेषु च दानव ।  
 मानुषेष्वपि धर्मात्मा मनुष्य स महाबल ॥२१  
 य सदा देवि दृष्ट्वा हि स्ववन्ति जघनानि हि ।  
 आपीनानीव धेनुना स्तोतासि सरितामिव ॥२२

स्त्रियो के लिये भोग के समान आनन्दप्रद कोई वस्तु नहीं है यह मैं सत्य कहती हूँ ॥१६॥ मैं हँसी नहीं कर रही हूँ तुम्हारे पिता ने तुम्हें स्वेच्छापूर्वक पति वरण करने का अधिकार दिया है, परन्तु तुम दैत्यवश अथवा देववश के किसी भी पुरुष को पसन्द नहीं कर रही हो ॥१७॥ जो भी तुम्हारे वश, रूप,

गुण, बल आदि में समान युवक यहाँ आये, वे सब तुम्हारी अस्वीकृति के कारण लज्जा से सिर झुका कर यहाँ से चले जाते हैं ॥१८॥ जब तुम अपने अनुरूप सभी युवकों को लौटा चुकी तो अब कौन तुमसे तिरस्कृत होना चाहेगा ? मैं एक और राजकुमार को बताती हूँ—वे रत्नमणीजी के पुत्र प्रद्युम्न हैं, उनके समान रूप, गुण, बल और वीरता में कोई भी पुरुष सत्सार में नहीं है ॥१९-२०॥ जो देवताओं में देवता माने जाते हैं, असुरों में असुर और मनुष्यों में पराक्रमी मनुष्य समझे जाते हैं ॥२१॥ जिनका एक बार दर्शन कर लेने पर स्त्रियाँ कामासक्त हो जाती हैं ॥२२॥

न पूर्णचन्द्रेण मुख नयने वा कुशेशये ।  
उत्सहे नोपमातु हि मृगेन्द्रेणाथ वा गतिम् ॥२३॥  
जगत सारमुद्धृत्य पुत्र स विहित शुभे ।  
कृत्वाऽनङ्ग वर साङ्ग विष्णुना प्रभावष्णुना ॥२४॥  
हृतेन शम्भरो बाल्ये येन पापो निर्वहित ।  
मायाश्च सर्वा सप्राप्ता न च शील विनाशितम् ॥२५॥  
यान्द्रान्गुणान्पृथुथोणि मनसा कलयिष्यसि ।  
एष्टव्यास्त्रिपु लोकेषु प्रद्युम्ने सर्वे एव ते ॥२६॥  
रच्यन्वह्निप्रवीकाश क्षमया पृथिवीसमः ।  
तेजसा सूर्यसम्भरो गाम्भीर्येण हृदोपमः ।  
प्रभावती शुचिमुगी त्रितो होवाच भामिनी ॥२७॥

जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान, आँखें कमल के समान और चान्द्री के समान यमा, उसमें भी बट कर है ॥२३॥ जिन्होंने अपने बालकपन में ही शम्भुरासुर को मार दिया, जो सब प्रकार के मायाओं को जानते हैं, जो सर्वत्र निष्पट स्वभाव वाले हैं और जिन्हें भगवान् विष्णु ने अपने पुत्र रूप में ही उत्पन्न किया है ॥२४-२५॥ जो अग्नि के समान दीप्ति वाले, पृथिवी के समान क्षमाशील, सूर्य के समान तेजोमय और समुद्र के समान गम्भीर हैं । इन गुणों के अतिरिक्त भी जिन गुणों की तुलना करना बर भारी हो, वे सभी श्रेष्ठ गुण

उनमे विद्यमान हैं। परन्तु तुम्हारे द्वारा यदि राजकुमारो का इस प्रकार तिरस्कार होना रहा तो प्रद्युम्न को यहाँ किस प्रकार लाया जा सकेगा ? हसी यह कह कर चुप होगई ॥२६ २७॥

विष्णुर्मानुपलोकस्थ श्रुत सुवहुरो मया ।  
 पितु कथयत सौम्य नारदस्य च धीमत ॥२८  
 शत्रु किल स दैत्याना वर्जनीय सदाऽनघे ।  
 कुलानि किल दैत्याना तेन दग्धानि मानिनि ॥२९  
 प्रदीप्तेन रथागेन शाङ्गण गदया तथा ।  
 शाखानगरदेशेषु वसन्ति किन् येऽसुरा ॥३०  
 प्रद्युम्न स्याद्यथा भर्ता स मे वृष्णिकुलोद्भव ।  
 अत्यन्तवैरी दैत्यानामुद्वेजनकरो हरि ॥३१  
 असुराणा स्त्रियो वृद्धा कथयन्त्यो मया श्रुता ।  
 प्रद्युम्नस्य तथा जन्म पुरस्तादपि मे श्रुतम् ॥३२  
 यथा च तेन निहतो ब्रह्मवान्कालशम्बर ।  
 हृदि मे वतते नित्य प्रद्युम्न खलु सत्तमे ॥३३  
 हेतु स नास्ति स्यात्तेन यथा मम समागम ।  
 दासी तवाह सख्याहं दूत्ये त्वां च विसर्जये ॥३४  
 पण्डिताऽसि वदोपाय मम तस्य च सङ्गमे ।  
 ततस्ता सान्त्वयित्वा सा प्रहसन्तीदमब्रवीत् ॥३५

तब प्रभावती ने कहा—हे सखी ! महर्षि नारदजी और अपने पिताजी के द्वारा इस समय भगवान् विष्णु क मत्स्यलोक मे होने की बात मैं सुन चुकी हूँ ॥२८॥ दैत्यो के परमशत्रु उन विष्णु के चक्र घनुष और गदा के द्वारा हमारे देववर्ग का बडा अपकार हुआ है—यह बताते हुए मेरे पिता सभी दैत्यो को उन से बचने को बहने रहते हैं ॥२९ ३०॥ तब यह बताओ कि जब प्रद्युम्न के पिता श्रीकृष्ण दैत्यो के परमशत्रु हैं तो प्रद्युम्न के साथ मेरा विवाह किस प्रकार हो ? ॥३१॥ प्रद्युम्न के जन्म होने और उनसे द्वारा शम्बरामुर के मारे जाने का सब

वृत्तान्त में वृद्धाओ के मुख से सुन चुकी हूँ, तभी से मेरा चित्त उनके प्रति आसक्त हो गया है ॥३२-३३॥ परन्तु, उनके साथ मिलने का कोई भी उपाय दिखाई नहीं देना, इसलिये यदि तुम इस विषय में मेरी सदेश वाहिका बन सको तो बड़ी कृपा होगी ॥३४॥ तुम सब कार्यों में अत्यन्त बुझान हो, इसलिये तुम ही कोई उपाय बताओ । यह सुन कर हनी ने सान्त्वना भरे शब्दों में उत्तर देना ॥३५॥

तत्र दूती गमिष्यामि तवाह चारुहामिनि ।  
 इमा भक्ति तवोदारा प्रवक्ष्यामि शुचिस्मिते ॥३६  
 तथा चैव करिष्यामि यथैष्यति तवान्तिकम् ।  
 साक्षात्कामेन मुश्रोणि भविष्यति सकामिनी ॥३७  
 इति मे भाषित नित्य स्मरेशा शुचिलोचने ।  
 कथाकुशलता पिवे कथयस्वायतेक्षणैः ॥३८  
 ममत्वं तत्र मे देवि द्विव सम्प्रकप्रपत्स्वसे ।  
 इयुक्ता सा तथा चक्रे यत्तत्सा तामथ ब्रवीत् ॥३९  
 दानवेन्द्रश्च ता हसी पप्रच्छान्तपुरे तदा ।  
 प्रभावत्या समाख्याना कथाकुशलता तव ॥४०  
 तत्त्व शुचिमुखि श्रूहि कथा योग्यतया वरे ।  
 किं त्वया दृष्टमाश्चर्यं जगत्युत्तमपक्षिणि ॥४१

शुचिमुखी हनी बोली—हे सुन्दर मुसवान वाली मखी ! मैं तुम्हारी सदेश-वाहिनी बन कर अभी यहाँ जाती हूँ और प्रद्युम्न को तुम्हारे प्रेम का सदेश देकर उ हे यहाँ लाने का भी प्रयत्न करूँगी । यदि तुम्हारा यह कार्य बन गया तो फिर तुम माधाव कामदेव की भाषा बन जाओगी ॥३६-३७॥ हे सुन्दर नयन वाली ! तुम मेरे वचन की सत्प्रना को तो भविष्य में दे लोगी, परन्तु अभी तो तुम अपने पिता के पास जाकर मेरे वाक्-चातुर्य के विषय में उनसे कहो ॥३८॥ मेरा विश्वास है कि तुम्हारी कामना अशय पूरी होगी । शुचिमुखी की बात सुन कर प्रभावती उठी समय अपने पिता के पास गई और उमन उन्हें हनी के वाक्-चातुर्य की बात बतायी ॥३९॥ दैत्यराज ने अपनी पत्नी के गुण में हनी की गढ़

विशेषता सुनी तो वह तुरन्त ही उसके पास जाकर बोला—हे हामी ! प्रभावती ने मुझे तुम्हारे वाक् चातुर्य के विषय में बताया था, जिससे प्रभावित होकर ही मैं तुम्हारे पास आया हूँ ॥ ४० ॥ इस समय मैं यही पूछना चाहता हूँ कि क्या तुमने इस जगत् में शुभ अशुभ युक्त अथवा अभूतपूर्व किसी आश्चर्य उत्पन्न करने वाली घटना को देखा है ? यदि देखा हो तो उसे भले प्रकार मुझमें कहो ॥ ४१ ॥

अदृष्टपूर्वमन्यैर्वायोग्यायोग्यमनिन्दते ।  
 सोवाच वज्रनाभ तु ह सी वरनरोत्तम ॥४२  
 श्रूयतामित्यथामन्थ्य दानवेन्द्र महाद्युतिम् ।  
 दृष्टा मे शाण्डिली नाम सध्वी दानवसत्तम ।  
 आश्चर्यं कर्म कुर्वन्ती मेरपाश्र्वे मनस्विनी ॥४३  
 सुमनाश्चैव वीशल्या सर्वं भूतहिते रता ।  
 कथञ्चिद्वरशाण्डिल्या शैलपुत्र्या शुभासखी ॥४४  
 नटश्चैव मया दृष्टो मुनिदत्तवरे शुभ ।  
 कामरूपी च भोज्यश्च त्रैलोक्ये नित्य समत ॥४५  
 कुरून्यात्युत्तरान्वीर कालभ्रद्वीपमेव च ।  
 भद्राश्वान्केतुमालाश्च द्वीपानन्यास्तथानघ ॥४६  
 देवगन्धवगेयानि नृत्यानि विविधानि च ।  
 स वेत्ति देवान्नृत्येन विस्मापयति सर्वथा ॥४७

हे राजन् ! देवराज की बात सुन कर हसी ने उसे अभिवादन किया और बड़ने लगी—हे राजन् ! जो मैं कहती हूँ, उसे सुनो । सुमेरु पर्वत के निकट शाण्डिली नाम की मनस्विनी तथा सब प्राणियों का हित करने वाली एक साध्वी ने विस्मयजनक कार्यों को मैंने देखा है ॥४२-४३॥ उसकी एक परम सखी वीशल्या नाम की मनस्विनी है । उसके अतिरिक्त मैंने एक ऐसे नट को भी देखा है जो मुनियों के वरदान के कारण अपनी इच्छानुसार रूप धारण करने वाला, नृत्य और अभिनय में कुशल तथा सब का प्रिय है । वह कभी उत्तर कुरु, कभी वाताभ्र द्वीप, कभी भद्राश्व, कभी केतुमाल अथवा अन्यान्य स्थानों में जाता

हुआ तीतो लोको मे विचरण करता रहता है ॥४४ ४५-४६॥ उसके देवताओं और गधवों के समान नृत्य को देख बर और गायन को सुन कर देवताओं को भी आश्चर्य होता है ॥४७॥

श्रुतमेतन्मया हसि न चिरादिव विस्तरम् ।  
 चारणाना कथयता भिद्धाना च महात्मनाम् ॥४८॥  
 कुतूहल ममाप्यस्ति सर्वथा पक्षिनन्दिनि ।  
 नटे दत्तवरे तस्मिन्सस्तवस्नु न विद्यते ॥४९॥  
 सप्तद्वीपान्त्रिचरति नट स दितिजोत्तम ।  
 गुणवन्त जन श्रुत्वा गुणकार्यं स सर्वथा ॥५०॥  
 तव चेच्छृणुयाद्वीर सद्भूत गुणविस्तरम् ।  
 नट तदागत विद्धि पुर तव महासुर ॥५१॥  
 उपाय सृजता हसि येनेह स नट शुभे ।  
 आगच्छेन्मम भद्र ते विषय पक्षिनन्दिनि ॥५२॥  
 ते ह सा वज्रनाभेन वार्यहेतोर्विसजिता ।  
 देवेन्द्रायाथ कृष्णाय शशसु सर्वमेव तन् ॥५३॥  
 अधोक्षजेन प्रद्युम्नो नियुक्तस्तत्र वर्मणि ।  
 प्रभायत्याश्च समर्गे वज्रनाभवधे तथा ॥५४॥

वज्रनाभ बोला—हे हसी ! कुछ दिन पहिले सिद्धो और चारणो ने उस नट के विषय मे मुझे बत कुछ बनाया था ॥४८॥ मैं भी उसे देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूँ, परन्तु उमे बुलाने के लिये किसी प्रकार का निहोरा न बरके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह मेरी प्रशंसा सुन कर स्वय ही यहाँ आजाय ॥४९॥ इस पर हसी ने कहा—हे दैत्यराज ! वह नट सभी द्वीपों मे भ्रमण करता रहता है । यह लोग गुण को प्रहण करने वाले होते हैं, वे जहाँ पर गुण का होना सुनते हैं, वही स्वयं पहुँच जाते हैं ॥५०॥ जब वह आपके परम गुणों को सुनेगा, तब यहाँ अवश्य ही आकर उपस्थित हो जायगा ॥५१॥ हसी के यह बहने पर वज्रनाभ बोला—हे रागी ! तुम उसे मेरे नगर मे बुलाने के लिये कोई उपाय

करो ॥५२॥ यह कह कर दैत्यराज ने उन सभी हंसों को वहाँ से जाने की अनुमति प्रदान कर दी । हे राजन् ! यद्यपि वे हंस वज्रनाभ के कार्य से गये थे, परन्तु उन्होंने वहाँ से स्वर्ग में जाकर इन्द्र को और द्वारका जाकर श्रीकृष्ण को सब वृत्तांत सुना दिया ॥५३॥ तत्र श्रीकृष्ण न प्रभावती के साथ विवाह करने और वज्रनाभ को मारने विषयक सभी कार्य प्रद्युम्न पर छोड़ दिया ॥५४॥

दैवी माया समाश्रित्य सविधाय हरिर्नटम् ।  
 नटवेपेण भैमाना प्रेषयामास भात ॥५५  
 प्रद्युम्न नायक कृत्वा साम्ब कृत्वा विदूषकम् ।  
 पारिपाश्वे गद वीरमन्यान्भैमास्तथैव च ॥५६  
 वारमुत्था नटी कृत्वा तत्तर्यसदृशास्तदा ।  
 तथैव भद्र भद्रस्त सहायाश्च तथाविधान् ॥५७  
 प्रद्युम्नविहित रम्य विमान ते महारथा ।  
 जग्मुराह्व्य कार्श्वी देवानामभिनीजसाम् ॥५८  
 एकैकस्य समा रूपे पृथ्वा पुह्यस्य ते ।  
 स्त्रीणा च सदृशा सर्वे ते स्वरूपैर्नराधिपा ॥५९  
 ते वज्रनगरस्याथ शाखानगरमुत्तमम् ।  
 जग्मुर्दानसकीर्णं स्वपुर नाम नामत ॥६०

फिर उन्होंने दिव्य माया के द्वारा यादवों का नट वेश बनाया और उन्हें वज्रनाभ पुर जाने का आदेश दिया ॥५५॥ उन नट मण्डली के नायक प्रद्युम्न हुए तथा साम्ब ने विदूषक का वेश बनाया और गद आदि अन्यान्य यादवगण तथा अनेकों वार वज्र नटी के वेश में सुसज्जित की गई । इस प्रकार श्रीकृष्ण के द्वारा नट वेश में सुसज्जित यादवगण प्रद्युम्न के आदेशानुसार रथारूढ होकर देवताओं का कार्य करने के लिये वहाँ से चले ॥५६-५७-५८॥ उन नट वेश वाले यादवों का अद्वितीय रूप था, उनका कठ-स्वर और देहगम लावण्य स्त्रियों को भी मोहित करने वाला था ॥५९॥ इस प्रकार नट वेशधारी वे यादव दानवों से भरे वज्रनाभ पुर के उपनगर स्वपुर में जा पहुँचे ॥६०॥



## ॥ प्रद्युम्न-प्रभावती-मिलन ॥

तत सुपुरवासीनामसुराणां नराधिप ।  
 ददावाजां वज्रनाभो दीयतां गृहमुत्तमम् ॥१॥  
 आतिथ्य क्रियतामेवा बहुरत्नमुपायनम् ।  
 वासांश्च सुविचित्राणि सुखाय जनरञ्जनम् ॥२॥  
 भर्तुं राज्ञा समालभ्य तथा चक्रुश्च सर्वशः ।  
 पूर्वं श्रुतो नटः प्राप्तः कौतूहलमजीजनत् ॥३॥  
 नटस्वाथ ददुर्दत्त्वा सत्कार परया मुदा ।  
 पर्यायार्थं ददुश्चापि रत्नानि सुबहुयथ ॥४॥  
 ततः स ननृते तत्र वरदत्तो नटस्तथा ।  
 स्वपुरे पुरवासीना परं हर्षं समादधत् ॥५॥  
 रामायण महाकाव्यमुद्देश्य नाटकीकृतम् ।  
 जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेष्वनया ॥६॥

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उन नटों के आगमन से सभी नगर निवासी उत्सुक हो उठे और वज्रनाभ ने दैत्यों को उनके टहरने के लिये उत्तम स्थान देने का आदेश दिया ॥१॥ उनका उचित सत्कार किया जाय तथा उपहार स्वरूप विविध रत्न, वस्त्रादि उन्हें दिये जाय—इस आज्ञा के मिलते ही दानवों ने तुरन्त ही वैसी व्यवस्था करदी । उन नटों की प्रमिद्धि भी वही पहिले में ही होरही थी ॥२-३॥ इसलिये सभी दानवों ने उन नटों का भले प्रकार अतिपि-सत्कार कर उन्हें सुमज्जित होने के लिये अनेक प्रकार के रत्न प्रदान किये ॥४॥ फिर जब उन नटों के नायक ने नृत्य आरम्भ किया तब तो नागरिकों में अमी-मित आनन्द छागया ॥५॥ नृत्य के पश्चात् रामायण महाकाव्य पर आधारित अभिनय प्रारम्भ हुआ, उसमें रावण के मारने के लिये राम का जन्म होने का दृश्य दिखाया जा रहा था ॥६॥

संस्कराभिनयो तेषां प्रस्ताधाना च धारणम् ।  
 दृष्ट्वा सर्वे प्रवेजं च दानना रिन्मयं गताः ॥७॥

ते रक्ता विस्मयं नेदुरसुगः परया मुदा ।  
 उत्थायोत्थाय नाटयस्व विषयेषु पुन पुन ॥८  
 ददुर्वंखाणि तुष्टाश्च ग्रैवेप्रवलयानि च ।  
 हारान्मनोहराश्चैव हेमवैदूर्यभूषितान् ॥९  
 ततो ह सी प्रभावत्या सखी प्राह प्रभावतीम् ।  
 गताऽस्मि द्वारका रम्या भैमगुप्तामभिन्दिते ॥१०  
 प्रद्युम्नश्च मया दृष्टो विविक्ते चारुलोचने ।  
 भक्तिश्च कथिता तस्य मया तव शुचिस्मिते ॥११  
 तेन हृष्टेन कालश्च कुन. कमललोचने ।  
 अद्य प्रदोषसमये त्वया सह समागमे ॥१२

उनकी अभिनय कुशलता और प्रस्तावना आदि कार्यों को देख कर सभी उपस्थित दंत्य बड़े विस्मित हुए और जब नाटक का एक एक दृश्य अभिनीत होकर बदलने लगा तब तो वे आनन्द के कारण कोलाहल करने लगे । साथ ही उन्होंने उन अभिनेताओं को श्रेष्ठ रत्न, कठ हार, वैदूर्य आदि मणियों से जड़ी हुई माला आदि तथा श्रेष्ठ वस्त्रादि भेंट किये ॥७-८-९॥ इसी अवसर पर शुचिमुखी हसी प्रभावती के पास गई और उनमें बहने लगी—हे राजकुमारी ! मैं यादवों की द्वारका पुरी में गई थी और वहाँ प्रद्युम्न से एवान्त में मिल कर तुम्हारे प्रेम का वृत्तान्त उन्हें सुना दिया, इस पर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और आज ही सायंकाल में तुम्हारे पात अनेकानेक वचन दिया है ॥१०-११-१२॥

तदद्य रुचिरश्रोणि तव प्रियसमागमः ।  
 न ह्यात्मवति भापन्ति मिथ्या भैमकुलोद्भवाः ॥१३  
 तत. प्रभावती हृष्टा ह सी तामिदमब्रवीत् ।  
 उपिताऽसि मयाऽऽवासे स्वप्नुमहंसि सुन्दरि । १४  
 त्वयाऽहं सहिताऽऽवासे द्रष्टुमिच्छामि केशविम् ।  
 नि.साध्वना भविष्यामि त्वया सह विहङ्गमे ॥१५  
 हंसी तथेति चोपाच सर्षी वमतलोचनाम् ।  
 आरुरीह च तदम्यं प्रभावत्या विहङ्गमा ॥१६

विश्वकर्मकृते तल हर्म्यपृष्ठे प्रभावती ।

सविधान चकाराशु प्रद्युम्नागमनक्षमम् ॥१७

इसलिये आज तुम्हारा अपने प्रिय से मिलना अवश्यभावी है, क्योंकि यदु-  
वशी कभी मिथ्या भाषण नहीं करते ॥१३॥ तब प्रभावती बड़ी हर्षित हुई और  
वह हषी से बोली—हे सखी ! तुम बहुत काल से मेरे घर में रहती हो, इसलिये  
आज रात्रि में भी तुम्हें यहाँ रहना होगा ॥१४॥ क्योंकि कृष्णपुत्र प्रद्युम्न को मैं  
तुम्हारे सामने ही देखना चाहती हूँ उस समय तुम यहाँ रहोगी तो मुझे कोई  
भय नहीं रहेगा ॥१५॥ राजकुमारी के प्रस्ताव से सहमत हुई हुई हसी उसके  
साथ ही एक विश्वकर्मा निर्मित प्रासाद पर चढ़ कर प्रद्युम्न के सत्कार-योग्य  
वस्तुओं को इकट्ठा करने लगी ॥१६-१७॥

## ॥ प्रद्युम्न प्रभावती विवाह ॥

आविष्टेय मया वाला सर्वथेत्यवगम्य तु ।

कार्ष्णिर्हृष्टेन मनसा ह सीमिदमुवाच ह ॥१

दैत्येन्द्रनया प्राप्तमव गच्छस्व मामिह ।

पटपदै सह पटपादो भूत्वा माल्ये निलीय हि ॥२

विधेयोऽस्मि प्रभावत्या यथेष्ट मयि वर्तताम् ।

इत्युक्त्वा दर्शयामास सुरूपो रपमात्मन ॥३

तत्तुर्म्यपृष्ठ प्रभया द्योतित तस्य धीमत ।

अभिमता प्रमा चैव राजश्चन्द्रोद्भवा शुभा ॥४

प्रभावत्यास्तु त दृष्ट्वा बबुधे वाममागर ।

चन्द्रस्येवोऽये प्राप्ते पर्वण्या सरिता पति ॥५

सलज्जावोमुगी त्रिञ्चित्त्रिञ्चित्तियंगवेक्षिणी ।

प्रभावती तदा तस्यो निश्चल वमलेशणा ॥६

करेणाध प्रदेसे ता चामपणभूषिताम् ।

रूपेणैव वरारोहा रोमोच्चित्रस्त ॥७

मनोरथशतैर्लब्धं किं पूर्णेन्दुसमप्रभम् ।

अधोमुखं मुखं कृत्वा न मा कञ्चित्प्रभापसे । ८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् । श्रीकृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न ने प्रभावती को अपने ऊपर आसक्त जान कर हथी से कहा कि तुम दैत्यपति वज्रनाभ की पुत्री से कह दो कि मैं भौरो मे मिल कर माला के साथ ही उनके यहाँ आकर उपस्थित होगया हूँ ॥१-२॥ इस समय मैं प्रभावती का अनुगत हूँ, और जैसा वह वहे वैसा ही करने को तत्पर हूँ, यह कहते हुए प्रद्युम्न अपने यथार्थ रूप में वहाँ प्रकट हो-गये ॥३॥ उनके रूप की आभा से सम्पूर्ण महल जगमगा उठा और चन्द्रमा की चाँदनी भी फीकी पड़ गई ॥४॥ जैसे पूर्णिमा के चन्द्रमा को देख कर समुद्र उमडने लगता है, वैसे ही प्रद्युम्न के दर्शन करते ही, प्रभावती के हृदय का प्रेम रूपी समुद्र उमड पड़ा ॥५॥ परन्तु वह पद्मक्षी लज्जा से सिर झुकाये हुए और कभी-कभी उनकी ओर देवती हुई मौन भाव से बैठी रही ॥६॥ तब प्रद्युम्न ने उसकी ठोडी को ऊपर की ओर करते हुए कहा कि मैं घोर परिश्रम करने के पश्चात् तुम्हारे चन्द्रमुख को देख सका हूँ, फिर तुम सिर झुकाये हुए क्यों बैठी हो ? ॥७ ॥

प्रभोपमदं मा कार्पावन्दनस्य वरानने ।

साध्वस त्यज्यता भीरु दास साध्वनुगृह्यताम् ॥८

न कालमिव पश्यामि भीरु भीरुत्वमुत्सृज ।

याचाम्येपोऽञ्जलिं कृत्वा प्राप्तकाल निबोध मे ॥९०

गान्धर्वेण विवाहेन कुरुव्रानुग्रहं मम ।

देशकालानुत्पेण रूपेणाप्रतिमा सती ॥९१

उपस्पृश्य ततो भूमौ मणिस्थ जातवेदसम् ।

जुहाव समये वीर पुष्पर्मन्त्रानदीरयन् ॥९२

जग्राहाथ करे तस्या वरामरणभूपितम् ।

चक्रं प्रदक्षिण चैव तं मणिस्य हुताशतम् ॥९३

प्रजज्वाल स तेजस्वी मानयन्नच्युतात्मजम् ।

भगवान्जगत्तः साक्षी शुभस्याथाशुभस्य च ॥९४

उद्दिश्य दक्षिणा वीरो विप्राणा यदुनन्दन ।  
उवाच ह सी द्वारस्था तिष्ठान्वा रक्ष पक्षिणि ॥१५

हे श्रेष्ठ मुख बानी ! तुम भयभीत न हो और जब मैं तुम्हारा अनुगत यहाँ उपस्थित हूँ तो भय का कोई कारण है भी नहीं ॥६॥ मैं तुम्हें किंचित् भी भयभीत नहीं देखना चाहता, इसलिए तुम भय को बिल्कुल ही छोड़ दो और इस समय गाधर्व विवाह करने की मुझे अनुमति दो ॥१०-११॥ यह कह कर प्रद्युम्न ने मन्त्री का उच्चारण कर माण में स्थित अग्नि को स्पर्श करके आहुति प्रदान की ॥१२॥ फिर श्रेष्ठ आभूषण वाली प्रभावती का पाणिग्रहण करके मणि में स्थित अग्नि की परिक्रमा करने लगे ॥१३॥ तभी सम्पूर्ण विश्व के शुभ-अशुभ कर्मों के द्रष्टा अग्नि देवता प्रद्युम्न के सम्मानार्थ प्रज्वलित हो उठे ॥१४॥ इस प्रकार विवाह होने के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों की दक्षिणा सकल्प करके उन्होंने हसी को रक्षा के लिये द्वार पर नियुक्त किया ॥१५॥

वञ्चनाभस्य तु भ्रता सुनाभो नाम विश्रुत ।  
दुहितृद्वय च नृपतेस्तस्य रूपगुणान्विनम् ॥१६  
एका चन्द्रवती नाम्ना गुणवत्यथ चापरा ।  
प्रभवात्यालय ते तु व्रजत खलु नित्यदा ॥१७  
ददृशाते तु ते तत्र रतिसक्ता प्रभावतीम् ।  
परिपप्रच्छनुश्चैव विस्रम्भोपगता सतीम् ॥१८  
सोत्राच्च मम विद्याऽस्ति याऽग्नीना काक्षित पतिम् ।  
रत्यर्थं साऽऽनयत्याशु सौभाग्यं च प्रयच्छति ॥१९  
देव वा दानव वापि विवश मद्य एव हि ।  
साऽहं रमामि कान्तेन देवपुत्रेण धीमता ॥२०  
दृश्यता मत्प्रभावेण प्रद्युम्न सुप्रियो मम ।  
ते दृष्ट्वा विस्मयं याते रूपवीचनसम्पदम् ॥२१

द्वैत्यराज वञ्चनाभ या गुनाभ नामक एक भाई था । उसकी दो पुत्रियाँ चन्द्रवती और गुणवती नाम की थी । वे दोनों गुदरी प्रभावती के भवन में प्रति

का पाणिग्रहण कर लिया । उनमें गद का चन्द्रवती में और साम्ब का गुणवती से विवाह हुआ ॥३२-३३॥ फिर वे इन्द्र और श्रीकृष्ण के आदेश प्राप्ति की प्रतीक्षा करते हुए उन दानव पुत्रियों के साथ आनन्द पूर्वक दिन काटने लगे ॥३४॥

## ॥ श्रीकृष्ण द्वारा शिवजी की स्तुति ॥

जगतश्चक्षुषि ततो मुहूर्ताभ्युदिते रवौ ।  
 प्रादुरासीद्धरिर्देवस्ताक्षर्यणोरगशाश्रुणा ॥१॥  
 ह सवायुमनोभिश्च सुशीघ्रतरग भग ।  
 तस्थौ वियति शक्रस्य समीपे कुरुनन्दन ॥२॥  
 समेत्य च यथान्याय कृष्णो वासवसन्निधौ ।  
 पाञ्चजन्य हरिर्दध्मी दैत्याना भयवर्द्धनम् ॥३॥  
 त श्रुत्वाऽभ्यागतस्तत्र प्रद्युम्नो वरवीरहा ।  
 वज्रनाभ जहोत्युक्त केशवेन त्वरेति च ॥४॥  
 ताक्षर्यमारुह्य गच्छेति पुनरेव प्रणोदित ।  
 चकार स तथा वीर प्रणिपत्य सुरोत्तमौ ॥५॥  
 स मनोरहसा वीर ताक्षर्येणाशु ययौ नृप ।  
 अभ्यास वज्रनाभस्य महाद्वन्द्वस्य भारत ॥६॥  
 ततस्ताक्षर्यगतो वीरस्ततर्द्धरणमूर्द्धनि ।  
 वज्रनाभ स्थिरो भूत्वा सर्वास्त्रविदनिन्दित ॥७॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर सूर्योदय होने के उपरान्त जब छह दण्ड दिन चढ़ गया, तब भगवान् श्रीकृष्ण गरुड पर चढ़ कर वज्रपुर में आये ॥१॥ उस समय गरुड वायु से भी अधिक वेग से चले और आकाशमाग में स्थित हुए इन्द्र के पास आकर ठहर गये ॥२॥ इस प्रकार जब इन्द्र और उपेन्द्र श्रीकृष्ण की भेंट हुई तब श्रीकृष्ण ने दैत्यों को भयभीत करने वाले अपने पाञ्चजन्य शस्त्र की ध्वनि की ॥३॥ उस शस्त्र ध्वनि को सुनते ही प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के समक्ष जाकर उपस्थित हुए । उस समय श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—हे पुत्र ! तुम

तुरंत गरुड पर चढ़ कर दंत्यराज वज्रनाभ की मार डालो ॥४॥ पिता का आदेश सुन कर प्रद्युम्न उठे और इंद्र को प्रणाम किया तथा सन के से वेग धाले गरुड पर चढ़ कर वज्रनाभ के सामने जा पहुँचे । ५ ६॥ फिर शस्त्र विद्या में पारंगत प्रद्युम्न ने युद्ध क्षेत्र में जाकर अपने अत्यंत पौने वाणों से वज्रनाभ पर प्रहार किया ॥७।

तेन ताक्ष्यगतेनैव गदया वृष्णसूनुना ।  
उरस्यभ्याहतो वीरो वज्रनाभो महात्मना ॥८  
स तेनाभिहतो वीरो दंत्यो मोहवश गत  
चक्षार च भृश रक्त बभ्रामैव गतामुवत् ॥९  
आश्रसेत्यथ त कार्ष्णिस्त्वाच रणदुजय ।  
लब्धसज स वीरस्तु प्रद्युम्नमिदमन्नवीत् ॥१०  
साधु यादव वीर्येण श्लाघ्यो मन रिपुर्भवान् ।  
प्रतिप्रहारकालोऽय स्त्विरो भव महाबल ॥११  
एवमुक्त्वा महानाद मुक्त्वा मेघशतोपमम् ।  
गदा मुमाच वेगेन सघण्टा बहूकण्टकाम् ॥१२  
तगा ललाटेऽभिहत प्रद्युम्ना गदया नृप ।  
उद्धमन्रुधिर भूरि मुमोह यदुनन्दन ॥१३  
त दृष्ट्वा भगवान्कृष्ण पाञ्चजन्य जलोद्भवम् ।  
दध्मावाश्वासनकर पुलस्य रिपुनाशन ॥१४  
त पाञ्चजन्यशब्देन प्रत्याश्रस्त महाबलम् ।  
दृष्ट्वा प्रमुदिता लोका विशेषेणन्द्रकेशवी ॥१५

थोड़े ही समय में उन गरुड वाहन प्रद्युम्न के गदा प्रहार से हृदय पर आपात को प्राप्त हुआ वज्रनाभ रुधिर बमन करता हुआ मूर्च्छित होगया ॥८ ९॥ फिर जब उठी घेत हुआ, तब प्रद्युम्न उससे बोले—हे दंत्येद्र ! धीरज रतो ! इस पर वज्रनाभ ने कहा—हे यदुज्ज्वार ! अबश्य ही तूम महाबली और प्रयाग के योग्य हो । परन्तु अब मरे प्रहार को सहन करने के लिये संनस जाओ ॥१०-

दिन जाती थी ॥१६१७॥ उन दोनों ने जब प्रभावती को भोगो में आसक्त हुई देखा, तब उन्होंने परिहासपूर्वक उसका वारण पूछा ॥१८॥ इस पर प्रभावती बोली कि मुझे एक विद्या सिद्ध है, जिसके प्रभाव से देवता, दैत्य अथवा जिस अन्यान्य युवक को पति रूप में मान कर उमकी कामना की जाय तो वह तुरन्त ही आजाना है । वह देखो, मैंने उसी विद्या के प्रभाव से प्रद्युम्न पति मान कर यहाँ बुला लिया है । उसके सकेत पर उन दोनों ने प्रद्युम्न को वहाँ देखा तो वे दोनों ही चौंक पड़ी ॥१६-२१-२१॥

पुनरेवाग्रवीत्ते तु भगिन्यौ चारुहासिनी ।  
 प्रभावती वरारोहा कालप्राप्तमिदं वच ॥२२  
 देवा घर्मरता नित्यं दम्भशीला महासुरा ।  
 देवास्तपसि रक्ता हि सुखे रक्ता महासुरा ॥२३  
 देवा सत्प्रे रता नित्यमनृते तु महासुरा ।  
 धर्मस्तपश्च सत्यं च यत्नं तन्न जयो ध्रुवम् ॥२४  
 देवपुत्रो रयता पती विद्या ददाम्यहम् ।  
 उचिती मत्प्रभावेण सद्य एवोपलप्स्यथ ॥२५  
 ता तथेत्यूचतुष्टुष्टे भगिन्यौ चाहचोचनाम् ।  
 परिपप्रच्छ भ्रमं च कार्यं तत्पतिमानिनी ॥२६  
 स पितृव्यं गदं वीरं साम्बं चाथान्नवीतदा ।  
 रूपान्वितौ च सुशीलौ च शूरी च रणकर्मणि ॥२७  
 परितुष्टेन दत्ता मे विद्या दुर्वाससा पुरा ।  
 परितुष्टेन सौभाग्यं सदा कन्यात्वमेव च ॥२८  
 देवदानवयक्षाणां यद्यथास्यसि स ते पति ।  
 भवितेति मया चैव वीरोऽयमभिकाक्षित ॥२९

तब उस श्रेष्ठ मुगवान वाली प्रभावती ने उनसे कहा—देवता सदा धार्मिक कार्यो को और दानव दम्भ के कारण बुरे कर्मो को करते रहते हैं । देवता सदा सत्य सोलते और दैत्य मिथ्या भाषण में उत्तर रहते हैं । परन्तु जहाँ



तप और धर्म है, वही सत्य और विजय है ॥२२-२३-२४॥ इसलिये मैं तुम्हे भी उस विद्या को बताती हूँ, तुम भी दो देवताओं की पति रूप में अभिलाषा करो तो वे तुम्हारे सामने तुरन्त ही आजायेंगे ॥२५॥ यह सुन कर चन्द्रवती और गुणवती दोनों ने उसकी बात मान ली, तब प्रभावती ने प्रद्युम्न से सब समाचार कह कर अब क्या करना चाहिये—यह पूछा ॥२६॥ तब प्रद्युम्न ने अपने पितृव्य गद और भाई साम्ब के विषय में कहा कि वे दोनों ही अत्यन्त मुन्दर, गुणी, सुशील तथा युद्ध-कुशल हैं ॥२७॥ यह जान कर प्रभावती ने उन दोनों को जाकर बताया कि महर्षि दुर्वासा ने इस विद्या के प्रदान पूर्वक गुप्त से कहा था कि देवता, दैत्य, यक्ष आदि में से तुम जिसे भी अपना पति बनाने की इच्छा करोगी, वही तुम्हारा पति हो जायगा । इसीलिये मैंने प्रद्युम्न को अपना पति बनाया है ॥२८-२९॥

गृहणीतं तदिमां विद्या सद्यो वा प्रियसङ्गमः ।

ततो जगृहतुर्हृष्टे तां विद्या भगिनीमुखात् ॥३०

दध्यनुगंदमाम्बी च विद्यामभ्यस्य ते शुभे ।

तो प्रद्युम्नेन सहितौ प्रविष्टौ भैमनन्दनौ ३१

प्रच्छन्नी मायया वीरी कार्ष्णिना मायिना नृप ।

गान्धर्वेण विवाहेन तावप्यरिवलार्दनी ॥३२

पाणि जगृहतुर्वीरो मन्त्रपूर्वं सता प्रियौ ।

चन्द्रवत्या गदः साम्बो गुणवत्या च कौशविः ॥३३

रेमिरेऽसुरकन्याभिर्वीरास्ते यदुपुङ्गवाः ।

मागंभाणास्त्वनुजां ते शक्रकेशवयोस्तदा ॥३४

इसलिये, तुम भी इस विद्या को सीख कर शीघ्र ही प्रिय के मिलन का मुझ प्राप्त करो । यह सुन कर दोनों बहिनो ने प्रभावती से उस विद्या को प्राप्त करके गद और साम्ब की कामना की तो वे दोनों यादव बुद्ध देर में ही वहाँ प्रायेंगे ॥३०-३१॥ परन्तु मायावी प्रद्युम्न की माया के प्रभाव से उस यात्रा का स्मि को पता न लग सका । फिर मन्त्रोच्चारण पूर्वक उन दोनों ने, दोनों कन्याओं

११॥ यह वह ऊर वज्रनाभ ने अपनी घण्टा और काँटी से युक्त गदा को भीषण गर्जन पूर्वक प्रद्युम्न पर चलाया ॥१२॥ तदा लगने ही प्रद्युम्न वुरी तरह घायल होकर मुख से रक्त वमन करने लगे और उह मूर्च्छा आगई ॥१३॥ उनकी यह दशा देख कर श्रीकृष्ण ने अपने पाञ्चजन्य शस्त्र की ध्वनि की, जिसे सुन कर प्रद्युम्न को चैतन्यता आगई, यह देख कर इन्द्र और कृष्ण को अत्यन्त हर्ष हुआ ॥ १४-१५ ॥

तस्य चक्र करे यात कृष्णच्छन्देन भारत ।  
 धुरनेमिसहस्रार दैत्सयधकुलातकम् ॥१६  
 तन्मुमोचाच्युतसुतस्तस्य नाशाय भारत ।  
 नमस्कृत्वा सुरेन्द्रायैकृष्णाय च महात्मने ॥१७  
 वज्रनाभस्य ताकामादुच्चकर्त शिरस्तदा ।  
 नारायणसुनोन्मुक्त दैत्यानामनुपश्यताम् ॥१८  
 गद सुनाभमवधीद्यतमान रणाजिरे ।  
 हर्म्यपृष्ठे जिघासन्त रणदृप्त भयानकम् ॥१९  
 साम्ब समरमध्यस्थानसुरानरिमर्दन ।  
 निनाय निशितैर्वाणिं प्रेताधिपपरिग्रहम् ॥२०  
 निकुम्भोऽपि हते वीरे वज्रनाभे महासुरे ।  
 जगाम षट्पुर वीरो नारायणभर्यादिनम् ॥२१

इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण का दानव वश विध्वंसक सुदर्शन चक्र प्रद्युम्न के हाथ में पहुँच गया ॥१६॥ चक्र के हाथ में आते ही प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण और सुरेन्द्र की प्रणाम करके उस चक्र को वज्रनाभ के सहारार्थ प्रेरित किया ॥१७॥ तब उस प्रेरित हुए चक्र ने वज्रनाभ के मस्तक को सब दैत्यों के देखते-देखते छिन्न भिन्न कर धरती पर गिरा दिया ॥१८॥ वज्रनाभ के भाई रणदत्त और सुनाभ अपने भवनों पर चढ़े हुए यादवों को लक्ष्य बना कर मार रहे थे, उन दोनों को गद ने वाणों के प्रहार से मार डाला ॥१९॥ तदनन्तर साम्ब ने रणक्षेत्र में उपस्थित सभी दानवों को अपने सूतीक्षण वाणों से घघ कर-करके उहे यम सदन की प्राप्ति कराई ॥२०॥ हे राजन् । महादानव वज्रनाभ की मृत्यु का

समाचार मिलते ही भगवान् कृष्ण से भयभीत होकर निकुम्भ अपने नगर वटपुर को चला गया था ॥२१॥

निर्वहिते देवरिपी वज्रनाभे महासुरे ।  
 अवतीर्णौ महात्मानौ हरी वज्रपुरं तदा ॥२२  
 लब्धप्रशमन चैव चक्रतु सुरसत्तमौ ।  
 सान्त्वयामासतुश्चैव बालवृद्ध भयादितम् ॥२३  
 इन्द्रोपेन्द्री महात्मानौ मन्त्रयित्वा महाबली ।  
 आयत्या च तदात्वे च बृहस्पतिमनानुगौ ॥२४  
 वज्रनाभस्य तद्राज्यं चतुर्धा चक्रतुर्नृप ।  
 विजयस्य चतुर्भागं जयन्ततनयस्य वै ॥२५  
 प्रद्युम्नस्य चतुर्भागं रौक्मिण्यस्य सुतस्य च ।  
 चन्द्रप्रभस्य ददतुश्चतुर्भागं जनेश्वर ॥२६  
 कोट्यश्चतस्रो ग्रामाणामधिकास्ता विशांपते ।  
 शाखापुरसहस्रं च स्फीत वज्रपुरोपमम् ।  
 चतुर्धा चक्रतुस्तत्र सहृष्टौ शक्रकेशवौ ॥२७

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण और इन्द्र दोनों ही वज्रपुर में जाकर प्रकट होगये । उनके आने से भय-विम्मित हुए दानव बालको, वृद्धो आदि को उन्होने सात्वना दी ॥२२-२३॥ फिर वज्रपुर का शासन-प्रबन्ध ठीक प्रकार से चल मके, इगक लिये उन्होने देवगुरु बृहस्पतिश्री से मन्त्रणा करने वज्रपुर की चार सण्डों में विभक्त कर दिया । उनमें से एक सण्ड जयन्त पुत्र विजय को, दूसरा प्रद्युम्न पुत्र धनिरुद्ध को, तीसरा सण्ड साम्य के पुत्र को और चौथा सण्ड गद के पुत्र चन्द्र-प्रभ को प्रदान किया ॥२४-२६॥ वज्रपुर के चारो ओर जो चार बरोड गाँव और वज्रपुर के समान हजारो उपनगर थे, वे तथा बम्बल, चर्म, वस्त्र, रत्नादि विविध मन्त्रयं ने भी चार भाग करने चन्ती में बाँट दिये ॥२७-२८॥

## ॥ शम्बरानुर द्वारा प्रद्युम्न का अपहरण ॥

य एष भवता पूर्वं शम्बरघ्नेत्युदाहृतः ।  
 प्रद्युम्न स कथं चघ्ने शम्बरं तद्ब्रवीहि मे ॥१॥  
 रुक्मिण्या वासुदेवस्य लक्ष्या कामो धृतव्रतः ।  
 शम्बरान्तकरो जज्ञे प्रद्युम्न कामदर्शनः ।  
 सनत्कुमार इति यः पुराणे परिगीयते ॥२॥  
 त सप्तरात्रे सपूर्णं निशीथे सूतिकागृहात् ।  
 जहार कृष्णस्य सुतं शिशुं वै कालशम्बर ॥३॥  
 विदितं तस्य कृष्णस्य देवमायानुवर्तिनः ।  
 ततो न निगृहीतः स दानवो युद्धदुर्मदः ॥४॥  
 स मृत्युना परीतायुर्मायया सजहार तम् ।  
 दोर्भ्यामुत्क्षिप्य नगरं स्वनिनाय महासुर ॥५॥  
 अनपत्या तु तस्यासीद्भार्या रूपगुणान्विता ।  
 नाम्ना मायावती नाम मायेव शुभदर्शना ॥६॥  
 ददौ तं वासुदेवस्य पुत्रं पुत्रमिवात्मजम् ।  
 तस्या महिष्या मायिन्या दानवः कालचोदितः ॥७॥

राजा जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने प्रद्युम्न को शम्बरासुर का मारने वाला बताया है, तो कृपया वह कथा मुझे सुनाइये कि प्रद्युम्न ने उसे कैसे मारा ? ॥१॥ वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण की रुक्मिणी नाम की भार्या ने प्रद्युम्न को जन्म दिया था । वे प्रद्युम्न कामदेव के अवतार और पूर्वकाल में सनत्कुमार नाम से विख्यात थे ॥२॥ जन्म होने से सात दिन ग्पतीन होने पर आधी रात के समय सूतिकागृह से ही शम्बरासुर ने प्रद्युम्न को हरण कर लिया था ॥३॥ यद्यपि माया के जानने वाले भगवान् को यह सब विषय ज्ञात था, फिर भी उन्होंने शम्बरासुर को मारने का कोई यत्न नहीं किया ॥४॥ इनी-लिये बाल के बशीभूत हुआ वह दैत्य प्रद्युम्न को उठा कर अपने पुर में ले गया ॥५॥ माया के समान ही मायावती नाम की उसकी पत्नी थी, अभी तक उसके

कोई पुत्र नहीं हुआ था, इसलिये शम्बरासुर ने प्रद्युम्न को मायावती को दे दिया  
॥ ६-७ ॥

मायावती तु तं दृष्ट्वा सप्रहृष्टतनुरूहा ।

हर्षेण महता युवता पुनः पुनरुदक्षत ॥८

अथ तस्या निरीक्षन्त्याः स्मृतिं प्रादुर्वभूव ह ।

अयं स मम कान्तोऽभूत्समृत्त्वैव चान्वचिन्तयत् ॥९

अयं स नाथो भर्ता मे यस्यार्थेऽहं दिवानिशम् ।

चिन्ताशोकार्णवे मग्ना न विन्दामि रतिं क्वचित् ॥१०

अयं भगवता पूर्वं देवदेवेन शूलिना ।

प्रेदितेन कृतोऽनङ्गो दृष्ट्वा जात्यन्तरे मया ॥११

कथमस्य स्तनं दास्ये मातृभावेन जानती ।

भर्तुं भार्या त्वहं भूत्वा वक्ष्ये वा पुत्र इत्युत ॥१२

एव सचिन्त्य मनसा धात्र्यास्त सा समर्पयत् ।

रसायनप्रयोगेश्च शीघ्रमेव व्यवधंयत् ॥१३

धात्र्याः सकाशात्स च ता शृण्वन्रु किमणिनन्दनः ।

मायावतीमविजानान्मेने स्वामेव मातरम् ॥१४

सा च तं वदंयामास कार्पिण कमललोचनम् ।

मायाश्चारमं ददौ सर्वा दानवी काममोहिता ॥१५

प्रद्युम्न को देखते ही मायावती पुत्रकित हो उठी और अत्यन्त हर्षित हो-  
कर उसे बारम्बार देगने लगी ॥८॥ फिर उसे पूर्वजन्म का स्मरण हुआ कि यह  
तो मेरे पति ही थे । वह सोचने लगी कि मैं इन्हीं की प्राप्ति के लिये इतनी व्य-  
थित रहती थी ॥९-१०॥ मायावती को यह भी याद आ गई कि शिवजी ने क्रोध  
परके इसे देह-रहित कर दिया था ॥११॥ इसलिये मैं इन्हें स्तन पान कैसे करा  
सकूंगी और पुत्र भी कैसे करूंगी ? ॥१२॥ यह सोच कर उसने प्रद्युम्न के लिये  
एक घाय की निगुञ्जित की और रसायन आदि के प्रयोग से वह उनकी शीघ्रता  
से दृष्टि कराने लगी ॥१३॥ रचिनी पुत्र प्रद्युम्न ने घाय के बहने से मायावती

को ही अपनी माता समझा ॥११॥ फिर जैसे जैसे प्रद्युम्न की देह-वृद्धि होने लगी, वैसे-वैसे ही कामासक्त हुई मायावती उन्हें विविध दानवी मायाएँ सिखाने लगी ॥ १५ ॥

स यदा यौववस्यस्तु प्रद्युम्नः कामदर्शनः ।

चिकीर्षितज्ञो नारीणा सर्वास्त्रविधिपारगः ॥१६

तं सा मायावती कान्त कामयामास कामिनी ।

इङ्गितैश्चापि वीक्षन्ती प्रालोभयत्, सस्मिता ।

प्रमज्जन्ती तु ता देवी वभापे चारुहसिनीम् ॥१७

मातृभावं व्यतिक्रम्य किमेव वर्ततेऽन्यथा ।

अहो दुष्टस्वभावाऽसि स्त्रीत्वे चपल मानसा ॥१८

या पुत्रभावमुत्सृज्य मयि लोभात्प्रवर्तसे ।

न तु तेऽहं सुतः सौम्ये कोऽयं शीलविपर्ययः ॥१९

तत्त्वमिच्छाम्यहं देवि कथित को न्वय विधिः ।

विद्युत्सम्पातचपलः स्वभावः प्लु योपिताम् ॥२०

या नरेषु प्रसज्जन्ते नगाग्रेषु घना इव ।

यदि तेऽहं सुतः सौम्ये यदि वा नात्मजः । शुभे ॥२१

कथित तत्त्वमिच्छामि किमिदं ते चिकीर्षितम् ।

एवमुक्त्वा तु सा भीरु कामेन व्यथितेन्द्रिया ॥२२

प्रिय प्रोवाच वचनं विदिवते केशवात्मजम् ।

न त्वं मम सुतः कान्त नापि ते शम्बरः पिता ॥२३

इस प्रकार युवावस्था में प्रवेश करते हुए प्रद्युम्न माया और अस्त्रविद्या में पारंगत होकर शिवो के हाव-भाव समझने लगे । उस समय उनके रूप पर मोहित हुई मायावती विविध प्रकार के वामप्रद हाव भावों का प्रदर्शन करने लगी, इससे प्रद्युम्न ने मायावती का अपने ऊपर वामानवक्त होना समझ लिया और उससे कहें लगे कि हे देवि ! तुम माता होकर भी इस प्रकार के विपरीत और दुष्टतापूर्ण भावों को क्यों प्रदर्शित करती हो ? जान पड़ता है कि दुष्टा होने के

कारण ही तुम इस प्रकार के चंचल मन वाली हो ॥१६-१६। मैं तुम्हारे इस स्वभाव का कारण जानने का इच्छुक हो उठा हूँ । वैसे तो स्त्रियाँ स्वभाव से ही विद्युत् के समान चंचला होती है और मेघों के पर्वतशिखर पर जाने के समान ही स्त्रियों का मन पुरुषों की ओर आकर्षित रहता है । चाहे मैं तुम्हारा पुत्र हूँ अथवा नहीं, परन्तु तुम मेरे प्रति विपरीत भाव से क्यों आकर्षित हो ? यह मुझे बताओ । यह सुन कर मायावती प्रद्युम्न को एकान्त में लिवा ले गई और मीठे शब्दों में कहने लगी— हे प्रिय ! तुम मेरे पुत्र नहीं हो और यह शम्बरासुर भी तुम्हारा पिता नहीं है ॥२०-२३॥

रूपवानसि विक्रान्तस्त्वं जात्या वृष्णिनन्दन ।

पुत्रस्त्ववासुदेवस्य रुक्मिण्यप्रानन्दवर्चन ॥२४

दिवसे सप्तमे बालो जातमालोपवाहितः ।

सूतिकागारमध्यात्वं शिशुरुत्तानशायितः ॥२५

मम भर्ता हृतोऽसि त्व बलवीर्यप्रवर्तिना ।

पितुस्ते वासुदेवस्य धर्षयित्वा गृहं महत् ॥२६

पाकशासनकल्पस्य हृतस्त्व शम्बरेण ह ।

सा च ते करुणं माता त्वां बालमनुशोचती ॥२७

अत्यर्थं तप्यते वीर विवत्सा सौरभी यथा ।

सोऽपि शक्रादपि महान्पिता ते गरुडद्वज ॥२८

इह त्वा नाभिजानाति बालमेवोपवाहितम् ।

कान्त वृष्णिकुमारस्त्व न हित्व शम्बरात्मज ॥२९

तुम यादवों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा रुक्मिणीजी के गर्भ से उत्पन्न हुए हो ॥२४॥ तुम्हारे जन्म के सातवें दिन ही यह असुर तुम्हारा हरण कर लाया है ॥२५॥ मेरे पति शम्बरासुर ने इस प्रकार इन्द्र जैसे तेज वाले श्रीकृष्ण का घर तुम्हारे बिना सूना कर दिया और तुम्हारी माता बछड़े से बिगुड़ी हुई गौ के समान सदा रोती होगी ॥२६-२८॥ परन्तु श्रीकृष्ण को यह पता नहीं है कि शम्बरासुर ने तुम्हें हर लिया है । इस प्रकार तुम शम्बर के नहीं, श्रीकृष्ण के पुत्र हो ॥२९॥

वीर नैवविधान्पुत्रान्दानवा जनयन्ति हि ।  
 अतोऽहं कामयामि त्वा न हि त्व जनितो मया ॥३०  
 रूप ते सौम्य पश्यन्ती सीदामि हृदि दुर्बला ।  
 यन्मे व्यवसित कान्त यत्तु मे हृदि वर्तते ॥३१  
 तन्मे मनसि वाष्ण्येय प्रतिसन्धातुमर्हसि ।  
 एष ते कथित. सर्वं सद्भावस्त्वयि यो मम ॥३२  
 यथा न मम पुत्रस्त्व न पुत्र शम्बरस्य च ।  
 श्रुत्वैवमखिल सर्वं मायावत्या प्रभापितम् ॥३३  
 चक्रायुषात्मज क्रुद्ध शम्बर स समाह्वयत् ।  
 सर्वमायास्वमिज्ञोऽसौ नाम विश्राव्य चात्मन. ॥३४  
 अहो दानवदुष्टात्मा केशप्रस्थात्मज शिशुम् ।  
 हरते निर्भयश्चैव भयमद्य करोम्यहम् ॥३५

हे वीर ! दैवो के वंश मे तुम्हारे जंसे स्ववान् पुत्र वभी जन्म नहीं लेते ।  
 मैं तुम्हारी माता न होने के कारण ही तुम पर अनुरक्त हुई हूँ ॥३०॥ तुम्हारे  
 अद्वितीय सौंदर्य ने मेरे चित्त को विह्वल कर दिया है । मैंने अपने अनुराग का  
 यथार्थ कारण तुम्हें बता दिया और इसी सद्भाव के कारण इस रहस्य को भी  
 खोल दिया है, अब तुम मेरी इच्छा को पूर्ण करो ॥३१३-२॥ हे राजन् ! माया-  
 वती से सम्पूर्ण वृत्त न्त जान कर श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न के नेत्र शोध से रक्त वर्ण  
 होगये और उन्होंने तुरन्त ही शम्बर गुर के पास जाकर उसे सलवारते हुए अपना  
 नाम घनाया ॥३३-३४॥ और उससे कहा कि तूने श्रीकृष्ण के मुक्त बालक का  
 अपहरण करते हुए किविध भी भय नहीं माना, अब मैं ही तुझे भयभीत करूँगा  
 ॥ ३५ ॥

॥ प्रद्युम्न द्वारा शम्बर की सेना का महार ॥

तत प्रवृत्त युद्धं तु तुमुत्र लोमहर्षणम् ।  
 प्रम्यग्न्य त् प्याणा रुक्मिण्या नन्दनस्य च ॥१



तत क्रुद्धा महादैत्या शरशक्तिपरश्वधान् ।  
 चक्रतोमरकुन्तानि भुशुण्डीमुसलानि च ॥२  
 युगपत्पातयन्ति स्म प्रद्युम्नोपरि वेगिता ।  
 कार्णायनिस्तु सक्रुद्ध सर्वास्त्रानुषरच्युते ॥३  
 एकैक पञ्चभि क्रुद्धश्चिच्छेद रणमूर्धनि ।  
 पुनरेवासुरा क्रुद्धा सर्वे ते कृतनिश्चया ॥४  
 ववृषु शरजालानि प्रद्युम्नवधकाक्षया ।  
 तत प्रकुपितोऽनङ्गो धनुरादाय सत्पर ॥५  
 शम्बरस्य जघानाशु दश पुत्रान्महौजस ।  
 ततोऽपरण भल्लेन कुपित केशवात्मज ॥६  
 चिच्छेदाशु शिरस्तस्य चित्तसेनस्य वीर्यवान् ।  
 ततस्ते हतशेषास्तु समेत्य समयुद्धचन ॥७  
 शरवर्षं विमुञ्चन्तो ह्यभ्यधावञ्जिघासितुम् ।  
 तत सन्धाय बाणारते विमुञ्चन्तो रणोत्सुका ॥८  
 क्रीडन्निव महातेजा शिरास्येषा न्यपातयत् ।  
 निहत्य समरे सर्वाञ्छतमुत्तमघन्विनाम् ॥९  
 प्रद्युम्न समराकाक्षी तस्थी सग्राममूर्धनि ।  
 हत पुषशत श्रुत्वा शम्बर क्रोत्मादधे ॥१०

वंशम्पायनजी बोले— ह राजन् । इसके पश्चात् रुक्मिणीसुत प्रद्युम्न और शम्बरसुर के मध्य घोर संग्राम उस्थित हुआ ॥१॥ दैत्यो ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक बाण, शक्ति परश्वध, चक्र, तोमर, कुन्त, भुशुण्डी और मूल आदि के द्वारा सब ओर से प्रद्युम्न पर प्रहार किया, तब प्रद्युम्न ने भी पाँच पाँच बाणों को धनुष पर चढ़ा कर दैत्यो के सब शस्त्र छिन्न भिन्न कर डाले । इस पर वे दैत्य पड़िले से भी अधिक बलशाली होकर प्रद्युम्न को मारने की इच्छा से सब ओर से बाणों को बरसाने लगे । तभी प्रद्युम्न ने एक अन्य धनुष ग्रहण करके शम्बरसुर के दस पुत्रों का वध कर दिया और फिर भाते के प्रहार से चित्रनेन का शिर काट दिया । यह देव कर देप रहे दैत्यो ने एक साथ भिन्न कर उन पर भीरु प्रहार

आरम्भ किया । १२-७। उस समय सभी दानव प्रद्युम्न को मारने के लिये कटिबद्ध हो गये और सावधानी से अन्नो अन्नो को छोड़ने लगे । इधर प्रद्युम्न ने लीला पूर्वक ही सौ दैत्यों को मार डाला और युद्ध करन के लिये मैदान में ही खड़े रह । अपने सौ पुत्रों की मृत्यु का वृत्तान्त सुन कर शशबरासुर को अत्यन्त क्रोध हुआ ॥ ८-१० ॥

### ॥ प्रद्युम्न को नारद का परामर्श ॥

शश्वरस्तु तत ऋद्ध सूतमाह विशापते ।  
 शत्रुप्रमुखतो वीर रथ मे वाहय द्र तम् ॥१  
 यावदेन शरैर्हन्मि मम विप्रियशरवम् ।  
 ततो भर्तृ ऋच श्रुत्वा सूतस्तत्प्रियकारवम् ॥२  
 रथ सञ्चोदयामास चामीनरविभूषितम् ।  
 त दृष्ट्वा रथमायान्त प्रद्युम्न फुन्नलोचन ॥३  
 सदधे चापमादाय शर वनयभूषितम् ।  
 तेनाहनत्सुसक्रुद्ध कोपशञ्जवर रणे ॥४  
 दये ताडिनस्तेन देवशत्रु सुविकलय ।  
 रथशक्ति समश्रित्य तन्वी सोऽय विचेचन ॥५  
 सचेतना पुन प्राप्य धनुरादाय शश्वर ।  
 विध्याध कार्पिण कुपित सप्तभिर्निशितै शरै ॥६  
 ताप्राप्ताञ्जशरान्नोऽय सप्तभि सप्तधाऽच्छिनत् ।  
 शश्वर च जघानाय मत् त्वा निशितै शरै ॥७  
 पुन शश्वहस्त्रेण बहुदृष्टिणवाससा ।  
 अहनच्छ्वर क्रोत्रादाराभिरिव पर्यंतम् ॥८

पंचमायनश्री ने कहा— १ रात्रन् । उपाधिपुत्र हुए शश्वरासुर ने अपने शारधी को सुमा कर कहा— २ सूत । तुम मर रथ को छोड़ ही शत्रु के सामने से चलो ॥१॥ ३ चरो भगवानी इन्द्र को अथ ही शीघ्र ही मार देना चाहता है ।

अपने स्वामी का आदेश सुनते ही सारथि ने रथ में योजित सोने के आभूषणों से सजे हुए भल्लूकी को चलाया। शम्बर को रथ के द्वारा आता हुआ देख कर प्रद्युम्न हर्षित होगये और उन्होंने अपने धनुष पर बाण चढा कर शम्बरामुर पर प्रहार किया ॥२४॥ वह बाण उसके हृदय में जाकर लगा तब चेतना हीन होकर रथ के सहारे ही टिका रहा ॥५॥ फिर कुछ क्षणों में ही चैतन्य होकर उसने अपने सात सुतीक्ष्ण बाणों को धनुष पर चढा कर प्रद्युम्न को लक्ष्य किया ॥६॥ परन्तु प्रद्युम्न ने उन बाणों को बीच में ही काट कर सत्तर बाणों को एक साथ छोड़ कर दैत्यराज को उनसे बीध डाला ॥७॥ फिर उन्होंने उस असुर पर इन्द्र द्वारा पर्वतोपर जल-वृष्टि करने के समान ही एक हजार बाणों की वर्षा की ॥ ८ ॥

प्रदिशो विदिशश्चैव शरधारासमावृता ।  
 स दिशो विदिशश्चैव शरधारा समावृणोत् ॥६  
 अन्धकारीकृत व्योम दिनकर्ता न दृश्यते ।  
 ततोऽन्धकारमुत्सार्य वैद्युतास्त्रेण शम्बर ॥१०  
 प्रद्युम्नस्थ रयोपस्थे शरवर्षं मुमोच ह ।  
 तदस्त्रजालं प्रद्युम्न शरेणानतपर्वणा ॥११  
 विच्छेद बहुधा राजन्दर्शनपाणिनाभवत् ।  
 हृते तस्मिन्महावर्षे शराणां कार्त्विजना तदा ॥१२  
 द्रुमवर्षं मुमोचाथ मायया कालशम्बर ।  
 द्रुमवर्षोच्छ्रितं दृष्ट्वा प्रद्युम्न क्रोधमूर्च्छित ॥१३  
 आग्नेयास्त्रं मुमोचाथ तेन वृक्षाननाशयत् ।  
 भस्मीभूते वृक्षवर्षे शिनासघातमुत्सृजत् ॥१४

उन भीषण बाण-वर्षा से सभी दिशाएँ आच्छादित हो गईं और सर्वत्र अन्धकार छागया, सूर्य भी उसके कारण छिप गये, तब शम्बरामुर ने वैद्युतास्त्र से उस अंधरे को नष्ट कर दिया और अन्यान्य बाणों की वृष्टि द्वारा प्रद्युम्न ने रथ को आच्छादित कर दिया। परन्तु प्रद्युम्न ने अपने हस्त बौशल से उन सभी

बाणो को अपने आनर्तपर्व नामक बाणो से तत्काल काट डाला । जब शम्बरासुर के बाण निष्फल होगये तब वह अपनी माया के प्रभाव से प्रद्युम्न पर वृक्षो की वर्षा करने लगा । यह देख कर प्रद्युम्न भी अत्यन्त क्रोधित हुए ॥६-१३॥ फिर उन्होंने आग्नेयास्त्र के प्रयोग से उन वृक्षो को जला कर भस्म कर दिया । तब शम्बरासुर ने शिलाओ की वर्षा आरम्भ की ॥१४॥

प्रद्युम्नस्तं तु वायव्यैः प्रोत्सारयत संयुगे ।  
 ततो मायां परां चक्रे देवशत्रुः प्रतापवान् ॥१५  
 सिंहाण्व्याघ्रान्वराहांश्च तरक्ष नृक्षवानरान् ।  
 वारणान्वारिदप्रध्वान्ह्यानुष्ट्रान्विशापते ॥१६  
 मुमोच धनुरायम्य प्रद्युम्नस्य रथोपरि ।  
 गन्धर्वास्त्रेण चिञ्छेद सर्वास्तान्खण्डशस्तदा ॥१७  
 शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो हतया मायया तदा ।  
 सैही माया महातेजाः सोऽसृजद्दानवेश्वरः ॥१८  
 सिंहानापततो दृष्ट्वा रौक्मिणेयः प्रतापवान् ।  
 अस्त्रं गान्धर्वमादाय शरभानसृजत्तदा ।  
 तेऽष्टापदा बलोदग्रा नखदंष्ट्रायुधा रणे १९  
 सिंहान्विद्रावयामासुर्गार्ग्युर्जलधरानिव ।  
 सिंहान्विद्रवतो दृष्ट्वा माययाष्टपदेन वै ॥२०  
 शम्बरश्चिन्तयामास कथमेनं निहन्मि वै ।  
 अहो मूर्खस्वभावोऽहं यन्मया न हतः शिशुः ॥२१

उन शिलाओं को भी उन्होने अपने वायव्यास्त्र से दूर कर दिया । यह देग कर उताने अपनी धनयती माया की वृद्धि करके प्रद्युम्न के रथ पर सिंह, व्याघ्र, बराल, तरसू, रीछ, बन्दर, हाथी, घोडे और जंटे आदि की वर्षा की, परन्तु प्रद्युम्न ने उगरी यह माया भी अपने गंधर्वास्त्र से छिन्न-भिन्न करदी ॥१५-१७॥ इमंगे क्रोधित हुए शम्बरासुर ने सैही माया की रचना की, जिससे उत्पन्न हुए गिहों को अपनी पर आक्रमण करने देग कर प्रद्युम्न ने चरनी माया के

विरतार द्वारा उन सभी सिंहों को जैसे पवन मेघों को उड़ा देता है, वैसे ही भगा दिया । इस प्रकार शरभी माया के द्वारा सिंहों को नष्ट हुए देख कर शम्बरसुर विचार करने लगा कि अब इसका वध किस प्रकार हो ? मैंने इसे इसके बालक-पन में ही नहीं मार दिया, यह भारी भूल होगई ॥१८-२१॥

प्राप्तयौवनदेहस्तु कृतास्त्रचापि दुर्मतिः ।  
 तत्कथं निहनिष्यामि शत्रुं रणशिरःस्थितम् ॥२२  
 मया सा तिष्ठते तीव्रा पन्नगी नाम भीषणा ।  
 दत्ता मे देवदेवेन हरेणासुरघातिना ॥२३  
 ता सृजामि महामायाभाशीविपसमाकुलाम् ।  
 तथा दह्येत् दुष्टात्मा ह्येष मायामयो बली ॥२४  
 सा सृष्टा पन्नगी माया विपज्वालासमाकुला ।  
 तथा पन्नगमय्या तु सरथ सहवाजिनम् ॥२५  
 ससूतं स हि प्रद्युम्न ष्वन्ध शरवन्धनैः ।  
 वध्यमानं तथा दृष्ट्वा आत्मानं वृष्णिवशजः ॥२६  
 माया सचिन्नयामास सीपर्णी सर्पनाशिनीम् ।  
 सा चिन्तिता महामाया प्रद्युम्नेन महात्मना ॥२७  
 सुपर्णा विचरन्ति स्म सर्पा नष्टा महाविपा ।  
 भग्नाया सापंमायाया प्रशसन्ति सुरासुराः ॥२८  
 साधु वीर महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवधेन ।  
 यत्त्वया घपिता माया तेन स्म परितोपिताः ॥२९

परन्तु अब यह यौवनावस्था को प्राप्त होता हुआ शस्त्र विद्या में भी पारंगत हो चुका है । इसलिये अब मैं इसे किस प्रकार मार सकता हूँ ? ॥२२॥  
 परन्तु अभी तो पन्नगी माया रोप रह गई है, वह भगवान् दाबर ने प्रसन्न होकर मुझे प्रशन की थी ॥२३॥ इसलिये अब उसी माया का प्रयोग करना उचित प्रतीत होता है । यह दुरात्मा उग माया की विपाग्नि में दग्ध होकर मर जायगा ॥२४॥ यह सोच कर शम्बरसुर ने पन्नगी माया का प्रयोग किया । उससे

उत्पन्न हुए सर्पों ने रथ, अश्व और सारथी सहित प्रद्युम्न को जकड़ लिया । तब उन्होंने उद्विग्न होकर सर्पों को नष्ट करने वाली सौपर्णी माया से असख्य गरुडों को प्रकट किया, जिनके कारण समस्त सर्प उभी क्षण अदृश्य होगये और इस प्रकार दैत्यराज की पन्नगी माया के नष्ट होने पर देवता और दैत्य सभी प्रद्युम्न की सराहना करने लगे ॥२५-२८॥ उन्होंने कहा कि—हे महाबाहो ! हे रुक्मिणी नन्दन ! तुम्हारा रण-चातुर्य एव माया का नाश करना देख कर हमे दडा हर्ष हुआ है ॥ २६ ॥

हताया सर्पमायाया शम्बरश्चिन्तयत्पुन ।  
 अस्ति मे कालदण्डाभो मुद्गरो हेमभूषितः ॥३०  
 तमप्रतिहत युद्धे देवदानवमानवै ।  
 पुरा यो मम पार्वत्या दत्त परमतुष्टया ॥३१  
 गृहाण शम्बरमे त्व मुद्गर हेमभूषितम् ।  
 मया सृष्ट स्वदेहे वै तपः परमदुश्चरम् ॥३२  
 मायान्तरकरण नाम सर्वाभुरविनाशनम् ।  
 अनेन दारवौ रौद्री बलिनी कामरूपिणी ॥३३  
 शुम्भश्चैव निशुम्भश्च सगणो सूदितो मया ।  
 प्राणसशयमापन्ने त्वया मोक्ष्यः स शश्वे ॥३४  
 इत्युक्त्वा पार्वती देवी तत्रैवान्तरधीयत ।  
 तदह मुद्गर श्रेष्ठ मोचयिष्यामि शत्रवे ॥३५

परन्तु, शम्बरामुर ने अपनी पन्नगी माया को नष्ट हुई देख कर उन्हें मारने के लिये पुन उपाय सोचा, तब उस स्मरण हुआ कि एव धार भगवती पार्वतीजी ने अत्यन्त प्रयत्न होकर मुझे एव स्वर्ण भडित मुगदर प्रदान किया था । उस वाददण्ड जैसे भयङ्कर मुगदर का नाम मायान्तरकरण है । यह सभी देव-दानवों को मारने में समर्थ है । इसी मुगदर के द्वारा मैंने इच्छा रूपधारी शुम्भ-निशुम्भनामक दैत्यों को मारा था । परन्तु, जब तुम्हें अपने प्राण पर संकट उत्पन्न हुआ दिखाई दे, तभी इसको प्रयुक्त करना ॥३०-३४॥ यह कह कर पार्वती वहीं अन्तर्पत्ता होगई । अर मुने मुगदर की सरायजा लेनी चाहिये ॥३५॥

तस्य विज्ञाय चित्ते तु देवराजोऽभ्यभाषत ।  
 गच्छ नारद शीघ्रं त्वं प्रद्युम्नस्य रथं प्रति ॥३६  
 सबोधय महाबाहुं पूर्वजानि च मोक्षय ।  
 वैष्णवास्त्रं प्रतच्छास्त्रं वधार्थं शम्बरस्य च ॥३७  
 अभेद्यं कवचं चास्य प्रयच्छासुरसूदने ।  
 एवमुक्तो मधवता नारदः प्रययौ त्वरम् ॥३८  
 आकाशेऽधिष्ठितोऽवोचन्मकरध्वजकेतनम् ।  
 कुमार पश्य मां प्राप्तं देवगन्धर्वनारदम् ।  
 प्रेषितं देवराजेन तव सबोधनाय वै ॥३९  
 स्मर त्वं पूर्वकं भाव कामदेवोऽसि मानद ।  
 हरकोपानलाद्गन्धस्तेनानङ्ग इहोच्यते ॥४०  
 त्वं वृष्णिवशजातोऽसि रुक्मिण्या गर्भसंभवः ।  
 जातोऽसि केशवेन त्वं प्रद्युम्न इति कीर्त्यसे ॥४१  
 आहृत्य शम्बरेण त्वमिहानीतोऽसि मानद ।  
 सप्तरात्रे त्वसंपूर्णे मृतिकागारमध्यतः ॥४२

देवराज इन्द्र ने शम्बरासुर के इस अभिप्राय को जान कर नारदजी से कहा—हे देवर्षि ! आप प्रद्युम्न के पास शीघ्र ही पहुँच कर उन्हें उनकी उत्पत्ति का वृत्तान्त बता कर शम्बरासुर को मारने के लिये अभेद्य कवच और वैष्णवास्त्र दे दीजिये । इन्द्र की बात सुन कर नारदजी ने तुरन्त ही वहाँ से प्रस्थान किया और प्रद्युम्न के पास जाकर आकाश मार्ग में खड़े होते हुए बोले—हे कुमार ! मैं देव-गन्धर्वों में प्रसिद्ध नारद हूँ, इन्द्र के भेजने से यहाँ आया हूँ । अपने पूर्वजन्म की याद करो, जिसमें तुम कामदेव थे और भगवान् शंकर की क्रोधाग्नि में भस्म होगये थे ॥३६-४०॥ इस जन्म में तुम वृष्णिवशीय भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए हो और तुम्हारा नाम प्रद्युम्न है । जन्म होने के सातवें दिन ही यह शम्बरासुर तुम्हें मृतिवाण्ड से हरण कर लाया था ॥४१-४२॥

रत्ने संपादनार्थाय प्रैषयत्यनिशं तदा ।

एव प्रद्युम्नं वृद्ध्वा वै तस्य भार्या प्रतिष्ठिता ॥४३

हत्वा त्व शम्बरं वीर वैष्णवास्त्रेण सयुगे ।  
 गृह्य मायावती भार्या द्वारका गन्तुमर्हसि ॥४४  
 गृहाण वैष्णवं चास्त्रं कवच च महाप्रभम् ।  
 शक्रेण तव संगृह्य प्रेषितं शत्रुसूदन ॥४५  
 शृणु मे ह्यपरं वाक्यं क्रियतामविशङ्कया ।  
 अस्य देवरिपोस्तात मुद्गरो नित्यमूर्जितः ॥४६  
 पार्वत्यां परितुष्टाया दत्तः शत्रुनिवर्हणः ।  
 अमोघश्चैव मग्नमे देवदानवमानवैः ॥४७  
 तदस्त्रप्रविघातार्थं देवी त्व स्मर्तुं मर्हसि ।  
 स्तव्या चैव नमस्या च महादेवी रणोत्सुकैः ॥४८  
 तत्र वै क्रियता यत्नः मग्नमे रिपुणा सह ।  
 इत्युक्त्वा नारदो वाक्य प्रवयो यत्न वासवः ॥४९

आपके पूर्व जन्म की पत्नी रति ही इस समय तुम्हारी सेवा-गुथुपा में निरन्तर लगी है । इस प्रकार हे प्रद्युम्न ! इस जन्म में भी यह मायावती तुम्हारी ही भार्या है ॥४३॥ इसलिये, अब तुम इस वैष्णवास्त्र से दम्बरसुर को मार कर मायावती के सहित द्वारका को चले जाओ ॥४४॥ मैं यह महा तेजस्वी कवच और वैष्णवास्त्र तुम्हें दे रहा हूँ, देवराज इंद्र ने इंद्र तुम्हारे लिये ही भेजा है, अतः ग्रहण करो ॥४५॥ मैं तुम्हें यह भी बताना हूँ कि इस दंत्य के पाग जो भगवत् मुगदर है, उसे बाधा देने में देवता, देव या मनुष्यों में से कोई भी वीर समर्थ नहीं है, वह मुगदर इगे भगवती पार्वतीजी ने प्रगन्त होकर प्रदान किया था ॥४६-४७॥ इसलिये उग अस्त्र को धर्य करने के लिये तुम भगवती पार्वतीजी का स्मरण कर, भगवत् पूर्वक उनकी स्तुति करो और फिर अपने मुद्ग प्रवरणों में वेगपूर्वक लग जाओ । यह कह कर देवर्षि नारदजी तहाँ से चले गए वे पाठ जा पढ़ें ॥४९॥



॥ प्रद्युम्न द्वारा शम्बर वध ॥

शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो मुद्गरं त समाददे ।  
मुद्गरं गृह्यमाणे तु द्वादशार्काः समुत्थिताः ॥१  
पर्वताश्चलिताः सर्वे तथैव वसुधातलम् ।  
उन्मार्गाः सागरा याताः सक्षुब्धाश्चापि देवताः ॥२  
गृध्रचक्राकुल व्योम उल्कापातो वभूव ह ।  
ववर्ष हृदिरं देवः पृथुं पवनो ववौ ॥३  
एवं दृष्ट्वा महोत्सातान्प्रद्युम्नः स त्वरान्वितः ।  
अवतीर्य रथाद्वीरः कृताञ्जलिपुटः स्थितः ॥४  
देवी सस्मार मनसा पार्वती शङ्करप्रियाम् ।  
प्रणश्य शिरसा देवी स्तोतुं समुपचक्रमे ॥५  
ॐ नमः कात्यायन्यै गिरीशायै नमो नमः ।  
नमस्त्रै लोक्ष्यमायायै कात्यायन्यै नमो नमः ॥६  
नमः शत्रुविनाशिन्यै तमो गीर्यै शिवप्रिये ।  
नमस्ये शुम्भमथनी निशुंभमथनीमपि ॥७

वंशम्पायनजी ने कहा—फिर क्रोबित हुए शम्बरासुर ने उस मुद्गर की प्रहण किया, जिसकी प्रभा देख कर द्वादश आदित्यों के एक साथ उदित होने का आभास होने लगा ॥१॥ सभी पर्वतों के सहित पृथिवी कांप उठी, समुद्रों ने अपनी मर्यादा छोड़ दी और देवताओं में उद्विग्नता फैल गई ॥२॥ आकाश में समूह के समूह गृध्र मँडराने लगे, उल्कापात और रक्त की वर्षा होने लगी तथा वायु का वेग बढ़ गया ॥३॥ इन कुलक्षणों को देख कर प्रद्युम्न रथ से उतर कर भगवती पार्वतीजी का स्मरण करने लगे और फिर मन ही मन प्रणाम करते हुए उन्होंने इस प्रकार स्तुति की ॥४-५॥ प्रद्युम्न ने कहा—हे भगवती ! हे कात्यायनि ! हे शक्तिवैद्यजननी ! आप तीनों लोकों की माया को नमस्कार है ॥६॥ हे मातेश्वरि ! आप शत्रुओं का नाश करने वाली, गीरी, शिववल्लभा और शुम्भ-निशुम्भ का मर्दन करने वाली हैं । आपकी मेरा नमस्कार है ॥७॥

कालरात्रि नमस्तुभ्य कौमार्ये च नमो नम ।  
 कान्तारवासिनी देवी नमस्यामि कृताञ्जलि ॥८  
 विन्ध्यवासिनी दुर्गघ्ना रणदुर्गा रणप्रियाम् ।  
 नमस्यामि महादेवी जया च विजया तथा ॥९  
 अपराजिता नमस्येऽहमजिता शत्रुनाशिनीम् ।  
 घण्टाहस्ता नमस्यामि घण्टामालाकुला तथा ॥१०  
 त्रिशूलिनी नमस्यामि महिषासुरघातिनीम् ।  
 सिंहासना नमस्यामि सिंहप्रवरकेतनाम् ॥११  
 एकानशा नमस्यामि गायत्री यज्ञसत्कृताम् ।  
 सावित्री चापि विप्राहणा नमस्येऽहकृताञ्जलि ॥१२  
 रक्ष मा देवि सतत सग्रामे विजय कुरु ।  
 इति कामवचस्तुष्टा दुर्गा सप्रीतमानसा ॥१३  
 उवाच वचन देवी सुप्रोतेनान्तरात्मना ।  
 पश्य पश्य महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्द्धन ॥१४  
 वर वरय वत्स त्वममोघ दर्शन मम ।  
 देव्यास्तु वचन श्रुत्वा रोमाञ्चोदगतमानस ॥१५

आप कालरात्रि रूपिणी को नमस्कार है, आप ही कौमारी एवं कान्तार-  
 वासिनी हैं, मैं आपको करबद्ध प्रणाम करता हूँ ॥८॥ हे माता ! आप विन्ध्य  
 पर्वत पर निवास करती हैं, आप दैत्यो के दुर्गों को तोड़ने वाली रणदुर्गा एवं  
 रण प्रिया हैं, आप ही जया और विजया हैं, हे महादेवि ! ऐसी आपको मेरा  
 बारबार नमस्कार है ॥९॥ आप कभी पराजित न होने वाली अजिता तथा  
 शत्रुओं का नाश करने वाली हैं, आप घटाहस्ता और घण्टामाला को मेरा नमस्कार  
 है ॥१०॥ आप ही महिषासुर के मारने वाली त्रिशूलिनी है, आप ही सिंहवाहिनी  
 तथा सिंह ध्वज वाली हैं मेरा आपको नमस्कार है ॥११॥ आप एकानशा को  
 नमस्कार है, आप यज्ञो द्वारा सत्कृत गायत्री रूपिणी ब्राह्मणों की सावित्री को  
 मेरा हाथ जोड़ कर प्रणाम है ॥१२॥ हे देवि ! युद्ध भूमि में मेरी रक्षा ऋरती हुई  
 मुझे विजय प्रदान करें । इस प्रकार की स्तुति से परम प्रसन्न हुई भगवती

पार्ष्णीजी ने प्रद्युम्न से कहा—हे महाबाहो ! हे रुक्मिणी के आनन्द की वृद्धि करने वाले वत्स ! देख इधर देख ॥१४॥ मेरा आगमन कभी व्यर्थ नहीं होता, इसलिये तुझे जो इच्छा हो, वही वर माँगले । यह सुन कर प्रद्युम्न का मन रोमाचित हो उठा ॥१५॥

प्रणम्य शिरसा देवी विज्ञप्तुमुपचक्रमे ।  
 यदि त्व देवि तुष्टाऽसि दीयता मे यदीप्सितम् ॥१६  
 वर च वरदे याचे सर्वामितेषु मे जय ।  
 यस्त्वया मुद्गरो दत्त शम्बरस्यात्मसम्भव ॥१७  
 एष मे गात्रमासाद्य माला पद्मवती भवेत् ।  
 तथास्त्विति च साऽप्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥१८  
 प्रद्युम्नस्तु महातेजास्नुष्टो रथमथाहहत् ।  
 मुद्गरं च गृहीत्वा च शम्बरं क्रोत्रमूर्च्छितम् ॥१९  
 भ्रामयित्वा स चिक्षेत् प्रद्युम्नोरसि वीर्यवान् ।  
 स गत्वा मदनाभ्यांश माला भूत्वा तु पौष्करी ॥२० ।  
 प्रद्युम्नस्य च वण्ठे तु समासक्ता व्यराजत ।  
 नक्षत्राणां तु माताया यथा परिवृतो विद्यु ॥२१

तब प्रद्युम्न ने भगवती को प्रणाम करके कहा—हे वरदे ! हे मातेदवरि ! यदि आप यथायं मे मुझ पर प्रसन्न हुई हैं तो मुझे मेरा इच्छित वर दीजिये ॥१६॥ हे माता ! मैं अपने सत्र शत्रुओं को पराजित करना चाहता हूँ । आपकी कृपा से शम्बरामुर को भी मुद्गर प्राप्त हुआ है, वह मुद्गर मेरे शरीर से लगते ही पद्ममयी माला बन जाय । यह सुनते ही भगवती 'ऐसा ही होगा' कहती हुई वही अह्वय होगई ॥१७-१८॥ तदनन्तर प्रद्युम्न भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने रथ पर चढ़ गये । तभी क्रोत्र से व्यापुत्र हुए दैत्यराज न उनके हृदय पर, उस भयंकर मुद्गर का प्रहार किया । परन्तु उनके हृदय का स्पर्श होना ही वह मुद्गर पद्ममयी माला होकर शोभा पाने लगा । उस समय ऐसी जो-० हुई जैसे नक्षत्रों की माता से गुप्तोमित पद्ममा हो ॥१९-२१॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।  
 साधु साञ्चित्वा वाचाभिः पूजयन्केशवात्मजम् ॥२२  
 मुद्गरपुष्पभूतं तु दृष्ट्वा प्रद्युम्नसन्निधौ ।  
 वैष्णवं परमास्त्रं तु नारदेन वदाहृतम् ॥२३  
 संदधे चापमानम्य इदं तचनमब्रवीत् ।  
 यद्यहं रुक्मिणीपुत्रः केशवस्यात्मजो ह्यहम् ॥२४  
 तेन सत्येन वाणेन जहि त्वं शम्बरं रणे ।  
 इत्युक्त्वा चापमाकृष्य सन्ध्याय च महामनाः ॥२५  
 चिक्षेप शम्बरस्याथ दहल्लोकत्रयं यथा ।  
 स क्षिप्तो वृष्णिसिंहेन शरः क्रव्यादमोहनः ॥२६  
 हृदय शम्बरस्याथ भित्वाघरणिमागतः ।  
 न चास्य मामं न स्नायुर्नास्थि न त्वद्दन् शोणितम् ॥२७  
 सर्वं तद्भस्मसाद्भूतं वैष्णवस्त्रास्य तेजसा ।  
 हते दैत्ये महाकाये दानवे शम्बरेऽपि ॥२८  
 जहृपूर्वैवगन्धर्वा ननुतुश्चाप्मरोगणाः ।  
 उगंती मेनका रम्भा विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा ॥२९  
 ननुतुर्हृष्टमनगो जगत्स्वावरजङ्गमम् ।  
 देवराजस्तु गुप्रीतः सर्वदेवगणैः सह ।  
 प्रद्युम्नं पुष्पवर्षेण तमभ्यर्च्यं प्रहृष्टवत् ॥३०  
 अथ समरहते तु दैत्यराजे मनुमथनस्य मुतेन वैष्णवाः ।  
 विगतस्त्रिभुज्याः सुराश्च जग्मुर्मकरविभूषणकेतनं स्नुयन्तः ॥३१  
 स च समरपरिश्रमं बहून्यं नगरमुग्रं प्रविशेन रौक्मिणेयः ।  
 प्रियतम इव पान्तया प्रहृष्टवदरितपद रतिदर्शनं चकार ॥३२

उग्र मुद्गर को पचमाना के वर में देग वर सभी देव, गंधर्व, गिद्ध, परम  
 शक्ति शक्ति ने प्रद्युम्न की अस्त्र प्रसंगा को, तब प्रद्युम्न ने देवनि मारद प्रस्त  
 वैष्णवाश्च को मनुष्य पर चला कर कहा—हे नर । यदि मैं रौक्मिणी के उत्तम  
 दूरा भववात् भीष्म का पुत्र हूँ तो तुम सुराज ही उग्र मुद्ग देव में सम्बरागुर

का सहार कर डाली । यह कह कर उन्होंने दैत्यराज पर उस बाण को छोड़ दिया, तब उस बाण के प्रकाश से तीनों लाकजगमगा उठे । उस समय वह बाण आग्निप भोजी पशुओं की प्रसन्नता का बढ़ाने वाले शम्बरामुर के हृदय को पार करके पृथिवी पर जा गिरा । उस अस्त्र के तेज से शम्बरामुर के देह में मास, हड्डी, नाडी चम और रुधिर का नेशनमात्र भी न बचा और वह जल कर वही भस्म होगया । उस महाकाय दैत्य के इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त होने पर देवता और गंधर्व अत्यन्त हर्षित हुए और उषशी मेनकादि अप्सराएँ नृत्य करने लगी । सम्पूर्ण विश्व निभय और सुखी हागया तथा सप्त देवताओं के सहित इंद्र भी हर्षित होकर प्रद्युम्न पर पूजा की वर्षा करने लगे ॥२२३०॥ हे राजन् । श्री-कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न ने जब वैष्णव स्त्र के द्वारा दैत्यराज शम्बरामुर का वध कर दिया तब देवता ऋतु भय से रहित होगय और प्रद्युम्न रूपी कामदेव की स्तुति करते हुए अपन अपने लोक को गये । ३१॥ तथा प्रद्युम्न भी अपनी भार्या जसी विजय लक्ष्मी को प्राप्त होकर उसी वीर वेश में नगर में पहुँच कर मायावती रूपिणी रति के पास पहुँचे ॥३२॥

## ॥ प्रद्युम्न-मायावती का द्वारका आगमन ॥

समाप्तमायो मायाजा विक्रान्त समरेऽव्यय ।  
 अष्टम्या निहतो युद्धे मायावी कालशबर ॥१  
 तमृक्षवन्ते नगरे निहत्यामुरसत्तमम् ।  
 गृह्य मायावती देवीमागच्छ नगर पितु ॥२  
 सोऽन्तरिक्षगतो भूत्वा मायावी शोघ्रविक्रम ।  
 आजगाम पुरी रम्या रक्षिता तेजसा पितु ॥३  
 सोऽन्तरिक्षान्निपतित केशवान्तपुरे शिशु ।  
 मायावत्या सह तया रूपवानिव मन्मथ ॥४  
 तस्मिस्तत्रावपतिते महिष्य केशवस्य या ।  
 विस्मिताश्चैव हृष्टाश्च भीताश्चैवाभवस्तत ॥५  
 ततस्त कामसकाश कान्तया सह सङ्गतम् ।  
 प्रेक्षन्त्यो ह्ये तवदना पिधन्त्यो नयनोत्सवम् ॥६

तं श्रीद्वितमुग्रं दृष्ट्वा लज्जमानं पदे पदे ।

अभवन्स्निग्धमद्भुत्वा. सर्वास्ताः वृष्णयोपितः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! देखोदेखो नम्बर १ अत्यन्त मायावी होने हुए भी जब उसको माया समाप्त होगई, तब उमका प्राण अष्टमी तिथि को निरता ॥ १ ॥ इस प्रकार वीरवर प्रद्युम्न नम्बरामुद को मार पर जोर मायावती को साथ लेकर अपने विना द्वारा पालिन द्वारका पुरी में आवाग मार्ग में जा पहुँचे ॥२-३॥ साक्षात् कामदेव के समान श्रेष्ठ स्वरूप वाले प्रद्युम्न मायावती के महिम्न आवाग मार्ग से आते हुए सीधे श्रीवृष्ण के अन्त.पुर में पहुँचे ॥४॥ उन्ने यहाँ आया दृष्ट्वा देखा गर वृष्ण की पत्नियों को अत्यन्त प्रमग्नता, भ्रम और धाश्रय—गीतों की एक साथ प्राप्ति हुई ॥५॥ ये नारिणी मायावती स्वरूपा रति के महिम्न कामदेव के समान प्रद्युम्न का रूप-रङ्ग-गान करती हुई उन्ने देगने लगी ॥ ६ ॥ तब उन्ने यह अत्यन्त विनयशील, मज्जामान्, गरीब युवक तथा गय प्रकार श्रीवृष्ण के समान ही दिखाई दिये ॥७॥

रिमिणी नैव तं दृष्ट्वा शोचन्ती पुनर्गदिनी ।

सपत्नीजनमधुर्गीर्वा मयात्ता यावत्प्रथीत् ॥८

यादृक्स्वप्नो मया दृष्टो निजायां योयने मने ।

परागिणा ममानीय दत्त माहाररन्वयम् ॥९

कनिरस्मिप्रसीतानं मुतादासमिभुषितम् ॥

केन्दोनाकनारोप मम तच्छे न्यवस्था ॥१०

व्यासा मुपारवेणा स्त्री सुवनादरतिनिरिता ।

पश्यन्ता निरीक्षन्ती प्रविष्टा मम देग्मनि ॥११

तया पुनरनं कृत्य म्नात्ति रमिगीपुता ।

श्रीश्यामती मया स्त्री मशुलाय पातिना ॥१२

मम मुपेन्पुतादाय दया स्वप्ना तथा मम ।

एव स्वप्नास्त्री संदोती र्कनयो दृष्टमानया ॥१३

मयीजनदृता देवी कुमार श्रीः न म सुतः ।

ध-मता मारव पुत्री दीर्घोः शिरस्ता ॥१४

पुत्र शोक से विह्वल हुई रुक्मिणीजी ने जैसे ही उन्हें देखा, वैसे ही वे अपनी सत्र सपत्नियों की ओर दगती हुई बहने लगी ॥८॥ आज रात्रि के समय स्वप्न में मैं देना कि भगवान् ने मुझे अरु म लेकर पत्र विरगो के तुल्य एक मोतियों का हार मेरे कण्ठ में डाल दिया ॥ ६१० ॥ उसने वाद ही श्याम वर्ण की, शुभ्र वेग वाली, सुन्दर केश युक्त एक नारी हाथ में पद्ममाल लिये हुए मेरे भवन में घुस रही है ॥११॥ उमन मुझे श्रेष्ठ शीतल जल से स्नान कराया और मेरे मस्तक को सूँघ कर एक पद्ममाल मेरे कण्ठ में डाल दी । उस प्रकार अपनी सखियों को देखे हुए स्वप्न की बातें कहती हुई रुक्मिणीजी प्रद्युम्न को देख कर बोली—यह कामदेव के समान प्रिय दत्त कुमार जिस माता का पुत्र होगा, वह माता यथायं मे कृतार्थ है ॥१२-१४॥

ईदृश कामसकाशो यौवने प्रथमे स्थित ।

जोव पुत्र त्वया पुत्र काऽमी भाग्यसमन्विता ॥१५

त्रिमर्थं चाबुदर्याम सभायंस्त्वमिहागत ।

अस्मिन्वयसि सुव्यक्त प्रद्युम्नो मम पुत्रक ॥१६

भवेद्यदि न नीत स्यात्कृतान्तेन वलीयसा ।

व्यक्त वृष्णिकुमारस्त्व न मिथ्या मम तर्कितम् ॥१७

विज्ञातोऽसि मया चिह्नं विना चक्र जनार्दन ।

मुख नारायणस्येव केशा केशान्त एव च ॥१८

ऊरू वक्षो भुजौ तुल्यौ हलिन श्वशुरस्य मे ।

कस्त्व वृष्णिकुल सर्व द्योतयन्वपुषा स्थित ॥१९

अहो नारायणस्येव दिव्या ते परमा तनु ।

एतस्मिन्नन्तरे वृष्ण सहसा प्रविवेश ह ।

नारदस्य वच श्रुत्वा शम्बरस्य वध प्रति ॥२०

हे वत्स ! तुम किस सोभाग्यशालिनी के तनय हो और अपनी पत्नी के साथ यहाँ क्यों आये हो ? यदि मेरा पुत्र काल के माल से वंचा होता तो उसकी भी इतनी ही अवस्था होती । परन्तु मैं समझती हूँ कि तुम भी वृष्णिवंश के ही

कुमार ही, मेरी यह धारणा, मिथ्या नहीं हो सकती ॥१५-१७॥ तुम तो मुझे साक्षात् श्रीकृष्ण जैसे ही प्रतीत हो रहे हो, केवल चर्काचह्ल ही तुम्हारे देह पर नहीं है, तुम्हारा मुख और केशों का अगला भाग भी उन्हीं के समान लग रहा है ॥१८॥ तुम्हारा उरदेश बाहुएँ और वक्ष म्थल मेरे ज्येष्ठ बलरामजी के तुल्य लगते हैं परन्तु तुम अपने शरीर के तेज से वृष्णिवश को तजस्वी बनाने वाले कौन हो ? ॥१९॥ तुम्हारे गुणों को देख कर तो तुम्हें भगवान् श्रीनारायण कहने में भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी । उसी समय नारदजी से शम्बरासुर की मृत्यु का समाचार सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ आगये ॥२०॥

मोऽनश्यत्त मुत ज्येष्ठ सिद्ध मन्मथलक्षणै ।  
 स्नुपा मायावर्तो चैव हृष्टचेता जनार्दन ।  
 सोऽप्रवीत्सहसा देवी रुक्मिणी देवतामिन् ॥२१  
 अय स देवि संप्राप्त सुतश्चापधरस्तव ॥२२  
 अनेन शम्बर हृत्वा मायायुद्धविशारदम् ।  
 हता मायास्तु ताः सर्वा याभिर्देवानवाधयत् ॥२३  
 सती चेय शुभा साध्वी भार्या वै तनयस्य ते ।  
 मायावतीति विख्याता शम्बरस्य गृहोपिता ॥२४  
 मा च ते शम्बरस्येय पत्नीति भवतु व्यथा ।  
 मन्मथे तु गते नाश गते चानङ्गता पुग ॥२५  
 कामरत्नी न कार्त्तव्य शम्बरस्य रतिप्रिया ।  
 मायारूपेण त दैत्य मोहयत्यमृतच्छुभा ॥२६  
 न चैवा तस्य वीमारो वशे निष्ठनि शोभना ।  
 आत्ममायामय तृया रूप शम्बरमाविशत् ॥२७  
 पत्न्येया मम पुत्रस्य स्नुपा तव वराङ्गता ।  
 लोकारान्तस्म माहात्म्यं करिष्यति मनोमयम् ॥२८  
 त्रैलोक्येऽपि मयां पूज्या ज्येष्ठा स्नुगा मम ।  
 चिर प्राणं च मुत भद्रस्य पुनरागनम् ॥२९



उन्होंने देखा कि साक्षात् कामदेव के समान प्रद्युम्न और रति के तुल्य मायावती वहाँ गडे हैं। तब श्रीकृष्ण ने रुक्मिणीजी से कहा— हे देवि ! यह घनुष को धारण किये हुए तुम्हारा ही पुत्र यहाँ उपस्थित है। २१-२२॥ इसी ने मायामय युद्ध में प्रवीण शम्भरासुर को मारा है। वह दैन्य अपनी जिन मायाओं के प्रभाव से देवताओं को सन्तप्त करता रहता था, वे सब मायाएँ इस बालक के द्वारा नष्ट हो गई हैं ॥२३॥ यह मायावती तुम्हारे इस पुत्र को पत्नी है, अभी तब यह शम्भरासुर के भवन में निवास करती थी ॥२४॥ कि तु इसे शम्भरासुर की पत्नी होना मत समझना। यथार्थ में यह कामदेव की पत्नी रति है। जब भगवान् शक्र की कोषाग्नि में भस्म हुआ कामदेव अनग होगया था, तब से शम्भरासुर के यहाँ रह कर इसने उसे मोहित किया हुआ था ॥२५-२६॥ इसने अपने वास्तविक देह से शम्भरासुर की सेवा नहीं की थी इसकी छायामयी मूर्ति ही उसके साथ रहती थी ॥२७॥ यह मेरे पुत्र की भार्या होने से तुम्हारी पुत्रवधू है, और यह सदैव इसकी सहायता में तत्पर रहेगी ॥२८॥ चिर काल में गया हुआ मेरा यह पुत्र आज मिल गया है, अब इस पुत्र और पुत्रवधू को तुम अपने भवन में ले चलो ॥२९॥

श्रुत्वा तु वचनं देवी कृष्णेनोदाहृतं तदा ।  
 प्रहर्षमनुललम्बं वा रुक्मिणीं वाक्यमब्रवीत् ॥३०॥  
 अहो धन्यतराऽस्मीति वीरपुत्रसमागमात् ।  
 अद्य मे सफलं कामं पूगो मेऽद्य मनोरथ ॥३१॥  
 चिरप्रणष्टपुत्रस्य दर्शनं प्रियया सह ।  
 आगच्छ पुत्रं भवनं सभार्यं प्रविशेह च ॥३२॥  
 तनोऽभिवाद्य चरणौ गोविन्दं मातरं च ताम् ।  
 प्रद्युम्नं पूजयामास हलिनं च महाबलम् ॥३३॥  
 उत्थाप्य तं परिष्वज्य मूर्च्छुं पाद्भ्यां वीर्यवान् ।  
 प्रद्युम्नं बलिना श्रेष्ठं केशवं परकीरहाम् ॥३४॥  
 स्नुषां चोत्थाप्य तां देवीं रुक्मिणीं रुक्मसूचनाम् ।  
 परिष्वज्योपसंगृह्य स्नेहाद्गद्गद्मयिणी ॥३५॥

समेत्य भवन पत्न्या शचीन्द्रमदितिर्यथा ।

प्रवेशयामास तदा रुक्मिणी सुतमागतम् । ३६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से इस सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुन कर रुक्मिणीजी अ यन्त प्रसन्नता को प्राप्त होती हुई कहने लगी—चिरकाल क पश्चात् आज मैं अपने खोये हुए पुत्र को और साथ ही उस की पुत्रवधू का प्राप्त कर पूर्ण काम हो गई हूँ । हे पुत्र ! अब तुम अपनी इस भार्या क साथ घर के भीतर प्रवेश करो ॥३०-३२॥ रुक्मिणीजी के वचन सुन कर प्रद्युम्न न अपने पिता, माता और बलरामजी के चरणों मे प्रणाम किया ॥३३॥ फिर श्रीकृष्ण ने पुत्र को और रुक्मिणीजी ने पुत्रवधू को गोद मे उठा कर उनका मस्तक चूम। और फिर अदिति द्वारा दन्द्र इन्द्राणी को घर मे प्रविष्ट कराने के समान ही रुक्मिणीजी अपन पुत्र और पुत्रवधू को अपने भवन मे ले गई । ३६॥

## ॥ वाणासुर का वरदान प्राप्त करना ॥

शृणुष्यावहितो राजन्शृणुष्यामि न तेजम ॥१

मनुष्यलोके वाणेन वयाऽभू द्विग्रही महान् ।

वागुदेवेन यथासौ रद्रस्कन्दसहायवान् ॥२

यनिपुत्रो रणशताधी जित्वा जीवन्विमजित ।

यथा चाम्य वरो दत्त शफरेण मृदात्मना ॥३

नित्य सानिद्रयता चैव गाणपत्य तथाऽश्वयम् ।

यथा वाणस्य तच्छुद्ध जीवन्मृतो यथा च स ॥४

यथा च देवदेवस्य पुत्रस्य गोऽनुगो गत ।

यदर्थं च मृच्छुद्ध सत्सर्वमस्ति शृणु ॥५

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अब मैं तुमसे एक वृत्तान्त को कहना है । त्रिमय वाणासुर और श्रीकृष्ण का पौर वरदान हुआ तदा भगवत् पुत्रवधू और

स्वामि कातिकेयजी न उमे वर प्रदान किया था और जिस कारण से भगवान् श्रीकृष्ण को उससे युद्ध करना पडा था, उसे तुम सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ वह भी बताना है कि उसने किम प्रकार भगवान् शिवजी का पुत्रत्व प्राप्त किया और किस प्रकार स्वयं भगवान् रुद्र और स्वामि कातिकेयजी का उसके घर मे निवास हुआ तथा किस प्रकार उसे गणतन्त्र पद की प्राप्ति हुई और किस प्रकार उसे श्रीकृष्ण न रणक्षेत्र मे हरा कर भी मारा नहीं ॥३-४॥ जिस कारण से इनमे यह धोर युद्ध हुआ था, वह सब तुम्हारे प्रति कहता है, तुम प्रयत्नपूर्वक सुनो ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा वपु कुमारस्य क्रीडतश्च महात्मन  
 बनिपुक्षो महावीर्यो विस्मय परम गत ॥६  
 तस्य बुद्धि समुत्पन्ना तपश्चतु सुदुष्करम् ।  
 रुद्रस्याराधनार्थाय देवस्य स्या यत्रा सुत । ७  
 ततोऽग्लपयदात्मान तपसा श्लाघते च स ।  
 देवरच परम तोप जगाम च सहोमया ॥८  
 नीलकण्ठ परा प्रीतिं गत्वा चासुरमब्रवीत् ।  
 वर वरय भद्र ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥९  
 अथ बाणोऽब्रवीद्वाक्य देवदेव महेश्वरम् ।  
 देव्या पुनत्रमिच्छामि त्वया दत्त त्रिजोचन ॥१०  
 श करस्तु तथेत्युक्त्वा रराणोमिदमब्रवीत् ।  
 वनीयान्वातिकेयस्य पुत्रोऽय प्रतिगृह्यताम् ॥११  
 यज्ञोऽग्निप्रतो महासेन सोऽग्निजो रुधिरे पुरे ।  
 तन्नोदृशे पुर चास्य भविष्यति न सशय ॥१२  
 नाम्ना तच्छोणितपुर भविष्यति पुरोत्तमम् ।  
 मयाऽभिगुप्त श्रीमन्त न कश्चित्प्रसहिष्यति ॥१३

एक दिन की बात है—शिवजी के पुत्र स्वामि कातिकेयजी बालक्रीडा कर रहे थे उसी समय बाणासुर उनके देह के श्रष्ठ गठन को देख कर अत्यन्त

विस्मय को प्राप्त हुआ ॥६॥ तभी उमके चित्त में ऐसा विचार हुआ कि मैं भी घोर तपस्या करके भगवान् शिवजी का पुत्र बनूँगा । अपने इस निश्चय के अनुसार वह घोर तप करने लगा ॥७॥ उससे उमका देह सूखने लगा । उसकी कठिन तपस्या को देख कर भगवान् शकर और भगवती पार्वतीजी—दोनों ही उस पर अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥८॥ उस समय भगवान् शकर ने परम प्रीतिपूर्वक असुर के सामने होकर कहा—हे भद्र ! तुम अपनी इच्छा के अनुसार वर माँग लो ॥९॥ यह सुन कर धनि के पुत्र बाणासुर ने उनसे निवेदन किया— हे भगवन् ! मैं आपके और भगवती पार्वतीजी के पुत्रत्व की कामना करता हूँ ॥१०॥ भगवान् ने उससे 'ऐसा ही होगा' कह कर फिर पार्वतीजी से कहा—आज से हमने इसे कार्तिकेय से छोटा पुत्र मान लिया है, इसलिये तुम इसे ग्रहण करो ॥११॥ जिस स्थान पर कार्तिकेय की अग्नि से उत्पत्ति हुई थी, वह स्थान शोणितपुर के नाम से प्रसिद्ध होगा । उस पुरी को आक्रमण से बचाने के लिये, मैं स्वयं उमका रक्षक होऊँगा ॥ १२-१३ ॥

तत स निवसन्वाण पुरे शोणितसाह्वये ।  
 राज्य प्रशासते नित्य क्षोमयन्सर्वदेवताः ॥१४  
 अवतीर्य मदोत्सिक्नो वाणो बाहुसहस्रवान् ।  
 अचिन्तयन्देवगणान्युद्धमाकाङ्क्षते सदा ॥१५  
 ध्वज चास्य ददी प्रीत कुमारो ह्यग्नितेजसम्  
 वाहनं चैव वाणस्य मयूर दीप्ततेजसम् ॥१६  
 न देवा न च गन्धर्वा न यक्षा नापि पन्नगाः ।  
 तस्य युद्धे व्यतिष्ठन्त देवदेवस्य तेजसा ॥१७  
 त्र्यम्बकेणाभिगुप्तश्च दर्पोत्सिक्नो महासुर ।  
 भूयो मृगयते युद्ध शूलिनं सोऽभ्यगच्छत ॥१८  
 स रुद्रमभिगम्याथ प्रणिपत्याभिवाद्य च ।  
 बलिसूनुरिदं वाक्यं पप्रच्छ वृषभध्वजम् ॥१९  
 असकृन्निर्जिता देवाः ससाध्याः समरुद्गणा  
 मया मदबलोत्सेकात्ससैन्येन तवाश्रयात् ॥२०

इन्के पश्चात् वाणासुर शोणितपुर में रह कर वहाँ का राज्य करने लगा, उसके व्यवहार से सभी देवता उद्विग्न हो उठे ॥१४॥ कुछ कालोपरान्त हजार भुजाओं वाला वह दानव अग्ने गर्व के कारण देवताओं से युद्ध करने का बहाना हूँदने लगा ॥१५॥ फिर स्वामि बर्गनिकेयजी ने प्रसन्न होकर उसे अग्नि के समान तेजोमय एक ध्वज तथा चढ़ने के लिये एक महा तेजस्वी भोर दिया ॥१६॥ उस समय भगवान् शंकर की वृषा से वाणासुर के सामने कोई भी देवता, गंधर्व, यक्ष और नाग रणक्षेत्र में सामना नहीं कर सकता था ॥१७॥ भगवान् शंकर द्वारा सुरक्षित हुए उस दंत्य को घोर अहंकार हो गया और वह सदा ही युद्ध के लिये छेड़ छाड़ करता रहता था ॥१८॥ उसने एक दिन भगवान् शंकर के समक्ष उपस्थित होकर उनसे कहा—हे प्रभो ! आपकी कृपा से मैंने साव्यगण, मरुद्गण और देवताओं को अनेकों बार ससैन्य परास्त किया है ॥१९-२०॥

इम देश समागम्य वमन्ति स्म पुरे सुखम् ।  
 ते पराजयसन्नस्ता निराशा मत्पराजये ॥२१  
 नाकपृष्ठमुपागम्य निवसन्ति ययासुखम् ।  
 सोऽह निराशो युद्धस्य जीवित नाद्य कामये ॥२२  
 अयुध्यतो वृथा ह्येषा बाहूना धारण मम ।  
 तद्व्रूहि मम युद्धस्य कच्चिदागमन भवेत् ॥२३  
 न मे युद्ध विना देव रतिरस्ति प्रसीद मे ।  
 तत प्रहृष्य भगवान्ब्रवीद्वृषभध्वज ॥२४  
 भविता वाण युद्ध वै यथा तच्छृणु दानव ।  
 ध्वजस्यास्य यदा भङ्गस्तव तात मग्निष्यति ।  
 स्वस्थाने स्थापितस्याथ तदा युद्ध भविष्यति ॥२५  
 इत्येवमुक्त्वा प्रहसन्वाणस्तु बहुशो मुदा ।  
 प्रसन्नवदनो भूत्वा पादयो पतितोऽब्रवीत् ।  
 दिष्ट्या बाहुसहस्रस्थ न वृथा धारण मम ॥२६  
 दिष्ट्या सहस्राक्षमह विजेता पुनराहवे ।  
 आनन्देनाश्रुपूर्णाभ्या नेत्राभ्यामरिमर्दन ।

पञ्चाञ्जलिशतैर्देव पूजयन्नतितो भुवि ॥२७  
 उत्तिष्ठोतिष्ठ बाहूनामात्मन स्वक्रुलस्य तु ।  
 सदृश प्राप्स्यसे वीर युद्धमप्रतिम महत् ॥२८  
 एवमुक्तस्ततो वाणस्यम्बकेण महात्मना ।  
 हर्षेणात्युच्छ्रित शीघ्रं नत्वा स वृषभध्वजम् ॥२९  
 शितिकण्ठविसृष्टस्तु वाणः परपुरत्रय ।  
 ययौ स्वभवनं तत्र यत्नं ध्वजगृहं महत् ॥३०

अब वे मुझे हराने में अपने को सर्वथा असमर्थ मान कर निराशा और उद्विग्नतापूर्वक देवलोक में रह रहे हैं, इसलिये अब किसी सग्राम की सम्भावना प्रतीत नहीं होती । परन्तु, इस प्रकार युद्ध विहीन रह कर मेरी इन हजार भुजाओं का क्या उपयोग रह गया है ? हे देव ! युद्ध के बिना मेरी सन्तुष्टि किसी अन्य प्रकार से नहीं हो सकती । इसलिये युद्ध का अवसर अब कब उपस्थित होगा ? यह बताने की कृपा करिये । उसकी इस बात को सुन कर शिवजी ने कहा—हे वत्स ! जरा तुम्हारी यह ध्वजा टूट कर पृथिवी पर गिरेगी, तभी तुम्हें अपने ही स्थान बैठे बैठे युद्ध का अवसर हाथ लग जायेगा ॥२१-२५॥ भगवान् शकर के वचनों को सुनकर वाणासुर ने अट्टहास किया और उसके नेत्रों में हर्ष के आँसू आगये । तब उसने अपने हाथों को जोड़ कर भगवान् शकर के चरणों में झुक कर निवेदन किया—हे भगवन् ! अब मुझे अपनी भुजाओं की सार्यंकता का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मैं आशा करता हूँ कि अब युद्ध क्षेत्र में इन्द्र को पछाड़ने का अवसर मुझे प्राप्त हो जायगा ॥२६-२७॥ हे राजन् ! इस पर भगवान् शकर ने पुनः कहा—हे वत्स ! तुम्हारे भुजबल अनुरूप सग्राम की ही तुम्हें प्राप्ति होगी, अब तुम उठ पड़ो ॥२८॥ शिवजी के वचन सुन कर दैत्य श्रेष्ठ वाणासुर प्रसन्न होता हुआ उठा और उनका पूजन करके उनकी आज्ञा से अपने स्थान को चला गया ॥२९-३०॥

॥ उपा की विरह कथा ॥

क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद्भ्रुवः ।  
 देव्या सह नदीतीरे रम्ये श्रीमति स प्रभुः ॥१॥  
 शतानित तत्रापसरसां चिक्रीडुश्च समन्तत ।  
 सर्वतु कवने रम्ये गन्धर्वपतयस्तथा ॥२॥  
 कुमुमैः पारिजातस्य पुष्पैः सन्तानकस्य च ।  
 गन्धोद्दाममिवाकाशं नदीतीरं तु सर्वशः ॥३॥  
 वेणुवीणामृदङ्गैश्च पणवैश्च सहस्रशः ।  
 वाद्यमानै स शुश्राव गीतमपसरसा तदा ॥४॥  
 सूतमागधकल्पेश्चास्तुवन्नपसरसा गणाः ।  
 देवदेवं सुवपुष स्रग्विण रक्तवाससम् ॥५॥  
 श्रीमहेश देवदेवमर्चयन्ति मनोरमम् ।  
 ततस्तु देव्या रूपेण चित्तलेखा वराप्सराः ॥६॥  
 भव प्रसादयामास देवी च प्राहसत्तदा ।  
 प्रसादयन्तीमीशानं प्रहसन्त्यप्सरोगणाः ॥७॥  
 भवस्य पार्षदा दिव्या नानारूपा महीजस ।  
 देव्या ह्यनुज्ञया सर्वं क्रीडन्ते तत्र तत्र ह ॥८॥  
 अथ ते पार्षदास्तत्र रहस्ये सुविपश्चित ।  
 महादेवस्य रूपेण तच्छिह्नं रूपमास्थिताः ॥९॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! एक समय की बात है कि भगवान्  
 शंकर अपनी प्रियतमा पार्वतीजी के साथ नदी के परम रमणीक किनारे पर विच-  
 रण कर रहे थे ॥१॥ तभी सैकड़ों गन्धर्व और अप्सराएँ वहाँ आ उपस्थित हुईं  
 और उनको चारो ओर से घेर कर क्रीडा करने लगी ॥२॥ पारिजात और सन्ता-  
 नक पुष्पों की सुगन्धि से सम्पूर्ण नदी तट सुवासित होगया ॥३॥ उस समय भग-  
 वान् 'शिवजी वेणु, वीणा, मृदङ्ग और पणवे आदि वाद्यों के सहित अप्सराओं  
 का नृत्य-मान सुनने में तल्लीन होगये ॥४॥ तब वे अप्सरायें रक्ताम्बर धारी

नीलकण्ठ भगवान् शंकर और भगवती पार्वतीजी को अपनी श्रेष्ठ कला के प्रदर्शन से प्रसन्न करने लगी । फिर जैसे सूत, मागध एव वदीजन स्तुतियाँ बहते हैं, उस प्रकार वे अप्सराएँ उन दोनों की स्तुति करने लगी ॥५॥ तभी चित्रलेखा नाम की अप्सरा पार्वतीजी का रूप धारण करके शिवजी को प्रसन्न करने लगी । उसके उस कला कौशल पर प्रसन्न हुई पार्वतीजी हँस पड़ी, तभी शिवगणों ने भगवान् शंकर का रूप धारण कर लिया ॥६-६॥

ततो देव्याः सुरूपेण लीलया वचनेन च ।  
 देवी प्रहास मुमुचे ताश्चैवाप्सरसस्तदा ।  
 तन किलकिलाशब्द प्रादुर्भूत समन्तत ॥१०॥  
 प्रहर्षमतुल लेभे भव प्रीतमनास्तदा ।  
 बाणस्य द्रुहिता कन्या तलोषा नाम भामिनी ॥११॥  
 देव सक्रीडित दृष्ट्वा देव्या सह नदीगतम् ।  
 दीप्यमान महादेव द्वादशादित्यतेजसम् ॥१२॥  
 नानारूप वपु कृत्वा देव्या प्रियचिकीर्षया ।  
 उपा मनोरथ चक्रे पार्वत्या सन्निधौ तथा ॥१३॥  
 धन्या हि भर्तृसहिता रमत्येव समागता ।  
 मनसा त्वथ सकल्पमुपया भाषित तथा ॥१४॥  
 विज्ञाय तमभिप्रायमुपाया पर्वतात्मजा ।  
 प्राह देवी ततो वाक्यमुपा हर्षयती शनै ॥१५॥  
 उपे त्व शौघ्रमप्येव भर्ता सह रमिष्यसि ।  
 यथा देवो मया साद्ध शङ्कर शन्ननाशन ॥१६॥

यह देख कर पार्वतीजी और अप्सराएँ अत्यन्त हर्षित हुईं और उनके अट्टहास से वह समस्त नदी तट पूँज उठा ॥१०॥ उस हँसी को सुन कर शिवजी भी हँस पड़े । उसी समय बाणासुर की पुत्री उपा ने वहाँ आकर शिव-पार्वती को इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए देखा तो उसकी भी क्रीड़ा करने की इच्छा हुई ॥११-१३॥ फिर वह पार्वतीजी के पास जाकर अपने मन में विचार करने लगी कि



इस प्रकार अपने प्रियतम के साथ क्रीडा करने वाली स्त्रियाँ सब प्रकार से धन्य हैं ॥१४॥ उसके उम मनोभाव को भगवती उमा ने समझ लिया और वे बोली—हे उषे ! जैसे मैं भगवान् शंकर के साथ विहार करती हूँ, वैसे ही तुम भी शीघ्र ही अपने अनुरूप पति को प्राप्त होकर आनन्दोपभोग करोगी ॥१५-१६॥

एवमुक्ते तदा देव्या वाक्ये चिन्ताविलेक्षणा ।  
 उपा भाव तदा चक्रे भर्ता रस्ये कदा सह ॥१७  
 तदा हैमवती वाक्य सप्रहस्येदमब्रवीत् ।  
 उषे शृणुष्व वाक्य मे यदा सयोगमेष्यसि ॥१८  
 वैशाखे मासि हर्म्यस्था द्वादश्या त्वा दिनक्षये ।  
 रमयिष्यति य स्वप्ने स ते भर्ता भविष्यति ॥१९  
 एवमुक्ता दैत्यसुना कन्यागणसमावृता ।  
 अपाक्रामत हर्षेण रममाणा यथासुखम् ॥२०  
 तत सखीभिर्हास्यन्ती हर्षेणोत्फुल्ललोचना ।  
 तालिकासन्निपातैश्च ह्यन्योन्यमभ्यवर्तत ॥२१  
 किन्नर्यो यक्षकन्याश्च नानादैत्यकन्यका ।  
 अप्सरोगणकन्याश्चा उपाया सखिता गता ॥२२  
 उक्ता च तत्र ताभिश्च भर्ता तव वरानने ।  
 भविष्यत्यचिरेणैव देव्या वचनकलित ॥२३  
 न हि देव्या वचो मिथ्या भविष्यति कदाचन ।  
 रूपाभिजनसपन्न पतिस्ते कल्पितस्तया ॥२४

पार्वतीजी का वचन सुन कर उपा ने ऐसा भाव प्रदर्शित किया जैसे वह अपनी अभिलाषा पूर्ण होने में किनना विलम्ब है, यह जानना चाहती ही ॥१७॥ तब उसके मनोभाव को जान कर पार्वतीजी ने हँसते हुए कहा—अधिक विलम्ब नहीं है । वैशाख की द्वादशी के रात्रिकाल में तू जिस पुरुष की संगति का स्वप्न देखेगी, वही पुरुष तेरा पति होगा ॥१८-१९॥ पार्वतीजी के मुख से इस प्रकार का आश्वासन सुन कर दैत्य-कन्या उपा अत्यन्त हर्षित होकर क्रीडा करने लगी ॥२०॥ उस समय अप्सराओं की किन्नरों की, यक्षों की तथा दैत्यो आदि की जो

कन्याएँ उसकी सहेली थी, वे सब हास-परिहास करती और ताली बजाती हुईं बोली—हे सखी ! भगवती पार्वतीजी का वनन सदा सत्य होता है, उनकी कृपा से तुम्हें शीघ्र ही पति की प्राप्ति होगी ॥२१-२४॥

## ॥ चित्रलेखा का द्वारका गमन ॥

तत्रस्थाः परमा नार्याश्चित्रेण परमाद्भुताः ।  
 ततो हर्म्ये शयानां तु वैशाखे मासि भामिनीम् ॥१॥  
 द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य सखीगणवृतां तदा ।  
 यथोक्तः पुरुषः स्वप्ने रमयामास तां शुभाम् ॥२॥  
 विचेष्टमाना रुदती देव्या वचनचोदिता ।  
 सा स्वप्ने रमिता तेन स्त्रीभावं चापि लम्बिता ।  
 शोणिताकृता प्ररुदती सहर्षवोःत्यता निशि ॥३॥  
 तां तथा रुदती दृष्ट्वा सखी भयसमन्विता ।  
 चित्रलेखा वचः स्निग्धमुवाच परमाद्भुतम् ॥४॥  
 उपे मा भैः किमेवं त्वं रुदती परितप्यसे ।  
 यत्नेः सुतमुना च त्वं प्रदद्याता किं भयान्विता ॥५॥  
 न भय विद्यते लोके तव सुभ्रू विशेपतः ।  
 अभय तव वामोरु पिता देवान्तको रणे ॥६॥  
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते विपाद मा कृपाः शुभे ।  
 नैवविधेपुवासेषु भयमस्ति वरानने ॥७॥  
 असृद्देवमहितः शचीमर्ता सुरेश्वरः ।  
 अप्राप्त एव नगरं विद्या ते मृदितो रणे ॥८॥

यंशम्पायनजी ने कहा—हे राजवृ ! इसके पश्चात् जब यंशराज की द्वादशी यागई, तब उन्नी रात्रि को उषा अपनी सखियों के साथ शयन कर रही थी, तभी स्वप्नावाया में उसे एक मुन्दर पुरुष का सयोग प्राप्त हुआ ॥१-२॥ स्वप्न में इस प्रकार सयोग होने पर उषा मद्दगा पीरवार करती हुई उठी और अपने अपने को स्त्री-भाव में पाया । पीरवार मूल कर उषाकी सखी चित्रलेखा भी पीर

कर उठ पडी और उगने उपा से कहा—हे सखी ! भय मत करो, तुम सौर विरपात महाराज वाणाक्षर की सुपुत्री होकर इस प्रकार भयभीत होनी हो ? अरे, तुम रो क्यों रही हो ? तुम्हारे पिता के सामने कोई भी धीर युद्धक्षेत्र में नहीं टिक पाता तो तुम्हें भय मानने या रोने का क्या कारण हो सकता है ? ॥३-६॥ इसलिये हे सखी ! तुम मन में उत्पन्न हुए विवाद का परिस्थान करो । देखो, देव-ताओं के अधिपति इन्द्र ने अपनी सेना के सहित जब-जब इस नगर पर आक्रमण किया, तभी-तभी उन्हें परास्त होकर भागना पड़ा है ॥७-८॥

अय देवसमूहस्य भयदश्च पिता तव ।  
 महासुरवर श्रीमान्बले पुत्रो महाबल ॥८  
 एव साऽपि हिता सञ्जा वाणपुत्री यशस्विनी ।  
 स्वप्ने रूप यथा दृष्ट न्यवेद्यदनिन्दिता ॥१०  
 उपोवाच ।  
 एव सन्ध्यापिता साध्वी कथ जीवितुमुत्सहे ॥११  
 पितर किं नु वक्ष्यामि देवशत्रुमरिन्दमम् ।  
 एव सद्रूपणकरी व शस्यास्य महौजस ॥१२  
 श्रेयो हि मरणं मह्यं न मे श्रेयोऽद्य जीवितम् ।  
 ईप्सितो वा यथा कोऽपि पुरुषो विगतो हि मे ॥१३  
 जाग्रतीव यथा चाहमवस्थेय वृता मम ।  
 कथमेव कृता नाम वन्द्या जीविनुमुत्सहे ॥१४  
 कुलोपक्रोशनकरी वृलाङ्गारी निराश्रया ।  
 जीवितुं न स्पृहे-नारी साध्वीनामाग्रत स्थिता ॥१५

जब देवगण भी तुम्हारे पिता के भय से सदैव डरते रहते हैं, तो फिर तुम्हें भय करने का कोई कारण नहीं है । तुम्हारे पिता महाराज बलि के अत्यन्त पराक्रमी पुत्र तथा सब दैत्यों के स्वामी हैं, यह समझ कर तुम्हें शांत होना चाहिये ॥६॥ चित्रलेखा के वचन सुन कर उपा ने उसे अपने स्वप्न का सम्पूर्ण विवरण सुनाते हुए कहा—हे सखी ! मैं सती, साध्वी तथा उच्च वर्ण की कन्या

हैं, परन्तु इस प्रकार लाञ्छित होकर अब किस प्रकार से जीवित रह सकूँगी ॥१०-११॥ शत्रुओं का नाश करने और देवताओं को भी भयभीत करने वाले अपने पिता से मैं इस विषय में क्या कह पाऊँगी ? जब मेरे कारण मेरे पितृकुल पर कलक लगता है तो मेरी मृत्यु होना ही श्रेयस्कर है । फिर जिस इच्छित पुरुष से संयोग हुआ था, वह भी तो मेरी दुर्दशा बरके चला गया है, नव मेरे जीवन से क्या प्रयोजन है ? ॥१२-१५॥

इत्येव बाष्पपूर्णाक्षी सखीजनवृता तदा ।  
 विललाप चिरं कालमुपा कमललोचना ॥१६  
 अनाथवत्तां रुदती सख्यः सर्वा विचेतनः ।  
 ऊचुरश्रुपरीताक्षीमुपा सर्वा. समागता. ॥१७  
 दुष्टेन मनसा देवि शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।  
 क्रियते न च ते सुभ्रु किञ्चिद्दुष्टं मन. शुभे ॥१८  
 प्रसभ दैवसयोगाद्यदि भुक्ताऽसि भामिनि ।  
 स्वप्नयोगेन कल्याणि व्रतलोपो न विद्यते ॥१९  
 व्यभिचारेण ते देवि नास्ति कश्चिद्व्यतिक्रमः ।  
 न च स्वप्नकृतो दोषो मर्त्यलोकेऽस्ति सुन्दरि ॥२०  
 एव विप्रर्षयो देवि धर्मज्ञा कथयन्नि वै ।  
 मनसा चैव वाचा च कर्मणा च विशेषतः ।  
 दुष्टा या त्त्रिभिरेतैस्तु पापा सा प्रोच्यते युधिः ॥२१

हे राजन् ! पद्माक्षी उपा यह कह कर बहुत समय तक रोती रही । उस समय सखियाँ उसके चारों ओर बँठ गईं और उसे व्याकुल देख कर वे भी अधीर हो उठी । फिर उन सखियों ने गद्गद स्वर में उससे कहा—हे सखी ! दूषित चित्त से ब्रिये गये कार्य का ही बुरा फल मिल सकती है, परन्तु तुम्हारे मन में कोई बुरा विचार नहीं था ॥१६-१८॥ यदि दैवयोग से किसी पुरुष का वसात् संयोग प्राप्त भी हुआ है तो वह स्वप्न की घटना होने के कारण असत्य है, उससे तुम्हारा कीमार्ग भंग नहीं हो सकता ॥१९॥ यह घटना व्याभिचार नहीं बही जा सकती । फिर मर्त्यलोक में तो स्वप्नावस्था का दोष, दोषों की गणना में ही

नहीं है ॥२०॥ धर्म के जानने वालों का कथन है कि मन, वचन और कर्म से पाप करने वाली नारी ही पापिनी हो सकती है ॥२१॥

न च ते दृश्यने भीरु मन प्रचलित सदा ।  
 कथ त्व दोषसदुष्टा नियता ब्रह्मचारिणी ॥२२  
 यदि सुप्ता सती साध्वी शुद्धभावा मनस्विनी ।  
 इमामवस्था प्राप्ता त्व नैव धर्मो विलुप्यते ॥२३  
 यस्या दुष्ट मन पूर्व कर्मणा चोत्पादितम् ।  
 तामाहूरमती नाम सती त्वमसि भामिनि ॥२४  
 धुतजा रूपसपन्ना नियता ब्रह्मचारिणी ।  
 इमामवस्था नीताऽमि कालो हि दुरतिक्रम ॥२५  
 इत्येवमुक्ता रुदती वाष्पेणावृतलोचनाम् ।  
 कुम्भाण्डदुहिता वाक्य परम त्विदमब्रवीत् ॥२६  
 त्यज शोक विशालाक्षि अपापा त्व वरानने ।  
 श्रुत मे यदिद वाक्य याथातथ्येन तच्छृणु ॥२७  
 उपे यदुक्ता देव्याऽसि भर्तार ध्यायती तदा ।  
 समीपे देवदेवस्य स्मर भामिनि तद्वच ॥२८

जब तुम्हारा मन कभी क्षणभर के लिये भी चंचल नहीं हुआ और जब तुम सदा ब्रह्मचर्य पालन पूवक रही हो तब तुम्हें दुष्ण कैसे कहा जा सकता है ? ॥२२॥ स्वप्न काल में यदि तुम्हारे जैसी शुद्ध भाव वाली सती, साध्वी कुमारी देवयोग से ऐसी घटना में फँस जाय तो उसका धर्म कभी भी लुप्त नहीं होना ॥२३॥ जो स्नेह्याचारिता पूर्वक दुष्कर्मों में लगी रहती है उसी को असती कहते हैं ॥२४॥ तुम रूप, गुण कुल, शील आदि में सर्वश्रेष्ठ एवं सती हो । यह घटना तो काल की गति से ही अनायास घट गई है ॥२५॥ इस प्रकार सब सखियों के भाति भाँति से समझाने पर भी उपा का मन शांत नहीं हुआ और वह आसुओं की धारा बहाती हुई रोती रही । उसे इस दशा में देख कर कुम्भाण्ड नामक मंत्री की पुत्री ने उससे कहा—हे विशाल नयनों वाली ! तुम इस शोक का परित्याग

करो । इस विषय मे तुम्हारा किंचित् भी दोष नहीं है, क्योंकि इस समय मुझे जिस बात का स्मरण हुआ है, उससे भी तुम्हारा निरपराध होना सिद्ध होता है ॥२६-२७॥ तुम अपने मन को शांत करके भगवान् शंकर के समक्ष कहे गये भगवती पार्वती के वचनो का स्मरण करो ॥२८॥

द्वादश्या शुक्लपक्षस्य वैशाखे मासि यो निशि ।  
 हर्म्ये शयान्ना रुदती स्त्री तत्रा समुपनेष्यति ॥२८॥  
 भविता स हि ते भर्ता शूर शक्तनिवर्हण ।  
 इत्युवाच वचो हृष्टा देवी तव मनोगतम् ॥३०॥  
 न हि तद्वचन मिथ्या पार्वत्या यदुदाहृतम् ।  
 सा त्व किमिदमत्यर्थं रोदिपीन्दुनिभानने ॥३१॥  
 एवमुक्ता तथा बाला स्मृत्वा देवीवचस्तत ।  
 अभवन्नष्टशोका सा द्राणपुत्री शुभेक्षणा ॥३२॥  
 स्मरामि भामिनि वचो देव्या क्रीडागते भवे ।  
 यथोक्त सर्वमखिल प्राप्त हर्म्यंतले मया ॥३३॥  
 भर्ता तु मम यद्येप लोवनाथस्य भार्यया ।  
 व्यादिष्ट स कथ ज्ञेयस्तत्र कार्यं विधियताम् ॥३४॥  
 इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डदुहिता पुन ।  
 व्याजहार यथान्यायमर्थतत्त्वविशारदा ॥३५॥  
 न हि नस्या कुल देवि न कीर्तिर्नात्रि पीरुपम् ।  
 कश्चिज्जानाति तत्त्वेन किमिदं त्व विमुह्यसे ॥३६॥

उन्होंने कहा था कि वैशाख की द्वादशी को तुम्हारी स्वप्नावस्था मे जिस पुरुष का तुम्हे सयोग प्राप्त होगा, वही तुम्हारा पति बनेगा । इस प्रकार पार्वती-जी ने तुम्हारा मन चाहा वर प्रदान किया था ॥२६-३०॥ भगवती के वचन कभी भी असत्य नहीं हो सकते, इसलिये अब, जब कि तुम्हारे समक्ष अनुभूत अवसर उपस्थित होगया, तब क्यों रो रही हो ? ॥३१॥ हे राजन् ! मन्त्रीतनया के वचन सुन कर उपा का शोक मिट गया और वह कहने लगी ॥ ३२ ॥ उपा

घोड़ी—हे सती ! अब मुझे मगदनी पावनी नी ने ठीका के समय जो घबरा बहे थे, उनकी याद आ गई है, परंतु उनके द्वारा विदित मेरा वह पति शीत है, यह जानने का उपाय होना चाहिये ॥३३-३४॥ उपा की जान मुन कर अर्थ तत्व विशारदा कु भाण्डतनया ने रहा—हे मधी ! उग पुष्प के रूप गुण लोका में से कोई भी नहीं जानती तो मन म ध्यर्थ ही सतप्त होना से क्या ।  
॥ ३५ ३६ ॥

अदृष्टश्चाश्रुतश्चैव दृष्टः स्वप्ने च य शुभे ।  
 कथं ज्ञेयो भवेद्भूरीर मोऽम्माभी रतितस्कर ॥३७  
 येन त्वमसितापाङ्गि मत्तकाशिति विममात् ।  
 रदती प्रसभ भुक्ता प्रविश्यान्त पुर सपि ॥३८  
 न ह्यसौ प्राकृत कश्चिद्य प्रविष्ट प्रसह्यते ।  
 नगर लोकजिह्यानमेक शत्रुनिवर्हण ॥३९  
 आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महीजसौ ।  
 न शक्ता शोणितपुर प्रवेष्टु भीमविद्वमा ॥४०  
 सोऽयमेतै शतगुणैर्विशिष्टश्चारिसूदन ।  
 प्रविष्ट शोणितपुर राणमाह्वय मूर्धनि ॥४१  
 यस्या नैव विधो भर्ता भद्रेषु त्रविशारद ।  
 कस्तस्या जीविनेनार्यो भोगैर्वस्त्वम्त्रजेक्षणे ॥४२  
 धन्याऽस्यनुगुहीताऽसि यस्यास्ते पतिरीदृश ।  
 प्राप्तो देव्या प्रसादेन कन्दर्पसमविक्रम ॥४३  
 इदं तु यत्कार्यतम शृणु त्व तन्मयेरितम् ।  
 विज्ञेयो यस्य पुत्रो वै यन्नामा यत्कुलश्च स ॥४४

हमने न तो उसे कभी देखा और न कानो से उसके विषय में कुछ सुना तथा तुम भी केवल स्वप्न में ही उसे देख सकी हो, तब हम में से कोई उसे किस प्रकार पहचान पायेगी ? ॥ ३७ ॥ फिर इस लोक प्रसिद्ध नगर में वह इकला ही अपने पराक्रम से आकर तुमसे मिला, तो अवश्य ही वह कोई असाधा-

रण पुरुष होगा ॥३८-३९॥ देखो, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण और अश्विद्वय महायशस्वी होकर भी इस नगर में प्रवेश नहीं कर सके ॥४०॥ परन्तु वह पुरुष बाणानुर के शिर पर पाँव रख कर शोणितपुर में घुस आया था, तो अवश्य ही वह उनसे शतगुणा पराक्रमी होगा ॥४१॥ जिस नारी का पति इतना पराक्रमी न हो उसे भोगों का सुख अथवा जीवन का आनन्द ही उपलब्ध नहीं हो सकता ॥४२॥ इस प्रकार हे सखी ! तुम धन्या और अनुग्रहीता हो । यदि ऐसा न होगा तो पार्वतीजी तुम पर प्रसन्न ही क्यों होती अथवा तुम्हें ऐसे कामोपम पति की प्राप्ति का वर ही क्यों प्रदान करती ? ॥४३॥ अब मैं तुम्हें जो उपाय बताती हूँ, उसे सुन कर वंश का कार्य करो तो तुम्हें उस युवक के पिता, वंश और नाम का पता सुगमता से लग सकता । ४४॥

इत्येवमुक्ते वचने तलोपा काममोहिता ।

उवाच कुम्भाडसुना कथं ज्ञास्याम्यहं सखि ॥४५॥

- त्वमेव चिन्तय सखि नोत्तर प्रतिभाति मे ।

स्वकार्ये मुह्यते लोको यथा जिवं लभाम्यहम् ॥४६॥

उवाचा वचनं श्रुत्वा रामा वाक्यमिदं पुनः ।

उवाच रुदती चोपा कुम्भाण्डदुहिता सखी ॥४७॥

कुशला ते विशालाक्षि सर्वथा सन्धिविग्रहे ।

अप्परा चित्रलेखा वै क्षिप्रं विज्ञाप्यता सखि ॥४८॥

अस्याः सर्वं मशेषेण त्रैलोक्यं विदितं सदा ।

एवमुक्त्वा तर्दोपा त्रैलोक्यविस्मया ॥४९॥

तामन्तरसमानाद्यं चित्रलेखा सखी प्रियाम् ।

कृताञ्जलिपुटा दीना उपा वचनमब्रवीत् ॥५०॥

सा तच्छ्रुत्वा तु वचनमुपायाः परिकीर्तितम् ।

आश्वासयामास सखी वाणपुत्री यशविनीरम् ॥५१॥

इस पर काम से मोहित हुई उपा उससे बोली— हे सखी ! अपना कार्य उपस्थित होने पर उमरी चिन्ता में सभी का चित्त भ्रान्त हो जाता है, इसलिये



मैं भी अपने कर्तव्य का निश्चय नहीं कर पा रही हूँ । अतः तुम ही कोई ऐसा यत्न करो जिससे मेरे प्रियतम का पता लग सके ॥४७-४६॥ उपा ने वचन सुन कर कुम्भाण्ड-पुत्री ने कहा—हे सखी ! सन्धि-विषय की नीति में चित्रलेखा बहुत चतुर है और वह तीनों लोको के वृत्तांत को भन्न प्रकार जानती है, इसलिये इस विषय में उसी से परामर्श करना चाहिये । यह सुन कर उपा को अत्यन्त हर्ष एव आश्चर्य हुआ ॥४७-४६॥ उसन उसी समय चित्रलेखा को बुला कर उसे सम्पूर्ण वृत्तान्त बता दिया, तब उसकी बात को समझ कर चित्रलेखा ने उसे आश्वासन दिया ॥४७-४६॥

तत मा विस्मयाविष्टा वचन प्राह दुर्वचम् ।  
 चित्रलेखामप्सरस प्रणयात्ता सखीमिदम् ॥४२  
 परम शृणु मे वाक्य यत्त्वा वक्ष्यामि भामिनि ।  
 भर्तारि यदि मेऽद्य त्वं नानयिष्यसि मत्प्रियम् ॥४३  
 कान्त पद्मपलाशाक्ष मत्तमातगगामिनम् ।  
 न्यक्ष्याम्यहं तत प्राणानचिरात्तनुमध्यमे ॥४४  
 चित्रलेखाऽब्रवीद्वाक्यमुषा हर्षयती शनैः ।  
 नेपोऽर्थं शक्यतेऽस्माभिर्वेत्तु भामिनि सुशक्ते ॥४५  
 न कुलेन न वर्णेन न शीलेन न रूपत ।  
 न देशतश्च विज्ञात स हि चोरो मया सखि ॥४६

फिर आश्चर्य में भरी हुई उपा अपनी सहेली चित्रलेखा से विनीत भावपूर्वक बोली—हे सखी ! तू मेरा अन्तिम निश्चय सुन लो । यदि तू आज ही मेरे मत्त गजराज जैसे पराक्रमी प्रियतम का पता न लगा सकी तो मेरा यह प्राण नहीं रहेगा ॥४२-४४॥ इस पर चित्रलेखा ने उसे सान्त्वना देकर कहा—मैं इस विषय में कुछ भी नहीं कह सकती, क्योंकि मैं तुम्हारे चित्त को आकर्षित करने वाले पुरुष के रूप, गुण, वंश, शील और देश आदि को किंचित् भी नहीं जानती ॥ ४५-४६ ॥

किन्तु कर्तुं यथाशक्यं बुद्धिपूर्वं मया सखि ।  
 प्राप्तं च शृणु मे वाक्यं यथा काममदाप्स्यसि ॥५७  
 देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।  
 ये विशिष्टाः प्रभावेण रूपेणाभिजनेन च ॥५८  
 यथाप्रभावं तान् सर्वानालिखिष्याम्यहं सखि ।  
 मनुष्यलोके ये चापि प्रवरा लोकाविश्रुताः ॥५९  
 सप्तरात्रेण ते भीरुदर्शयिष्यामि तानहम् ।  
 ततो विज्ञाय पादस्थं भर्तारं प्रतिपन्स्यसे ॥६०  
 सा चित्रलेखाया प्रोक्ता उपाहितचिकीर्षया ।  
 क्विपतामेवमित्याह चित्रलेखा सखी प्रियाम् ॥६१

फिर भी उसे प्राप्त करने का एक उपाय मैंने सोचा है, उसे कहती हूँ, सुनो ॥५७॥ देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग और मनुष्यों में जो-जो पुरुष विख्यात हैं, उन-उन के चित्र बना कर तम्हें दिखाऊँगी । यह चित्र एक सप्ताह में तुम्हारे सामने आजायगे, तब उनमें यदि तुम्हारा इच्छित पुरुष हो तो उसे पहिचान लेना ॥५८-६०॥ चित्रलेखा की बात सुन कर उपाय ने कहा—हे सखी ! अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वही करो ॥६१॥

ततः कुशलहस्तत्वाद्यथालेज्यसमन्ततः ।  
 इत्युक्त्वा सप्तरात्रेण कृत्वा लेख्यगतास्तु तान् ॥६२  
 चित्रमदृगन्तान्मुखात्तान्गामान् शोभना ।  
 ततः प्रस्तीर्य पट्टं सा चित्रतोखा स्मय कृतम् ॥६३  
 उपायं दर्शयामास सखीनां तु विशेषतः ।  
 एते देवेषु ये मुन्यास्तथा दानववशंजाः ॥६४  
 विन्नरौरगयक्षाणां राक्षसानां मन्ततः ।  
 गन्धर्वसुरदैत्वानां ये चान्ये भोगिनः स्मृताः ॥६५  
 मनुष्याणां च सर्वेषां ये विशिष्टराजा नराः ।  
 तदेतान्पश्य सर्वास्त्वं यथैव निखितान्मया ॥६६

यस्ते भर्ता यथारूपो भयाभिलिखितः सखिः ।  
त त्व प्रत्यभिजानीहि स्नप्ने य दृष्टवत्यसि ॥६७

फिर चित्रलेखा नाम की वह अप्सरा अपनी चतुराई से एक सप्ताह में ही चित्रलेखन कार्य को सम्पूर्ण कर और उपा के पास आकर सब सखियों के सामने चित्रों का प्रदर्शन करती हुई बोली—देवता, दानव, यक्ष, गधर्व, विन्नर, नाग और मनुष्यों में जो सर्व श्रेष्ठ समझे जाते हैं, उन सब के चित्र मैंने बना दिये हैं, अब तुम स्वप्न में देखे हुए अपने उस इच्छित पुरुष को इनमें से पहिचान लो ॥ ६२-६७ ॥

तत क्रमेण सर्वास्तान्दृष्ट्वा सा मत्तकाशिनी ।  
देवदानवगन्धर्वविद्याधरगणानथ ।  
अतीत्य च यदून्सर्वान्दिदर्शं यदुनन्दनम् ॥६८  
तत्रानिरुद्ध दृष्ट्वा सा विस्मयोत्फुल्ललोचना ।  
उवाच चित्रलेखा तामय चीर स वै सखि ॥६९  
येनाह दूषिता पूर्वं स्वप्ने हर्म्यगता सती ।  
सोऽय विज्ञातरूपो मे कुनोऽय रतितस्कर ॥७०  
चित्रलेखे वदस्व न तत्त्वतो मम शोभने ।  
कुशीलाभिजनतो नाम किं चास्य भामिनि ।  
तत पश्चाद्विधास्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम् ॥७१  
अथ त्रैलोक्यनाथस्य नप्ता कुण्डस्य धीमतः ।  
भर्ता तव विशालाक्षि प्राद्युम्निर्भीमविक्रमः ॥७२  
न ह्यस्ति त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्य पराक्रमे ।  
उत्पाद्य पर्वतानेष पर्वतानेष शातयेत् ॥७३  
घन्याऽस्यनुगृहीताऽसि यस्यास्ते यदुपुङ्गव ।  
त्र्यक्षपत्या समादिष्टः सदृश सज्जन पति ॥७४

इस प्रकार उपा देव, दानव, गधर्व आदि के चित्रों को देखती हुई जब मनुष्यों के चित्रोंको देख रही थी, तभी सहसा उसकी दृष्टि अतिरुद्ध के चित्र पर

जा पहुँची और उसे देखते ही कह उठी—हे सखी ! यही तो वह चितचोर है ॥६८-६९॥ उस दिन यही मेरी स्वप्नावस्था मे मुझसे मिला था । अब तुम बताओ कि यह कहाँ होगा ? ॥७०॥ इसका धूल, शील, रूप और नाम आदि का यथार्थ पता बताओ, फिर भविष्य का वक्तव्य स्थिर किया जायगा ॥७१॥ तब चित्रलेखा ने कहा—हे सखी ! यह भगवान् श्रीवृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध हैं, इनके पिता का नाम प्रद्युम्न है । तीनों लोको मे इनके समान कोई वीर नहीं है । यह पर्वतो को उखाड कर उन्ही के प्रहार से अन्याय पर्वतो को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं ॥७२-७३॥ अवश्य ही तुम कृत्यकृत्य हो गई हो, यदि यह बात न होती तो भगवती पार्वती तुम्हारे लिये ऐसा थोष्ट पति क्यों प्राप्त कराती ? ॥७४॥

त्वमेवाह विशालाक्षि योग्या भव वरानने ।  
 न शक्या हि गतिश्चान्या अगत्या मे गतिर्भव ॥७५  
 अन्तरिक्षचरा च त्व योगिनी कामरूपिणि ।  
 उपायस्यास्य कुशला क्षिप्रमानय मे प्रियम् ॥७६  
 सर्वथा सस्तुता तेऽह वाक्यैरमृतसोदरं ।  
 कारिता च समुद्योग प्रिय कान्तैश्च भापितं । ७७  
 एषा गच्छाम्यह भीरु क्षिप्र वं द्वारका पुरीम् ।  
 भर्तारमानयाम्यद्य तव वृष्णिकुलोद्भवम् ।  
 अनिरुद्ध महाब्राह्म प्रविश्य द्वारका पुरीम् ॥७८  
 सा वचस्तथ्यमशिव दानवाना भयावहम् ।  
 उक्त्वा चान्तर्हिता क्षिप्र चित्रलेखा मगोजवा ॥७९  
 सखीभि सहिता ह्यूपा चिन्तयन्ती तु सा स्थिता ।  
 तृतीये तु मूर्हते सा नष्टा वाणपुरात्तदा ॥८०  
 सखीप्रिय चिकीर्षन्ती पूजयन्ती तपोधनान् ।  
 क्षणेन समनुप्राप्ता द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥८१  
 कैलासशिखराकारैः प्रासादैरुपशोभिताम् ।  
 ददर्श द्वारका रम्या दिवि तारामिव स्थिताम् ॥८२

नगरे शोणितपुरे वाणो नाम महासुरः ।  
 तस्य कन्या वरारोहा नाम्नोपेति च विश्रुता ॥७  
 भगवन्सानुरक्ता च प्राद्युम्नि पुरुषोत्तमम् ।  
 देव्या वरविसर्गेण तस्या भर्ता विनिर्मितः ॥८  
 त च नेतुं समायाता तत्र सिद्धिं त्रिधत्स्व मे ।  
 मया नीतेऽनिरुद्धे तु नगर शोणिनाह्वयम् । ९  
 प्रवृत्तिं पुण्डरीकाक्षे त्वयाऽऽद्येया महामुने ।  
 अवश्य भविता चैव कृष्णेन सह विग्रहः ।  
 वाणस्य सुमहान्सख्ये दिव्यो हि स महासुरः ॥१०

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! द्वारका स्थित भगवान् श्रीकृष्ण के भवन-द्वार पर जाकर चित्रलेखा सोचने लगी कि मैं अनिरुद्ध के पास किस प्रकार पहुँच सकती हूँ, जिससे कि उपा वा वृत्तान्त उन्हें सुनाया जा सके ? ॥१॥ तभी एक जलाशय के किनारे पर बैठे हुए देवर्षि नारद को उसने भगवान् का ध्यान करने हुए देखा ॥२॥ इससे वह बड़ी प्रसन्न हुई और तुरन्त ही उनके पास जाकर प्रणाम पूर्वक विनीत भाव से खड़ी हो गई ॥३॥ तभी नारदजी का ध्यान भग हुआ और वह बोले—हे अप्सरे ! तुम यहाँ किस प्रयोजन से आई हो, यह यथार्थ रूप से कहो ॥४॥ इस पर चित्रलेखा ने हाथ जोड़ कर तीनी लोको में सम्मानित उन नारदजी से कहा—हे भगवन् ! मैं जिस कार्य से यहाँ आई हूँ, उसे कहती हूँ । मुझे यहाँ से अनिरुद्ध को लिवा ल जाना है । क्योंकि शोणितपुर के अधिपति वाणासुर की एक अत्यन्त सुन्दरी 'उपा' नाम की कन्या है ॥ ५-७ ॥ भगवती पार्वती ने उसे पति रूप में अनिरुद्ध को प्राप्त करने का वर प्रदान किया है और उपा की भी उनमें अत्यन्त आराधित है, इसीलिये मैं उन्हें लिवा ले जाना चाहती हूँ । हे भगवन् ! मुझे इस कार्य में जिस प्रकार सफलता मिल सके, वह उपाय करिये और जत्र मैं उन्हें यहाँ से ले जाऊँ, तब यह वृत्तान्त भगवान् श्रीकृष्ण को भी बता दीजिये । परन्तु ऐसा होने पर युद्ध में अत्यन्त दुर्घर्ष दैत्यराज वाणासुर के साथ सश्रम छिड़ने की संभावना है ॥८-१०॥

न च शक्तोऽनिरुद्धस्त युद्धे जेतु महासुरम् ।  
 सहस्रबाहुमायान्त जयेत्कृष्णो महाभुज ॥११  
 भगवन्सन्निकर्षं ते यदर्थमहमागता ।  
 कथं हि पुण्डरीकाक्षो ज्ञापितस्नदिद भवेत् ॥१२  
 त्वत्प्रसादान्च भगवन्न मे कृष्णाद्भय भवेत् ।  
 स हि तत्त्वार्थदृष्टिस्तु अनिरुद्ध कथं ह्रियेत् ॥१३  
 क्रुद्धो हि स महाबाहुस्त्रै लोक्यमपि निर्दहेत् ।  
 पौत्रशोकाभिसतप्त शपेन स दहेत् माम् ॥१४  
 तत्रोपग्य च भगवश्चिन्तितु वै त्वमर्हसि ।  
 यथा ह्युपा लभेत्कान्त मम चैवाभय भवेत् ॥१५

इसलिये उसका अनिरुद्ध से परास्त होना संभव नहीं है अतः मे भगवान् श्रीकृष्ण को ही उसे हराना पड़ेगा ॥११॥ इस समय भगवान् श्रीकृष्ण को यह वृत्तान्त किस प्रकार सुनाया जाय, मैं आपसे यही जानना चाहती हूँ । १२॥ यदि आप मुझ पर क्रुद्ध करके यह समाचार भगवान् श्रीकृष्ण को स्वयं ही सुना द, तो मैं निभय हो जाऊँ । उनके मनोभाव का ज्ञान हुए बिना अनिरुद्ध का अपहरण करने का मुझे साहस नहीं हो रहा है ॥१३॥ भगवान् श्रीकृष्ण अपने क्रोध से तीनो लोको को भस्म करने में समर्थ हैं, यदि मैं उनके जाने बिना ही अनिरुद्ध का अपहरण कर लूँगी तो वे पौत्र शोक से सतप्त होकर कहीं मुझे ही भस्म न कर डालें ॥१४॥ इसलिये आप ही कोई उपाय करें जिससे उपा को उसके प्रिय पति की प्राप्ति हो सक और मैं भय से मुक्त हो सकूँ ॥१५॥

इत्येवमुक्तो भगवाश्चित्रलेखा स नारद ।  
 उवाच स शुभ वाक्यं मा भैस्त्वमभयं शृणु । १६  
 त्वया नीतेऽनिरुद्धे तु कन्यावेश्मप्रवेशिते ।  
 यदि युद्धं भवेत्तत्र स्मर्तव्योऽहं शुचिस्मिते ॥१७  
 ममैव परमं कामो युद्धं द्रष्टुं मनोरमे ।  
 तद्दृष्ट्वा च महाप्रीतिं प्रवृत्तिश्च दृढा भवेत् ॥१८

ह्यतां तामसी विद्यां सर्वलोकप्रमोहिनीम् ।  
 कृतकृत्यस्तु ते देवि एष विद्या ददाम्यहम् ॥१६  
 एवमुक्ते तु वचने नारदेन महर्षिणा ।  
 तथेति वचनं प्राह चित्रलेखा मनोजवा ॥२०  
 अभिवाद्य महात्मानमृषीणा नारदं वरम् ।  
 सा जगामानिरुद्धस्य नृहं चैवान्तरिक्षगा ॥२१  
 ततो द्वारवतीमध्ये कामस्य भुवनं शुभम् ।  
 तत्समीपेऽनिरुद्धस्य भवनं सा विवेश ह ॥२२

चित्रलेखा के वचन सुन कर नारदजी ने कहा—हे अप्सरे ! तुम्हे किसी प्रकार भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मैं तुम्हे भय से बचने का उपाय बताना हूँ ॥१६॥ जब तुम अनिरुद्ध की बाणामुर की पुत्री के पास पहुँचा दो, तब यदि किसी प्रकार युद्ध होने लगे तो मेरी याद करना ॥ १७ ॥ क्योंकि युद्ध को देख कर मेरा चित्त अत्यन्त आनन्दित हो उठता है, इसलिये मैं युद्ध देखने के लिये सदा उत्सुक रहता हूँ । इसलिये मैं तुम्हे विश्व को मोह में डालने वाली तामसी विद्या दे रहा हूँ, तुम उसे ले लो ॥१८-१९॥ तब चित्रलेखा ने नारदजी से तामसी विद्या प्राप्त कर उन्हें प्रणाम किया और आकाश मार्ग से होकर द्वारका के मध्य प्रद्युम्न भवन के पार्श्व भाग में स्थित अनिरुद्ध के महल में प्रवेश किया ॥ २०-२२ ॥

ददर्श भवनं यत्र प्राद्युम्निरवसत्सुखम् ।  
 ततः प्रविश्य भवनं सहसा तस्य तन्महत् ॥२३  
 तत्रानिरुद्धं सापश्यच्चित्रलेखा वराप्सराः ।  
 मध्ये परमनारीणां तारापतिमिवोदितम् ॥२४  
 व्यक्तमस्य हि सत्स्वप्नो हृदये परिवर्तते ।  
 इति तत्रैव बुद्ध्या च निश्चिता गतसाध्वसा ॥२५  
 सा दृष्ट्वा परमस्त्रीणां मध्ये शक्रध्वजोपमम् ।  
 चिन्तयाविष्टहृदया चित्रलेखा मनस्विनी ॥२६

कथं कार्यमिदं कार्यं कथं स्वस्ति भवेदिति ।  
 साञ्ज्ताहिता चिन्तयित्वा चित्रलेखा यशस्विनी ॥२७  
 तामस्या छादयामास विद्यया शुभलोचना ।  
 ततोऽन्तरिक्षादेवाशु प्रासादोपर्यधिष्ठिता ॥२८  
 प्राद्युग्मिन् वचनं प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ।  
 चक्षुर्दत्त्वा तु सा तस्मै कृत्वा चात्मनि दर्शनम् ॥२९  
 विविक्षते सा च वै देशे तं वाक्यमिदमब्रवीत् ।  
 अपि ते कुशलवीर सर्वं यदुनन्दन ॥३०  
 अहस्तावत्प्रदोषो वा कच्चिद्गच्छति ते सुखम् ।  
 शृणुष्व त्वं महाबाहो विजिप्ति मे रतीमुत ॥३१

फिर जिस वक्ष मे अनिरुद्ध अनेक सुन्दरियो के मध्य मे बैठे रह कर तारिकाओ के मध्य मे चन्द्रमा जैसे प्रतीत होरहे थे, वहाँ वह जा पहुँची ॥२२-२४॥ परन्तु अनिरुद्ध के स्त्रियो से घिरे होने के कारण चित्रलेखा ने सोचा कि इस प्रकार मरा कार्य कैसे होपा ? फिर कुछ स्थिर कर वह नारद प्रदत्त तामसी विद्या के प्रभाव से अदृश्य रह कर भवन के ऊपर जा पहुँची और उमने सब को मोहित कर अनिरुद्ध को चिन्तय रहने की शक्ति देकर उन्ही स्त्रियो के रहते हुए मधुर स्वर मे उनसे कहा—हे यदुनन्दन ! हे वीर ! आप कुशल से तो हैं ? आप-के दिन-रात तो सुगर्वक व्यतीत होते हैं ? इस समय मैं आपसे जो कुछ कहना चाहती हूँ, उसे सुनिये ॥२५-३१॥

उपाया मम सत्पास्तु वाक्यं वक्ष्यामि तत्त्वतः ।  
 स्वप्ने तु या त्वया दृष्टा स्त्रीभावो चापि भाविता ॥३२  
 त्रिभक्तिं हृदये या त्वामुपया प्रेषिता त्वहम् ।  
 रुदन्ती जम्भती चैव निश्वसन्ती मुहुर्मुहुः ॥३३  
 त्वद्दर्शनपरा सौम्यकामिनी परितप्यते ।  
 यदि त्वयास्यसे वीर धारयिष्यति जीवितम् ३४  
 अदर्शनेन मरणं तस्या नास्त्यत्र संशयः ।  
 यदि नारीभक्त्यं ते हृदिष्ये यदुनन्दन ॥३५



स्त्रिया कामयमानाया कर्तव्या हस्तधारणा ।  
त्व च तस्या वरोत्सर्गे दत्तो देव्या. मनोरथः ॥३६

आपने स्वप्न में देख कर ही जिसके साथ पत्नी के समान आचरण किया था, उस उपा ने उन्ही समय से आपको अपने हृदय मंदिर में स्थान दे रखा है । वह कभी रोती, कभी जम्हाई लेती और कभी-कभी निश्वास छोड़ती हुई आपको याद करती है । मुझे उसी ने आपके पास भेजा है ॥३२-३३॥ हे सौम्य ! आपके बिना वह जीवित नहीं रहेगी । वैसे आपकी सेवा हजारों स्त्री-रत्न तत्पर हैं, फिर भी यदि कोई नारी आपकी कामना करती है तो उसका पाणिग्रहण करना आपका कर्तव्य है । भगवती पार्वतीजी के वरदान से ही वह आपके प्रति आशावान हुई है ॥ ३४-३५-३६ ॥

चित्रपट्ट मया दत्त त्वच्चिह्नं दृश्यं जिवति ।  
सानुकोशो यदुश्रेष्ठं भव तस्या मनोरथे ॥३७  
उपा ते पतते मूर्ध्ना वयं च यदुनन्दन ।  
श्रूयतां चोद्भवस्तस्या कुलशीलं च यादृशम् ॥३८  
सस्थानं प्रकृतिं चास्या पितरं च ब्रवीमि ते ।  
वैरोचनिसुतो वीरो वाणो नाम महासुर ॥३९  
स राजा शोणितपुरे तस्य त्वामिच्छते सुता ।  
त्वद्भावगतचित्ता सा त्वन्मयं चापि जीवितम् ॥४०  
मनोरथकृतो भर्ता देव्या दत्तो न सशय ।  
त्वत्सगमात्सा सुश्रोणी प्राणान्धारयते शुभा ॥४१

मैंने उसे आपका चित्र बना कर दिखाया था, वह सदा उसी को अपने अंक में लिये रहती है । मेरी प्रार्थना है कि आप मेरी सखी पर दया कीजिये और जैसे भी हो सके उसका मनोरथ पूरा करने की कृपा करिये । अब मैं उसके कुल, शील, स्थान, प्रकृति और उसके पिता का परिचय देती हूँ ॥ ३७-३८-३९ ॥ शोणितपुर का राजा वाणासुर दैत्यराज बलि का पुत्र तथा महान् वीर है, वही उस उपा का पिता है । वह मूंदरी आपको अपना मन अर्पण करके अपने जीवन

को अपना आश्रित बर चुकी है ॥४०॥ भगवती पार्वती ने भी उसे आपको बर रूप में प्राप्त करने का वर प्रदान किया था । इसलिये भी वह अनुरक्तता आपके अभाव में कभी भी जीवन धारण नहीं करेगी ॥४१॥

चित्रलेपावच श्रुत्वा सोऽनिरुद्धोऽब्रवीदिदम् ।

दृष्टा स्वप्ने मया सा हि तन्मत्त शृणु शोभने ॥४२

रूपं वार्ति मतिं चैव सयोग रुदित यथा ।

एव सर्वमहोरात्र मुह्यामि परिचिन्तयन् ॥४३

यद्यहं समनुप्राह्यो यदि सद्यस्त्वमिच्छसि ।

नयस्व चित्रलेपे मा द्रष्टुमिच्छाम्यहं प्रियाम् ॥४४

कामसन्तापसन्नप्त प्रियासङ्गमकामत ।

एषोऽञ्जलिमया बद्ध सत्य स्वप्न कुरुष्व मे ॥४५

तस्य यद्वचनं श्रुत्वा चित्रलेपा वराप्परा ॥

सफलोऽद्य मम वलेश सरगा मे यत्प्रयाचितम् ॥४६

ईप्सित तस्य विज्ञाय अनिरुद्धस्य भामिनी ।

चित्रलेपा ततस्तुष्टा तथेति च तमब्रवीत् ॥४७

हर्म्ये स्त्रीगणमध्यस्थं वृत्वा चान्निहितं यदा ।

उत्पपात गृहीत्वा सा प्राद्युष्मि युद्धदुर्मदम् ॥४८

वंशम्पादनञ्जी ने कहा—हे राजन् ! चित्रलेपा के वचन सुन कर अनिरुद्ध बोले कि मैंने भी उसे जब से स्वप्न में देखा है, तभी से दुदशा ग्रस्त हो रहा हूँ । तुम उगका धारण मुनो ॥ ४२ ॥ मैं भी उसी समय से उसके रूप-लावण्य एवं सवोगादि का विचार करता हुआ निरन्तर विमूढ बन गया हूँ और उसके दशन के लिये निगा त ध्यातुन हूँ इगनिय यदि तुम मुग पर कुछ अनुग्रह करना चाहती हो तो शीघ्र ही उत्तक पाग ले खनो ॥४३ ४४॥ ह अन्पारे । मैं अपनी उत प्रिय-तमा से भेंट करने क लिये बहुर ही अरीर होगया हूँ, इगनिये मैं तुमसे प्रार्यना करता हूँ कि मेर स्वप्न को मर्य करके दिता दो ॥४५॥ यह सुन कर चित्रलेपा अरर १ प्रजा १ हूँ और उगी सुरम्न ही अनिरुद्ध को उन महिषाभों क मन्प मे

अपहृत कर लिया । फिर वह उन्हें साथ लेकर आकाश मार्ग से यह सोचती हुई उड़ चली कि मेरी सखी द्वारा सौंपा गया बायं पूरा हो चुका है ॥४६-४७-४८॥

॥ तमश्वानमागम्य सिद्धचारणसेवितम् ।  
 सहसा शोणितपुरं प्रविवेश मनोजवा ॥४६  
 अदर्शनं तमानीय मायया कामरूपिणी ।  
 अनिरुद्धं महाभागा यत्रोपा तत्र गच्छति ॥४७  
 उपाया दशयच्चैनं चित्राभरणभूषितम् ।  
 चित्राम्बरधर वीरं रहस्यमररूपिणम् ॥४८  
 तत्रोपा विस्मिता दृष्ट्वा हर्म्यस्था सज्जिमन्निवो ।  
 प्रवेशयामास च त तदा सा स्वगृहं तत ॥४९  
 प्रहर्षोत्फुल्लनया प्रिय दृष्ट्वाऽर्थकोविदा ।  
 सा हर्म्यस्था तमर्घ्येण यादव समपूजयत् ॥५०  
 चित्रलेखा परिष्वज्य प्रियाख्यानेष्वपूजयत् ।  
 त्वरिता कामिनी प्राह चित्रलेखा भयानुरा ॥५१  
 सखीद वै कथं कार्यं गुह्यं कार्यं विशारदे ।  
 गुह्ये कृते भवेत्स्वस्ति प्रकाशे जीवितक्षय ॥५२

फिर वह सिद्धगणो और चारणो से सेवित मार्ग को पार करती हुई शोणितपुर में प्रविष्ट हुई और अपनी माया के प्रभाव से अनिरुद्ध को अदृश्य रखती हुई उपा के भवन में ले पहुँची ॥४६-५०॥ उस समय उस अद्भुत शस्त्रास्त्रो से युक्त अनिरुद्ध के दर्शन कर उपा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, तब चित्रलेखा उन दोनों को घर के अन्तरंग भाग में ले गई ॥५१-५२॥ वहाँ उपा ने अत्यन्त हर्षित होकर अनिरुद्ध को अर्घ्य प्रदान किया और चित्रलेखा को हृदय से लगा कर कहा—हे सखी ! अब इनको छिपा कर रखने का कोई उपाय करना चाहिये, अन्यथा सदा ही प्राण सकट में रहेंगे ॥५३-५४-५५॥

इत्युक्त्वा त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलकृत ।

कान्तेन सह सयुक्ता स्थिता वै भीतभीतवत् ॥५६

चित्रलेखाऽन्नवीद्वाक्य शृणु त्व निश्चय सखि ।  
 कृत पुरुषकारेण दैव नाशयते सखि ॥५७  
 यदि देव्या प्रसादस्ते ह्यनुकूलो भविष्यति ।  
 अथ मायाकृत गुह्य न कश्चिज्ज्ञास्यते नर ॥५८  
 सख्या वै एवमुक्ता सा पर्यवस्थितचेतना ।  
 एवमेतदिति प्राह साऽनिरुद्धमिद वच ॥५९  
 दिष्ट्या स्वप्नगतश्रीरो दृश्यते सुभग पति ।  
 यत्कृते तु वय खिन्ना दुर्लभप्रियकाङ्क्षया ॥६०  
 कच्चित्तव महाबाहो कुशल सर्वतोगतम् ।  
 हृदय हि मृदु स्त्रीणा तेन पृच्छाम्यह तव ॥६१

यह वह वर उपा अपने प्रियतम को उा भवन के एवान्त स्थान में ले जाती हुई आशका से व्याकुल होगई । उसकी उस व्याकुलता को देख कर चित्र-लेखा ने कहा कि—हे सखी । यदि पुरुषार्थ हो तो विधाता का विधान भी लांघा जा सकता है । फिर भगवती पार्वतीजी की श्रृपा होने पर तो इसका भेद किसी को मिल ही नहीं सकता ॥५६-५७ ५८॥ चित्रलेखा के वचन सुन कर उपा के मन में कुछ शान्ति हुई और वह अनिरुद्ध की ओर देख कर बोली—मैं इतने समय से जिनकी प्राप्ति की अभिलाषा में व्याकुल होरही थी, उन अपने पितृचोर का आज दर्शन कर सकी हूँ ॥५९-६०॥ हे महाबाहो ! आप कुशलपूर्वक तो हैं ? यह प्रश्न मैंने इ-लिये किया है कि अबलाओ का हृदय अत्यन्त कोमल होता है ॥ ६१ ॥

तस्यामृतद्वचन श्रुत्वा उपाया श्लक्ष्णमर्थवत् ।  
 सोऽप्याह यदुशादू न शुभाक्षरतर वच ।  
 हर्षविप्लुतनेत्राया पाणिनाऽश्रु प्रमृग्य च । ६२  
 प्रहस्य सस्मित प्राह हृदयग्राहक वच ।  
 कुशल मे वरारोहे सर्वत्र मितभाषिणि ॥६३  
 त्वत्प्रसादेन मे देवि प्रियमावेदयामि ते ।  
 अदृष्टपूर्वञ्च मया देशोऽयं शुभदर्शने ॥६४

निशि स्वप्नो यथा दृष्टः मकृत्कन्यापुरे तथा ।  
 एवमेवमहं भीरु त्वप्रसादादिहागतः ॥६५  
 न च तद्रुद्रपत्न्या वै मिथ्या वाक्यं भविष्यति ।  
 देव्यास्ते प्रीतिमाज्ञाय त्वत्प्रियार्थं च भामिनि ॥६६  
 अनुप्राप्तोऽस्मि चार्द्यं व प्रसीद शरणं गतः ।  
 इत्युक्ता त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलङ्घिता ॥६७  
 कान्तेन सह सयुक्ता स्थिता वै भीतभीतवत् ।  
 ततश्चोद्वाहधर्मेण गान्धर्वेण समीयतुः ॥६८

उषा के मधुर वचनो को सुन कर प्रसन्न हुए अनिरुद्ध ने मुमकाते हुए कहा—हे मितभाषिणी ! मैं सब प्रकार से कुशलपूर्वक हूँ । मैंने जीवन में कभी भी इस देश को नहीं देखा था, जिसे तुम्हारे प्रसाद से आज देना रहा हूँ ॥६२-६३॥ एक रात्रि में स्वप्नावस्था के समय ही तुम्हारा दर्शन हुआ था और आज भगवती पार्वतीजी की वृषा से तुम्हारा प्रिय करने के लिये मैं यहाँ उपस्थित हूँ । मुझे विश्वास है कि उनका वचन कभी असत्य नहीं होता । इसलिये ह सुन्दर मुख वाली भामिनी ! अब तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ । यह सुन कर उषा ने हर्ष प्रकट किया और तब उन दोनों का गान्धर्व विवाह होगया ॥६४-६८॥

अन्योन्य रमतुस्ती तु चक्रवाकी यथा दिवा ।  
 पतिना साऽनिरुद्धेन मुमुदे तु वराङ्गना ॥६९  
 कान्तेन सह सयुक्ता दिव्यवस्त्रानुलेपना ।  
 रममाणाऽनिरुद्धेन अविज्ञाता सुता तदा ॥७०  
 तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्ते यदूनामृपभो हि सः ।  
 दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यस्त्रगनुलेपनः ॥७१  
 उषया सह संयुक्तो विज्ञातो बाणरक्षिभिः ।  
 ततस्तंश्चारपुरुषैर्वाणस्यावेदित द्रुतम् ॥७२  
 यथा दृष्टमशेषेण कन्यायास्तदतिक्रमम् ।  
 ततः किङ्करसैन्य तु व्यादिष्टं भीमकर्मणा ॥७३

बले पुत्रेण वीरेण बाणेनामिहघातिना ।  
गच्छन्व सहिता सर्वे हन्यतामेव दुर्मति ॥७४  
येन न कुलचारित दूषित दूषितात्मना ।  
उपाया धृषिताया हि कुल नी धृषित महत् । ७५

फिर चकई-चकवे के समान विहर उपा और अनिरुद्ध वरते हुए मुख-  
पुंज समय व्यतीत करने लगे और उस मुख में तन्मयता पूर्वक रम जाने से उन्हें  
व्यतीत होते हुए समय का भी ज्ञान नहीं था ॥६६-७०॥ एक दिन दिव्य वस्त्रा-  
लंकार और अनुलेपनादि से सुशोभित हुए अनिरुद्ध उपा के पास गये तभी किसी  
प्रकार अन्त पुर के रक्षकों पर उनका भेद प्रकट होगया, स्व उन्होंने तुरन्त ही  
देवराज के पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया जिसे सुनते ही बाणासुर  
ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि उम दुष्ट का शीघ्र ही वध कर दो ॥७१-  
७४॥ जिस दुष्ट ने उपा को कलङ्कित करके मरे कुल को ही दूषित कर दिया है,  
उसके साथ दया-भाव की कोई आवश्यकता नहीं है ॥७५॥

अमप्रदत्ता योस्माभि स्वयग्राहमधर्षयत् ।  
अहो वीर्यमहो धर्ममहो प्राप्स्यं च दुर्मते ॥७६  
य पुर भवन चेद प्रविष्टो न स बालिश ।  
एवमुक्त्वा पुनस्तामनु किङ्कारचोदगद्भृशम् ॥७७  
ते तस्याज्ञामथो गृह्य सुसनद्धा विनिर्ययु ।  
यत्रानिरुद्धो ह्यमवत्तनागच्छन्महायन ॥७८  
नानाशस्त्रोद्यतकरा नानारूपा भयङ्करा ।  
दानवा समभिक्षुद्धा प्राद्युम्निवधकाक्षिण ॥७९  
रुरोद तद्वल दृष्ट्वा बाष्पेणावृतलोचना ।  
प्रद्युम्निवधभीता सा बाणपुत्री यशस्विनी ॥८०  
ततस्तु रदती दृष्ट्वा ता सुता भृगलोचनाम् ।  
हा हा वान्नेति वेपन्तीमनिरुद्धोऽभ्यभाषत ॥८१  
धमय तेऽस्तु सुत्रोणि मा भैस्त्व हि मयि स्थिन ।  
सप्राप्तो ह्यंजालस्ते नेहारित मयत्तारणम् ॥८२

कृत्स्नोऽयं यदि वाणस्य भृत्यवर्गो यशस्विनि ।  
आगच्छति न मे चिन्ता भीरु पश्याद्य विक्रमम् ॥८३

मेरे द्वारा रुपादान न करने पर भी इस प्रकार का गहित कार्य करना वास्तव में मेरे मान सम्मान पर आघात करना है । उस पापी के साहस को तो देखो कि वह मेरे अन्त पुर में ही प्रविष्ट होगया । परन्तु जसने ऐसा साहस किया ही कैसे ? अच्छा अब तुम शीघ्र वहाँ जाकर उस दुरात्मा को मार डालो ॥७६-७७॥ हे राजन् ! राजा की आज्ञा मिलते ही वे मनिक् तुरन्त ही शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर अनिरुद्ध को मारने के लिये अन्त पुर की ओर वेग से चल पड़े ॥७८॥ उनके हाथों में स्थित शस्त्रास्त्र अत्यन्त तीक्ष्ण थे और वे सभी सैनिक अत्यन्त विकराल देह वाले थे ॥ ७९ ॥ जब उपा ने उस सेना को अपनी ओर आती हुई देखा तो वह भय विह्वल नेशों से अधुगात् करने लगी ॥ ८० ॥ उस बाणासुर पुत्री को हा का त कह कर रुदन करती और काँपती हुई देख कर अनिरुद्ध ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—हे सुश्राणि ! मेरे यहाँ स्थित रहते हुए तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए । क्योंकि यह समय भय का नहीं, ह्य मनाने का है ॥८१ ८२॥ यदि बाणासुर अपनी सम्पूर्ण सेना को मुझ से युद्ध करने के लिय भेज दे तो भी मुझे कुछ चिन्ता नहीं होगी, अब तुम मेरे वल-विक्रम को देखो ॥ ८३ ॥

तस्य सैन्यस्य तिनद श्रुत्वाऽभ्यागच्छतस्तत ।  
सहस्रत्रोत्थित श्रीमान्प्राद्युम्नि त्रिमिति ब्रुवन ॥८४  
अथ सोऽश्रयत बल नानाप्रहरणोद्यतम् ।  
स्थित समततस्तत्र परिवार्य गहू महत् ॥८५  
ततोऽभ्यगच्छत्वरितो यत्र तद्द्वेषित बलम् ।  
क्रुद्ध स्ववलमास्थाय अदशदृशनच्छदम् ॥८६  
ततो योढु मपोढाना वाणैयाना निशम्य तु ।  
सा चित्रतोष्याऽस्मरत नारद देवदर्शनम् ॥८७  
ततो निमेषमात्रेण सप्राप्तो मुनिपुङ्गव ।  
स्मृतोऽथ चित्रलेखाया पुर शोणितसाह्वयम् ॥८८

आविध्य परिघं घोर तेषा मध्ये व्यतिष्ठत ।

सूर्यो दिवि चग्न्मध्ये मेघानामिव सर्वशः ॥६६

जय उन्होने भीषण गजना करती हुई उस सेना को अपनी ओर आते हुए देखा तो जैसे अफुस मारने से हाथी तेजी से बढ़ना है, वैसे ही अत्यन्त वेग से उस सेना पर टूट पड़े ॥६१॥ अनिरुद्ध को क्रोधपूर्वक दौंते में ओंछ चत्राते और भवन से उतर कर अपनी ओर आते देख कर दानवी सेना घबरा कर भागने लगी ॥६२॥ उती समय अन्नपुर के द्वार पर स्थित अर्बल को ग्रहण करके अनिरुद्ध ने उस सेना पर प्रहार किया ॥६३॥ सब के दंष्ट्र भी बाण, मूसल, गदा, खड्ग, शक्ति और शूनादि से अनिरुद्ध को बीजने लगे । ६४॥ अस्त्र विद्या के जाना के दानव वार अनेरुद्ध पर सब ओर से शास्त्रास्त्रों की वर्षा कर रहे थे और अनिरुद्ध भी उनसे विरलिन न होकर अपने हाथ में उस भयानक परिघ को लिये हुए ही भेद के समान गजों हुए उस सेना के बीच विचरण कर रहे थे ॥ ६५-६६ ॥

अयुध्यत महावीर्यैर्दानवै सह सयुगे ।

तेषामेव च जग्राह परिघास्तोमरानपि ॥६७

तैरेव च तदा युद्धे ताञ्जघान महाबलः ।

पुनः परिघमुत्सृज्य प्रगृह्य रणमूर्धनि ॥६८

स तेन विचरन्मार्गानिक शक्नु निवर्हण ।

भ्रान्तमुद्भ्रातमाविद्धमाप्युत विप्लुनप्लुनम् ॥६९

इति प्रकारान्द्वार्षिणश्चिचरन्नाभ्यदृश्यत ।

एक सहस्रशरत्राय ददृशू रणमूर्धनि ॥१००

कोडन्त बह्वया युद्धे व्यादिनास्यमिमान्नहम् ।

सन्तस्तेनामित्तनप्या रधिरीषपरिप्लुना ॥१०१

पुनर्भग्ना प्राद्रवन्त यत्र वाणो व्यवस्थितः ।

गजवाजिरथोर्ध्वन्ते चोद्यमाना ममन्तत ॥१०२

सृत्वा चातंस्वरं घोर दिगो जग्मूर्त्तोजहाः ।

एकं वस्योरि नरा तेऽन्योन्यं भवपीडिताः ॥१०३



वाणासुर के साथ अनिरुद्ध का युद्ध ]

वमन्त शोणित जग्मुर्विषादाद्विमुखा रणे ।

न यभूव पुरा देवैर्युध्यता तादृशं भयम् ॥१०४

फिर उन दैत्यों के हाथ से ही शस्त्रास्त्रों को छीन कर उन्हीं से उनको मार गिराते थे । फिर परिघ लेकर उन्होंने भ्रान्त, उद्भ्रान्त, अविद्ध, आप्लुत, विप्लुत और सुप्त आदि बत्तीस प्रकार के पतरे बदल-बदल कर युद्ध किया, जिससे वे एक के हजारों अनिरुद्ध प्रतीत होने लगे ॥१५७-१००॥ उस समय दैत्य सेना अत्यन्त सत्रस्त और रुधिर में स्नान करती हुई अनिरुद्ध को काल के समान समझ कर रणभूमि से भाग पड़ी । उन सब के मुख से रक्त बह रहा था । हाथी, घोड़े, रथ, और पदल सभी ऐनिक व्याकुलता से चीत्कार करते हुए भागे जा रहे थे । इस युद्ध में दैत्यों को जैसा भय प्रतीत हुआ, वैसा तो देवासुर सग्राम में भी नहीं हुआ था ॥ १०१-१०४ ।

यादृश युध्यमानानामनिरुद्धेन सयुगे ।

केचिद्वमन्तो रुधिर ह्यपतन्वमुघातले ॥१०५

दानवा गिरिशृङ्गाभा गदाशूलासिपाणय ।

ते बाणमुत्सृज्य रणे जग्मुर्भयसमाकुला ॥१०६

विशालमावाशतल दानवा निर्जितास्तदा ।

नि शेषमग्ना महती दृष्ट्वा ता वाहिनी तदा ॥१

बाण क्रोधात्प्रज्वाल समिद्धोऽग्निरिवाध्वरे ।

अन्तरिक्षचरो भूत्वा साधुवादी समन्तत ॥१०८

नारदो नृत्यति प्रीतो ह्यनिरुद्धस्य सयुगे ।

एतस्मिन्नन्तरे चैव बाण परमकोपन ॥१०९

कुम्भाण्डसगृहीत तु रथमास्थाय वीर्यवान् ।

ययौ यत्रानिरुद्धो व उद्यतासी रथे स्थित ॥११०

पट्टिशासिगदाशूलमुद्यम्य च परश्वधान् ।

वर्षा वाहुमहस्रंण शक्रो ध्वजशतैरिव ॥१११

भागते हुए वे दैत्य भय के कारण एक दूसरे के ऊपर गिर रहे थे और उनके मुख से रक्त-वमन हो रहा था ॥१०५॥ गदा, शूल, खड्ग आदि अस्त्र-शस्त्र को फेंक कर और बाणासुर को वहीं छोड़ कर पर्वत शिखर के समान विशाल वे दैत्य आकाश मार्ग से भाग निकले । अपनी सेना का इस प्रकार पलायन देख कर बाणासुर क्रोध से अग्नि के समान रक्षा दग्गं होगया और कुम्भाण्ड द्वारा चलाये जाने वाले रथ पर चढ़ कर अनिरुद्ध की ओर चल पड़ा । आकाश में स्थित नारदजी अनिरुद्ध का युद्ध कौशल देख कर बड़े प्रसन्न हो रहे थे ॥१०६-११०॥ अपनी सहस्र भुजाओं में पट्टिश, तलवार, गदा, शूल, परशुवध आदि शस्त्रास्त्रों को धारण किये हुए वह बाणासुर इन्द्र के समान शोभा पाने लगा ॥१११॥

सोऽभिभूय रणे बाणमास्थितो यदुनन्दन ।  
 मिहप्रमुखतो दृष्ट्वा गजमेक यथा वने ॥११२  
 ततो बाण स बाणौघमर्मभेदिभिराशुगैः ।  
 विध्याद्य निशितैस्तीक्ष्णं प्राद्युम्निमपराजितम् ॥११३  
 समाहतस्ततो बाणै खड्गचर्मधरोऽवतत् ।  
 तमापतन्त निशिनैरभ्यघ्नन्मायकैस्तथा ॥११४  
 सोऽतिविद्धो महाबाहुर्बाणं सन्ततपर्वभिः ।  
 प्रोद्येनाभिजज्वाल चिकीर्षुः कर्म द्रुक्करम् ॥११५  
 रुधिरोधप्लुतेर्गात्रैर्बाणवर्षे समाहताः ।  
 अभिभूतः सुमक्रुद्धो ययो बाणरथं प्रति ॥११६  
 असिभिर्मुसलै शूतै पट्टिर्वास्तोमरैस्तथा ।  
 सोऽतिविद्ध शरीर्घोरच प्राद्युम्निर्न व्यसम्पत ॥११७  
 आप्लुत्य सहसा क्रुद्धो रथेपा तस्य सोऽच्छिनत् ।  
 आप्लुत्यगहसा क्रुद्धो रथेपा तस्य सोऽच्छिनत् ।  
 जघान चाश्वान्घृद्धेन बाणस्य रणमूर्धनि ॥११८  
 त पुन शरवर्षेण पट्टिर्वास्तोमरै रपि ।  
 चरारान्तरित बाणो मुद्धमार्गविगारः ॥११९  
 हतोऽयमिति विज्ञाय प्राणदन्नेश्वंता गणाः ।  
 ततोऽप्यप्लुत्य मरुगा रथपार्ये ध्वजस्वित ॥१२०

तब हाथी को देख कर सिंह के खड़े होने के समान अनिरुद्ध भी बाणासुर को आया देख कर उसके सामने जा खड़े हुए ॥११२॥ यह देख कर बाणासुर ने उन पर बाणों की वर्षा की और तलवार ग्रहण कर अपनी ओर वेग से आते हुए अनिरुद्ध को उमने भीधना आरंभ किया ॥११३-११४॥ इससे अनिरुद्ध रक्त में नहा गये और बाणासुर को मार देने की इच्छा से उसकी ओर वेग से झपटे ॥११५-११६॥ यह देख कर उसने मूसल, शूल, पट्टिश और तोमर आदि से उन पर प्रहार किये, परन्तु अनिरुद्ध उससे भी विचलित न हुए ॥ ११७ ॥ फिर उन्होंने सहसा क्रोधपूर्वक उछल कर अपनी तलवार से उसके रथ की डोर काट कर घोड़ों को भी मार गिराया ॥११८॥ तब युद्ध कुशल बाणासुर ने तोमर, पट्टिश और बाणादि की वर्षा से उन्हें ढक दिया ॥११९॥ इस प्रकार बाणों की वर्षा से आच्छादित हुए अनिरुद्ध को मर गया समझ कर बाणासुर अपनी सेना के सहित सिंहनाद करने लगा, उसी समय अनिरुद्ध सहसा उसके रथ के पास जा पहुँचे ॥ १२० ॥

शक्तिं बाणस्ततः क्रुद्धो घोररूपा भयानकाम् ।  
जग्राह ज्वलिता घोरा घण्टामाकुला रणे ॥१२१  
ज्वलनादित्यसकाशा यमदण्डोद्गदर्शनाम् ।  
प्राहिणोत्तामसङ्गेन महोल्का ज्वलितामिव ॥१२२  
तामापनन्ती सप्रक्षय जीवितान्तकरी तदा ।  
सोऽभिलुप्त्य तदा शक्तिं जग्राह पुरुषोत्तम ॥१२३  
निर्विभेद ततो बाण तथा शक्त्या महाबल ।  
सा भित्त्वा तस्य देह वै प्राविशद्वरणीतलम् ॥१२४  
स गाढविद्धो व्यथितो ध्वज्याष्टि समाश्रित ।  
ततो मूर्च्छाभिभूत त कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत् ॥१२५  
उपेक्षसे दानवेन्द्र किमव शत्रुमुच्यते ।  
लब्धलक्षो ह्यय वीरो निर्विकारोऽद्य दृश्यते ॥१२६  
मायामाश्रित्य युध्यस्व नाय वद्योऽयथा भवेत् ।  
आत्मान मा च रक्षस्व प्रमादात्किमुपेक्षसे ॥१२७

वेष्टितो बहुधा तस्य देह पन्नगराशिभि ।  
 स तु वेष्टितसर्वाङ्गो वद्ध प्राद्युम्निराहवे ।  
 निष्प्रयत्न कृतस्तस्थौ मनाक इव पर्वत ।  
 ज्वालावलीढवदनै सर्पभोगैर्विचेष्टित ॥१३६

यह सुन कर दैत्यराज बाणासुर ने अत्यन्त क्रोधित होकर कुम्भाण्ड को कठोरता से इस प्रकार उत्तर दिया ॥१२६॥ हे सारथे ! मैं उसे मारने का उपाय अभी किये देता हूँ जैसे गरुड सर्प को निगल जाता है वैसे ही मैं इसे अपने उदर में रख लूँगा ॥१३०॥ यह कह कर वह दैत्य अपने रथ, अश्व, ध्वज और सारथी के सहित अदृश्य होगया ॥१३१॥ उस समय अपने शत्रु को अदृश्य रह कर बाणघर्षा करते देख कर अनिरुद्ध ने सब ओर दृष्टि घुमाई, परन्तु वह उन्हे दिखाई न दिया । तभी दैत्यराज ने सर्पमय तीक्ष्ण बाणों की भीषण वर्षा की, जिनसे अनिरुद्ध ढक गये और उनके शरीर को वे विषधर सप सब ओर से जकडने लगे । उस समय अनिरुद्ध ब्रेबस होकर पर्वत के समान निश्चल भाव से खड़े रहे ॥ १३२ १३६ ॥

अभित पर्वताकार प्राद्युम्निरभवद्रणे ।  
 निष्प्रयत्नगतिश्चापि सर्ववद्वलमयै शरै ॥१३७  
 न विध्यय स भूतात्मा सर्वत परिवेष्टित ।  
 ततस्त वाग्भिरग्राभि सरब्ध समतर्जयत् ॥१३८  
 बाणो ध्वज समाश्रित्य प्रोवाचामपितो वच ।  
 कुम्भाण्ड वध्यता शीघ्रमय वै कुलपासन ॥१३९  
 चारित्र्येन मे लोके दूषित दूषितात्मना ।  
 इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत् ॥१४०  
 राजन्वक्ष्याम्यह किञ्चित्त्नमे शृणु यदिच्छसि ।  
 अय विज्ञायता कस्य कुतो वाऽयमिहागत ॥१४१  
 केन वाऽयमिहानीत शक्तुल्यपराक्रम ।  
 मयाय बहुशो राजन्दष्टो युध्यन्महारणे ॥१४२

क्रीडन्निव च युद्धेषु दृश्यते देवसूनुवत् ।  
 बलवान्मत्त्वसंपन्नः सर्वशास्त्रविशारदः ॥१४३  
 नायं वधकृतं दोषमर्हते दैत्यसत्तम ।  
 गान्धर्वेण विवाहेन कन्येयं तव संगता ॥१४४  
 अदेया ह्यप्रतिग्राह्या अतश्चिन्त्य वधं कुरु ।  
 विज्ञाय च वध वाऽस्य पूजा वाऽस्य करिष्यसि ॥१४५

यद्यपि अनिरुद्ध हिल भी नहीं सकते थे, फिर भी उनका मन स्थिर रहा । उसी समय बाणासुर ने ध्वज दण्ड को पकड़ कर अत्यन्त क्रोध पूर्वक कहा— हे कुम्भाण्ड ! इस कुलागार को तुरन्त ही मार डालो । क्योंकि इसने मेरे कुल को दूषित किया है । यह सुन कर कुम्भाण्ड ने बाणासुर से कहा— हे महाराज ! यदि आप उचित समझें तो मेरा एक निवेदन सुनें । प्रथम यह जानना आवश्यक है कि यह युवक कौन है और कहाँ से आया है ? ॥१३७-१४१॥ इसे यहाँ कौन लिवा कर लाया ? हे राजन् ! मैंने इन्द्र के समान अत्यन्त पराक्रमी इस युवक को भीषण युद्ध करते हुए देख कर इसे अत्यन्त बली, पराक्रमी, साहसी और युद्ध कौशल में चतुर पाया है ॥१४२-१४३॥ इसलिये हे दैत्येन्द्र ! इसको मारना उचित नहीं होगा, क्योंकि मेरा अनुमान है कि इसने आपकी कन्या के साथ गाधर्व विवाह अवश्य कर लिया होगा ॥१४४॥ इस समय कन्या का त्याग अथवा उसे घर में रहने देना—यह दोनों ही कार्य विचारणीय होगये हैं । इसलिये पहिले इस विषय में भले प्रकार विचार करिये और फिर मारने योग्य हो तो मारिये और पूजन-योग्य हो तो पूजन कीजिये ॥१४५॥

उचितं यदि ते राजन्ज्ञेयो वीर्यवलान्वितः ।  
 कन्या चेय न चान्यस्य निर्यात्येतेन सङ्गता ॥१४६  
 यदि चेष्टतमः कश्चिदयं वंशे महात्मनाम् ।  
 ततः पूजामयं वीरः प्राप्स्यते चासुरोत्तम ॥१४७  
 रक्षयतामिति चौक्त्वैव तथाऽस्त्विति च तस्थिवान् ।  
 एवमुक्ते तु वचने कुम्भाण्डेन महात्मना ॥१४८  
 तथेत्याह च कुम्भाण्डं वाणः शलुनिपदनः ।

सरक्षणस्ततो दत्त्वा अनिरुद्धस्य धीमत ॥१४६  
 ययौ स्वमेव भवन बले पुत्रो महायशा ।  
 सयत मायया दृष्ट्वा अनिरुद्ध महाबलम् ॥१५०  
 ऋषीणा नारद श्रेष्ठोऽत्रजद्द्वारवती प्रति ।  
 ततो ह्याकाशमार्गेण मुनिद्वारवती गत ॥१५१

इसलिये यह वीर्य-बल सम्पन्न युवक कौन है, इसका जानना आवश्यक है, क्योंकि यदि आपकी कन्या इससे सगति को प्राप्त हो चुकी है तो उसे किसी अन्य वर को देना भी आपके लिये अनुचित ही होगा ॥१४६॥ इसलिये, यदि यह युवक किसी श्रेष्ठ वंश का हो तो इसके पूजन करने में भी क्या हानि हो सकती है ? ॥१४७॥ इस प्रकार मेरे मत में तो इसे मारने से तो बचना ही अधिक श्रेयस्करो है । कुम्भाण्ड के वचन सुन कर बाणासुर सहमत होगया और अनिरुद्ध को रक्षकों की देख रेख में छोड़ कर स्वयं अपने घर जा पहुँचा । देवर्षि नारद ने अनिरुद्ध को इस प्रकार मायापाश में बँधा देख कर भगवान् श्रीकृष्ण को समाचार देने के लिये द्वारका को प्रस्थान किया ॥१४८-१५१॥

## ॥ श्रीकृष्ण का शोणितपुर को प्रस्थान ॥

ततोऽनिरुद्धस्य गृहे रुरुदु सर्वयोपित ।  
 प्रिय नाथमपश्यन्त्य कुरर्य इव सङ्घश ॥१  
 अहो धिक्किमिद नाथ नाथे कृष्णे व्यवस्थिते ।  
 अनाथा इव सत्रस्ता रुदिमो भयपीडिता ॥२  
 यस्येन्द्रप्रमुखा देवा सादित्या समरद्गणा ।  
 बाहूच्छायामुपाश्रित्य वसन्ति दिवि देवता ॥३  
 तस्योत्पन्नमिद लोके भयदस्य महाभयम् ।  
 नस्यानिरुद्ध पीतस्तु वीर केनापि नो हृत ॥४  
 अहो नास्ति भय नून तस्य लोके सुदुर्मते ।  
 वासुदेवस्य य क्रोधमुत्पादयति दुसहम् ॥५  
 व्यादितास्यस्य यो मत्पोर्दंष्ट्राग्रे परिवर्तते ।  
 स वासुदेव समरे मोहादम्बुदियाद्रिषु ॥६

इदमेवंविधं कृत्वा विप्रियं यदुपुंगवे ।

कथं जीवन्विमुच्येत साक्षादपि शचीपतिः ॥७

हृतनाथाः स्म शोच्याः स्म वय नाथं विना कृताः ।

विप्रयोगेन नाथस्य कृतान्तवशगाः कृताः ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! द्वारका स्थित अनिरुद्ध भवन में अनिरुद्ध को न देख कर उनकी सब स्त्रियाँ कुररी के समान चीत्कार करने लगी ॥१॥ उन्होने कहा—अहो, महाप्रभु श्रीकृष्ण के विद्यमान रहते भी हम अबलाओं को भय के कारण इस प्रकार रोना पड़ रहा है ॥२॥ जिनके भुज-बल के आश्रय में आदित्यगण, मरुद्गण तथा इन्द्रादि सभी देवता निर्भय होकर स्वर्ग में रहते हैं और जिनके दण्ड-भय से तीनों लोकों के जीव सदा शक्ति रहते हैं, आज उन्हीं जगन्नाथ श्रीकृष्ण के समक्ष भी भय उपस्थित होगया है, जो कोई उनके परम वीर पौत्र का हरण करके ले गया है ॥३-४॥ जिस दुरात्मा ने भगवान् श्रीकृष्ण की क्रोधाग्नि को इस प्रकार प्रज्ज्वलित किया है, जान पड़ता है कि उस वृद्धिहीन को कोई डर नहीं लगा है ॥५॥ यदि यह बात न होती तो वह मुख खोले खड़ी हुई मृत्यु के दाँतो का घास क्यों बनता और भगवान् से क्यों शत्रुता करता ? ॥६॥ जब कि भगवान् श्रीकृष्ण का अप्रिय करके इन्द्र भी सुखी नहीं रह सकते, तब वह उनके इस अप्रिय कार्य को करके कैसे सुखी रह सकता है ? ॥७॥ कुछ भी हो, आज तो उसने हमारे प्रियतम से वियोग करा के हमारी यह शोचनीय दशा कर दी और हमे मृत्यु के निकट पहुँचा दिया है ॥८॥

इत्येवं ता वदन्त्यश्च रुदन्त्यश्च पुन पुनः ।

नेत्रजं वारि मुमुचुरशिव परमाङ्गनाः ॥९

तासां वाष्पाम्बुपूर्णानि नयनानि चकाशिरे ।

सलिलेनाप्लुतानीव पङ्कजानि जलागमे ॥१०

तासां मरालपक्ष्माणि राजयन्ति शुभानि च ।

रुधिरैणाप्लुतानीव नयनानि चकाशिरे ॥११

तासां हर्म्यतलस्थानां रुदन्तीनां महास्वनः ।

दूररीणामिवाकाशे रुदन्तीना सहस्रश ॥१२

त श्रुत्वा निनद घोरमपूर्वं भयमागतम् ।  
उत्पेतुः सहसा स्वेभ्यो गृहेभ्यः पुरुषपर्वाभा ॥१३  
कस्मादेपोऽनिरुद्धस्य श्रूयते सुमहास्वनः ।  
गृहे कृष्णाभिगुप्ताना कुतो नो भयमागतम् ॥१४  
इत्येवमू चुस्नेऽन्योन्य स्नेहविकलवगद्गदाः ।  
अर्धापिता यथा सिंहा गुहाभ्य इव नि सृता ॥१५  
सन्नाहभेगी कृष्णस्य आहता महती तदा ।  
यस्याः शब्देन ते सर्वे समागम्य च धिष्ठिताः ॥१६

इस प्रकार प्रलाप युक्त रुदन बरती हुई वे स्त्रियाँ अमंगल सूचक आँसुओं को बरसाने लगी ॥६॥ उनके जल भरे नयन वर्षाकाल के जल सिंचित कमल जैसे प्रतीत हो रहे थे ॥१०॥ उन नयनों को रुदन के कारण लाल हुए देख कर ऐसा लगने लगा जैसे उनमें रक्त भर आया हो ॥११॥ उन सहस्रो स्त्रियों का कुररी के समान रुदन सुन कर सभी यादव व्याकुल होकर अपने अपने घरों से निकल कर परस्पर बोले कि अनिरुद्ध के घर से इस प्रकार की आर्त्ता प्रकार क्यों आ रही है ? ॥१२-१३॥ भगवान् श्रीकृष्ण की छत्र छाया में हम सब अपने को सुरक्षित समझते हुए आनन्दपूर्वक रहते हैं परन्तु इस रुदन को सुन कर हम भी भयभीत हो उठे हैं ॥ १४ ॥ यह कहते हुए वे समस्त यादव धीर क्रुद्ध सिंह के समान अपने-अपने घरों से बाहर आये ॥१५॥ तभी भगवान् श्रीकृष्ण की सभा में सन्नाह भेरी बज उठी, जिसके शब्द को सुन कर सब एकत्रित हुए यादवगण वहाँ जा पहुँचे ॥१६॥

किमेदिति तेऽन्योन्य समपृच्छन्त यादवा ।  
अन्योन्यस्य हि ते सर्वे यथावृत्तमवेदयन् १.१७  
ततस्ते वाष्पपूर्णाक्षाः क्रोधसरक्तलोचना ।  
नि श्वसतो व्यतिष्ठन्त यादवा युद्धदुर्मतः ॥१८  
सूष्णीभूतेषु सर्वेषु विप्रशुर्वाक्यमब्रवीत् ।  
कृष्णं प्रहरतां श्रेष्ठं नि श्वसन्त मुहुर्महं ॥१९



किमिद चिन्तयाविष्ट पुरुषेन्द भवानिह ।  
 तव बाहुबलप्राणमाश्रिता सर्वयादवा ॥२०॥  
 भवन्तमाश्रिता कृष्ण सविभक्ताश्च सर्वश ।  
 तथैव बलवाञ्छकस्त्वद्यथावेश्य जयाजयी ॥२१॥  
 सुख स्वपिनि नि शङ्क कथ त्व चिन्तयाऽन्वित ।  
 शोकसागरमक्षोभ्य सर्वे ते ज्ञातयो गता ॥२२॥

परस्पर सभी यह प्रश्न कर रहे थे कि क्या घटना घटी है ? तभी घीरे-घीरे उनको अनिच्छ के अदृश्य होने का वृत्तांत मालुम हुआ ॥१७॥ उस समय क्रोध से सब के मुख ताम्रवर्ण के होगये और नेत्रों में आंसू भर गये तथा दीर्घ श्वास छोड़ते हुए वे सभी यादव वहाँ किबर्त्तव्य विमूढ जैसे खड़े होगये । १८॥ इस प्रकार सब के निस्तब्ध भाव से खड़े हो जाने पर दीर्घ नि श्वास का त्याग करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण से विप्रश्नु कहने लगा—हे पुरुषेन्द्र ! आप चिन्ता से व्याकुल होकर चारम्बार दीर्घ श्वास क्यों छोड़ते हैं ? हम सभी आपने भुज-बल के आश्रय में रह कर भय-रहित जीवन बिता रहे हैं ॥१९॥ २०॥ देवराज इंद्र ने भी अपनी विजय और पराजय का भार आपको सौंपा हुआ है, तब आपका इस प्रकार चिन्तित होना ही यादवों को शोक सागर में डालने का एक मात्र कारण है ॥ २१-२२ ॥

तान्मज्जमानानेकस्त्व समुद्धर महाभुज ।  
 किमेव चिन्तयाविष्टो न किञ्चिदपि भापसे ॥२३॥  
 चिन्ता कर्तुं वृथा देव न त्वमर्हसि माधव ।  
 इत्येवमुक्त कृष्णस्तु निश्वस्य सुचिर बहु ॥२४॥  
 प्राह वाक्य स वाक्यज्ञो बृहस्पतिरिव स्वयम् ।  
 विप्रथो चिन्तयाविष्टो ह्यतत्कार्यमचिन्तयम् ॥२५॥  
 विचिन्तयस्त्वह चास्य कार्यस्य न लभे गतिम् ।  
 तथाऽह भवताप्युक्तो नीत्तर विदधे क्वचित् ॥२६॥  
 दाशार्हगणमध्येऽह वदाम्यर्थवती गिरम् ।  
 शृणुष्व यादवा सर्वे यथा चिन्तान्वितो ह्यहम् ॥२७॥

अनिरुद्धे हृते वीरे पृथिव्यां सर्वपाथिवा ।

अशक्ता इति मंस्यन्ते सर्वानस्मान्स्ववान्धवान् ॥२८

आहुकश्च नो राजा हृतः शात्वेन वै पुग ।

प्रत्यानीतः स चास्माभिर्युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ॥२९

अब आप ही उनका उद्धार करने में समर्थ हैं, फिर भी आप मौनावलम्बी सोकर बैठे हैं । हे विभो ! इस आपत्तिकाल में आपका इस अवस्था में बैठे रहना उचित प्रतीत नहीं होता । विपृथु के ऐसे वचन सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अत्यन्त गभीरता पूर्वक बहा—हे विपृथो ! अब तक मैं इसी पर विचार कर रहा था कि हमारा इस विषय में क्या कर्त्तव्य है ? इसीलिये मैं आप को कोई उत्तर नहीं दे सका था ॥ २३-२६ ॥ इस समय यहाँ लगभग सभी यादव वीर उदसियत हैं, मैं उनके सामने एक रहस्य की बात कहता हूँ, उन पर ध्यान दीजिये । अनिरुद्ध का अपहरण होने से पृथिवी भर के राजागण हमें बलहीन तथा अकर्मण्य समझ बैठेंगे ॥२७-२८॥ पहिले एक बार हमारे राजा आहुक का शात्व ने अपहरण किया था, तब हम उसे भयकर युद्ध करके उससे छीन लाये थे ॥२९॥

प्रद्युम्नचापि नो बाल शम्बरेण हृतो ह्यभूत् ।

स त निहत्य समरे प्राप्तो रुक्मिणिनन्दनः ॥३०

इदं तु सुमहत्कष्टं प्राद्युम्नि क्व प्रवासितः ।

नैत्रिधमहं दोषं न स्मरे मनुजर्षभा ॥३१

भस्मना गुण्ठितः पादो येन मे मूर्धनि पातितः ।

तस्याहं सानुबन्धस्य हरिष्ये जीवित रणे ॥३२

इत्येवमुक्ते कृष्णेन सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् ।

चारा. कृष्ण प्रणीयन्तामनिरुद्धस्य मार्गणे ।

सपर्वतवनोद्देशा मार्गन्तु वसुधामिमाम् ॥३३

आहुकं प्राह कृष्णस्तु स्मितं कृत्वा वचस्तदा ।

आभ्यन्तराश्च बाह्याश्च व्यादिश्यन्ता चरा नृप ॥३४

केशवस्य वच. श्रुत्वा आहुकस्त्वरितोऽब्रवीत् ।

अन्वेषणेऽनिरुद्धस्य स चारान्दिष्टवास्तददा ॥३५

ततश्चारास्तु व्यादिष्टः पार्थिवेन यशस्विना ।  
 ह्या रथाश्च व्यादिष्टाः पार्थिवेन महात्मना ।  
 अभ्यन्तरं च मार्गध्वं बाह्यतश्च समन्ततः ॥३६  
 वेणुमन्तं लताविष्टं तथा रैवतकं गिरिम् ॥  
 ऋक्षवन्तं गिरिं चैव मार्गध्वं त्वरिता हयैः ॥३७  
 एकैकं तत्र चोद्यानं मार्गध्वं काननानि च ।  
 यातव्यं चापि निःशङ्कमुद्यानानि समन्ततः ॥३८  
 हयानां च सहस्राणि रथानां चाप्यनेकशः ।  
 आरुह्य त्वरिताः सर्वे मार्गध्वं यदुनन्दनम् ॥३९

शिशुकाल में प्रद्युम्न वा भी शम्बरासुर द्वारा अपहरण हुआ था, परन्तु प्रद्युम्न ने ही उस असुर का वध कर दिया और स्वयं द्वारका लौट आये थे ॥३०॥ परन्तु इस समय तो यही समझ में नहीं आता कि अनिरुद्ध को कौन यहाँ से उठा ले गया ? ऐसी दुःखदायिनी घटना की मैंने कभी भी कल्पना नहीं की थी ॥३१॥ जिसने मेरे शिर पर अपने धूल धूसरित पाँव को रखने की चेष्टा की है, मैं उसका समूल नाश कर डालूँगा ॥३२॥ भगवान् कृष्ण के वचन सुन कर सात्यकि ने कहा—अनिरुद्ध की खोज के लिये दूतों को भेजिये, जो कि पर्वत और वन आदि से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी पर जाकर उन्हे ढूँढ़े ॥३३॥ सात्यकि के सञ्ज्ञाव पर मुमवाते हुए श्रीवृष्ण ने आहुक से कहा—हे राजन् ! अनिरुद्ध की खोज के लिये अब आप अविलम्ब दूतों को भेजिये, जो बाहरी और गुप्तरौति से भी उनकी खोज करें ॥३५-३६॥ तथा अश्वारोही दूत रैवतक और ऋक्षवान् आदि पर्वतों और वन आदि स्थानों पर जाकर अपने कार्य में जुट जाय ॥३७॥ इस प्रकार सब दून शका-रहित मन से सभी उद्यानों, मार्गों, वनों आदि में जा-जाकर खोज करें । हे वीरो ! तुम सहस्रो रथों और घोड़ों पर चढ़ कर इस कार्य के लिये तुरन्त ही चल पडो ॥३८-३९॥

सेनापतिरनाघृष्टिरिदं वचनमब्रवीत् ।

कृष्णमविलष्टकर्माणमच्युतं भीतभीतवत् ॥४०॥

शृणु कृष्ण वचो मह्य रोचते यदि ते प्रभो ।  
 चिरात्प्रभृति मे ववतु भवन्त जायते मति ॥४१  
 असिलोमा पुलोमा च निमुन्दनरकौ हतो ।  
 सौभ. शाल्वश्च निहतौ मै-ो द्विविद एव च ॥४२  
 हयग्रीवश्च सुमहान्सानुबन्धन्त्वया हत ।  
 तादृशे विग्रहे वृत्ते देवहेतो सुदारुणे ॥४३  
 सर्वाण्येतानि कर्माणि नि शेषा ण रणे रणे ।  
 कृतवानसि गोविन्द पाष्णिग्राहश्च नास्ति ने ॥४४  
 इद कर्म त्वया कृष्ण सानुबन्ध महत्कृतम् ।  
 पारिजातस्य हरणे यत्कृत कर्म दुष्करम् ॥४५  
 तत्र शकस्त्वया कृष्ण ऐरावतशिरोगत ।  
 निर्जितो बाहुवीर्येण त्वया युद्धविशारद ॥४६  
 तेन वैर त्वया साद्धं कर्तव्यं नाल्ल सशय ।  
 वैरानुबन्धश्च महास्तेन कार्यस्त्वया सह ॥४७  
 तन्नानिरुद्धहरण कृत मघवता स्वयम् ।  
 नह्यन्यस्य भवेच्छकिनर्वैरनिर्पतित प्रति ॥४८

इसके पश्चात् सेनाध्यक्ष अनाघृष्टि ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा—हे प्रभो ! मैं बहुत देर से एक निवेदन करना चाह रहा था, उसे कह रहा हूँ । यदि आप चाहे तो सुन कर उस पर विचार करने की कृपा करें ॥४०-४१॥ किसी एक समय आपने असिलोमा पुलोमा, निमुन्द, भौमानुर नरकामुर, मै द, द्विविद, हयग्रीव आदि को परिवार सहित मार दिया था । उन सभी युद्धो को आपने देवताओ के उपकारार्थ ही किया था और उसके कारण अब आपका कोई वंसा शत्रु शेष नहीं रहा है ॥४२-४४॥ आपके यह सब कर्म महान् थे तथा पापि जात-हरण के समय भी आपने अनेक दुष्कर कर्म किये थे ॥४५॥ उसी युद्ध में ऐरावत हाथी पर चढ़ने वाले देवराज इन्द्र को भी आपके द्वारा परास्त होना पडा था ॥४६॥ इसी-लिये मुझे शका होरही है कि अपनी पुरानी शत्रुता के प्रतिशोध स्वरूप इ द्र ने

ही अनिरुद्ध का अपहरण कर लिया है, अन्यथा आपके साथ इस प्रकार की रायुता मोल लेने वाला और कौन होगा ? ॥४७४८॥

इत्येवमुक्त्वा वचने कृष्णो नाग इव श्वसन् ।  
 उवाच वचनं धीमाननार्घ्यं महाबलम् ॥४९  
 सेनानीस्तात मा मैव न देवाः क्षुद्रकर्मिणः ।  
 नाकृतज्ञा न च क्लीवा नावलिप्ता न बालिशाः ॥५०  
 देवतार्थं च मे यत्नो महान्दानवसंक्षये ।  
 तेषां प्रियार्थं च रणे हन्मि दृप्तान्महाबलान् ॥५१  
 तत्परस्तन्मनाश्वास्मि तद्भूक्तस्तत्प्रिये रतः ।  
 कथं पारं करिष्यन्ति त्रिजायैवंविधं हि माम् ॥५२  
 अक्षुद्राः सत्यवन्तरच नित्यं भक्तानुरुग्मिनः ।  
 तेभ्यो न विद्यते पापं बालिशत्वात्प्रभापसे ॥५३  
 कदाचिद्दिह पुंश्चल्या अनिरुद्धो हृतो भवेत् ।  
 देवेषु समहेन्द्रेषु नैतत्कर्मविधीयते ॥५४

अनार्घ्यं की बाल गुन कर श्रीकृष्ण ने कहा—यह कथन उचित नहीं है । देवगण ऐसी निम्न प्रकृति के नहीं होते और न उनके द्वारा ऐसी अकृतज्ञता, पुरुषार्थ हीनता, और मूर्खता ही हो सकती है ॥ ४९ ५० ॥ मैं उन्हीं के हितार्थं दानवी को मारने के लिये सदैव तैयार रहना हूँ और उन्हीं की प्रसन्नता के लिये युद्ध में बड़े-बड़े अहंकारियों को नष्ट कर डलता हूँ ॥५१॥ इस प्रकार मैं देवताओं का भक्त एव देव-परायण हूँ, इस दशा में यह संभव नहीं है कि देवगण मेरे जैसे हितैशी का अहित करने लगे ॥५२॥ वे क्षुद्र नहीं हैं बल्कि सत्यवक्ता और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं । उनके मन में कभी पार नहीं रहता । उनकी महिमा का ज्ञान न होने से ही तुम्हारी ऐसी घारणा हुई है । ५३॥ मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्य किसी पुंश्चली स्त्री का होगा, इन्द्रादि देवता ऐसा कार्य कभी नहीं कर सकते ॥५४॥

एवं विन्तयमानस्य कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ।

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ततोऽक्रूरोऽन्नवीद्वचः ॥५५

मधुर श्लक्ष्णया वाचा अर्थवाक्प्रविशारद ।  
यच्छक्रुम्य प्रभो काय तदस्माक विनिश्चितम् ॥५६  
अस्माक चापि यत्कार्यं तद्धि कार्यं शचीपते ।  
सरदयाश्च वय देवैरस्माभिश्चापि देवता ।  
देवतार्थं वय चापि मानुषत्वमुपागता । ५७  
एवमक्रूरवचनं श्रुत्वा दितो मदुमूदन ।  
स्निग्धगम्भीरया वाचा पुन कृष्णोऽभ्यभाषत ॥५८  
नाय देवैर्न मन्धर्वैर्न यक्षैर्न च राक्षसै ।  
प्रद्युम्नपुत्रोपहृत पुश्चल्या नु महायशा ॥५९  
मायाविदग्धा पुश्चल्यो दैत्यदानवयोपित ।  
ताभिर्हंतो न सदेहो नान्यतो विद्यते भयम् ॥६०  
इत्येवमुक्ते वचने कृष्णेन तु महात्मना ।  
अथावगम्य तत्त्वेन यद्भूत यद्गुण्डले ॥६१  
हर्षयन्स तु सर्वेषां सूत्रमागधवन्दिनाम् ।  
मधुर श्रूयते घोषो माधवस्य निवेशने ॥६२

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अदभुत बर्ष वाले ऋषयान् श्रीकृष्ण के वचन सुन कर अक्रूर बोले—हे भगवन् ! त्रैलोक्येश्वर इन्द्र के कार्य का हमें भले प्रकार जान है तथा वे भी हमारे धर्मों को जानते हैं । वे हमारे रक्षक हैं और उनके तथा देवताओं के कार्यों की सिद्धि के लिये ही हमने मन्थ्य देह धारण किया है ॥५५ ५७। अक्रूर के वचन सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने गभीरता पूर्वक कहा—यह कार्य किसी देव गधर्व यक्ष अथवा राक्षस का नहीं हो सकता । मैं समझता हूँ कि किसी पुश्चली स्त्री ने ही अनिरुद्ध का हरण किया है ॥ ५८ ॥ दैत्यों और दानवों की स्त्रियाँ माया के जानने वाली होती हैं, इसलिये यह कार्य उनके अतिरिक्त अन्य किसी का नहीं हो सकता ॥६०॥ वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के वचनों से सभी को यथार्थ बात का ज्ञान होगया और तब श्रीकृष्ण की प्रशंसा में सूत, मागध, वन्दीजन आदि मधुर स्तारों में स्तुति करने लगे और उन समूह में कोलाहल होने लगा ॥६१ ६२॥

ते चारा सर्वैः सर्वे सभाद्वारमुपागता ।  
 शनैर्गद्गदया वाचा इदं वचनमब्रुवन् ॥६३॥  
 उद्यानानि गुहा शैला सभानद्य सन्ति च ।  
 एकैकं शनशो राजमार्गितं न च दृश्यते ॥६४॥  
 अन्ये ऋणचरा राजनुनागस्य तदाऽब्रुवन् ।  
 सर्वे नो विदिता देशा प्राद्यम्निर्न च दृश्यते ॥६५॥  
 यदन्यत्स विधातव्यं विधानं यदुनन्दन ।  
 तदाज्ञापय न क्षिप्रमनिरुद्धस्य मार्गणे ॥६६॥  
 ततस्ते दीनमनसं सर्वं वाष्पाकुलेक्षणा ।  
 अन्योन्यमभ्यभाषन्त किमतं कार्यमुत्तरम् ॥६७॥  
 सदष्टौष्ठपुटा केचित्केचिद्वाष्पाकुलेक्षणा ।  
 केचिद्भृकुटिनास्त्राय चिन्तयन्त्यर्थसिद्धये ॥६८॥  
 एव चिन्तयन्ता तेषां बह्वर्थमभिमापितम् ।  
 अनिरुद्धं कुतश्चेति सध्रमं सुमहानभूत् ॥६९॥  
 अन्योन्यमभिबीक्षन्ते यद्वा जातमन्यत्र ।  
 ता निशा विमनस्कास्ते गमयेयुः कथंचन ।  
 अनिरुद्धो हतश्चेति पुनः पुनररिदम् ॥७०॥

इसी समय अनिरुद्ध की खोज में गये हुए इत लोभ कर आगये और उन्होंने सभा के द्वार पर सडे होकर कहा—हे महाराज ! उद्यान, गुहा, पर्वत, सभा, नदी, सरोवर आदि सब स्थानों में हमने सौ-सौ बार खोज लिया, परन्तु अनिरुद्ध की वही भाँ नहीं पा सके ॥ ६४ ॥ हे उदुनन्दन ! अब हमारे लिये और कोई आज्ञा हो तो कहिये । यह कह कर द्रुत चुप सडे होकर एक-दूसरे की देसते हुए सोचने लगे कि अब क्या होता है ? ॥६५-६७॥ उनमें से कुछ के नेत्र जल से परिपूर्ण हो रहे थे, कुछ दौड़ों से ओष्ठ भींच रहे थे और कुछ भृकुटियों को चढ़ाये बांध में तत्पर प्रतीत हो रहे थे ॥६८॥ फिर सभी लोग परस्पर सोचने लगे कि अनिरुद्ध कहाँ गये । इस प्रकार से एक-दूसरे-मा होने लग गया ॥६९॥ उपर सब यादव परस्पर एक-दूसरे का मुख देसते हुए अपना वर्तव्य निश्चय नहीं कर

पा रहे थे । इस प्रकार वह दुःखमयी रात्रि अत्यन्त कठिनता से व्यतीत हुई और सभी के मुख से हमारे अनिरुद्ध को कौन ले गया ? यही शब्द बारम्बार निकल रहे थे ॥ ७० ॥

एवं च ब्रुवतां तेषा प्रभाता रजनी तदा ।  
 ततस्तूर्यनिनादैश्च शङ्खानां च महास्वनैः ।  
 प्रबोधनं महावाहोः कृष्णस्याक्रियतालये ॥७१  
 ततः प्रभाते विमले प्रादुर्भूते दिवाकरे ।  
 प्रविवेश सभामेको नारदः प्रहसन्निव ॥७२  
 द्वष्टा तु यादवान्सर्वान्कृष्णेन सह संगतान् ।  
 ततः स जयशब्देन भाधव प्रत्यपूजयत् ॥७३  
 अथाभ्युत्थाय विमनाः कृष्णः समितिर्जुयः ।  
 मधुपर्कं च गा चैव नारदाय ददौ प्रभुः ॥७४  
 सोपविश्यासने शुभ्रे सर्वास्तरणसवृतं ।  
 सुखासीनो ययान्यायमुवाचेद वचोऽर्थवत् ॥७५  
 किमेवं चिन्तयाविष्टा निःसङ्गा गतमानसा ।  
 उत्साहहीना सर्वे व क्लीवा इव समासते ॥७६

प्रातःकाल होने पर भगवान् कृष्ण के जागने की सूचना स्वरूप तुरही और शंखादि वाद्य बज उठे । श्रीकृष्ण अपनी शय्या को त्याग कर उठ बैठे ॥७१॥ फिर भगवान् सूर्य उदित हुए और सभी यादव सभा भवन में आकर एकत्रित होगये । इसी समय देवर्षि नारद भी वहाँ आ गये ॥७२॥ उन्होंने भगवान् का जय-जयकार किया और उग्रसेन आदि सभी यादवों ने उनका अभिनन्दन तथा भगवान् कृष्ण ने अर्घ्य-गोदानादि से सत्कार किया ॥७३-७४॥ तब वे श्रेष्ठ एवं शुभ आसन पर विराजमान होकर बहने लगे ॥७५॥ नारदजी बोले—आज आप सभी इस प्रकार वायरो की भाँति निरस्ताह होकर क्यों बैठे हुए हैं ? ॥७६॥

इत्येवमुक्त्वा वचने नारदेन महात्मना ।  
 वामुदेयोऽग्रवीढ्यायं श्रूयतां भगवन्निदम् ॥७७



अनिरुद्धो हृतो ब्रह्मन्केनापि निशि सुव्रत ।  
 तस्यार्थे सर्व एवास्मि चिन्तयाविष्टचेतसः ॥७८  
 एष ते यदि वृत्तान्तं श्रुतो दृष्टोऽपि वा मुने ।  
 भगवन्कथ्यतां साधु प्रियमेतन्ममानघ ॥७९  
 इत्येवमुक्ते वचने केशवेन महात्मना ।  
 प्रहस्यैतद्वचः प्राह श्रूयतां मधुसूदन ॥८०  
 निवृत्तं सुमहद्युद्धं देवासुरसमं महत् ।  
 अनिरुद्धस्य चक्रस्य बाणस्यापि महामृधे ॥८१  
 उषा नाम सुता तस्य बाणस्याप्रतिमौजसः ।  
 तस्यार्थे चित्रलेखा वै जहाराशु तमप्सरा ॥८२  
 उभयोरपि तत्रासीन्महायुद्ध सुदारुणम् ।  
 प्राद्यम्निबाणयोः सख्ये बलिवासवयोरिव ॥८३

नारदजी की बात सुन कर श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—हे भगवन् ! इस व्याकुलता का कारण यह है कि रात्रिकाल में यहाँ से अनिरुद्ध को कोई उठा ले गया है, इसलिये उसका पता न लग सकने के कारण ही हम इस प्रकार उद्विग्न हो रहे हैं ॥७७-७८॥ यदि आपने इस विषय में कुछ देखा या सुना हो अथवा किसी और प्रकार से आसकी जानकारी हो तो कृपः करके हमें बनाइये ॥ ७९ ॥ भगवान् कृष्ण की बात सुन कर नारदजी ने कुछ मुमकाते हुए कहा—हे यदुनन्दन ! इस विषय में जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे सुनिये ॥८०॥ आपके अनिरुद्ध का बाणासुर के साथ देवासुर-संग्राम जैसा भीषण समर मचा हुआ है ॥८१॥ उस बाणासुर की उषा नाम की एक सुन्दरी कन्या है, उसी के लिये चित्रलेखा नाम की अप्सरा ने अनिरुद्ध का हरण किया है । इसलिये अनिरुद्ध और बाणासुर में बलि और इन्द्र के समान घोर युद्ध उपस्थित होगया ॥८२-८३॥

अस्माभिरचापि तद्युद्धं दृष्टं भुमहदद्भुतम् ।  
 अनिरुद्धो भयात्तेन संयुगेष्वनिवर्तिना ॥८४  
 दशैव न मायामास्थाय बद्धो नागैर्महाबलः ।  
 व्यादिष्टस्तु वधस्तस्य बाणेन गरुडध्वज ॥८५

त निवारितवान्मन्त्री कुम्भाण्डो नाम तरय ह ।  
 कुमारस्यानिरुद्धस्य तेनासक्तेन सयुगे ॥८६  
 वाणेन मायामास्थाय सर्पेनियमन कृतम् ।  
 उत्तिष्ठतु भवाञ्छीघ्र यशसे विजयाय च ॥८७  
 नाय सरक्षितु काल प्राणास्तात जयैषिणाम् ।  
 प्राणं किञ्चिद्गतैर्वीरो धैर्यमालम्ब्य तिष्ठति ॥८८

हे मधुसूदन ! यह दृश्य मीने खूब देखा है कि दैत्यराज वाणासुर उन्हें परास्त करने में असमर्थ रहा, तब उसने मायामय युद्ध के द्वारा उन्हें नागपाश में बाँध कर बध करने की आज्ञा दी, परन्तु उसके मन्त्री कुम्भाण्ड ने उनका मारा जाना स्थगित करा दिया है । वह बालक अभी भी नागपाश के बधन में है । बाप यश और विजय की प्राप्ति के लिये अब शीघ्र तैयार हो जाइये ॥८६ ८७॥ विजय की कामना वाले वीरो के लिये यह समय कटिबद्ध होने का है । जब प्राण सकट में दिखाई दे तब वीरो को धैर्य धारण करना ही उचित है ॥८८॥

इत्येवमुक्ते वचने वासुदेव प्रतापवान् ।  
 प्रायानिकान्वै स भारानाज्ञापयत वीर्यवान् ॥८९  
 ततश्चन्दनपूर्णेश्च लाजैश्चैव समन्तत ।  
 निर्ययो स महाबाहु कीर्यमाणो जनार्दन ॥९०  
 आस्थितो गरुड देवस्तस्य चानु हलायुग ।  
 पृष्ठतोऽनु बलस्यापि प्रद्युम्न शत्रुकर्षण ॥९१  
 जय वाण महाबाहो ये चास्यानुगता रणे ।  
 न हि ते प्रमुखे स्थानु कश्चिच्छत्रो महामृधे ॥९२  
 प्रसादे ते ध्रुवा लक्ष्मीर्विजयश्च पराक्रमे ।  
 विजेप्यसि रणे शत्रु दैत्येन्द्र सहस्रनिकम् ॥९३  
 सिद्धचारणस घाना महर्षिणा च सर्वश ।  
 शुभ्रन्वाचोऽतरिक्षे वै द्रव्यो केशवो रणे ॥९४

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! नारद की बात पूरी होते ही भगवान् श्रीकृष्ण ने तुरन्त ही युद्ध सामग्री एकत्र करने की आज्ञा दी और युद्ध के लिये चन्न दिये ॥८६॥ उनके चन्नते समय सब ओर से सुगन्ध, चन्दन और धान आदि की उन पर वर्षा होने लगी ॥८७॥ उस समय बलराम और प्रद्युम्न को साथ लेकर भगवान् श्रीकृष्ण गहड़ की पीठ पर आरूढ़ हुए तभी आकाश में स्थित सिद्ध, चाग्रण और महर्षिगण उनसे बोले—हे कृष्ण ! आप शीघ्र ही दैत्यराज बाणासुर को उसके अनुचरों सहित मार डालिये, क्योंकि युद्ध में देवराज इन्द्र भी आपका सामना करने में समर्थ नहीं हैं। इस सग्राम में भी आप अवश्य विजयी होंगे। आपके द्वारा सेना सहित दानवराज बाणासुर का सहार होना निश्चित है। इस प्रकार आकाशवाणी को सुनते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्ध के लिये प्रस्थान किया ॥८१-८४॥

## ॥ कृष्णजी का अग्नि के साथ युद्ध ॥

ततस्तूर्यनिनादेन शंखाना च महास्वनैः ।  
 वन्दिमागधसूताना स्तवैश्चापि सहस्रशः ॥१  
 स तून्मुखैर्जयाशीभिः स्तूयमानो हि मानवैः ।  
 वभार रूपं सोमार्कशक्राणा प्रतिमा तदा ॥२  
 अतीव शुशुभे रूप व्योम्नि तस्योत्पतिस्यतः ।  
 वैनतेयस्य भद्र ते वृ हित हरितेजसा ॥३  
 अथाष्टवाहु कृष्णस्तु पर्वताकारस निभः ।  
 विवभौ पुण्डरीवाक्षो विक्राङ्गन्याणस क्षयम् ॥४  
 अतिचक्रगदावाणा दक्षिणं पार्श्वमास्थिता ।  
 वमं शान्तं तथा चाप शंखं चैवास्य वामतः ॥५  
 शीर्षाणा वै सहस्रं तु विहितं शान्तं धन्वना ।  
 सहस्रं चैव कायाना वहंस कर्णस्तदा ॥६  
 श्वेतप्रहरणोऽधृष्यः कलास इव शृङ्गवान् ।  
 प्रस्थितो गरुडेनाय उद्यन्निव दिवाकरः ॥७

वंशम्पायनजी ने कहा—ह राजन् ! सब ओर से तुरही की ध्वनि, शल-नाद और सूत, मागध तथा वदीजन का स्तुति पाठ प्रारम्भ होगया और भगवान् श्रीकृष्ण उस समय सूर्य, चन्द्र और इन्द्र के समान शोभायमान होने लगे ॥१-२॥ भगवान् के ही तज स सम्पन्न तथा उड़ने के लिये तत्पर हुए गरुड की शोभा भी विशेष थी ॥३॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण का देह पर्वत के समान विकराल होगया और आठ भुजाएँ प्रकट होगई, इस प्रकार वे बाणासुर को मारने के कार्य में तत्पर हुए ॥ ४ ॥ उनकी दाहिनी भुजाओं में तलवार, चक्र, गदा और बाण तथा बाईं भुजाओं में ढाल, घनुप, शल आदि स्थित थे ॥ ५ ॥ उसी समय उनके सहस्र मस्तक होगये तथा बनरामजी ने सहस्र देह धारण किये ॥६॥ उनके हाथों में जो तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र थे, उनसे वे ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे शिखरों के सहित साक्षात् कैलास पर्वत पर सूर्योदय हो रहा हो ॥७॥

सनत्कुमारस्य वपु प्रादुरासीन्महात्मनः ।  
 प्रद्युम्नस्य महाबाहो स ग्रामे विक्रमिष्यत ॥८  
 स पक्षवलविक्षेपैर्विद्युन्वन्पर्वतान्वहून् ।  
 जगाम मार्गं बलवान्वातस्थ प्रतिपेद्यन् ॥९  
 अथ वायोरतिगतिमास्थाय गरुडस्तदा ।  
 सिद्धचारणसङ्घाना शुभ मार्गमवातरत् ॥१०  
 अथ रामोऽब्रवीद्वाक्यं कृष्णमप्रतिमं रणे ।  
 स्वाभिं प्रभाभिर्हीनां स्म कृष्णं कस्मादपूर्ववत् ॥११  
 सर्वे कनकवर्णाभा स वृत्ता स्म न स शय ।  
 किमिदं ब्रुहि नस्तत्त्वं किं मेरो पाश्वर्गा वयम् ॥१२  
 मन्ये वाणस्य नगरमभ्यासस्थमरिदम ।  
 रक्षार्थं तस्य निर्यातो वह्निरेष स्थितो ज्वलन् ॥१३  
 अग्नेराहवनीयस्य प्रभया स्म समाहताः ।  
 तेन नो वर्णवैरूप्यमिदं जातं हलायुधं ॥१४  
 यदि स्म सन्निकर्षस्था यदि निष्प्रमता गता ।  
 तद्विघत्स्व स्वयं बुद्ध्या यदज्ञानन्तरं हितम् ॥१५

कुरुष्व वनतेषु त्व यच्च कार्यमनन्तरम् ।

त्वया विधाने विहिते करिष्याम्यहमुत्तमम् ॥१६

युद्ध क्षेत्र में अपना पराक्रम दिखाने वाले प्रद्युम्न की शोभा भी सन्तुमार जैसी होरही थी ॥ ८ ॥ पक्षिराज गरुड समस्त आकाशमार्ग को रोक कर चलने लगे, जिनके पखों से निकलने वाली वायु के कारण अनेक पर्वत काँप रहे थे ॥ ९ ॥ वायु वेग से चलते हुए गरुड ने सिद्धों और चारणों के मार्ग को शीघ्र ही पार कर लिया ॥ १० ॥ तभी बलरामजी ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! इस समय हमारी प्रभा कसे फीकी होरही है, पहिले तो ऐसा कभी न हुआ था ॥११॥ अब हम मव स्वर्ण जैसे वर्ण के होगये प्रतीत होते है, इसका क्या कारण है ? क्या हम सुमेरु पर्वत के निवट पडुंच गये हैं ? ॥१२॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—मुझे ऐसा लगता है कि हम बाणासुर के नगर के समीप आगये हैं, जिसकी रक्षा के लिये यह अग्नि प्रज्ज्वलिन है तथा उसी आहवनीय अग्नि की प्रभा से हमारी देह-कान्ति स्वर्ण के समान होगई है ॥१३॥ तब बलरामजी बोले—हे कृष्ण ! यदि बाणासुर की नगरी के समीप आने से ही हमारी प्रभा नष्ट होगई है, तो हमें अपने कर्त्तव्य को अब भले प्रकार सोच लेना उचित है ॥१४॥ तब श्रीकृष्ण ने गरुड से कहा—हे गरुड ! अब हमें क्या करना चाहिये पहिले तुम्ही इस पर अपने विचार प्रकट करो इसके बाद ही हम कोई निर्णय लेंगे ॥१६॥

एतच्छ्रुत्वा तु गरुडो वासुदेवस्य भाषितम् ।

चक्रे मुखसहस्रं हि कामरूपी महाबल ॥१७

गङ्गामुपागमत्तूष्णं वनतेषु महाबल ।

आप्लुत्याकाशगङ्गायामपीय सलिल बहु ॥१८

प्रववर्षोपरि गतो वनतेषु प्रतापवान् ।

तेनाग्निं शमयामास बुद्धिमान्विनतात्मज ॥१९

अग्निराहवनीयस्तु ततः शातिमुपागमत् ।

त दृष्ट्वाऽऽहवनीयं तु शान्तमाकाशगङ्गाया ॥२०

परमविस्मयं गत्वा सुपर्णो वाक्यमब्रवीत् ।

अहो वीयमथाग्नेस्तु यो दहेद्युगसंक्षये ॥२१

त्रयस्त्रयाणां लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः ।

कृष्णः स कर्षणश्चैव प्रद्युम्नश्च महाबलः ॥२२

ततः प्रशान्ते दहने स प्रतस्थे स पक्षिराट् ।

स्वपक्षवलविक्षेप कुर्वन्घोर महास्वनम् ॥२३

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुन कर गरुड ने भी सहस्र मुख धारण कर लिये ॥१७॥ फिर उन्होंने आकाशगंगा के तट पर जाकर उसका जल पान किया और उस जल को वही से बाणनगरी पर बरसाया । उनके इस कार्य से आहवनीय अग्नि शान्त होगया । इस प्रकार अग्नि को शान्त हुआ देख कर स्वयं गरुड भी विस्मित होगये और बोले—देखो, अग्नि जितने व्यापक प्रभाव वाला है कि वह प्रलयकाल में सम्पूर्ण विश्व को ही भस्म कर डालता है । इसी के प्रभाव से भगवान् की देह-कान्ति में भी परिवर्तन हो गया । मेरे विचार में तीनों लोकों में तीन अग्नियाँ ही सब कर्म करने में समर्थ हैं । इस प्रकार अग्नि के शान्त होने पर कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न को पीठ पर बैठा कर गरुड चल पड़े, उस समय उनके पंखों के चलने से भयकर ध्वनि निकल रही थी ॥१८ २३॥

तान्हृष्टा विस्मयं तत्र रुद्रस्यानुचराम्भय ।

आस्थिता गरुड ह्येते नानारूपा भयावहाः ॥२४

किमर्थमिह स प्राप्ता के वापीमे जनास्त्रयः ।

निश्चयं नाधिगच्छन्ति ते गिरिव्रजवह्नय ॥२५

प्रावर्तयश्च सग्रामे तैस्त्रिभिः सह यादवै ।

तेषां युद्धप्रसवतानां स नाद सुमहानभूत् ॥२६

त च श्रुत्वा महानाद सिंहानामिव गर्जन्ताम् ।

अथाङ्गिरा स्वपुण्य प्रेषयामास बुद्धिमान् ॥२७

यत्नं तद्वर्तते युद्धं तत्र गच्छस्व मा चिरम् ।

दृष्ट्वा तत्सर्वमागच्छ इत्युक्तः प्रहितस्त्वरन् ॥२८

अथवाद् हरकर के अनुचर अग्निपों से जैसे ही गरुड को देखा जैसे ही

सोचने लगे कि यह गहड़ पर चढ़े हुए अनेक रूप वाले और भयानक कौन हैं ? इनका आगमन किस लिये हुआ है ? ऐसा विचार करते हुए भी वे कुछ स्थिर नहीं कर पाये ॥२४-२५॥ फिर उन अग्नियो ने इन कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न के साथ सद्राम छेड़ दिया, तब वहाँ घोर कोलाहल होने लगा ॥२६॥ उस भयकर शब्द को सुन कर बाणासुर ने एक दूत बुला कर उसे आज्ञा दी कि हे दूत ! तुम युद्ध क्षेत्र में जाकर वहाँ के ठीक समाचार लेकर शीघ्र आओ ॥२७-२८॥

तथेत्युक्त्वा स तद्युद्ध वर्तमानमवक्षत ।  
 अग्नीना वासुदेवेन ससक्ताना महामृधे ॥२९  
 ते जातदेवसः सर्वे कल्मापः कुसुमस्तथा ।  
 दहनः शोपणश्चैव तपनश्च महाबलः ॥३०  
 स्वाहाकारस्य विषये प्रख्याताः पञ्च बह्वयः ।  
 अथापरे महाभागाः स्वर्नीकैर्व्यवस्थिताः ॥३१  
 पिठरः पतगः स्वर्णः श्वागाधो भ्राज एव च ।  
 स्वधाकाराश्रयाः पञ्च अयुध्यस्तेऽपि चाग्नयः ॥३२  
 ज्योतिष्टोमविभागी च वषट्काराश्रयी पुनः ।  
 द्वावग्नी संप्रयुध्येते महात्मानौ महाद्युती ॥३३  
 आग्नेयं रथमास्थाय शरमुद्यम्य भास्वरम् ।  
 तयोर्मध्येऽङ्गिराश्चैव महर्षिविवर्धो रणे ॥३४

बाणासुर की आज्ञा सुनते ही दूत ने वहाँ आकर इन तीनों के साथ अग्निगणों का भयकर युद्ध होता हुआ देखा, उस समय स्वाहा युक्त आहुतियों को ग्रहण करने में समर्थ कल्माप, कुसुम, दहन, शोपण और तपन नामक पाँच और स्वधा ग्रहण करने वाले पिठर, पतग, स्वर्ण, श्वागाध और भ्राज नामक पाँच—इस प्रकार यह दस अग्निगण अपनी-अपनी सेनाओं के सहित घोर सद्राम बंद रहे थे ॥३०-३२॥ उनके साथ वषट्कार के आश्रय में रहने वाला अग्नि और ज्योतिष्टोम का विभाग करने वाला अग्नि—यह दोनों भी युद्ध करने में तत्पर हैं ॥३३॥ उन दोनों अग्नियों के बीच में अग्निमय रथ पर चढ़े हुए महर्षि अगिरा अपने हाथ में त्रिशूल लिये हुए रणक्षेत्र में उपस्थित हैं ॥३४॥

स्थितमङ्गिरस दृष्ट्वा विमुञ्चन्त शिताञ्छरान्  
 कृष्ण प्रोवाच स क्रुद्ध स्मयन्निव पुन पुन ॥३३  
 तिष्ठन्वमग्नय सर्वे एष वो विदधे भयम् ।  
 ममास्त्रतेजसा दग्धा दिशो यास्यथ त्रिद्रुता ।  
 अथाङ्गिरास्त्रिशूलेन दीप्तेन समघावत ॥३६  
 आददान इव क्रोधात्कृष्णप्राणान्महामृधे ।  
 त्रिशूल तस्य दीप्त तु चिच्छेद परमेष्ठिनि ॥  
 अर्धचन्द्रस्तथा तीक्ष्णैर्यमान्तकनिभोपमै ॥३७  
 स्थूणाकर्णेन प्राणेन दीप्तेन स महामना ।  
 त्रिव्याघ्रान्तकतुल्येन वक्षस्यङ्गिरस तत ॥३८  
 रुद्रिरोघप्लतैर्गर्लै रङ्गिरा विह्वलन्निव ।  
 विष्टब्धगत्य सहसा पपात धरणीतले ॥३९  
 शोपास्ततीक्ष्णय सर्वे चत्वारी ब्रह्मण सुता ।  
 आघावन्तस्तदा शीघ्र वाणम्य पुरमन्तिकात् ॥४०

उहे तीक्ष्ण वाणों की वर्षा करते हुए देख कर श्रीकृष्ण बोले—हे अग्नियो ! मैं अभी तुम्हारे नाश का उपग्रह करता हूँ तब तुम मेरे शस्त्रों से भस्म होते हुए भागोगे । यह सुन कर महर्षि अगिरा एक प्रज्वलित त्रिशूल तान कर श्रीकृष्ण की ओर झपटे ॥३५-३६॥ उस समय उनको मृत्यु के समान अपनी ओर आता देख कर श्रीकृष्ण ने घम, सूय और अग्नि की प्रभा से तीक्ष्ण हुए बर्द-चन्द्राकार बाण से उनके त्रिशूल को माग में ही काट दिया ॥३७॥ तदंतर उन्होने अपने धनुष पर स्थूलानण नामक तेजोमय धारा चढ़ा कर अगिरा के हृदय को वीध डाला ॥३८॥ इससे महर्षि अगिरा रक्त में भीग कर विह्वल होते हुए भूमि पर जा गिरे ॥३९॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी के पुत्र हुए सभी अग्नि युद्ध क्षेत्र को छोड़ कर शोणितपुर की ओर भाग गये ॥४०॥

॥ श्रीकृष्ण ज्वर युद्ध ॥

अथागमत्तन कृष्णो यत्र वाणपुर तत ।  
 अथ वाणपुर दृष्ट्वा दूरात्प्रोवाच नारद ॥११



एतत्तच्छोणितपुरं कृष्ण पश्य महाभुज ।  
 अथ रुद्रो महातेजा रुद्राण्यां सहितोऽवसत् ॥२  
 गुहश्च बाणगुप्त्यर्थं सतत क्षेमकारणात् ।  
 नारदस्य वचः श्रुत्वा कृष्णस्त्वदमथाब्रवीत् ॥३  
 क्षणं चिन्तयतामत्र श्रूयता च महामुने ।  
 यदि वाऽवतरेद्रुद्रो बाणसंरक्षणं प्रति ॥४  
 शकिततो वयमप्यत्र सह योत्स्याम तेन वै ।  
 एवं विवदतोऽनत्र कृष्णनारदयोस्तदा ॥५  
 प्राप्ता निमेषमात्रेण शीघ्रगा गरुडेन ते ।  
 ततः शंखं समाधाय वदने पुष्करेक्षणः । ६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर भगवान् श्रीकृष्ण भी अग्रे बढ़ते हुए शोणितपुर के पास जा पहुँचे । उस पुर को देखते ही नारदजी ने उन्हें बताया—हे महाबाहो ! यही वह शोणितपुर है, जहाँ बाणामुर का मगल करने के लिये पार्वतीजी और स्वामिकार्तिकेय के सहित साक्षात् भगवान् शंकर निवास करते हैं । यह सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे महामुने ! यदि रुद्रदेव स्वयं युद्ध क्षेत्र में आकर बाणामुर की रक्षा करेंगे तो मुझे भी उनके साथ युद्ध करना पड़ेगा । इस प्रकार श्रीकृष्ण और नारद के मध्य वार्तालाप हो ही रहा था, कि इतने में ही शोणितपुर आगया और वहाँ उन्होंने अपने पाचजन्य शंख की ध्वनि की ॥ १-६ ॥

वायुवेगसमुद्भूतो मेघश्चन्द्रमिवोद्गिरन् ।  
 ततः प्रध्माप्य त शंखं भयमुत्पाद्य वीर्यवान् ॥७  
 प्रविवेश पुरं कृष्णो बाणस्याद्भुतकर्मणः ।  
 ततः शंखप्रणादेश्च भेरीणा च महास्वनैः ॥८  
 बाणानीकानि सहसा स नह्यन्त्र समन्ततः ।  
 ततः किकरसंन्य तु व्यादिष्टं समरे भयात् ॥९  
 कोटिशश्चापि बहुशो दीप्तप्रहरणास्तदा ।  
 तदसह्येयमेकस्थं महाभ्रवनसंनिभम् ॥१०

नीलाञ्जनत्रयप्रद्वयमप्रमेयमथाक्षयम् ।  
 दीप्तप्रहरणा. सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ॥११  
 प्रमाथगणमुत्प्याश्च अयुष्यन्कृष्णमव्ययम् ।  
 सर्वतस्तैः प्रक्षीप्तास्यै साचिष्पद्भिरिवाग्निभिः ॥१२  
 अभ्युपेत्य तदात्युग्रैर्यै क्षराक्षसकिन्नरैः ।  
 पीयते रुधिरं तेषां चतुर्णामपि संयुगे ॥१३

उस समय शत्रु के मुख पर पहुँचने से मेघो मे से चन्द्रोदय होने जैसी शोभा हुई । इस प्रकार शखनाद से भय की सूचना देते हुए श्रीकृष्ण शोणितपुर में घुस गये । तभी उम शंख ध्वनि को सुन कर भेगी बजाती हुई बाण-सेना युद्ध के लिये सुगज्जित होने लगी और युद्ध की आज्ञा मिलते ही तीक्ष्ण हथियारों के सहित चलने लगी । हे राजन् ! उस असह्य सेना को देख कर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे आकाश में मेघों के समूह ही छा गये हो । ७ १० । नीलगिरि के समान नीली पोशाकी वाले वे असह्य दैत्य, दानव और राक्षस अनेक प्रकार के तेज युवन शस्त्रास्त्रों की लेकर बढ़ रहे थे ॥११॥ इस सेना में रुद्र के प्रमथगण अधिक थे । युद्ध क्षेत्र में आते ही वह सेना भगवान् श्रीकृष्ण के माथ सप्राम में तत्पर हुई । उस समय वे अग्नि के समान प्रदीप्त मुख वाले यक्ष, राक्षस एवं दैत्यादि सब ओर से आ-आकर श्रीकृष्णादि बीगों का रक्त पान की चेष्टा में लगे ॥ १२-१३ ॥

वातोद्भूतैरिव घनैर्विप्रकीर्णैरिवाचलैः ।  
 शुशुभे तत्र बहुलैरनीकैर्हृदयन्विभिः ।  
 मुसलैरसिभिः शूलैर्गदाभिः परिवर्ततथा ॥१४  
 अबाधं तदसंख्येयं शुशुभे सर्वतो बलम् ।  
 ततः स कर्षणो देवमुवाच मधुसूदनम् ॥१५  
 कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदेतद्दृश्यते बलम् ।  
 एतैः सह रणे योद्धुमिच्छामि पुरुषोत्तम ॥१६  
 ममाप्येषं व सञ्जाता बुद्धिरित्यब्रवीच्च तम् ।  
 एभिः सह रणे योद्धुमिच्छेयं योधसतमैः ॥१७

युद्धघतः प्राङ्मुखस्थास्तु सुपर्णो वै ममाग्रतः ।  
 सव्यपार्श्वे तु प्रद्युम्नस्तथा मे दक्षिणे भवान् ।  
 रक्षितव्यमयान्योन्यमस्मिन्धोरे महामृधे ॥१८  
 एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यमधिरुढाः पगोत्तमम् ।  
 गिरिशृङ्गनिभैर्घो रंगं दामुमललाङ्गलैः ॥१९  
 युध्यतो रीहिणेयस्य रौद्र रूपमभूत्तदा ।  
 युगान्ते सर्वभूताना कालस्येव दिग्धक्षतः ॥२०  
 आकृष्य लाङ्गलाग्नेण मुसलेनावपोथयत् ।  
 चचारातिबलो रामो युद्धमार्गं विशारदः ॥२१

उस विशाल सेना को देख कर प्रतीत होता था कि वायु के धपेडों से  
 भेद्य उमड़ आये हैं या अनेक पर्वत इधर-उधर बिखर गये हैं । फिर वह सेना  
 कुनिश, पट्टिश, शूल, गदा, मूसल आदि शस्त्रास्त्रों का प्रहार करने लगी । कुछ  
 क्षण में ही वह भूमि असंख्य सैनिकों से परिपूर्ण होगई, यह देख कर बलरामजी  
 बोले—हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! मैं इस दानवी सेना से युद्ध करना चाहता हूँ  
 ॥१४-१५-१६॥ इस पर श्रीकृष्ण ने कहा—हे भगवन् ! मैं भी इन वीर सैनिकों  
 से युद्ध करने के लिये उत्सुक हूँ ॥१७॥ मैं पूर्वाभिमुख होकर लडूँगा, गरुड मेरे  
 आगे रहेगे, प्रद्युम्न बाईं ओर तथा आप दाईं ओर रहे । इस प्रकार युद्ध करते  
 हुए हम परस्पर में एक-दूसरे का बचाव भी कर सकेंगे ॥१८॥ वैशम्पायनजी ने  
 कहा—हे राजन् ! इस प्रकार स्थिर कर वे गरुड की पीठ पर आरूढ़ होगये ।  
 बलरामजी ने पर्वतशिखर के समान गदा, मूसल और लागलास्त्र ग्रहण कर अपनी  
 आकृति को विकराल बनाया और युद्ध करने लगे । उस समय वे प्रलययाग्न के  
 समान संसार को उदरस्थ करने में तत्पर प्रतीत हुए ॥१९-२०॥ वे अपने लाग-  
 लास्त्र से खीच खीच कर शत्रुओं को मारते हुए युद्ध क्षेत्र में घूम रहे थे ॥२१॥

प्रद्युम्नः शरजालैस्तान्समन्तात्पर्यं वारयत् ।  
 दानवान्पुरुषव्याघ्रो युध्यमानान्महाबलः ॥२२

स्निग्धाञ्जनचपप्रस्थं शंखचक्रगदाधरं ।  
 प्रथमाय बहुश शयमयुध्यत जनार्दनः ॥२३॥  
 पक्षप्रहारिनहता नगत्तुण्डाग्रदाग्निता ।  
 नीता वयस्त्रतपुरं वनतेयेन धीमता ॥२४॥  
 तहंन्यमान दैत्यानामनीकं भीमत्रिमम् ।  
 अभज्यत तदा मरये द्वाणवर्षसमाहृतम् ॥२५॥  
 भज्यमानेप्वनीकेषु त्रातुकाम समभ्ययात् ।  
 ज्वरद्विशिरा पङ्क्तुजो नवलोचन ॥२६॥  
 भस्मप्रहरणो रौद्र कालान्तकयमोपमः ।  
 नदन्मेघसहस्रेण तुल्यो निघतिनि स्वन ॥२७॥

महाबली प्रद्युम्न भी अपने भीषण बाणों को बरसा कर दानवों का संहार कर रहे थे ॥२२॥ स्निग्ध अञ्जन के समान प्रथम वर्ण वाले भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने शय का घोष करते हुए युद्ध कर रहे थे ॥२३॥ गहड़ भी अपने पत्नों, मखों और चोच की मार से अपरुह दैत्यों को नष्ट कर रहे थे ॥२४॥ इस प्रकार वह महापराक्रमी दैत्य-मेना अत्यन्त अस्त होकर युद्ध क्षेत्र से पलायन करने लगी ॥२५॥ उसी समय दैत्य सैनिकों के रक्षार्थ काल के समान भयानक तीन पैर तीन सिर, छ हथ और नौ नेत्र वाला ज्वर वहाँ आगया । उसके हाथों में भस्मास्त्र था और वह मेघ के समान गर्जनशील कठ स्वर से गर्जना कर रहा था ॥ २६-२७ ॥

नि श्वसञ्जम्भमाणश्च निद्राऽन्विततनुभृशम् ।  
 नेत्राभ्यामाकुल वक्त्रमुहु कुर्वन्ध्रमन्मुहु ॥२८॥  
 स हृष्टरोमा ग्लानाक्षो भग्नचित्त इव श्वसत् ।  
 हलायुधमभिक्रुद्ध साक्षेपमिदमब्रवीत् ॥२९॥  
 किमेव बल मत्तोऽसि न मा पश्यसि स युगे ।  
 तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्मोक्ष्यसे रणमूर्धनि ॥३०॥  
 भस्म तदा क्षिप्त ज्वरेणाप्रतिभीजसा ।  
 शौघ्रचाद्दक्षो निपतितं शरीरे पर्वतोपमे ॥३१॥

तद्भस्म वक्षसस्तस्य मेरो शिखरमागतम् ।  
 प्रदीप्त पतित तत्र गिरिशृङ्ग व्यदारयत् ॥३२  
 शोषेण चापि जज्वाल भस्मना कृष्णपूर्वज ।  
 निश्रमञ्जृम्भमाणश्च निन्द्रान्विततनुर्भृशम् । ३३

वह बारम्बार दीर्घ श्वास लेता और जम्हाई ले-लेकर मुख खोलता था । उसका देह निद्रित व्यवृत्त जैसा तथा नेत्र तिरछे और घूमते हुए थे ॥२८॥ उसकी रोमावलि हथित, नेत्रो म निद्रा और चित्त मे चंचलता थी । उसने क्रोध से श्वास लेते हुए क्रोध पूर्वक बलरामजी से कहा—अरे, तुम ऐसे मदमत्त क्यों हो रहे हो ? क्या तुम्हें मेरा यहाँ आना दिखाई नहीं देता ? अब तुम यहाँ जीवित नहीं बच सकोगे ॥२९-३०॥ फिर उस महाबली ज्वर ने अपने भगमास्त्र से बलरामजी के हृदय पर प्रहार किया । परंतु वह उनके हृदय मे न घुस कर पर्वत के ऊपर जा पड़ा जिसमे मेरु पर्वत के शिखर फट गये ॥३१-३२॥ उस भस्म का जो सूक्ष्म अंश उनके देह पर लगा रह गया था उसके प्रदीप्त होने से बलराम के देह मे निद्रा व्याप्त होगई और वे दीघ श्वास लेने लगे ॥३३॥

ततो हलधरो भग्न कृष्णमाह विचेतन ।  
 कृष्ण कृष्ण महाबाहो प्रदीप्तोऽस्म्यभयं कुरु ॥३४  
 दह्यामि सर्वं तस्तात कथं शान्तिर्भवेन्मम ।  
 इत्येवमुक्ते वचने बलेनामिततेजसा ॥३५  
 प्रहस्य वचनं प्राह कृष्ण प्रहरता वर ।  
 न भेतव्यमितीत्युक्त्वा परिष्वक्तो हलायुध ॥३६  
 कृष्णेन परमस्नेहात्ततो दाहात्प्रमुच्यत ।  
 मोक्षयित्वा बलं तत्र दाहात्तु मधुसूदन ॥३७  
 प्रोवाच परमक्रुद्धो वासुदेवो ज्वरं तदा ।  
 एतं हि ज्वरं युध्यस्व या ते शक्तिर्महामृधे ॥३८  
 यच्च ते पौरुषं सर्वं तद्दर्शयतु नो भवान् :  
 सव्येतराम्या वाह्युभ्यामेवमुक्तो ज्वरस्तदा ॥३९

चिक्षपेनं महद्भस्म ज्वालागर्भं महाबलः ।  
 ततः प्रदीप्यगात्रस्तु मुहुर्नमभयत्प्रभुः ॥४०  
 कृष्ण प्रहृता श्रेष्ठ शम चाग्निर्गतस्ततः ।  
 ततस्तंभुं जगाकारं वह्निमिस्तु त्रिभिस्तदा ॥४१  
 जघान कृष्ण गीवाया मुष्टिनं केन चोरसि ।  
 संप्रहारस्तुमुलम्नयो पुरुषसिंहयो ॥४२  
 ततो ज्वरं कनकविचित्रभूषणं न्यपीडयद्भूज्वलयेन संयुगे ।  
 जगत्क्षयं समुपनयञ्जत्पती शरीरधूमगगनचरं महामृधे ॥४३

इस प्रकार भस्म के प्रभाव से पीड़ित हुए बलरामजी ने श्रीकृष्ण से कहा — हे कृष्ण ! मेरा देह दग्ध हो रहा है, उसके शीतल होने का उपाय करो । यह सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण उनके देह से लिपट गये ॥३४-३५, ३६॥ उनके लिपटते ही बलरामजी का दाह शान्त होगया । फिर श्रीकृष्ण ने क्रोधित होकर ज्वर से कहा—हे ज्वर ! तू मेरी शक्ति और पुरुषार्थ है तो मुझसे युद्ध करो । भगवान् के वचन सुन कर ज्वर ने भस्मास्त्र का एक तीव्र प्रहार उन पर भी किया, जिससे उनके देह में दाह उपन होगया ॥३७-४०॥ क्षण भर में ही उनके उस ताप का निवारण होगया । फिर उसने अपनी भुजाएँ फैला कर श्रीकृष्ण के कंधे पर एक मुक्ता मारा । इस प्रकार दोनों में भीषण युद्ध होने लगा ॥४१-४२॥ तब मानव रूपधारी श्रीकृष्ण ने उम आवाश में विचरण करने वाले उम ज्वर को पकड़ कर धर दबाया ॥४३॥

॥ वैष्णव ज्वर और शिव ज्वर में युद्ध ॥

मृगमित्यभिविज्ञाय ज्वरं शत्रुनिषूदन ।  
 कृष्णो भुजबलाभ्यां तु विक्षेपाथ महीतले ॥१  
 मुक्तगालं स बाहुभ्यां कृष्णदेहं विवेश ह ।  
 अमुक्त्वा विग्रहं तस्य कृष्णस्याप्रतिमोजसं ॥२  
 स ह्याविष्टस्तथा तेन ज्वरेणाप्रतिमोजसा ।  
 कृष्णः स्वल्पनिव मुहुं क्षितीं गाढं व्यवर्त्तत ॥३

जृम्भते श्वमते चैव दल्यते च पुन पुन ।  
 रोमाञ्चोत्थितगान्धश्च निद्रया चामिभूयते ॥४  
 तत रथैय ममालम्ब्य वृष्ण परपुर जय ।  
 विकुर्वन्ति महायोगी जृम्भमाण पुन पुन ॥५  
 ज्वरामि ज्ञमात्मान रिज्ञाय पुरुषोत्तम ।  
 सोऽमृजज्वरमन्य तु पूर्णज्वरविनाशनम् ॥६  
 घोर वैष्णवमत्युग्र सर्वप्राणिभय करम्  
 ससृष्टवान्स तेजस्वी त ज्वर भीमविक्रमम् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! शत्रु नागक धीवृष्ण ने ज्वर को मरा हुआ समझ कर जैसे ही पृथिवी पर फेंगा, वैसे ही वह महदय रूप से उनके देह में घुस गया । जिससे उनके पाँव डगमगाने लगे, कभी जम्हाई आती कभी श्वास का वेग बढ़ता, कभी रोमाञ्च होता और कभी नींद आने लग जाती ॥१-४॥ तब भगवान् न समझ लिया कि मेरे देह में ज्वर घुस गया है, इसलिए सते सते करने की इच्छा से उन्होंने एक अन्य ज्वर को उत्पन्न किया ॥ ५ ६ ॥ भगवान् वृष्ण द्वारा उत्पन्न वैष्णव ज्वर जीवों के लिये घोर भयावक था ॥७॥

ज्वर वृष्णविसृष्टम्नु गृहीत्वा त ज्वर वतात् ।  
 वृष्णाय ह्ये प्रायच्छत्त जग्राह ततो ह्यि ॥८  
 ततस्त परमद्भो वासुदेवो महाबल ।  
 स्वगाम्नात्स्वरेणैव निष्प्रामयत वीर्यवान् ॥९  
 आधिष्ठ्य भूतो चैव दत्तधा त्तुं मुंशत ।  
 व्याघोपत ज्वरस्तत्र भो वरित्रातुमहंगि ॥१०  
 आविध्यमाने तस्मिंस्तु वृष्णेनामिताजरा ।  
 अशरीरा तनो यानी ह्यतस्त्रिधादनापत ॥११  
 वृष्ण वृष्ण मताग्रहो यदा नान्दधेन ।  
 मा यर्धाज्वरमेन तु रक्षणीयन्त्रयाऽप ॥१२

इत्येवमुक्ते वचने त मुगोच हरि स्वयम् ।  
भूतभव्यविष्यस्य जगत परमो गुरु ॥१३

उस ज्वर ने शंभू ज्वर को पकड़ कर श्रीकृष्ण के सामने उपस्थित किया तब श्रीकृष्ण ने उसे पृथिवी पर गिरा दिया और उसे खण्ड खण्ड करने की इच्छा करने लगे, तभी शंभू ज्वर चौत्वार करता हुआ 'मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहने लगा ॥ ८-१० ॥ तभी आकाशवाणी हुई कि हे महाबाहो ! आप इस शंभू ज्वर की रक्षा करिये ॥११-१२॥ ऐसी आकाशवाणी सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे मुक्त कर दिया ॥१३॥

॥ श्रीकृष्ण-शिव युद्ध ॥

ततस्ते त्वरिता सर्वे क्षयस्त्रय इवाग्नय ।  
वैनतेयमथारुह्य युध्यन्ते रणमूर्द्धनि ॥७  
तत्र सर्वाण्यनीकानि वाणवर्षैरवाकिन्तु ।  
अर्दयन्वेनतेयस्था नदन्तोऽतिबलाद्रणे ॥८  
चक्रलाङ्गलपातैश्च वाणवर्षैश्च पीडितम् ।  
सचुक्रोप महानीक दानवाद्या दुरासदम् ॥९  
कक्षेऽग्निरिव स वृद्ध शुष्के धनसमीरित ।  
कृष्णवाणाग्निरुद्धूतो विवृद्धि परमा गत ॥१०  
दानवाना सहस्राणि तस्मिन्समरमूर्द्धनि ।  
युगान्ताग्निरिवाचिष्मान्दहमानो व्यराजत ॥११  
भग्न बल ततो दृष्ट्वा कृष्णेनाभिनतेजसा ।  
सरवतनयन स्थाणुर्युद्धाय पर्यवर्तत ॥१२

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर बलराम कृष्ण और प्रद्युम्न— यह तीनों ही महाबली गरुड की पीठ पर चढ़ कर युद्ध कर रहे थे । उनके द्वारा की गई वाण वर्षा से सम्पूर्ण दत्य सेना आवृत्त होगई और उस सेना को नष्ट हाती हुई देख कर ध रणश्रेष्ठ भ गजन करते हुए विचरन लगे ॥१-२॥ सुदशन



चक्र लागलास्र और भीषण बाणों के प्रहार से अत्यन्त सतप्त हुई दानव सेना अत्यन्त क्रोधित हो गई ॥३॥ जैसे घास में लगा हुआ अग्नि अधिक बढ जाता है, वैसे ही श्रीकृष्ण का शस्त्र रूपी अग्नि दानव सैन्य रूपी ईंधन को प्राप्त कर अधिक प्रदीप्त हो उठी ॥४॥ उस प्रज्वालि के समान भीषण शस्त्रास्त्रों की अग्नि में पड कर हजारों दैत्य मरने लग ॥५॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण के तेज से नष्ट होती हुई दैत्य सेना की दुःशा देख कर भगवान् शककर अत्यन्त क्रोधित होकर स्वयं रण क्षेत्र में युद्ध के लिये आये ॥६॥

वाणस रक्षणं कर्तुं रयमास्थायमुप्रभम् ।  
 देव कुमारश्च तथा रथेनाग्निसमेन वै ॥७  
 सन्दीप्यरसमागुह्य रश्माम्बुधौ कौरवान् ।  
 सदष्टौष्ठपुटौ रुद्र प्राघावत यतो हरि ॥८  
 पिवन्निव नदाकाश सिंहयुक्तो महास्वन ।  
 रथो भाति घनोन्मुक्त पोणमासा यथा शशी ॥९  
 तता गणसहस्रं स्तु नानारूपमंघ्रावहै ।  
 नदद्भिर्विधान्नादनृथो देवस्य शोभयत् ॥१०  
 रुधिरार्द्रमंघ्रावक्त्रं महादृष्ट्वा वलिप्रिया ।  
 देव सपरिवार्याथ महाशत्रुप्रमदंनम् ॥११  
 लीलायमानास्तिष्ठन्नि गग्रामाभिमुत्तुन्मुग्धा ।  
 ततो दिव्य रथं दृष्ट्वा न्द्रस्याग्निनटरमणं ॥१२  
 कृष्णो गरुडमास्थाय यथो रुद्राय गयुगे ।  
 येनतेयस्थमाम्यन्तमाया तमग्रणी हृदिम् ॥१३  
 विवराद्य कृपितो वाणैर्नाराचाना घतेन स ।  
 सगरे ररदिनस्येन हरेणानिनष्टयमंणा ॥१४  
 हृदिजं श्राह कृपितो तत्र पाजंन्यमुत्तमम् ।  
 प्रचचान ततो भूमिर्विष्णुद्रप्रपीडिता ॥१५

ही कार्तिकेयजी और नन्दी भी आरूढ़ होगये । वे दाँतो से होठो को चबाते हुए पीघ्रता से श्रीकृष्ण को और बड़े ॥७-८॥ नम्र मंडल का पान करने वाले रद्र के सिंह-योजित रत्न को देख कर प्रतीत होता था कि जैसे मेघो के बीच से चन्द्रमा निकल आया है ॥९॥ रथ के सब ओर भगवान् शकर के प्रमथण घोर गर्जना करने लगे ॥१०॥ उन सब के विशाल मुख रक्त से भीग रहे थे । वे सब बड़े-बड़े दाँतो वाले और मास-त्रलि भक्षण करने वाले थे । वे भगवान् शकर के चारों ओर विविध प्रकार की क्रीडाएँ करते हुए चल रहे थे । तभी श्रीकृष्ण ने रथारूढ़ ह्रद पर भीषण घाण-वर्षा की, तब शिवजी ने भी अत्यन्त क्रोध पूर्वक एक साथ सौ बाणों से श्रीकृष्ण पर प्रहार किया । फिर उनके बाणो से आहत हुए श्रीकृष्ण ने पार्जन्य नामक अस्त्र उठा लिया, उस समय उन दोनों के युद्ध को देख कर पृथिवी काँप उठी ॥११-१५॥

## ॥ हरिहरात्मक स्तोत्र ॥

ततस्तु जृम्भमाणस्य देवस्याविलष्टकर्मणः ।  
ज्वाला प्रादुरभ्रद्वक्त्वाद्दहतोव दिशो दश ॥१॥  
ततस्तु धरणी देवी पीडयमाना महात्मभिः ।  
ब्रह्माण विश्वघातारं वेगमानाऽभ्युपागमत् ॥२॥  
देवदेव महाबाहो पीडयामि परमोजसा ।  
कृष्णरुद्रभराक्रान्ता भविष्यैकार्णवा पुनः ॥३॥  
अविपह्यामिम भार चिन्तयस्व पितामह ।  
लघ्वीभूता यथा देव धारयेयं चराचरम् ॥४॥  
ततस्तु काश्यपी देवी प्रत्वीयुवाच पितामह ।  
मुहूर्तं धारयात्मानमाशु लघ्वी भविष्यसि ॥५॥

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! तब भगवान् शकर ने जम्हाई लेने के लिये अपना मुख खोला जिससे अग्नि की लपटें निकलने लगी और उस अग्नि के प्रभाव से दसो दिशाएँ घबक उठी ॥१॥ तब उन दोनों महात्माओं के सघर्ष के कारण सताप से काँरनी हुई पृथिवी ब्रह्माजी को शरग में पहुँची ॥२॥ वहाँ

जाकर पृथिवी ने कहा—हे प्रभो ! श्रीकृष्ण और भगवान् राकर के सघर्ष से मैं अत्यन्त भयभीत हूँ क्योंकि इनके महातेज को न सह सकने के कारण मुझे पुनः समुद्र की शरण लेनी पड़ेगी ॥३॥ हे पितामह ! अब अधिक भार को सहन करने की मुझमें क्षमता नहीं है इसलिये मेरा भार इतना कम हो सके कि मैं उसे सुगमता पूर्वक धारण कर सकूँ, ऐसा प्रयत्न कीजिये ॥४॥ इस पर ब्रह्माजी ने कहा—हे धरे ! तुम क्षण भर धीरज रखो । तुम्हारा भार अभी कम हुआ जाता है ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा तु भगवान्ब्रह्मा रुद्र वचनमत्रवीत् ।  
 सृष्ट्वा महानुत्थय त्वि मय परिरक्षसे ॥६  
 न च युद्धं महाबाहो तव कृष्णेन रोचते ।  
 न च यु वसि कृष्ण त्वमात्मानं तु द्विधा कृतम् ॥७  
 तत्र शरीरयोगाद्धि भगवानव्यय प्रभु ।  
 प्रविश्य परमं ते कृत्स्नास्तीरलोकान्सचराचरान् ॥८  
 प्रविश्य योगं योगात्मा वरास्ताननुचिन्तयन् ।  
 द्वारवत्या यदुक्तं च तदनुस्मृत्य सवश ।  
 जगाद नोत्तरं त्रिचिन्निवृत्तोऽपी भवत्तस्य ॥९  
 आत्मानं कृष्णयोनिभ्यः पश्यने त्र्ययोनिकम् ।  
 ततो वि मृ य रुद्रस्तु न्यस्तवादोऽभयन्मृधे ॥१०  
 ब्रह्माणं धात्रोद्भूतो न योत्स्ये भगवन्निति ।  
 कृष्णेन सह मं ग्रामे नष्टो भवतु भद्रितो ॥११  
 ततः कृष्णाज्यं रुद्रश्च परिष्वज्य परस्परम् ।  
 परा प्रीतिमुपागम्य मं ग्रामारण्यजगत् ॥१२

ना आपके लिये असोमनीय है ॥७॥ यह सुन कर भगवान् शकर ने श्रीकृष्ण के देह में घुम कर तीनों लोको के दसन किये ॥८॥ उस समय वहाँनि योगस्थ हो-  
कर अपने जूम्भास्त्र को प्रभावहीन देता फिर द्वारका में बाणासुर की मृत्यु  
विषयक अपने घर का भी स्मरण किया, तब ब्रह्माजी को कोई उत्तर न देकर  
युद्ध का परित्याग कर दिया ॥९॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण के शरीर में स्थित ब्रह्माण्ड  
को देग कर बाहर आये और ब्रह्माजी से बोले—अब मैं श्रीकृष्ण से नहीं सझूँगा,  
अच्छा ही कि पृथिवी का भार हल्ला हो जाय ॥१०-११॥ फिर भगवान् शकर  
और श्रीकृष्ण दोनों ने ही परस्पर आलिंगन किया और युद्ध करने से निवृत्त हो-  
गये ॥ १२ ॥

### श्रीकृष्ण-बाणासुर युद्ध ॥

प्रमाथगणभूयिष्ठे सैन्ये दीर्णे महासुर ।  
निर्जंगाम ततो वाणोयुद्धायाभिमुखस्त्वरन् ॥१  
भीमप्रहरणैर्घो रैर्दैत्येन्द्रै सुमहारथै ।  
महाबलैर्महावीरैर्वज्जीव सुरसत्तमै ॥२  
पूगेहिता शत्रुवध वदन्तस्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धा ।  
जपैश्च मन्त्रैश्च तथोपवीभिर्महात्मन स्वस्त्ययन प्रचक्रु ॥३  
ततस्तूर्यप्रणादैश्च भेरीणा तु महास्वनै ।  
सिंहनादैश्च दैत्याना बाण वृष्णमभिद्रवत् ॥४  
दृष्ट्वा बाण तु निर्घात युद्धायैव व्यवस्थितम् ।  
आरुह्य गरड वृष्णो बाणायाभिमुखो ययौ ॥५

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! प्रमाथगणों के सहित सम्पूर्ण दानवी  
सेना के भाग जाने पर बाणासुर शीघ्रता पूवक युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हुआ ॥१॥  
महाबली दैत्यगण भीषण शस्त्रास्त्रों को धारण कर अपने-अपने वाहनों के द्वारा  
दैत्यराज के साथ चले ॥२॥ उस समय बाणासुर के पुराहितों ने शत्रु नाश का  
आशीर्वाद देकर उसकी रक्षा के लिये जप, मन्त्र और औषधादि उपचारों का

प्रयोग किया ॥३॥ फिर तुरही-भेरी आदि बाजे बज छे और वीरगण गर्जना करने लगे । उसी समय बाणासुर श्रीकृष्ण को देख कर वेग से उनकी ओर बढ़ा ॥४॥ श्रीकृष्ण भी उसे अपनी ओर आते देख कर गरुड पर चढ़ कर उसकी ओर लपके ॥ ५ ॥

तस्य शाङ्गं विनिर्मुक्तैः शरैरशनिसन्निभैः ।

तिलशस्तद्रथं साश्वध्वजपताकिनम् ॥६

चिच्छेद कवचं कायान्मुकुटं च महाप्रभम् ।

कामुं कं च महातेजा हस्तचापं च केशवः ॥७

विष्याथ चैनमुरसि नाराचेन स्मयन्निव ।

स मर्माभिहतः संत्ये प्रमुमो ह्याल्पचेतनः ॥८

प्रयध्येता ध्वजी तत्र तावन्योन्यमभिद्रुती ।

युद्धं त्वभूद्वाहनयोरुभयोर्देवदैत्ययोः ॥९

गरुडस्य च संग्रामो मयूरस्य च धीमतः ।

पक्षतुण्डहारेस्तु चरणास्यनघैस्तथा ॥१०

अन्यान्यं जघ्नतुः क्रुद्धो मयूरगरुडावुभौ ।

वैनतेयस्ततः क्रुद्धौ मयूरं दीप्ततेजसम् ॥११

जग्राह शिरसि क्षिप्रं तुण्डेनाभिमत्तंस्तदा ।

उत्क्षिप्य चैव पक्षाभ्या निजघान महाबलः ॥१२

पद्भ्या पाश्वर्वाभिघाताभ्या नृत्वा घातान्यनेकशः ।

जातृष्य चैनं तरसा विटृष्य च महाबला ॥१३

निःसर्गं पातयामास गगनादिव भास्करम् ।

मयूरे पतिते तस्मिन्पपातातिचलो भुवि ॥१४

इस प्रकार इन दोनों महान् शेररुओं के शेर युद्ध होने तथा कीट-शक्ति-कृष्ण के शाङ्गपनुष द्वारा बलात्के गये जानों से अरुण, ध्वज और पताका युद्ध

बाणामुर नर रथ धीरे-धीरे जीर्ण होने लगा ॥६॥ उन्होंने दैत्यराज का कवच, मुकुट, धनुष आदि को भंग करके उसके हृदय को बीध डाला, जिसके कारण वह पुष्ट चेतना हीन होगया ॥७-८॥ इस प्रकार उन दोनों में घोर युद्ध चल रहा था, तभी उनके ध्वज परस्पर भिड़ गये । एक ओर बाणामुर का वाहन मयूर और दूसरी ओर श्रीकृष्ण के वाहन गरुड थे । दोनों ही परस्पर पल, पैर, गुण्ड, नख, चोच आदि के प्रहारों से एक दूसरे को पीड़ित कर रहे थे तभी गरुड ने सहसा उड़न कर मयूर को अपनी चोच में दबा और दाहिने पल से उसके मस्तक में तथा पंरों से पार्श्व में प्रहार करने लगे ॥९-१२॥ इस प्रकार पिटता पिटता मयूर मूर्च्छित होगया तब गरुड ने उसे उठा कर धरती पर दे मारा ॥१३॥ उस समय चेतना हीन होकर पृथिवी पर गिरता हुआ वह मोर आकाश से गिरते हुए सूर्ज के समान प्रतीत होने लगा और उस मयूर के साथ ही बाणामुर भी पृथिवी पर गिर गया ॥ १४ ॥

बाणः समरस विग्नरिचिन्तयन्कार्यमात्मनः ।  
 मयाऽतिबलमत्तेन न कृत सुहृदा वचः ॥१५  
 पश्यना देवदैत्यानां प्राप्तोऽस्म्यापदमुत्तमाम् ।  
 तत दीनमनसं ज्ञात्वा रणे बाणं सुविक्रवम् ॥१६  
 चिन्तयद्भगवान्द्रो बाणरक्षणमातुरः ।  
 ततो नन्दि महादेवः प्राह गम्भीरया गिरा ॥१७  
 नन्दिकेश्वर याहि त्वं यतो बाणो रणे स्थितः ।  
 रथेनानेन दिव्येन सिंहयुक्तेन भास्वता ॥१८  
 बाणे सयोजमाशु त्वमल युद्धाय वाऽनघ ।  
 प्रमाथगणमव्येऽहं स्थास्यामि न हि मे मनः ॥१९  
 यौद्धु वितरते ह्यद्य बाण सरक्ष्य गम्यताम् ।  
 तथेत्युक्त्वा ततो नन्दी रथेन रथिना वरः ॥२०  
 यतो बाणस्ततो गत्वा बाणमाह शनैरिदम् ।  
 दैत्यामुं रथमातिष्ठ शीघ्रमेहि महाबल ॥२१

ततोयुध्यस्व कृष्णं वै दानवान्तकरं रणे ।  
 आरुरोह रथं वाणो महादेवस्य धीमतः ॥२२  
 आरूढः स तु वाणश्च तं रथं ब्रह्मनिर्मितम् ।  
 तं स्यन्दनमधिष्ठाय भवस्यामिततेजः ॥२३  
 प्रादुश्चक्रे महारीद्रमस्त्रं सर्वास्त्रघातनम् ।  
 दीप्तं ब्रह्मशिरो नाम वाणः क्रुद्धोऽतिवीर्यवान् ॥२४  
 प्रदीप्ते ब्रह्मशिरसि लोकाः क्षोभमुपागमन् ।  
 लोकसरक्षणार्थं वै तत्सृष्टं ब्रह्मयोनिना ॥२५

इस प्रकार गिरा हुआ वाणासुर उद्विग्नता पूर्वक विचार करने लगा कि  
 मैंने बल से शक्ति होकर अपने बन्धुओं के बचनों को नहीं माना, इसी से आज  
 मेरी यह दुर्दशा हुई है । तब भगवान् रुद्र ने वाणासुर को विह्वल हुआ देख कर  
 अपने नन्दी गण से कहा ॥१५-१६-१७॥ नन्दीश्वर ! तुम शीघ्र ही मेरे इन सिंहा  
 योजित रथ को ले जाकर वाणासुर को दे दो और स्वयं उस युद्ध का संचालन  
 करो । इस रथ के प्राप्त होते ही वाणासुर में शक्ति का विशेष संचार होगा ।  
 इसलिये तुम शीघ्रता पूर्वक वहाँ जाकर वाणासुरकी रक्षा के कार्य में लग जाओ ।  
 यह सुन कर नन्दीश्वर ने तुरन्त ही प्रस्थान किया और वाणासुर को रथ देकर  
 कहा कि—आप इस रथ पर शीघ्र ही बैठिये ॥१८-२१॥ फिर आप दानवों के  
 सहारक श्रीकृष्ण से युद्ध कीजिये । नन्दी की बात पूरी होते ही वाणासुर उस रथ-  
 निर्मित रथ पर जा बैठा ॥२२॥ उस रथ पर बैठते ही उसने अत्यन्त क्रोध पूर्वक  
 सभी दैत्यों के नष्ट करने वाले ब्रह्मशिर नामक वाण को प्रकट किया ॥२३-२४॥  
 उस प्रज्वलित वाण के उत्पन्न होते ही सब लोक व्याकुल हो उठे, इन वाण की  
 ब्रह्माजी ने पहिले लोक की रक्षा के लिये रचा था ॥२५॥

यपुषा तेज आघत्ते वाणस्य प्रमुग्धे स्थितम् ।  
 ज्ञात्वाऽतितेजसा चक्रं कृष्णेनाभ्युदितं रणे ॥२६  
 अप्रमेयं त्वविहसं रथाणी चाप्रवीच्छिवम् ।  
 अजयमेतत्प्रैलोनये चक्रं कृष्णेन धार्यते ॥२७

वाणं श्रायस्व देवि त्वं यावच्चक्रं न मुञ्चति ।  
 ततस्त्र्यक्षवचः श्रुत्वा देवी लम्बामथान्नवीत् ॥२८  
 गच्छैहि लम्बे शीघ्रं त्वं वाणसरंक्षणं प्रति ।  
 ततो योगं समाधाय अदृश्या हिमवत्सुता ॥२९  
 कृष्णस्यैकस्य तद्रूपं दर्शयत्पार्श्वभागता ।  
 चक्रोद्यनकरं दृष्ट्वा भगवन्त रणाजिरे ॥३०  
 अन्तर्धानमुपागम्यत्यज्य सा वाससी पुनः ।  
 परित्राणाय वाणस्य विजयाधिष्ठिता ततः ॥३१

तत्र वाणामुर के सामने जाकर भगवान् ने उसके तेज को आवृणित किया । तभी भगवान् शंकर ने श्रीकृष्ण को चक्र धारण किये देख कर पार्वतीजी से कहा — हे देवि ! श्रीकृष्ण का वह चक्र सम्पूर्ण जल्लोकसे भी जीता नहीं जा सकता । इसलिये जब तक वह चक्र छोड़ा जाय, उसके पूर्व ही तुम वहाँ जाकर वाणामुर की रक्षा करो । शिवजी की बात सुन कर पार्वतीजी ने लम्बादेवी से कहा ॥२६-२७ २८॥ हे लम्बे ! तुम शीघ्र यहाँ से जाकर वाण को बचाओ । यह कह कर पार्वतीजी ने अलक्षित भाव से श्रीकृष्ण के निकट जाकर उन्हें दर्शन दिया और फिर लम्बादेवी वस्त्र परित्याग पूर्वक वाणामुर की रक्षा के लिये श्रीकृष्ण के सामने जाकर खड़ी होगई ॥२९-३०-३१॥

प्रमुखे वामुदेवस्य दिग्वासा. कोटवी स्थिता ।  
 ता दृष्ट्वा ऽथ पुनः प्राप्ता देवी रुद्रस्य समताम् ॥३२  
 लम्बां द्वितीयां निष्ठन्ती कृष्णो वचनमब्रवीत् ।  
 भूयः सामर्पता आक्षो दिग्बस्त्राऽवस्थिता रणे ॥३३  
 वाणसंरक्षणपरा हन्मि वाण न संशयः ।  
 एवमुक्तां तु कृष्णेन भूयो देव्यन्नवीदिदम् ॥३४  
 जाने त्वां सर्वभूतानां स्रष्टारं पुरुषोत्तमम् ।  
 महाभागं महादेवमनन्तं लीनमव्ययम् ॥३५



पद्मनाभं हृषीकेशं लोकानामादिसंभवम् ।  
 नार्हसे देव हन्तुं वै वाणमप्रतिमं रणं ॥३६  
 प्रयच्छ ह्यभयं वाणे जीवपुत्रीत्वमेव च ।  
 मया दत्तवरो ह्येष भूयश्च परिरक्ष्यते ॥३७  
 न मे मिथ्या समुद्योगं कर्तुं महंसि माधव ।  
 एवमुक्ते तु वचने देव्या परपुरंजयः ॥३८  
 कृष्णः प्रभापते वाक्यं शृणु सत्यं तु भामिनि ।  
 वाणो बाहुसहस्रेण नर्दते दर्पमाश्रितः ॥३९

उसे नग्न वेस मे सामने राही देख कर श्रीकृष्ण बोले—हे देवि ! तुम अपने वस्त्रों को त्याग कर इस नग्न वेस मे बाणासुर की रक्षा के लिये यह आ-  
 गई हो, परन्तु मैंने आज इसे मारने का दृढ निश्चय कर लिया है । यह सुन कर  
 लम्बा ने भीठे स्वर मे कहा—हे पुरुषोत्तम ! आप जगत् के रचने वाले, देवताओं  
 मे महान्, अन्त रहित, अव्यय, पद्मनाभ एव हृषीकेश हैं, इसलिये आपको इस  
 बाणासुर का वध नहीं करना चाहिये ॥३२-३६॥ हे माधव ! आप श्रेष्ठ अभयदान  
 देकर मुझे जीवित पुत्र वाली बनाइये, क्योंकि मैं इसकी घर दात्री होने के कारण  
 इसे अब भी बचा रही हूँ । इसलिये, आप मेरे वचन को धर्म्य न करिये । लम्बा-  
 देवी की बात सुन कर श्रीकृष्ण बोले—हे भामिनी ! अब तुम मेरी बात सुनो,  
 तुम्हारे पुत्र को अपनी सहस्र भुजाओं का गर्व है और यह उन्ही के कारण सर्व  
 गरजता रहता है ॥३७-३८-३९॥

एतेषां ऋटेदनं त्यक्त कर्त्तव्यं नास्य संशयः ।  
 द्विबाहुना च वाणेन जीवपुत्री भविष्यति ॥४०  
 आसुरं दर्पमाश्रित्य न च मां संश्रियिष्यति ।  
 एवमुक्ते तु वचने कृष्णे नाविटलवर्मणा ॥४१  
 प्रोवाच देवी बाणास्यं देवदत्तो भवेदिति ।  
 अथ तां कार्त्तिकेयस्य मातरं गोर्जनिभाष्य वै ॥४२

प्रोवाच वाणं समरे वदता प्रवरं प्रभु ।  
 युध्यता युध्यता सद्ये भवता कोटवी स्थिता ॥४३  
 अशक्तानामिव रणे धिग्वाण तव पीरुपम् ।  
 एवमुक्त्वा ततः कृष्णस्तच्चक्र परमात्मवान् ॥४४  
 निमीलिताक्षो व्यसृज्यद्वाण प्रति महाबलम् ।  
 क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥४५

हमलिये मैं उसकी हजार भुजाओ में से केवल दो भुजाएँ दोप रहने दूँगा, इस प्रकार वाणासुर के जीवित रहने से तुम्हारे जीवित पुत्रिका बनी रहने में कोई अतिक्रम नहीं होगा ॥ ४० ॥ ऐसा होने से वह मर्धा करने से निवृत्त हो जायगा । श्रीकृष्ण के ऐसे वचन सुन कर देवी बोली—हे प्रभो ! जैसे भी हो वाणासुर जीवित बच सके वंसा ही आप कीजिये । भगवान् बोले 'अच्छा, यही होगा' ॥४१-४२॥ फिर उन्होंने वाणासुर से कहा—हे दैत्यराज ! तुम चायरो की भाँति देवी का सहारा क्यों लते हो ? तुम्हारे इन प्रकार के अपीरुप युक्त कर्म को धिक्कार है । यह कह कर श्रीकृष्ण ने अपने नेत्रों को बन्द किया और वाणासुर पर चक्र चलाने लगे । परन्तु चक्र चलने की सम्भा— लोक मूर्च्छित हो गये ४२-४४-४५॥

क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं याति महामुध्रे ।  
 तमप्रतिमकर्माण समान मूर्यवर्चसा ॥४६  
 चक्ष्मद्यस्य समरे कोपदीप्तो गदाधर ।  
 स मुष्णन्दानव तेज समरे स्वेन तेजसा ॥४७  
 चिच्छेद बाहूश्चक्रेण श्रीधर परमोजसा ।  
 अलातचक्रवर्तूर्ण भ्राम्यमाण रणाजिरे ॥४८  
 क्षिप्य तु वासुदेवेन वाणस्य रणमूर्धानि ।  
 विष्णुचक्रं भ्रमत्याशु शैघ्रयादरूप नदृश्यते ॥४९  
 तस्य बाहुसहस्रस्य पर्यायेण पुन पुन ।  
 वाणस्य छेदन चक्रं तच्चक्र रणमूर्धानि ५०

कृत्वा द्विबाहुं तं वाणं छिन्नशाखमिव द्रुमम् ।  
पुनः करान्न कृष्णस्य चक्रं प्राप्तं सुदर्शनम् ॥५१

ऐसे मे ही श्रीकृष्ण ने सूर्य के समान तेजोमय अपने चक्र को छोड़ा, जो दूरमे सूर्य के समान अत्यन्त वेगपूर्वक घूमता हुआ अदृश्य रूप से बाणामुर के रथ नागं पर अग्रसर हुआ ॥४६ ४९॥ तब उसने बाणामुर की एक-एक करके सब भुजाएँ काटते हुए केवल दो भुजाएँ छोड़ दी । इस प्रकार दैत्यराज को सहस्रबाहु से द्विबाहु करके वह चक्र पुनः भगवान् श्रीकृष्ण की अंगुलियों पर स्थित हो- गया ॥ ५०-५१ ॥

कृतकृत्ये तु संप्राप्ते चक्रे दैत्यनिर्पातने ।  
ख्रवता तेन कायेन शोणितो घपरिप्लुतः ॥५२  
अभवत्पर्वताकारशिखन्नुवाहुर्महासुरः ।  
असृङ्मत्तश्च विविधान्नादान्मुञ्चन्धनो यथा ॥५३  
तस्य नादेन महता केशवो रिपुमुदनः ।  
चक्र भूयः क्षेप्तुवामो वाणनाशार्थमुद्यतः ।  
तमुपेत्य महादेवः कुमारसहितोऽश्वीत् ॥५४  
कृष्ण कृष्ण महाब्राह्मो जाने त्वा पुरुषोत्तमम् ।  
मधुकंठभन्तारं देवदेव सनातनम् ॥५५  
लोचाना त्वं गनिदो व त्रत्प्रभूतमिदं जगत् ।  
अजेयस्त्व त्रिभिलोकैः ससुरासुरपन्नगैः ॥५६  
तस्मात्संहर दिव्य त्वमिदं चक्रं समुद्यतम् ।  
अनिवार्यं संहार्यं रणे शत्रु भयकरम् ॥५७  
वाणम्यास्याम्यं दत्तं मया केशिनिपूदन ।  
तन्मे न स्याद्द्रुवा वाक्यगतस्य त्वां क्षामयाम्यहम् ॥५८  
जीवता देव वाणीभ्यमेतच्चक्रं निवर्तितम् ।  
मात्स्वम्वं देवदेवानामगुणना न्मयंनः ॥५९  
नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि मरुतामं तन्महेस्वर ।  
न तारत्रियते तस्मान्मामनुशासुर्गमि ॥६०

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! जब सुश्रान चक्र अपने कार्य को पूर्ण करके भगवान् श्रीकृष्ण के पास लौट गया, उस समय बाणासुर के देह से रक्त की धाराएँ प्रवाहित हो रही थी ॥५२॥ भुजाओं के कटने पर यह पर्वत के समान दिलाई देने लगा और रथिज मन्हा कर जलधर के समान गर्जन करने लगा ॥५३॥ उनकी गर्जना से क्रोधित हुए श्रीकृष्ण उस पर चक्र छोड़न के लिये फिर तत्पर हुए तभी स्वामि नातिकेय के साथ भगवान् शिव स्वयं वहाँ आकर बोले—हे महाबाहो ! हे पुरोधत्तम ! हे देवदेव ! आप मधु कँठभ के मारने वाले, सनातन पुरुष एवं ससारी जीवों की एक मात्र शक्ति हैं, यह सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है । इसलिये देवता, दैत्य, मनुष्य अथवा अग्न्यान्व जीवों में से कोई भी आपको परास्त नहीं कर सकता ॥५४ ५५-५६॥ अतः अब आप अपने इस अनिवारणीय और अमहारणीय चक्र को रोकिये । हे केशव ! मैंने बाणासुर को अभय प्रदान किया हुआ है, इसलिये अब आप वही करे जिससे मेरे वचन की रक्षा हो सके ॥५७-५८॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे रद्रदेव ! आप सभी देव दानवों के लिये पूजनीय हैं, इसलिये मैं आपके अनुरोध को स्वीकार कर अपने चक्र को निवारण करता हूँ, जिससे बाणासुर की प्राण रक्षा हो जायगी । ५९॥ हे देवदेव शंकर ! मेरा निश्चय अपूर्ण ही रह गया । अब मैं यहाँ से जा रहा हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ ॥६०॥

## ॥ उपा अनिरुद्ध विवाह ॥

वासुदेवोऽपि बहुधा नारद पर्यपृच्छत ॥ १  
 यवानिरुद्धोऽस्ति भगवन्स यतो नागबन्धनं ॥ २  
 श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन स्नेहविलन्न हि मे मन ।  
 अनिरुद्धे हृते वीरे क्षुभिता द्वारवा पुरी ॥ ३  
 शीघ्र त मोक्षयिष्यामो यदर्थं वयमागता ।  
 अथ त नष्टशत्रु वै द्रष्टुमिच्छामहे वयम् ॥ ४  
 स प्रदेशस्तु भगवन्विदितस्तव सुव्रत ।  
 एवमुतस्तु कृष्णेन नारद प्रत्यभाषत ॥ ५

कन्यापुरे कुमारोऽसी वदो नागेश्च माधव ।  
 एतस्मिन्नन्तरे शीघ्र चिह्नलेखा ह्युपस्थिता ॥६  
 वाणस्योत्तमसर्वम्य दैत्येन्द्रस्य महात्मन ।  
 इदमन्त पुर देव प्रविशस्व यथासुखम् ॥७  
 तत प्रविष्टास्ते सर्वे ह्यनिरुद्धस्य भोक्षणो ।  
 बल सुपर्णा वृष्णस्तु प्रद्युम्नो नारदस्तथा ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण नारदजी से बारम्बार पूछने लगे कि हे—भगवन् ! नागपाश के बन्धन में पड़ा हुआ अनिरुद्ध कहाँ है ? ॥२॥ मेरा चित्त स्नेह विह्वल होकर अब उसे देखने को उत्सुक है और उधर सब द्वारवा वासी भी उसके बिना व्याकुल हो रहे हैं ॥३॥ उस छुड़ाने के लिये ही हमारा यहाँ आगमन हुआ है इसलिये मैं उसे अब शीघ्र ही बन्धन में मुक्त करने को आनुर हूँ । ४ । हे मुने ! आप उग स्थान को जानते हैं । यह सुन कर देवर्षि नारद ने उनसे कहा—हे माधव ! नागपाश में बँधे हुए अनिरुद्ध इस समय वाणामुनि की कन्या के अन्त पुर में बन्दी है । नारदजी अभी इतना ही कह पाये थे, तभी उपा की सहेली चिह्नलेखा यहाँ आई ॥६॥ उसने कहा—हे देव ! हमारे दैत्यराज महात्मा वाणामुनि का यह अन्त पुर है, आप इसमें सुखपूर्वक प्रवेश करें ॥७॥ यह सुन कर बलरामजी गरुड प्रद्युम्न और नारदजी के सहित श्रीकृष्ण अनिरुद्ध का बन्धन में छुड़ाने के लिये उस अन्त पुर में पहुँचे ॥ ८ ॥

ततो दृष्ट्वैव गरुड येऽनिरुद्धशरीरगा ।  
 शरणा महासर्पा येयित्वा तनु स्थिता ॥९  
 ते सर्वे सहसा देहात्तस्य नि सृत्य भोगिन ।  
 क्षिति समभिर्वातिस्वा प्रवृत्त्यावस्थिता शरा ॥१०  
 दृष्ट स्पृष्टश्च वृष्णेन सोऽनिरुद्धो महायथा ।  
 स्थित प्रीतमना भूत्वा प्राञ्जनिर्विक्रियमन्नधीत् ॥११  
 देवदेव सदा मुद्धे जेता त्वमसि वेशव ।  
 न शयन प्रमृग्ये स्यातु साक्षादपि शतव्रतु ॥१२

ततो महाबलं देव बलभद्रं यशस्विनम् ।  
 अभिवादयते हृष्टः सोऽनिरुद्धो महामनाः ॥१३  
 माधव च महात्मानमभित्राद्य वृताञ्जलिः ।  
 खगोत्तमं महावीर्यं सृगर्णमभित्राद्य च ॥१४  
 ततो मकरकेतुं च चित्रवाणधर प्रभुम् ।  
 पितरं सोऽभ्युपागम्य प्रद्युम्नमभ्यवादयत् ॥१५

उनके पहुँचते ही जिन वडे-वडे सर्पों ने अनिरुद्ध को बाँध रखा था, वे गरुड के भय से तुरन्त ही अनिरुद्ध को छोड़ कर भाग गये ॥९-१०॥ तब अनिरुद्ध को देख कर श्रीकृष्ण उनके पास पहुँचे और उन्होंने स्नेह से उनके देह पर हाथ फेरा । उस समय अनिरुद्ध ने हाथ जोड़ कर भगवान् से कहा—हे देवदेव । आप तो सभी युद्धो रुद्वं विजयी रहे हैं आपके सामने युद्ध करने में इन्द्र भी समर्थ नहीं हैं ॥११-१२॥ फिर अनिरुद्ध ने बलरामजी को प्रणाम किया और भगवान् श्रीकृष्ण और गरुड को भी प्रणाम करके अपने पिता प्रद्युम्न के चरणों में वन्दना की । १३-१५॥

सखीगणवृता चैव सा चोपा भवने स्थिता ।  
 बल चातिबल चैव वासुदेव सुदुर्जयम् ॥१६  
 अस ख्यातगतिं च व सुपण मभित्राद्य च ।  
 पुष्पवाणधर चैव लज्जमानाऽभ्यवादयत् ॥१७  
 तत शक्रस्य वचनान्नारद परमद्युति ।  
 वासूदेवसमीप स प्रहसन्पुनरागत ॥१८  
 वर्द्धापयति त देव गोविन्द शत्रुसूदनम् ।  
 दिष्ट्या वर्द्धं सि गोविन्द अनिरुद्धसमागसात् ॥१९  
 ततोऽनिरुद्धसहिता नारदं प्रणता स्थिता ।  
 आशीर्भवंर्द्धं यित्वा च देवपि कृष्णमब्रवीत् ॥२०  
 अनिरुद्धस्य वीर्याख्यो विवाहः क्रियता विभो ।  
 जम्बलमाणिकादृष्टं श्रुत्वा द्वि मम जायते ॥२१

ततः प्रहसिताः सर्वे नारदस्य वचःश्रवात् ।

कृष्णः प्रोवाच भगवन्क्रियतां मांशु मा चिरम् ॥२२

अनिरुद्ध के पीछे-पीछे उपा भी अपने सखियों के साथ उपस्थित हुई और उसने भी बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न और गरुड को प्रणाम किया ॥१६-१७॥ फिर इन्द्र के कहने से नारदजी श्रीकृष्ण के पास जाकर हँसते हुए बोले— हे मधुसूदन ! आज आपको अनिरुद्ध मिल गये हैं, इसलिये यह दिन परम सौभाग्य का है ॥१८-१९॥ फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने अनिरुद्ध आदि के सहित आगे बढ़ कर नारदजी के चरण छुए और प्रणाम किया । तब नारदजी ने सब का आशीर्वाद देकर श्रीकृष्ण से कहा ॥२०॥ हे प्रभो ! आज यही उपा-अनिरुद्ध का विवाह कार्य सम्पन्न होना उचित है, क्योंकि मेरी इसके लिये बड़ी इच्छा है ॥२१॥ नारदजी के वचन सुन कर सभी उपस्थित जन हर्षित हुए और श्रीकृष्ण कहने लगे—हे भगवन् ! अब विलम्ब न करके, इस शुभ कार्य को आप ही सम्पन्न करे ॥२२॥

एतस्मिन्नन्तरे तात कुम्भाण्डः समुपस्थितः ।

देवाहिकास्तु सभागन्गृह्य कृष्ण नमस्य तु ॥२३

कृष्ण कृष्ण महाबाहो भव त्वमभयप्रदः ।

शरणागतोऽस्मि देवेश प्रसोदपोऽञ्जलिस्तव ॥२४

नारदस्य वच श्रुत्या सर्व प्रागेव चाच्युतः ।

अभय यच्छते तस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने ॥२५

कुम्भाण्ड मन्त्रिणा श्रेष्ठ प्रीतोऽस्मि तव सुव्रत ।

सुकृत ते विजानामि राष्ट्रिकोऽस्तु भवानिह ।

सज्ञातिपक्षः सुमुखी निवृत्तस्तु भवानिह ॥२६

राज्यं च ते मया दत्तं चिर जीव ममाश्रयात् ।

एवं दत्त्वा राज्यमस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने ॥२७

विवाहमकरोत्तम्यानिरुद्धस्य जनार्दनः ।

ततश्चु भगवान्बह्विस्तत्र स्वयमुपस्थितः ॥२८

इस प्रकार की बातें ही ही रही थी, तभी विवाह की सय सामग्रियों के सहित कुम्भाण्ड ने वहाँ आकर भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर बहने लगा—हे महाबाहो ! आप मेरे लिये अभय दीजिये ! हे प्रभो ! मैं आपकी शरण में उपस्थित हुआ हूँ ॥२४॥ हे राजन् ! भगवान् ने नारदजी के मुख से कुम्भाण्ड का सब वृत्तान्त पहिले ही सुन लिया था और तभी वे उसे अभय देने का विचार स्थिर कर चुके थे ॥२५॥ इसलिये उन्होंने उससे कहा—हे कुम्भाण्ड ! तुम दंत्यराज के तभी मन्त्रियों में श्रेष्ठ हो, नारदजी के मुख से मैं तुम्हारे विषय में पहिले ही सुन चुका हूँ इसलिये भी तुम पर प्रसन्न हूँ । अब तुम अपने बन्धु-बाधवों सहित शोणितपुर में रह कर यहाँ का अधिपत्य करो ॥ २६ ॥ इस पुरी का राज्य मैंने तुम्हें पहिले से ही देने का निश्चय कर लिया था । इस प्रकार कुम्भाण्ड को राज्य प्रदान कर भगवान् ने उपा-अनिरुद्ध का विवाह कराया, उस समय अग्नि देव साक्षात् रूप में वहाँ आगये थे ॥२७-२८॥

स विवाहोऽद्धस्य नक्षत्रे च शुभेऽभवत् ।  
 ततोऽप्सरोगणश्चैव कौतुक कर्तुमुद्यतः ॥२६  
 स्नातस्त्वलकृतस्तत्र सोऽनिरुद्ध स्वभार्यया ।  
 ततः स्निग्धं शुभैर्वियैर्गैन्धर्वाश्च जगुस्तदा ॥३०  
 नृत्यन्त्यप्सरसश्चैव विवाहमुाशोभयन् ।  
 ततो निर्वर्त्तयित्वा तु विवाह शत्रुसूदनः ॥३१

फिर शुभ नक्षत्र में उनका विवाह हुआ । उस समय आमोद प्रमोद के लिये अनेको अप्सराएँ वहाँ आगई ॥२६॥ उपा, अनिरुद्ध दोनों ने स्नान कर श्रेष्ठ वस्त्राभूषण पहिने, तब गन्धर्व और विद्याधर सुमधुर स्वर में गाने-बजाने लगे ॥३०॥ अप्सराएँ नाचने लगी । इस प्रकार अत्यन्त आनन्द पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण ने उपा-अनिरुद्ध का विवाह तस्कार सम्पन्न करा लिया ॥३१॥

॥ श्रीकृष्ण और अनिरुद्ध का द्वारका-गमन ॥

अनिरुद्धस्य सुप्रज्ञः सर्वदेवगणैर्वृतः ।

आमन्त्र्य वरदं तत्र रुद्रं देवनमस्कृतम् ॥१



चकार गमने वृद्धि कृष्ण परपुरजय ।  
 द्वारकाभिमुख कृष्ण ज्ञात्वा शत्रुनिपूदनम् ॥२  
 कुम्भाण्डो वचन प्राह प्राञ्जलिर्मनुसूदनम् ।  
 बाणस्य गावस्त्रिंशन्ति हस्ते तु वरुणस्य वै ॥३  
 यासाममृतकल्पं वै क्षीरक्षरति माधव ।  
 तत् पीत्वाऽतिवलश्चैव नरो भवति दुर्जय ॥४  
 कुम्भाण्डेनैवमाट्याते हरिः प्रीतमनास्नदा ।  
 गमनाय मतिं चक्रे गन्तव्यमिति निश्चयम् ॥५  
 जगाम ब्रह्मलोकं स वृत्तस्वभवनालये ॥६  
 इन्द्रो मरुद्गणयुतो द्वारकाभिमुखो ययौ ।  
 यतः कृष्णस्ततः सर्वे गच्छन्ति जयकाक्षिण ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अनिरुद्ध का विवाह कार्य सम्पन्न होने पर सब देवताओं के सहित श्रीकृष्ण ने भगवान् रुद्रदेव को नमस्कार कर द्वारकापुरी जाने का विचार किया । यह देख कर कुम्भाण्ड ने हाथ जोड़ कर उनसे कहा—हे मधुसूदन ! मुझे आपसे यह निवेदन करना है कि बाणासुर की गौओं पर वरुण ने अधिकार कर रखा है । उनके घनो से अमृत के समान दूध निकलता है, जिसको पान करने वाला पुष्प महाबली और अजेय हो जाता है ॥ १४ ॥ कुम्भाण्ड की बात सुन कर श्रीकृष्ण ने वरुण लोक के लिये प्रस्थान करने का विचार स्थिर किया ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण की स्तुति की और अपने लोक को चले गये ॥६॥ मरुद्गण आदि देवताओं के साथ इन्द्र तथा और भी कृष्णपक्ष के जो पुरुष शोणितपुर आये थे, वे सभी द्वारका की ओर चल दिये ॥७॥

वाहनेन मयूरेण सखिभिः परिवारिता ।  
 द्वारकाभिमुखी ह्युपादेव्या प्रस्थापिता ययौ ।  
 ततो वलश्च वृष्णश्च प्रधुम्नश्च महानल ॥८

आरुढन्तो गरुडमनिरुद्धश्च वीर्यवान् ।  
 प्रस्थितश्च स तेजस्यी गरुडः पततां वरः ॥८६  
 उन्मूलयंस्तरगणान्कम्पयश्चापि मेदिनीम् ।  
 आकुलाश्च दिशः सर्दा रेणुध्वस्तमिवाम्बरम् ॥९०  
 गरुडे संप्रयातेऽभून्मन्दरश्मिदिवाकरः ।  
 ततस्ते दीर्घमध्वानं प्रययुः पुरुषर्षभाः ॥९१  
 आरुह्य गरुडं सर्वे जित्वा वाणं महौजसम् ।  
 ततोऽम्बरतलस्वास्ते वारुणी दिशमास्थिताः ॥९२  
 अपश्यन्त महात्मानो गावो दिव्यपय प्रदाः ।  
 वेलावनविचारिण्यो नानावर्णाः सहस्रशः ॥९३  
 अवज्ञाय तदा रूपं कुम्भाण्डवचनाश्रयात् ।  
 कृष्णः प्रहरता श्रेष्ठस्तत्त्वतोऽर्थविशारदः ॥९४  
 निशम्य वाणगावस्तु तासु चक्रे मनस्तदा ।  
 आस्थितो गरुडं प्राह स तु लोकादिरव्ययः ॥९५

उपा को उसकी सब सखियों के सहित मयूर वाहन पर चढ़ा कर द्वारका के लिये विदा किया गया, फिर वनराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध गरुड पर आरुढ होकर चल दिये । उस समय गरुड के पंखों के वेग से वृक्ष उखड़ने लगे, पृथिवी कपित होने लगी, दिशाएँ व्याकुल हुईं तथा आकाश में धूल ही धूल छागई ॥८६-१०॥ गरुड के चलने पर सूर्य रश्मियाँ निष्प्रभ हो गईं । इस प्रकार बाणासुर विजेता भगवान् गरुड के द्वारा आकाश में पहुँच कर उत्तर की ओर बढ़े ॥११-१२॥ मार्ग में ही उन्हें विभिन्न वर्णों की हजारों गौएँ समुद्र तट पर चरती हुई दिखाई पड़ी ॥१३॥ श्रीकृष्ण ने कुम्भाण्ड से उन गौओं का वृत्तान्त सुन कर ही उन्हें प्राप्त करने का निश्चय कर लिया था । इसलिये उन्हें देखते ही गरुड से श्रीकृष्ण बोले ॥१४-१५॥

वैनतेय प्रयाहि त्वं यत्नं वाणस्य गोधनम् ।  
 यासा पीत्वा किल क्षीरममृतत्वमवाप्नुयात् ॥१६

आह मा सत्यमामा च वाणगावो ममानय ।  
 यासा पीत्वा किल क्षीर न जीर्यन्ति महासुरा ॥१७  
 विज्वराश्च जरास्त्यक्त्वा भवन्ति किल जन्तव ।  
 ता आनयस्व भद्र ते यदि धर्मो न लुप्यते ॥१८  
 अथवा कार्यलोपो वै मैव तासु मन कृथा ।  
 इति मामद्रवीत्सत्या ताश्चैता विदिता मम ॥१९  
 दृश्यन्ते गाव एतास्ता दृष्ट्वा मा वरुणालयम् ।  
 विशान्ति सहसा सर्वा कार्यमस्र विधोयताम् ॥२०  
 इत्यक्त्वा चैव गरुड पक्षवातेन सागरम् ।  
 सहसा क्षोभयित्वा च विवेश वरुणालयम् ॥२१  
 दृष्ट्वा जवन गरुड प्रात वै वरुणालयम् ।  
 वारुणाश्च गणा सर्वे विभ्रान्ता प्राचत्भस्तदा ॥२२  
 ततस्तु वारुण सैन्यमभिज्ञातु सुदुर्जयम् ।  
 प्रमुखे वासुदेवस्य नानाप्रहरणोद्यतम् ।  
 तद्युद्धमभवद्घोर वारुणं पन्नगारिणा ॥२३

श्रीकृष्ण बोले—हे वैनतय ! वह देखो, जिनके दुग्धपान से ही अमरता मिल सकती है वे वाणासुर की गौएँ यही हैं । सत्यभामा ने कहा था कि वाणासुर की कुछ गौओं के दूध में यह त्रिशोपना है कि उसे पीकर देवगण अजर, अमर और रोग मुक्त हो जाते हैं यदि किसी प्रकार धर्म नष्ट न होता हो तो उन्हें लेते आइय । इसलिये तुम उन गौओं के पास जाओ ॥१६ १६॥ इस पर गरुड ने कहा—हे प्रभो ! मन उन गौओं को देख लिया है । परन्तु यदि वे गौएँ मुझे देख कर वरुणालय में घुस गई तब क्या यत्न करूँगा ? ॥२०॥ यह कहते हुए गरुड अपने पंख की वायु से समुद्र को क्षोभित करते हुए उसमें प्रविष्ट हो गया ॥२१॥ उन्हें वेग पूर्वक आया देख कर वरुण ने गण विचलित हो उठे और शस्त्रास्त्र ग्रहण करके भगवान् वासुदेव के सामने आगये । फिर उनका गरुड से घोर संग्राम होने लगा ॥२२ २३॥

तेषामापतता सप्ये वारुणाना सहस्रश ।  
 भग्न बलमनाधृष्यं केशवेन महात्मना ॥२४  
 ततस्ते प्रद्रुता यान्ति तमेव वरुणालयम् ।  
 पर्षि रथसहस्राणि पर्षि रथशतानि च ॥२५  
 वारुणानि च युद्धानि दीप्तशस्त्राणि सयुगे ।  
 तद्वल बलिभि शूरैर्वलदेवजनार्दन ॥२६  
 प्रद्युम्नेनातिरुद्धेन गरुडेन च सर्वश ।  
 शरीरैर्विविधैस्तीक्ष्णैर्वध्यमान समन्तत ॥२७  
 ततो भग्न बल दृष्ट्वा कृष्णेनाकिलष्टकर्मणा ।  
 वरुणस्त्वथ सक्रुद्धो निर्ययी यत्र केशव ॥२८  
 ऋषिभिर्देवगन्धर्वैस्तयेवाप्सरसा गणा ।  
 सस्तूयमानो बहुधा वरुण प्रत्यदृश्यत ॥२९  
 छत्रेण धियमाणेन पाण्डुरेण वपुष्मता ।  
 सलिलस्राविणा श्रेष्ठ चापमुद्यम्य धिष्ठित ॥३०

उस समय अकेले श्रीकृष्ण ने ही वरुण के हजारों सैनिकों को मार  
 भगाया । तभी वरुण के साठ हजार रथी वीर उतने ही रथों पर चढ़ कर वहाँ  
 आये । उन सब के पास विभिन्न प्रकार के चम-चमाते हुए शस्त्रास्त्र थे । उस  
 सना को रण में सामना करती हुई देख कर बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध  
 और गरुड ने अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से मार कर भगा दिये । उनकी ऐसी  
 दशा देख कर वरुण को अत्यन्त क्रोध हुआ और वे तुरन्त ही श्रीकृष्ण के सामने  
 पहुँचे ॥२५-२८॥ उस समय ऋषि देवता, गंधर्व, अप्सरा आदि उनके पीछे  
 पीछे स्तुति करते हुए चल रहे थे ॥२९॥ उनके मस्तक पर जल धारमय श्वेत  
 छत्र और हाथों में श्रेष्ठ धनुष सुशोभित था ॥३०॥

अपापतिरतिक्रुद्ध पुनपीत्रयलान्वित ।  
 आह्वयन्निव युद्धाय विस्फारितमहाधनु ॥३१

स तु प्राध्मापयच्छंखं वरुणः समधावत ।  
 हरिं हर इव क्रद्धो बाणजालैः समावृणोत् ॥३२  
 ततः प्रध्माय जलजं पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।  
 बाणजालैर्दिशः सर्वास्तितश्चक्रे महाबलः ॥३३  
 ततः शरीर्घं विमलं वरुणः पीडितो रणे ।  
 स्मयन्निव ततः कृष्ण वरुणः प्रत्ययुध्यत ॥३४  
 ततोऽस्त्र वैष्णव घोरमभिमन्त्र्याहवे स्थितः ।  
 वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं प्रमुखे तस्य धीमतः ॥३५  
 इदमस्त्र महाघोर वैष्णव शत्रुसूदनम् ।  
 मयोद्यत वधार्थं ते तिष्ठेदानीं स्थिरो भव ॥३६  
 ततोऽस्त्रं वरुणो देवो ह्यस्त्र वैष्णवमुद्यत ।  
 वारुणास्त्रेण स योज्य विननाद महाबल ॥३७

इस प्रकार अपने पुत्र-पौत्रादि के सहित आये हुए वरुण ने घनुप की टकोर कर अपने युद्धोन्मुख होने की सूचना दी और फिर अपने शस्त्र को बजा कर श्रीकृष्ण की ओर वेगपूर्वक झपटे तथा रुद्रदेव के समान भीषण बाण-वृष्टि करके उन्होंने श्रीकृष्ण को सब ओर से ढक दिया ॥३१-३२॥ तब श्रीकृष्ण ने भी अपने पाञ्चजन्य शस्त्र की ध्वनि करके जो विकराल बाण-वर्षा की उससे सभी दिशाएँ त्रस्त हो गई ॥३३॥ श्रीकृष्ण के उन बाणों से अत्यन्त व्याकुल होते हुए भी वरुण उनसे निरन्तर युद्ध कर रहे थे ॥३४॥ तभी भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने वैष्णवास्त्र को अभिमंत्रित करके वरुण से कहा—हे वरुण ! अब तुम्हे नष्ट करने के लिये मुझे इस वैष्णवास्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा । इसलिये, अब तुम सावधानी से युद्ध करो ॥ ३५-३६ ॥ यह सुन कर उस वैष्णवास्त्र को नष्ट करने के विचार से वरुण ने सिहनाद करके अपने वारुणास्त्र का सधान किया ॥३७॥

तस्यास्त्रे वितता ह्यापो वरुणस्य विनि सृताः :

वैष्णवास्त्रस्य शमने वर्त्तंते समितिजयः ॥३८

आपस्तु वारुणास्तत्र क्षिप्ता क्षिप्ता ज्वलन्ति वै ।

दहन्ते वारुणास्तत्र ततोऽस्त्रे ज्वलिते पुनः ॥३९

वैष्णवे तु महावीर्ये दिशो भीता विदुद्रुयुः ।  
 तत्र तज्ज्वलितं दृष्ट्वा वरुणः कृष्णमन्नवीत् ॥४०॥  
 स्मर स्वप्रकृतिं पूर्वमिव्यवतां व्यक्तलक्षणाम् ।  
 तमो जहि महाभाग तमसा मुह्यसे कथम् ॥४१॥  
 सत्त्वस्थो नित्यमासीस्त्वं योगीश्वर महामते ।  
 पञ्चभताश्चयान्दोषानहकारं च वर्जय ॥४२॥  
 या ते वैष्णवी मुतिस्तस्या ज्येष्ठो ह्यहं तव ।  
 ज्येष्ठभावेन मान्यं तु नि मां त्व दग्धुमिच्छसि ॥४३॥  
 नाग्निविक्रमते ह्यग्नौ त्यज कोप युधां वर ।  
 त्वयि न प्रमविध्यामि जगतः प्रभवो ह्यसि ॥४४॥  
 पूर्वं हि या त्वया सृष्टा प्रकृतिर्विकृतात्मिका ।  
 धर्मिणी धीजभावेन पूर्वं धर्मं समाश्रिता ॥४५॥

उस समय वारुणास्त्र से भीषण जल धाराएँ निकल कर वैष्णवास्त्र को निवारण करने के प्रयत्न में लगी, परन्तु उससे ज्यो-ज्यो जल निकल कर वैष्णवास्त्र पर पटना था, त्यो-त्यो घट और भी घबकता जा रहा था। इस प्रकार वारुणास्त्र की जल धाराओं को क्षीण करके वैष्णवास्त्र भयंकर रूप से प्रज्वलित हो उठा, जिसके कारण वरुण की सेना भस्म होने लगी ॥३८-३९॥ उस समय सभी दिशाएँ भयभीत हो गईं और घोर विप्लव की स्थिति उत्पन्न होगई, यह देख कर वरुण ने कहा—हे महाभाग ! आप इस प्रकार तामस बयो कर रहे हैं ? आप अपने पूर्व स्वरूप का स्मरण करके इस तमोगुण का परित्याग करिये ॥४०-४१॥ योगेश्वर ! अब आप पंचभूतों के आश्रित अहंकारादि का त्याग करके सत्त्वगुण को धारण करिये ॥४२॥ आपके दृश्यमान वैष्णव स्वरूप का मैं ज्येष्ठ स्वरूप हूँ, फिर आप मुझे भस्म करने का प्रयत्न क्यों कर रहे हैं ? ॥४३॥ अग्नि अपने पराक्रम को अग्नि पर ही कभी प्रकट नहीं करता, आप इस विश्व के कारण रूप हैं, आप पर मैं तो क्या, कोई भी प्रभुत्व स्थापित करने में समर्थ नहीं है। इसलिये, अब आप अपने क्रोध को छोड़ दीजिये ॥४४॥ पहिले आपने

जिस कार्यभूत माया की रचना की थी, वही माया इस समय इस विश्व की कारणरूप होगई है ॥४५॥

आग्नेयं वैष्णवं सौम्यं प्रकृत्यै वेदमादितः ।  
 त्वया सृष्टं जगदिदं स कथं मयि वर्तते ॥४६  
 अजेयः शाश्वतो देहः स्वयंभूतभावनः ।  
 अक्षरं च क्षरं चैवं भावांभावौ महाद्युते ॥४७  
 रक्ष मां रक्षणीयोऽहं त्वयाऽनघ नमोऽस्तु ते ।  
 आदिकंर्ताऽसि लोकानां त्वयैतद्वहुलीकृतम् ॥४८  
 विक्रीडसि महादेव बालः क्रीडनकर्त्तिव ।  
 न ह्यहं प्रकृतिद्वेषी नाहं प्रकृतिदूषकः ॥४९  
 प्रकृतिर्या विकारेषु वर्तते पुष्पपत्रम् ।  
 तस्या विकारशमने वर्तते त्वं महाद्युते ॥५०  
 विकारो वा विकाराणां विकाराय न तेऽनघ ।  
 तानघर्मविदो मन्दान्भवान्विकुरुते सदा ॥५१  
 इदं प्रकृतिजं दीपस्तमसा मुह्यते यदा ।  
 रजसा वापि संस्पृष्टा तदा मोहः प्रवर्तते ॥५२  
 परावरजः सर्वज्ञ ऐश्वर्यविधिमास्थितः ।  
 किं मोहयसि नः सर्वान्प्रजापतिरिव स्वयम् ॥५३

आपने ही आग्नेय, वैष्णव और सौम्य प्रकृति-युक्त जगत् को रचा है फिर आप ही अपनी सृष्टि के सामने ऐसे भयंकर अस्त्रों का प्रदर्शन करेंगे तो यह जीवित किंग प्रकार रह सकती है ? ॥४६॥ आप अजेय, शाश्वत, स्वयंभू, भूतभावन, अक्षर, क्षर एवं सर्वत्र स्थित हैं ॥४७॥ हे प्रभो ! मैं तो आपके द्वारा रक्षा किये जाने के योग्य हूँ । हे लोगों के कर्ता जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है । आप एक से अनेक होने की सामर्थ्य वाले हैं ॥४८॥ जैसे यात्रक तिलीनी के तप मेनते हैं, वैसे ही आप इस विश्व रूप तिलीने से मेनते हैं । परन्तु, आपके न गोल का प्रयोगन गमल में नहीं आता ॥४९॥ जब प्रकृति में कोई विकार

उत्पन्न हो जाता है, तब उस विकार को दूर करने के लिये ही आप अवतीर्ण होते हैं ॥५०॥ आप में क्रोधादि विकारों की प्रवृत्ति केवल दुष्टों और अर्थात्मियों के भले प्रकार मर्दन करने के निमित्त ही होती है ॥५१॥ इस विश्व के रजोगुण और तमोगुण से व्याप्त हो जाने पर ही मोह की अवतारणा होती है ॥५२॥ हे सर्वज्ञ ! आप ऐश्वर्य में स्थित होकर प्रजापति के समान हम सब को मोहित क्यों कर रहे हैं ? ॥५३॥

वह्णेनैवमुक्तस्तु कृष्णो लोकपरायण ।  
 भावज्ञ सर्ववृद्धीरस्तत प्रीतमना ह्यभूत् ॥५४  
 इत्येवमुक्त कृष्णस्तु प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ।  
 गाव प्रयच्छ मे वीर शान्त्यर्थं भीमविक्रम ॥५५  
 इत्येवमुक्त कृष्णेन वाक्य वाक्यविशारद ।  
 वरुणो ह्यब्रवीद्भूय शृणु मे मधुसूदन ॥५६  
 चाणेन सार्धं समयो मया देव कृत पुरा ।  
 कथं च समयं कृत्वा कुर्या विफलमन्यथा ॥५७  
 तत्रमेव वेद सर्वम्य यथा समयभेदक ।  
 चारिष्व दुष्यते तेन न च सद्भिः प्रशस्यते ॥५८  
 धर्मभागैर्न रो नित्यं वर्ज्यते मधुसूदन ।  
 न च लोकानवाप्नोति पाप समयभेदक ॥५९  
 प्रसीद धर्मलोपश्च मा भूमे मधुसूदन ।  
 न मा समयभेदेन योक्तुमर्हसि माधव ॥६०  
 जीवन्नाह प्रदास्यामि गावो वै वृषभेक्षण ।  
 हत्वा नयस्व मा गाव एष मे समय पुरा ॥६१  
 एतच्च मे समाख्यात समय मधुसूदन ।  
 सत्यमेव महाबाहो न मिथ्या तु सुरेश्वर ॥६२  
 यद्येवाहमनुग्राह्यो रक्ष मा मधुसूदन ।  
 अथ वा गोपु निर्वन्धो हत्वा नय महाभु



वरुण के वचन सुन कर लोक परायण भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर कहा—हे भीम विक्रम वरुण ! इस वर्तमान केश की शान्ति के लिये वाणासुर की गोआ को लाकर हमे दे दो ॥ ५४-५५ ॥ इस पर वाणी विशारद वरुण ने उनसे कहा—हे मधुसूदन ! इससे पहिले ही वाणासुर के ओर मेरे मध्य जो सन्धि हुई थी, उसका उल्लघन करने मे मैं असमर्थ हूँ ॥ ५६ ॥ क्योंकि नियम भग करने वाला पुराण लोक में निन्दित और श्रेष्ठ लोका का अधिकारी नहीं होता ॥ ५६-५९ ॥ इसलिये आप मुझ पर प्रसन्न होकर ऐसा उपाय करिये जिससे मुझे वचन भग का दोष न लगे ॥ ६० ॥ अपने प्राण के रहते हुए उन गोओं को मैं कदापि नहीं दे सकता, यदि आप उन्हे ले जाना चाहते हैं तो पहिले मुझे नष्ट कर दीजिये ॥ ६१ ॥ इस प्रकार जो यथार्थ बात थी वह आपसे कह चुका हूँ ! अब आप चाहें तो मेरी रक्षा करें अथवा मेरा वध करके गोओं को प्राप्त कर लें ॥ ६२-६३ ॥

वरुणेनैवमुक्तस्तु यदूना वशवद्धन ।  
 अभेद्य समय मत्वा न्यस्तवादो गवा प्रति ॥६४  
 स प्रहस्य ततो वाक्य व्याजहारार्थकोविद ।  
 तस्मान्मुक्तोऽसि यद्येव वाणेन समय कृत ॥६५  
 प्रश्रितैर्मधुरैर्वकियैस्तत्त्वार्थमधुभाषितै ।  
 कथ पाप करिष्यामि वरुण त्वय्यह प्रभो ।  
 गच्छ मुक्तोऽसि वरुण सत्यसधोऽसि नो भवान् ॥६६  
 त्वत्प्रियार्थं मया मुक्ता वाणगावो न सशय ।  
 ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणा च महास्वनै ॥६७  
 अर्घ मादाय वरुण केशव प्रत्यपूजयत् ।  
 केशवोऽर्घं तदा गृह्य वरुणाद्यदुनन्दन ॥६८  
 बल चापूजयद्देव कुशलीव समाहित ।  
 वरुणायाभय दत्त्वा वासुदेव प्रतापवान् ॥६९  
 द्वारका प्रस्थित शौरि षचीपतिसहायवान् ।  
 तत्र देवा समस्त ससाध्या सिद्धचारणा ॥७०

गन्धर्वाप्सरसश्चैव किन्नराश्चान्तरिक्षगाः ।

अनुगच्छन्ति भूतेशं सर्वभूतादिमव्ययम् ॥७१

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! वरुण की बात सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका वचन भग न होने देना ही उचित समझा और अन्त में उन्होंने कहा—हे वरुण ! यदि आपकी बाणासुर से इस प्रकार की सधि थी तो मैं उसे नहीं तोड़ूँगा ॥ ६४-६६॥ आपकी रक्षा के लिये बाणासुर की गोएँ मैंने छोड़ दी, अब आप अपने इच्छित स्थान को जाने में स्वतंत्र है । यह सुन कर वरुणा ने प्रसन्न होकर तुरही और भेरी की ध्वनि के साथ भगवान् को अर्घ्य भेंट किया और उनका पूजन किया । इस प्रकार वरुणा को अभयदान देकर इन्द्रादि के सहित द्वाग्वा जा पहुँचे । उस समय सभी देवता, मरुद्गण, साध्य गधर्व, अप्सरा, किन्नर तथा आकाश में विचरण करने वाले सय प्राणी उनके पीछे पीछे चल रहे थे ॥ ६७-७१ ॥

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ यक्षगक्षमा ।

विद्याधरगणश्चैव ये चान्ये सिद्धचारण ।

गच्छन्तमनुगच्छन्ति यशमा विजयेन च ॥७२

नारदश्च महाभाग प्रस्थितो द्वारका प्रति ।

तुष्णो वाणजय हृष्टा वरुण च कलिप्रिय ॥७३

कलासशिखरप्ररयं प्रासादं वदरै शुभ्रं ।

दूरान्निशम्य मधुहा द्वारका द्वारमालिनीम् ॥७४

पाञ्चजन्यस्य निर्घोष चक्रे चक्रगदाधर ।

सज्ञा प्रयच्छते देवो द्वारकापुरवासिनाम् ॥७५

देवानुयाननिर्घोष पाञ्चजन्यस्य नि स्वनम् ।

श्रुत्वा द्वारवती सर्वे प्रहर्षं मतुन्न गता ॥७६

पूर्णकुम्भैश्च लाजैश्च बहुविन्स्तविस्तरै ।

द्वारोपशोभिता कृत्वा सर्वा द्वारवती पुरीम् ७७

आदित्य वसु रुद्र, अश्विद्वय, यक्ष, राक्षस सिद्ध, नारद आदि केद्वारा श्रीकृष्ण

की विरुदावलि गाई जा रही थी ॥७२॥ देवपि नारद भी बाणासुर को जीतने और वरुण पर उपकार करने वाली लीलाओ को देखकर प्रसन्न होते हुए उनके साथ-साथ चल रहे थे ॥ ७३ ॥ कंलाश शिखर के समान ऊँची अट्टालिकाओं वाली द्वारकापुरी को दूर से देखकर भगवान ने अपने पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि की ॥७४-७५॥ उस ध्वनि को सुन कर भगवान के द्वारका आगमन की सूचना पाकर द्वारकावासी अत्यंत हर्षित हुए ॥ ७६ ॥ सम्पूर्ण नगरी कलश धान और विविध पुष्पमालाओ से सुसज्जित की गई थी, इस प्रकार प्रत्येक द्वार पर अनेको मांगलिक पदार्थ शोभा दे रहे थे ॥ ७७ ॥

सुश्लिष्टरथ्यां सश्रीकां बहुरत्नोपशोभिताम् ।  
 विप्राश्चाघं समादाय यथैव कुलनगमाः ॥७८  
 जयशब्दैश्च विविधैः पूजयन्ति स्म माधवम् ।  
 वैनतेये तमासीनं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥७९  
 ववन्दिरे तदा कृष्णं श्रिया परमया युतम् ।  
 तमानुपूर्व्या पूर्णाश्च पूजयन्ति महाबलम् ॥८०  
 अनन्तं केशिहन्तारं श्रेष्ठिपूर्वाश्च श्रेणयः ।  
 ऋषिभिर्देवगन्धर्वैश्चारणश्च समन्ततः ॥८१  
 स्तूयते पुण्डरीकाक्षो द्वारकोपवने स्थितः ।  
 तदाश्चर्यमपश्यन्त दाशार्हगणसत्तमा ॥८२  
 प्रहर्षमतुलं प्राप्ता दृष्ट्वा कृष्णं महाभुजम् ।  
 बाणं जित्वा महादेवमायान्तं पुरुषोत्तमम् ॥८३  
 द्वारकावासिनां वाचश्चरन्ति बहुधा तदा ।  
 आप्ते कृष्णे महाभागे यादवानां महारथे ॥८४  
 गत्वा च दूरमध्वानं सुपर्णो द्रुतमागतः ।  
 प्रन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मो येषां वै जगतः पिता ॥८५

शरका के सभी मार्ग रत्नमालादि से सजाये गये थे, ब्राह्मण अर्घ्य पात्र शक्ति-पाठ करने लगे और बन्दीजनों ने स्तुति-गान का प्रारम्भ किया

॥ ७८-८० ॥ सभी वलों के पुरवागी जनों ने पवित्र बद्ध होकर उनका पूजन प्रारम्भ किया। भगवान् श्रीकृष्ण जैसे ही द्वारका के उपवन में आये वैसे ही ऋषि, देवता, गणर्व और चारुणादि ने श्रौच प्रारम्भ किया, उत गमय द्वारका वासी अत्यन्त हर्षित और विस्मित हो रहे थे तथा सभी लोग परस्पर में बह रहे थे कि भगवान् श्रीकृष्ण बाणामुर् को जीत कर आये हैं, जब वे जगदीश्वर स्वय ही हमारी रक्षा और पालन करते हैं, तो हमारे गमान् धन्य एव अनुपहीत और शीत हो सकता है ? ॥८१-८५॥

रक्षिता च व गोप्ता च दीर्घवाहृर्महाभुज ।  
 वनतेय समारह्य जित्वा वाण सुदुर्जयम् ॥८६  
 प्राप्तोऽप्य पुण्डरीवाक्षो मनास्वाह्लादयन्निव ।  
 एव कथयतामेव द्वारकावासिना तदा ॥८७  
 वासुदेवगृहं देवा विविशुस्त महारथा ।  
 अवतीर्य सुपर्णात्तु वासुदेवो यलस्नदा ॥८८  
 प्रद्युम्नश्च निरुद्रश्च गृहान्प्रविविशुस्तदा ।  
 ततो देवविमानानि स चरन्ति तदा दिवम् ॥८९  
 अवस्थितानि दृश्यन्ते नानारूपाणि सर्वश ।  
 हसर्पममृगैर्नागैर्नाजिसारसर्वाह्लै ।  
 भास्वान्ति तानि दृश्यन्ते विमानानि सहस्रश ॥९०

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हमारे रक्षक हैं, आज वे बाणामुर् को पराजित करके अपने गहड वाहन से यहाँ पधार कर हमारे हृदयो को सुख प्रदान करेंगे। द्वारका की जनता में इस प्रकार का वार्तालाप चल रहा था, तभी गहड की पीठ से उतर कर महारथी, बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भगवान् वासुदेव के भवन में गये। उस समय देवताओं के सहस्रो दिव्य विमान आकाश में छा रहे थे। वे विमान हंस, ऋषभ, मृग, नाग, अश्व, सारस और मयूर आदि के आकार के तथा अत्यन्त शोभायुक्त थे ॥८६-९०॥

अथ कृष्णोऽन्नवीद्वावय कुमारास्तान्सहस्रश ।  
 प्रच्छुम्नादीन्समस्ताम्बु श्लक्ष्ण मधुरयागिरा ॥ ६१  
 एते रुद्रास्तथादित्या वसवोऽथाश्विनावरि ।  
 साध्या देवास्तथाऽन्ये च वन्दध्व च यथाक्रमम् ॥ ६२  
 सहस्राक्ष महाभाग दानवाना भयकरम् ।  
 वन्द व सहिता शक्र सगण नागवाहनम् ॥ ६३  
 सप्तर्षयो महाभाग भृग्वान्ङ्गिरसमाश्रिता ।  
 ऋषयश्च महात्मानो वन्दध्व च यथासुखम् ॥ ६४  
 एते चक्रधराश्चैव तान्वन्दध्व च सर्वश ।  
 सागराश्च ह्लादाश्चैव मत्प्रियार्थमिहागता ॥ ६५  
 दिशश्च विदिशश्चैव वन्दध्व च यथाक्रमम् ।  
 वासुकिप्रमुखाश्चैव नागा वै सुमहावला ॥ ६६  
 गावश्च मत्प्रियार्थं वै वन्दध्व च यथाक्रमम् ।  
 ज्योतीष सह नक्षत्रैर्यक्षगक्ष किन्नरै ॥ ६७  
 आगता मत्प्रियार्थं वै वन्दध्व च यथाक्रमम् ।  
 वासुदेवश्च श्रुत्या कुमारा प्रणता स्थिता ॥ ६८  
 यथाक्रमेण सर्वेषा देवताना महात्मनाम् ।  
 सर्वान्दिवोकसो दृष्ट्वा पीरा विस्मयमागता ॥ ६९  
 पूजयार्थमथ समागन्प्रगृह्य द्रुतमगता ।  
 अहो सुमहदाश्चर्यं वामुदवस्य मथयात् ॥ १००

उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ उपस्थित महद्यो पादव कुमारों को  
 लक्ष्य करके कहा—ह युवको । इन समय रुद्र, आश्विन, वसु, अश्विद्वय, साध्य,  
 देवता, इन्द्र, सप्तर्षि, महर्षि, चन्द्रवर, गमुद्र, सरोवर दिना, विदिना, वामुकि  
 आदि नाग, धेनु, नक्षत्र, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि हमारी गुप्त वृद्धि के  
 हेतु यहाँ पधारे हैं । इगलिये, तुम इन गवकी वन्दना करो । यह गुप्त कर उन  
 सभी युवका ने उन गव की एक एक करके वन्दना की । उन देवताओं को इन  
 प्रकार यहाँ आये दत्त कर सभी द्वारवावासी अत्यन्त विस्मित हुए और उन्होंने

पूजन-सामग्री एकत्र की और परस्पर में कहने लगे कि भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रय में रह कर हमने यह अत्यन्त विस्मयजनक दृश्य देखा ॥६१-१००॥

प्राप्यते यदिहास्माभिरिति वाचञ्चरन्त्युत ।  
 ततश्चन्दनचूर्णञ्च गन्धपुष्पञ्च सर्वशः ॥१०१  
 किरन्ति पौराः सर्वास्तान्पूजयन्तो दिवीकसः ।  
 लाजैः प्रणामैर्द्रुपैश्च वाद्यध्वनियमैस्तथा ॥१०२  
 द्वारकावासिनः सर्वे पूजयन्ति दिवीकसः ।  
 आहुकं वासुदेवं च साम्ब च यदुनन्दनम् ॥१०३  
 सात्यकिं चोल्मुकं चैव विपृथुं च महाबलम् ।  
 अक्रूरं च महाभागं तथा निपद्यमेव च ॥१०४  
 एतान्प्रिष्वज्य तदा मूर्ध्नि चाध्याय वासवः ।  
 अथ शक्रो महाभाग समक्ष गदुमण्डले ॥१०५  
 स्तुवन्त केशिहन्तार तत्रोवाचोत्तरं वच ।  
 सात्वतः सात्वतामेव सर्वेषां यदुनन्दनम् ॥१०६  
 मोक्षयित्वा रणे चैव यशसा पौरुषेण च ।  
 महादेवस्य मिपत्तो गुहस्य च महात्मनः ॥१०७  
 एष बाणं रणे जित्वा द्वारका पुनरागतः ।  
 सहस्रबाहोर्बाहूना कृत्वा द्वयमनुत्तमम् ॥१०८

इस प्रकार हर्षित और विस्मित हुए पुर वासियो ने उन देवताओं पर चन्दन, पुष्प एवं गंध आदि की वर्षा की। धान अर्पित किया, धूप प्रदान की, फिर प्रणाम और स्तुति-गायन आदि किया ॥१०१-१०२॥ इस प्रकार द्वारका वासियों से पूजित इन्द्र ने आहुक, वासुदेव, साम्ब, उल्मुक, विपृथु, अक्रूर और निपद्य का आलिंगन किया और उनके मस्तकों को सूँघ कर सभी यादवों से कहने लगे— हे यादवगण ! तुम्हारे श्रीकृष्ण ने भगवान् रुद्र और स्वामि कातिकेय से युद्ध किया तथा बाणासुर को हरा कर यह यहाँ आये हैं । बाणासुर की हजार भुजाओं में से केवल दो भुजाएँ ही इन्होंने शेष छोड़ी थी ॥१०३-१०८॥

स्वापयित्वा द्विवाहुत्वे प्राप्तोऽयं स्वपुरं हरिः ।  
 यदर्थं जन्म कृष्णस्य मानुषेषु महात्मनः ॥१०८  
 तदप्यवमित्तं कार्यं नष्टशोका वयं कृताः ।  
 पिबता मधु माध्वीकं भवता प्रीतिपूर्वकम् ॥११०  
 कालो यास्यत्यविरसं विषयेऽत्रैव त्यज्यताम् ।  
 बाहुना सश्रयात्सर्वे वयमस्य महात्मनः ॥१११  
 प्रणष्टशोका र स्वामः सर्वे एव यथामुखम् ।  
 एव स्तुत्वा सहस्राक्षं केतव दानवान्तकम् ॥११२  
 आपृच्छ्य तं महाभागः सर्वदेवगणं वृतः ।  
 ततः पुनः परिष्वज्य कृष्णं लोकनमस्कृतम् ।  
 पुरन्दरो दिव यात सह देवमरुद्गणं ॥११३  
 ऋषयश्च महारथानो जषाशीर्षिर्महोजसम् ।  
 यथागतं पुनर्याता यक्षराक्षसकिन्नराः ॥११४

जिस कार्य के लिये इ होने मनुष्य देह धारण किया था, वह कार्य प्रायः पूर्ण होगा । हमारे भी गडक नष्ट होगये, अब आप सभी आनंद पूर्वक यहाँ निवास करो ॥ १०९-११० ॥ इनके बाहुबल के आश्रय में सब सुख से रहेंगे । इस प्रकार बहते हुए इंद्र ने श्रीकृष्ण की अनुमति लेकर सब देवताओं के सहित अपने लोभ को प्रस्थान किया ॥१११-११२॥ जो ऋषिगण वहाँ आये थे वे भी उन्हें आशीर्वाद देकर चले गये तब यक्ष, राक्षस और किन्नरादि भी उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने स्थान को गये ॥ ११४ ॥

# भविष्य-पर्व

॥ जनमेजय की संतति ॥

जममेजयस्य के पुत्राः पठन्ते लोमहर्षणे ।  
कस्मिन्प्रतिष्ठितो वशः पाण्डवानां महात्मनाम् ॥१  
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पर वीतूहलं हि मे ।  
त्वत्तः कथयतः सव देव्यं घहं तत्परिस्फुटम् ॥२  
पारीक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्यभूवतुः ।  
चन्द्रापीडश्च नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित् ॥३  
चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमघन्विनाम् ।  
जनमेजय इत्येवं क्षात्र भुवि परिश्रुतम् ॥४  
तेषां श्रेष्ठस्तु राजाऽऽसीत्पुरे वाराणसाह्वये ।  
सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः ॥५  
सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ।  
अपुत्रः स तु धर्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥६  
तस्माद्दहनगताद्गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ।  
सुचारोदुहिता सुधूर्मालिनी भ्रातृमालिनी ॥७

शौनक ने कहा—हे लोमहर्षण पुत्र ! आप सभी शास्त्रों में पारंगत एवं सर्वज्ञाता हैं, इसलिये अब जनमेजय की संतति और उनके किस पुत्र के द्वारा पाण्डुवश प्रतिष्ठित हुआ, सो कहिये । इस कथा को सुनने की मुझे अत्यंत इच्छा ॥१-२॥ सौति ने कहा—हे मुने ! महाराज जनमेजय की काश्या नाम की भार्या से दो पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम चन्द्रापीड और सूर्यापीड थे । जिनमें से चन्द्रापीड तो राज्यपद पर



चन्द्रपीड के महावीर घनुर्धारी एक सौ पुत्र हुए, उन्हीं से जनमेजय का वंश प्रतिष्ठित हुआ ॥४॥ उन सौ में से सबसे बड़ा जो सत्यकर्ण नामक पुत्र था, हस्तिनापुर का राजा हुआ । वह अत्यंत उदारचेता तथा विपुल दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठाता था ॥५॥ उसका भाई श्वेतकर्ण अत्यंत बली, पराक्रमी तथा धर्मज्ञ किन्तु पुत्र-हीन था, इसलिये अनेक भ्राताओं वाली भार्या मालिनी के सहित वन-वासी हो गया ॥६॥ परंतु वन में निवास करनी हुई मालिनी के गर्भ रह गया ॥ ७ ॥

स तु जन्मनि गर्भस्य श्वेतकर्णं प्रजेश्वरम् ।  
 अन्वगच्छद्गतं पूर्वमहाप्रस्थानमच्युतम् ॥८  
 सा दृष्ट्वा सम्प्रयात त मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात् ।  
 पथि सा सुपुत्रे सुभ्रूवने राजीवलोचनम् ॥९  
 कुमारं तं परित्यज्य भर्तारिं चान्वगच्छत् ।  
 पतिव्रता महामागा द्रौमदीव पुरा पतीन् ॥१०  
 स तु राजकुमारोऽसी गिरिकुञ्जे रुरोद ह ।  
 छायायं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्समन्ततः ॥११  
 श्रविष्ठायाश्च पुत्री द्वौ पिपलादश्च कौशिकः ।  
 दृष्ट्वा कृपान्वितो गृह्य त प्रक्षालयतां जलैः ।  
 निघृष्टो तस्य तौ पार्श्वौ शिलायां रुधिरप्सुतो ॥१२  
 अजश्यामौ तु पार्श्वौ तावुभावपि समाह्वितौ ।  
 तथैव तु समाह्व्यौ अजपार्श्वस्ततोऽभवत् ॥१३  
 ततोऽजपार्श्व इति तौ चक्राते तस्य नाम ह ।  
 स तु वेमनशालायां द्विजाभ्यामभिवर्धितः ॥१४

गर्भ के लक्षण प्रकट होते ही श्वेतकर्ण ने पूर्ण गुरुओं के पथ का ध्वंसम्बन्धन करते हुए महा प्रस्थान की इच्छा की ॥८॥ जब मालिनी ने यह देखा कि उसके पति महा प्रस्थान कर रहे हैं, तो यह भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ी । कुछ दूर चलने पर ही उाँदे एक पथ के समान क्षेत्र यात्रा पुत्र उत्पन्न हुआ,

परतु मालिनी ने उम पुत्र को बही पडा छोड कर जाने पति का ही अनुसरण किया ॥६-१०॥ मार्ग मे पडा हुआ वह बालक उस पर्वत कुज मे रुदन करने लगा, तभी उमकी छाया करने के लिये उनके ऊपर सप्त ओर से बादल छा गये ॥११॥ उसके कुछ समय पश्चात् ही महर्षि पिप्पलाद और कौशिक वहाँ आये, उन्होने उस बालक को देखकर दयावश उठा लिया और उसके देह का भले प्रकार प्रक्षानन करा । परतु उसके दोनो पाश्वो मे कुल्ल रक्त लगा रह गया, इस लिये उन्होने उन पार्श्व भागों को घिसा, जिसके कारण वह अग बकरे के समान काले रंग के हो गये । इमलिये वह बालक 'अजपाश्व' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । फिर वे दोनो महर्षि उस बालक को महर्षि वेमक के आश्रम मे लाकर उसका पालन पोषण करने लगे ॥१२-१४॥

वेमकस्य तु भार्या तमुद्वहत्पुत्रकारणात् ।

वेमक्या स तु पुत्रोऽभूद्ब्राह्मणी सचिवी च तौ ॥१५

तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविन ।

स एष पौरवो वश पाण्डवाना प्रतिष्ठित ॥१६

श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽय नाहुषेण ययातिना ।

जरासत्रमणे पूर्वं भृश प्रीतेन धीमता ॥१७

आचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदपि न सशय ।

अपौरवा न तु मही भविष्यति कदाचन ॥१८

महर्षि वेमक की भार्या वेमकी ने भी उस बालक का पालन पोषण अपने पुत्र के समान किया । इस प्रकार अजपाश्व वेमक-पत्नी का पुत्र बन गया तथा विप्रवर पिप्पलाद और कौशिक उसके मन्त्री हुए ॥१५॥ उनकी पुत्र-पौत्रादि रूप सत्तान समकालीन हुई तथा उनसे ही पाण्डवो का पौरव वश प्रतिष्ठित हुआ ॥१६॥ पूर्वं कालीन नहुपतनय राजा ययाति ने भी अपनी वृद्धावस्था की प्राप्ति पर इस श्लोक को कहा था—ब्रह्म सूर्य-चन्द्रादि ग्रहो से आच्छादित यह पृथिवी रहेगी, तब तक पुरुवश का कभी लोप न होगा ॥१७-१८॥

## ॥, जनमेजय-व्यास सवाद ॥

उक्तोऽयं हृग्विशस्ते पर्वणि निखिलानि च ।  
 यथा पुरोक्तानि तथा व्यासशिष्येण धीमता ॥१  
 तत्कथ्यमानममिनमितिहाससमन्वितम् ।  
 प्रीणात्प्रस्मानभृतवत्सर्वपापविनाशनम् ॥२  
 सुद्विभ्राव्यतया धीर मनो ह्लादयतीव न ।  
 जनमेजयस्तु नृपति श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् ।  
 सीते किमकरोत्पश्चात्सर्पसत्रादनन्तरम् ॥३  
 जनमेजयस्तु स नृप श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् ।  
 यदारभत्तदाख्यास्ये सर्पसत्रादनन्तरम् ॥४  
 तस्मिन्सद्ये ममाप्तेऽथ राजा पारीक्षितस्तदा ।  
 यष्टु स वाजिमेधेन सम्भारानुपचक्रमे ॥५  
 ऋत्विक्पुरोहिताचार्यानाहूयेदमुवाच ह ।  
 यक्ष्येऽहं वाजिमेधेन हय उत्सृज्यतामपि ॥६  
 ततोऽस्य विज्ञाय चिकीर्षित तदा कृष्णो महात्मा सहसाऽऽजगाम ।  
 पारीक्षित द्रष्टुमदीनसत्त्व द्वैपायन सर्वंपरावरज्ज् ॥७

शौनक जी ने कहा—पूर्वकाल में व्यास जी के शिष्य श्री वैशम्पायन जी ने हरिवंश की जो कथा बही थी, वह उसी प्रकार आपने भी कही है ॥१॥ इस पापों के नाशक इतिहासमय हरिवंश के श्रवण से हमको अत्यन्त आनन्द हुआ है ॥२॥ इन कथा को सुनकर आनन्दतिरेक के कारण हमारा मन आर्द्र हो उठा है और अब हम यह जानने के लिये उत्सुक हैं कि राजा जनमेजय ने इसे सुनने के बाद क्या काय किया ? ॥३॥ सीते ने कहा—हे मुने ! सर्पयज्ञ के पश्चात् इस श्रेष्ठ वृत्तान्त को सुनकर राजा जनमेजय ने जो बुद्ध किया, वह महता है, मुनिये ॥४॥ सर्पयज्ञ के बाद अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये राजा जनमेजय ने यज्ञ-सामग्री एकत्र करने का आदेश दिया ॥५॥ फिर उन्होंने ऋत्विक्, पुरोहित और ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे कहा—हे भगवन् ! अब

मेरी इच्छा अश्वमेध यज्ञ करने की है, इसलिये अब अश्व का छोड़ा जाना उचित है ॥६॥ यह बात चल ही रही थी, तभी महर्षि कृष्णद्वैपायन राजा जनमेजय द्वारा अश्वमेध करने का विचार जानकर उनसे पास आये ॥७॥

पारीक्षितस्तु नृपतिद्वेषा तमृषिमागतम् ।  
 अर्घ्यंपाद्यासन दत्त्वा पूजयामास शास्वत ॥८॥  
 तौ चोपविष्टावभित सदस्यास्तस्य शौनक ।  
 कथा बहुविधाश्चित्राश्चक्राते देवसहिता ॥९॥  
 तत कथान्ते नृपतिर्नोदयामाम त मुनिम् ।  
 पितामह पाण्डवानाभात्मन प्रपितामहम् ॥१०॥  
 महाभारतमाख्यान वद्वथं श्रुतिविस्तरम् ।  
 निमेपमात्रमपि मे सुखश्राव्यतया गतम् ॥११॥  
 विभूतिविस्तरकर सर्वेषा वै यशस्करम् ।  
 त्वया सुविहित ब्रह्मञ्छङ्खे क्षीरमिवाहितम् ॥१२॥  
 अमृतेन तु तृप्तिं स्याद्यथा स्वर्गसुखेन च ।  
 तथा तृप्तिं न गच्छामि श्रुत्वैमा भारती कथाम् ॥१३॥  
 अनुमान्य तु सर्वज्ञ पृच्छामि भगवन्तहम् ।  
 हेतु कुरूणा नाशस्य राजसूयो मतो मम ॥१४॥  
 दुःसहाना यथा ध्वसो राजन्यानामुपप्लवे ।  
 राजसूय तथा मन्ये युद्धार्थमुपकल्पितम् ॥१५॥

महर्षि को आया देखकर राजा ने उठ कर उन्हें अर्घ्य, पाद्य, आसन निवेदन किया और फिर उनकी यथाविधि पूजा की ॥८॥ फिर सब के यथोचित स्थान पर बैठ जाने पर महर्षि कृष्ण द्वैपायन और उपस्थित अन्य विप्र-श्रेष्ठों में वेदादि विषयक बातों आरंभ हुई ॥९॥ अनेक प्रकार के वार्तालाप के पश्चात् राजा जनमेजय ने अपने उन प्रपितामह महर्षि व्यास से कहा ॥१०॥ हे भगवान् ! सुनने में विस्तृत और सर्वार्थपूर्ण उस महाभारत नामक इतिहास का पूरे एक सप्ताह तक श्रवण किया परंतु वह इतना आनन्दप्रद था कि एक वृष भी एक

निमेष के समान ही बीत गया ॥११॥ दूध से भरे हुए शख के समान इस ऐश्वर्य का विधान करने वाले तथा यज्ञ प्राप्त कराने वाले इस महाभारत नामक श्रेष्ठ इतिहास को आपने रचा है ॥१२॥ जैसे स्वर्गीय सुख के उपभोग और अमृत के पान से किसी की इच्छा पूर्ण नहीं होती, वैसे ही महाभारत की कथाओं को बारवार सुनकर भी अभी तक तृप्ति नहीं हुई है ॥१३॥ आप सर्वज्ञ हैं, इस लिये मैं आपसे कौरव वंश के नाश का कारण जानना चाहता हूँ । अकेले राजसूय यज्ञ में ही बहुतेरे क्षत्रिय नष्ट हो गये इसलिये उनके नाश का कारण मैं राजसूय यज्ञ को ही समझता हूँ ॥१४-१५॥

राजसूयस्तु सोमेन श्रूयते पूर्वमाहृतः ।

तस्यान्ते सुमहद्युद्धमभवत्तारकामयम् ॥१६

आहृतो बरुणेनाथ तस्यान्ते सुमहाक्रतोः ।

देवासुर महायुद्धं सर्वभूतक्षयावहम् ॥१७

हरिश्चन्द्रश्च राजर्षिः क्रतुमेनमुपाहरत् ।

तत्राप्याडीवकं नाम युद्धं क्षत्रियनाशनम् ॥१८

ततोऽनन्तरमार्गेण पाण्डवेनातिदुस्तरः ।

महाभारत आरम्भः सम्भृतोऽग्निरिव क्रतुः ॥१९

तदस्य मूलं युद्धस्य लोकाक्षयकरस्य तु ।

राजसूयो महायज्ञः किमर्थं न निवारितः ॥२०

राजसूयो ह्यसंहार्यो यज्ञाङ्गैश्च दुरत्ययैः ।

मिथ्या प्रणीते यज्ञाङ्गैः प्रजानां सक्षयो ध्रुवः ॥२१

भवानपि च सर्वेषां पूर्वेषां नः पितामहः ।

अतीतानागतज्ञश्च नाथश्चादिकरश्च नः ॥२२

ते कथं भवता नेत्रा बुद्धिमन्तश्च्युता नयात् ।

अनाथा ह्यपराध्यन्ते कुनेतारश्च मानवा ॥२३

सुना गया है कि प्राचीन काल में इस यज्ञ का आरंभ अश्वमेध से किया था, तब यज्ञ के अन्त में अत्यन्त घोर तारुण्यव संधाम की प्राप्ति हुई थी ॥१६॥

फिर वरुणदेव ने जो राजसूय यज्ञ किया था, उसके अन्त में भी सब प्राणियों का सहारक देवासुर युद्ध हुआ था ॥१७॥ तदनन्तर इस महायज्ञ को राजपि हरिश्चन्द्र ने किया था, जिसमें वसिष्ठ ने आड़ी और विश्वामित्र ने बगुले का रूप धारण किया था । उस समय भी क्षत्रियों के सहार का कारण यह राजसूय यज्ञ ही हुआ था ॥१८॥ इसलिये मैं तो यही समझता हूँ कि महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के कारण ही महाभारत युद्ध की प्राप्ति हुई होगी ॥१९॥ आप मेरे पूर्व पुरपों के पितामह हैं, इसलिये हमारे आदि पुरुष तथा सर्वज्ञ भी हैं और राजसूय यज्ञ का भले प्रकार सम्पन्न किया जाना अत्यंत दुष्कर है तथा विघ्न होने पर प्रजा के नष्ट होने का संकट भी सभाध्य है इसका पूर्ण ज्ञान होने पर भी आपने सप्तर को क्षीण करने वाले घोर युद्ध के कारण रूप राजसूय यज्ञ को बयो होने दिया ? ॥२०-२२॥ कुनेता के चक्र में पडकर ही अनाय पुरुष अपराधी हो जाते हैं, इसलिये आपने उनके नेता होकर भी उन्हें नीति-मार्ग से भ्रष्ट बयो होने दिया ? ॥२३॥

कालेन विपरीतास्ते तव पूर्वपितामहः ।  
 न मा भविष्य पृच्छन्ति न चापृष्टो ब्रवीम्यहम् ॥२४  
 सामर्थ्यं च न पश्यामि भविष्यस्य निवर्तने ।  
 परिहर्तुं न शक्या हि कालेन विहिता गतिः ॥२५  
 त्वया त्विदमह पृष्टो वक्ष्याम्यागन्तु भावि यत् ।  
 अवश्यं बलवान्कालः श्रुत्वाऽपि न करिष्यसि ॥२६  
 न संरम्भान्न चारम्भान्न वै स्थास्यसि पौरुषे ।  
 लेखा हि काललिखिता सर्वथा दुरतिक्रमाः ॥२७  
 अश्वमेधः क्रतुश्रेष्ठः क्षत्रियाणा परिश्रुतः ।  
 ते भावेन ते यज्ञं वासवो धर्षयिष्यति ॥२८  
 यदि तच्छक्यत राजन्परिहर्तुं कथंचन ।  
 दैवं पुरुषकारेण मा यजेथाश्च त क्रतुम् ॥२९  
 न चापराधः शक्यस्य नोपाध्यायगणस्य ते ।  
 न च वा यजमानस्य कालोऽज्ञ दुरतिक्रमः ॥३०

वेद व्यास जी ने कहा—हे बत्स ! तुम्हारे पूर्व पितामह काल के वशी-भूत होकर अपना श्रेष्ठ मार्ग छोड़ बैठे थे । उन्होंने भविष्य के विषय में मुझसे कभी कुछ नहीं पूछा और जब तक मुझसे कोई कुछ बात न पूछे तब तक मैं कुछ बताता नहीं ॥२४॥ फिर जो होने वाली बात थी, उसे मैं रोक भी कैसे सकता था ? क्योंकि काल की गति रोकनी नहीं जा सकती ॥२५॥ यदि तुम मुझसे पूछना चाहो तो मैं भविष्य की बात बता सकता हूँ, परन्तु उसे जान कर भी मेरे अनुसार कार्य नहीं कर सकोगे ॥२६॥ क्योंकि काल कभी भी भयभीत अथवा उत्साह का वशवर्ती नहीं होता, उसका लेख किसी प्रकार मिटाया नहीं जा सकता ॥२७॥ क्षत्रियो के लिये अश्वमेध यज्ञ सर्वश्रेष्ठ बताया गया है, परन्तु तुम्हारे अश्वमेध यज्ञ में सुरराज इन्द्र विघ्न उत्पन्न कर देंगे ॥२८॥ यदि किसी प्रकार अपने पुरुषार्थ से दैव का उल्लंघन भी किया जा सके, तो भी तुम इस यज्ञ को मत करो ॥२९॥ तुम्हारे उस यज्ञ में इन्द्र, उपाध्याय और यजमान—किसी का कोई दोष न होने पर भी काल की अबाध गति ही उसका लोप कराने में प्रमुख होगी ॥३०॥

तस्य सस्थाकृतमिदं कालस्य परमेष्ठिनः ।  
 यथादृष्ट प्रजासर्गं गमिष्यति युगक्षये ॥३१  
 तथा यज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः ।  
 यत्प्रणेय निबोधस्व त्रैलोक्य सचराचरम् ॥३२  
 निवृत्तावश्वमेधस्य किं निमित्तं भविष्यति ।  
 श्रुत्वा परिहरिष्यामि भगवन् यदि मन्यसे ॥३३  
 निमित्तं भविता तत्र ब्रह्मकोपकृतं प्रभो ।  
 यतेथा परिहृतु त्वमित्येतद्ब्रह्मस्तु ते ॥३४  
 त्वया वृत्तं क्रतुं चैव वाजिमेध परंतप ।  
 क्षत्रिया नाहरिष्यन्ति यावद्भूमिर्घरिष्यति ॥३५  
 निवृत्तावश्वमेधस्य ब्रह्मशापान्निजेजसा ।  
 अहं निमित्तमिति मे भयं तौघं तु जायते ॥३६

कथं ह्यकीर्त्या युज्येत सुवृत्ती मद्धिधो जन ।  
 लोकानुत्सहते गन्तु ख सपाश इव द्विज ॥३७  
 यथा ह्यनागतमिदं दृष्टमस्य प्रणाशनम् ।  
 यद्यस्ति पुनरावृत्तिर्यज्ञस्याश्वासयस्व माम् ॥३८ ।

काल के बल से तुम्हारे यज्ञ के नष्ट होने का विधान पहिले से ही विधाता द्वारा उभी प्रकार निश्चित हो चुका है, जिस प्रकार प्रलय के पश्चात् पुन मृष्टि होना निश्चित है । भविष्य में ब्राह्मण ही यज्ञ फल के बेचने वाले हो जायेंगे, इस प्रकार एतार का सभी कार्य काल के ही वश में है ॥३१-३२॥ यह सुन कर जनमेजय ने कहा—हे भगवन् ! मेरे अश्वमेध यज्ञ में उपस्थित होने वाले विघ्न का यदि आप कारण बताने की कृपा करें तो मैं उसका निवारण करने का कोई यत्न करूँ ॥३३॥ इस पर व्यास जी बोले—हे राजन् ! यज्ञ के असफल होने का एक मात्र कारण ब्राह्मणों का क्रोध ही है, इसलिये तुम उस ब्रह्म क्रोधानल के निवारण का ही उपाय करना इसी से तुम्हारा कल्याण होगा ॥३४॥ जिस अश्वमेध यज्ञ को तुम करने जा रहे हो, उसे जब तक यह पृथिवी स्थित रहेगी, तब तक कोई भी शत्रिय पूर्ण करने में समर्थ न हो सकेगा ॥३५॥ तब जनमेजय ने कहा—जिस ब्रह्मकोप की अग्नि के प्रज्वलित होने से यज्ञाग्नि का निवारण हो जाता है उसका कारण मैं ही बनूँगा, यह जानकर मैं अत्यंत भयभीत हो रहा हूँ ॥३६॥ क्योंकि मेरे जेना पुष्यकर्मा पुरुष इस प्रकार के बलक के कारण जाल में बँधे हुए पक्षी के समान परलोक में जाने का साहस किस प्रकार कर सकेगा ? ॥३७॥ इसलिये जिस प्रकार आपने यज्ञ में उपस्थित होने वाले विघ्नो को दिखाया है, उसी प्रकार यज्ञ की पुनरावृत्ति का उपाय भी मुझसे कहिये ॥३८॥

उपात्तायज्ञो देवेषु ब्राह्मणेपुपपत्स्यते ।  
 तेजसा व्याहृत तेजस्तेजस्येवावतिष्ठते ॥३९  
 औद्भिज्जो भविता कश्चित्सेनानी कश्यपो द्विज ।  
 अश्वमेध बलियुगे पुन प्रत्याहरिष्यति ॥४०



तद्युगे तत्कुलीनश्च राजसूयमपि क्रतुम् ।  
 आहरिष्यति राजेन्द्र श्वेतग्रहमिवान्तक ॥४१॥  
 यथा बल मनुष्याणा कर्तृणा दास्यते फलम् ।  
 युगान्तद्वारमृषिभि सवृत विचरिष्यति ॥४२॥  
 तदाप्रभृति हास्यन्ति नृणा प्राणा पुराकृती ।  
 न निर्वातिष्यते लोके वृत्तान्तावर्तनेष्विह ॥४३॥  
 तदा सूक्ष्मो महोदको दुस्तरो दानमूलवान् ।  
 चतुराश्रम्यशियिलो धर्मं प्रविचलिष्यति ॥४४॥  
 तदा ह्यल्पेन तपसा सिद्धिं प्राप्स्यन्ति मानवा ।  
 धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥४५॥

व्यास जी ने कहा—हे वत्स ! जैसे तेज से विनष्ट हुआ तेज, तेज में ही लीन हो जाता है, वैसे ही नष्ट हुआ यज्ञ देवताओं और ब्राह्मणों में ज्ञान रूप से स्थित रहता है ॥३९॥ नविष्य मे कलिकाल की प्राप्ति होने पर पृथिवी के गर्भ से उत्पन्न कश्यप गोत्रिय सेनानी ब्राह्मण होगा, वही सत्तार में अश्वमेध यज्ञ की पुनरावृत्ति करेगा ॥४०॥ उसके पश्चात् जैसे प्रलय काल के आने पर उद्धार करने वाला श्वेतग्रह पुन आविर्भूत होता है, वैसे ही उसी ब्राह्मण के वश में जन्म धारण करने वाला कोई महात्मा उस यज्ञ की पुन अवतारणा करेगा ॥४१॥ उस समय पूर्व प्रकृति विलीन होकर इन्द्रियो में विपरीत भाव की उत्पत्ति करेगी, जिससे मनुष्यों का आचरण दूषित हो जायगा ॥४२॥ दान मूलक आचरण कठिन होगा, फिर भी धर्म के अल्प आचरण से ही महान् फल की प्राप्ति हो जाय करेगी । उस समय चारों आश्रमों के नियम शिथिल हो जायेंगे और अल्प तपस्या से ही मनुष्यों को सिद्धि प्राप्त होने लगेगी । इसलिये हे जनमेजय ! उस युगान्त काल में धर्माचरण करने वाले मनुष्य धन्य समझे जायेंगे ॥४४-४५॥

॥ व्यास जी द्वारा कलियुग वर्णन ॥

आसन्न विप्रवृष्ट वा यदि काल न विद्यहे ।  
 तस्माद्द्वारसविद्ध युगान्त स्पृहयाम्यहम् ॥१॥

प्राप्ता वयं तु तत्कालमनया धर्मतृष्णया ।  
 आदद्यात्परम धर्मं सुगमल्पेन कर्मणा ॥२  
 प्राप्तमुद्वेगकरणं युगान्तं समुपस्थितम् ।  
 प्रनष्टधर्मं धर्मज्ञ निमित्तीव्वन्तुमर्हसि ॥३  
 पृष्ट एवं भविष्यस्य गतिं तत्त्वेन चिन्तयन् ।  
 युगान्ते सर्वभूतानां भगवानब्रवीत्तदा ॥४  
 अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः ।  
 युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥५  
 अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः ।  
 शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥६  
 काण्डे स्पृष्टाः श्रोत्रियाश्च निष्क्रियाणि हवीष्यथ ।  
 एकपक्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥७

राजा जनमेजय ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ मुक्ति का समय समीप है या नहीं यह तो मैं नहीं जानता किन्तु इस युग में थोड़े परिश्रम से ही अधिक पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है, इसी से मैंने इस अवसर पर जन्म लिया है ॥१-२॥ इनकी कथा सुनकर शौनक ने भी प्रश्न किया कि इस समय लोगो को भयभीत करने वाला श्रीर धर्म की शक्ति को क्षीण करने वाला कलिपुग आ चुका है इस लिये हम भी उनका वर्णन अवश्य सुनना चाहते हैं । इस पर सौति ने कहा हे शौनक ! मैं तुमको वह सब प्रसंग बतलाना हूँ जो उस अवसर पर भगवान व्यास ने राजा जनमेजय को सुनाया था ॥३-४॥ उस युग में राजा लोग परम स्वार्थी बनकर प्रजा के हित साधन, तपयज्ञ आदि सत्कर्मों से विमुक्त हो जायेंगे । क्षत्रियो के अतिरिक्त अन्य वर्णों के राजा शासक हो जायेंगे, ब्राह्मण शूद्रों के काम करने लगेंगे और शूद्र ब्राह्मणों का-सा आचार विचार करने लगेंगे । ब्राह्मण घनुष-बाण का प्रयोग करने वाले हो जायेंगे, यज्ञादि क्रियाहीन हो जायें और श्रेणीभेद क्षीण होकर सब लोग एक साथ भोजन करने लगेंगे ॥५-७॥

शिल्पवन्तोऽनुत्तरा नरा मद्यामिपप्रियाः ।

मिद्वर्ध्या भविष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥८

राजवृत्तिस्थिताश्चौरा राजानश्चौरशीलिनः ।  
 भृत्याश्चानिदिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये ॥६  
 धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम् ।  
 अकुत्सना च पतिते भविष्यति युगक्षये ॥९०  
 प्रनष्टचेतना मर्त्या मुक्तकेशा विचूलिनः ।  
 ऊनपोडशवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नराः सदा ॥९१  
 अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।  
 प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥९२  
 सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति सर्वे वाजसनेयिनः ।  
 शूद्रा भोवादिनश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये ॥९३  
 तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः ।  
 ऋतवश्च भविष्यन्ति विपरीता युगक्षये ॥९४  
 शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मृण्डाः कापायवाससः ।  
 शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति शाक्यबुद्धोपजीविनः ॥९५

शिल्पकार्यं के करने वाले असत्य व्यवहार परायण हो जायेंगे, मद्य-मांस का व्यवहार बहुत बढ़ जायगा और लोग मित्र की स्त्री से दुराचार करने में सकोच न करेंगे । उस समय राजा ही चोर (अपहरणकर्ता) बन जायेंगे, चोर राजा हो जायेंगे और नौकर स्वामी का कुछ भी ख्यान न करके उमका सर्वस्व खा बैठेंगे । धन ही प्रतिष्ठा का आधार माना जायगा, सज्जनों का सम्मान न होगा और पाप-कर्म करने वालों को कोई निन्दनीय न कहेगा ॥८-९॥ लोग धर्म-तान से शून्य होंगे, विषवाओ और संन्यासियों के सतानें होंगी और मनुष्यों की प्रायु बहुत कम हो जायगी । सभी लोग अन्न बेचने लग जायेंगे, ब्राह्मण धर्म को बेचेंगे और द्विज्याँ अपने रूप का व्यवसाय करने लग जायेंगी ॥११-१२॥ सभी श्रेणियों के व्यक्ति ब्रह्मवादी होने का दम्भ करके बर्ष भ्रष्ट हो जायेंगे और वैदिक यज्ञ-यागादि का करता छोड़ देंगे । शूद्रों की स्थिति सम्मानजक हो जायगी । ब्राह्मण अपनी तपस्या तथा यज्ञों के फल को धन के लिये बेचने वाले होंगे और अब ऋतुएं समय के प्रतिकूल होने लगेंगी । शूद्र लोग पवित्र आचार-विचार ग्रहण

घन्टरे, श्वेतदन्त, सूक्ष्मदर्शी, मुण्डित, बापाय वेपथगी होकर बाँदवर्म के अनुयायी बनेंगे ॥१३-१५॥

श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षयः ।  
 स्वादूना विनिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥१६  
 अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्तनिवासिनः ।  
 यथा निम्न प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति युगक्षये ॥१७  
 तथा द्विहायना दम्यास्तथा पत्वलकर्षकाः ।  
 चित्रवर्षी च पर्जन्यो यगे क्षीणे भविष्यति ॥१८  
 सर्वे चौरकुले जाताश्चौरयानाः परस्परम् ।  
 स्वल्पेनाद्या भविष्यन्ति यत्किञ्चित्प्राप्य दुर्गताः ॥१९  
 न ते धर्मं करिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे ।  
 ऊषार्कबहुला भूमिः पन्थानस्तस्करावृताः ॥२०  
 सर्वे वाणिज्यकाश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे ।  
 पितृदत्तानि देयानि विभजन्ते सुतास्तदा ।  
 ह्णाय प्रपत्स्यन्ते लोभानृतविरोधिता ॥२१

जगली हिंसक जीवों की अधिकता होकर गायों की संख्या घट जायगी और सब वस्तुओं का स्वाद पूर्वापेक्षा कम हो जायगा । म्लेच्छ देशों के निवासी मध्यदेश में आकर रहने लगेंगे और मध्यदेश वालों को म्लेच्छों के प्रदेशों में जाकर निवास करना पड़ेगा और सर्व साधारण नीच मार्ग पर चलने लगेंगे । बल शक्तिहीन होकर हल खींचने में कठिनाई अनुभव करेंगे और वर्षा भी बहुत ही अस्त-व्यस्त रूप से होने लगेगी, ॥१६-१८॥ सभी व्यक्ति एक दूसरे का धन अपहरण करके चौर्यवृत्ति से शीघ्र ही धनवान बन जाना चाहेंगे और इसलिये सबको दुर्दशाग्रस्त होना पड़ेगा । उस समय लोग धर्माचरण छोड़ देंगे, भूमि ऊसर हो जायगी और रास्ते में सब ओर डाकुओं का भय रहेगा । उस समय सब लोग सब प्रकार की वस्तुओं को बेचने वाले ही होंगे और पिता की जायदाद का पुत्र घंटद्वारा कर लेंगे । धन के लिये लोग असत्य व्यवहार करेंगे तथा दूसरे का धन दबा लेंगे ॥१९-२१॥

सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षय गते ।  
 भविष्यन्ति युगान्ते च नार्यं केशरलकृता ॥२२  
 निविहारस्य भूतस्य गृहस्थस्य भविष्यति ।  
 युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासिमा गति ॥२३  
 कुशीलानार्यभूयिष्ठ वृथारूपसमन्वितम् ।  
 पुरुपाल्प बहुश्रीक तद्युगान्तस्य लक्षणम् ॥२४  
 बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम् ।  
 अविचार्यं ग्रहं प्यन्ति दान वर्णान्तरात्तथा ॥२५  
 राजचीराग्निदण्डार्तो जन क्षयमुपेक्षति ।  
 सस्यनिष्पत्तिरफला तरुणा वृद्धशीलिन ।  
 ईहयाऽमुखिनो लोका भविष्यन्ति युगक्षये ॥२६  
 वर्षासु वाता परुषा नीचा शर्करवपिण ।  
 सदिग्ध परलोकश्च भविष्यति युगक्षये ॥२७  
 आत्मनश्च दुराचारा ब्रह्मदण्डतत्परा ।  
 आत्मानं बहु मन्यन्ते मयुरेवाभ्ययाद्द्विजान् ॥२८

स्त्रियो मे से सुकुमारता, रूप और रत्नादि का अभाव होकर केवल बालो का ही शृंगार ग्रह जायगा । गृहस्थ जीवन मे से सुन्दर और श्रेष्ठ उपादानो का अभाव हो जायगा और केवल नारी समागम ही एक मात्र उपभोग का मार्ग जान पड़ेगा । समस्त पृथ्वी रूप का भूटा गव करने वाली और चरित्र हीन स्त्रियो से भर जायगी और पुरुषो की अपेक्षा नारियो की सरवा भी अधिक हो जायगी ॥२२-२४॥ माँगने वाले बहुत हो जायेंगे पर कोई किसी को कुछ देगा नहीं । ग्राहण बिना विचार किये सब वर्णों का दान ग्रहण करने लगेंगे । अधिवाश प्रजा राजदण्ड चोरदण्ड और अग्निदण्ड से नष्ट होने लगेंगी । खेतो मे बोने के लिये डाला बीज भी नष्ट हो जायगा, युवावस्था म ही बुढापा जैसा जान पड़ने लगेगा और लोग भाँति भाँति की कामनाओ के कारण दुःखित रहने लगेंगे ॥२५-२६॥ वर्षा ऋतु मे भयकर वायु चलने और धूँत उड़ने लगगी । लोग परलोक के अस्तित्व मे सदेह करने लगेंगे । वे ब्राह्मणों पर दोषारोपण करेंगे

पर अपने दोषों पर दृष्टिपात न करेंगे । ब्राह्मणों में भी धर्म प्रकट करने के सिवाय और कोई योग्यता न रहेगी ॥७७-८८॥

वैश्याचाराश्च राजन्या धनधान्यो जीविन ।  
 युगापन्नमणे सर्वे भविष्यन्ति द्विजातय ॥२८  
 अप्रवृत्ता प्रपत्स्यन्ते समया शयथास्तथा ।  
 शृणु सविनयध्रुग युगे क्षीणे भविष्यति ॥३०  
 भविष्यत्यफनो हर्षं क्रोधश्च सफलो नणाम् ।  
 अजाश्चैवोपरोत्स्यन्ते पयसोऽर्थे युगक्षय्ये ॥३१  
 अशास्त्रविदुषा पु सामेवमैश्च स्वभावत ।  
 अप्रमण वदिष्यन्ति नीतिं पण्डितमानिन ॥३२  
 शास्त्रोक्तस्याप्रवृत्तागे भविष्यन्ति युगक्षय्ये ।  
 सर्वे सर्वे हि जानन्ति वृद्धानुपसेव्य वै ॥३३  
 न वरिचिद्वविर्नाम युगान्ते समुपस्थिते ।  
 न क्षत्राणि नियोक्ष्यन्ति त्रिकर्मस्था द्विजातय ।  
 चौरप्रायाश्च राजानो युगान्ते पर्युपस्थिते ॥३४  
 वृण्डावृषा नैवृत्तिका सुरापा ब्रह्मवादिन ।  
 अश्वमेदेन यक्षयन्ति युगान्ते जनमेजय ॥३५

कलियुग में क्षत्रिय स्वधर्म त्याग कर वैश्यों की तरह खरीदने बेचने का व्यवसाय करने लगेंगे और सब लोग द्विज बनने का ही प्रयत्न करने लगेंगे । अनावश्यक होने पर भी लोग शपथ लेने लगे । पर नीचे दर्जे के लोग ही नहीं ऊँची धोखी बातें भी शृणु को लेकर हठप जायेंगे ॥२९-३०॥ इस युग में सद्भाव रखने वालों का काम बिगड़ जायगा और क्रोध का आश्रय लेने वालों को सफलता मिल जायगी । दूध के निये बकरियाँ पाली जाने लगेगी । लोग शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किये बिना ही उनका अर्थ करने लगेंगे और अनुभवी वृद्धों शिक्षा प्राप्त न करके भी अपने को विद्वान समझ लेंगे ॥३१-३३॥ उस समय सभी मनुष्य अपने को कवि तथा विद्वान मानने लगेंगे, ब्राह्मण क्षत्रियों की वृत्ति

अपना लेंगे और क्षत्रिय लोग घोरी-डाका का कार्य करने लगेंगे । यद्यपि ठग, शराबी, बन्द्या विक्रय करने वालों को यज्ञ का अनधिकारी माना गया है, पर कलियुग में ऐसे ही व्यक्ति बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन करने लगेंगे ॥३४-३५॥

अयाज्यान्याजदिप्यन्ति तथाऽभक्ष्यस्य भक्षिणः ।  
 ब्राह्मणा धनतृष्णातार्ता युगान्ते समुपस्थिते ॥३६  
 भोशब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति ।  
 एकशखास्तदा नार्थो गवेद्युक्पिनद्धका ॥३७  
 नक्षत्राणि वियोगीनि वितरीता दिशस्तथा ।  
 सन्ध्यारागोऽथ दिग्दाहो भविष्यत्यवरे युगे ॥३८  
 पितृन्पुत्रा नियोक्ष्यन्ति वध्वः श्वश्रूश्च कर्मसु ।  
 वियोनिषु चरिष्यन्ति प्रमदासु नरास्तथा ॥३९  
 वाक्शरैस्तर्जयिष्यन्ति गुरुञ्छिष्टप्यास्तथैव च ।  
 मुखेषु च प्रयोक्ष्यन्ति प्रमत्तारश्च नरास्तदा ॥४०  
 अवृताग्राणि भोक्ष्यन्ति नराश्चैदाग्निहोत्रिणः ।  
 भिक्षा वन्निमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषाः स्वयम् ॥४१  
 पत्नीन्सुप्तान्दञ्चयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः ।  
 पुरुषाश्च प्रसुप्तासु भार्यासु च परस्त्रियम् । ४२  
 नाव्याधितो नाप्यरुजो जन सर्वोऽभ्यसूयतः ।  
 न कृतिप्रतिकर्ता च काले क्षीणे भविष्यति ॥४३

ब्राह्मणगण अभक्ष्य व्यवहार करने वाले तथा आचार-विहीन लोगों से भी धन के लोभ से यज्ञ करावेंगे और उनको सम्मान जनक शब्दों से पुकारेंगे, पर वे वेद-शास्त्रों का अध्ययन नहीं करेंगे । स्त्रियाँ आभूषण विहीन हो जायेंगी ॥३६-३७॥ नक्षत्रों का ग्रह संयोग विच्छिन्न हो जायगा, दिशाओं का भाव बदल जायगा और निरन्तर दिग्दाह होने लगेगा ॥३८॥ पुत्र पिताओं से तथा बहुएँ रास से सेवा कार्य बगने लगेंगी । गुरु के प्रति शिष्य गर्जन-तर्जन करने लगेंगे । विभिन्न वर्ण के स्त्री पुरुषों में सम्बन्ध होने लगेगा और इसे प्रयातनीय

माना जाने लगेगा । ३८-४०॥ अग्निहोत्र वाले बलि तथा भिक्षादान के पहले ही भोजन कर लेंगे । स्त्रियो पर-पुरुषो से तथा पुरुष पराई स्त्रियो से दुराचार करने वाले हो जायेंगे ॥४१-४२॥ उस युग मे कोई मनुष्य नीरोग और मानसिक पीडा से मुक्त न होंगा । सब लोग परस्पर द्वेष भाव करने लगेंगे और कोई उपकार के बदले मे भी प्रत्युपकार नही करेगा ॥४३॥

## ॥ राजा जनमेजय के यज्ञ में विघ्न ॥

इत्येवमाश्वासयतो राजानं जनमेजयम् ।  
 अतोतानागतं वाक्यमृषे. परिषदा श्रुतम् ॥१  
 अमृतस्येव सवाह. प्रभा चन्द्रमसो यथा ।  
 अतर्पयत तच्छ्रोत्र महर्षेर्वाङ्मयो रसः ॥२  
 धर्मकामार्थसयुक्त करुणं वीरहर्षणम् ।  
 रमणीय तदाख्यान कृत्स्नं परिषदा श्रुतम् ॥३  
 केचिदश्रूणि मुमुक्षु श्रुत्वा दृश्युस्तथापरे ।  
 इतिहासं तमृषिणा पाणाविव निदक्षितम् ॥४  
 सदस्यान्सोऽभ्यनुज्ञाय कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।  
 पुनर्दक्ष्याम इत्युक्त्वा जगाम भगवानृषि ॥५  
 अनुजग्मुस्नदा सर्वे प्रयान्तमृषिसत्तमम् ।  
 लोके प्रवदता श्रेष्ठ ये विशिष्टास्तपोधनाः ॥६  
 याते भगवति व्यासे तदा ब्रह्मर्षिभि सह ।  
 श्रुत्विजः पार्थिवाश्चैव प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥७

सूतजी ने कहा—महर्षि व्यासजी ने राजा जनमेजय को इस प्रकार अतीत बाल और भविष्य की बात कह कर सान्त्वना दी, इस विवेचन को सुन कर सभी उपस्थित पुरुष परस्पर मे कहने लगे कि जिस प्रकार चन्द्रमा की चाँदनी और अमृतधारा के पीने से तृप्ति होती है, वैसे ही महर्षि व्यासजी के वचनामृत का पान करके हम अत्यन्त तृप्ति को प्राप्त हुए हैं ॥१-२॥ उस धर्म,



अर्थ और काम युक्त, बीरो के हर्ष की वृद्धि करने वाले तथा करुण और रमणीक वृत्तान्त को सुन कर सब उसका अनुमोदन करने लगे ॥३-४॥ फिर वे महामुनि सभा की प्रदक्षिणा कर 'पुनः कभी आपके दर्शन वरुंगा' कहते हुए वहाँ से चले गये ॥ ५ ॥ उनके जाते समय जो ऋषि, तपस्वी, विप्रगण तथा ऋत्विज् आदि उन्हें पहँचाने गये थे, वे कुछ दूर जाकर लौट आये ॥६-७॥

पन्नगाना सुघोराणा कृताना वैरयातनाम् ।  
जगाम रोपमुत्सृज्य राजा विपमिवोरगः ॥८  
होत्वाग्निदीप्तशिरस परित्राय च तक्षकम् ।  
आस्तीकोऽथाश्रमपदं जगाम स महामुनिः ॥९  
राजाऽपि हास्तिनपुरं जगाम स्वजनावृतः ।  
अन्वशासच्च मुदितस्नदा प्रमुदिता. प्रजा ॥१०  
कस्यचित्त्वथ कालस्य स राजा जनमेजयः ।  
दीक्षितो वाजिमेघेन विधियद्भूरिदक्षिणः ॥११  
संज्ञप्तमश्वं तत्रास्य देवी काश्या चपुष्टमा ।  
स विवेशोपगम्याथ विधिदृष्टेन वर्मणा ॥१२  
तां तु सर्वानवद्याङ्गी चक्रे वासवन्तदा ।  
संज्ञप्तमश्वमाविश्य तथा मिश्रीवभूव स. ॥१३  
तस्मिन्विरारे जनिते विदित्वा तत्त्वतश्च तत् ।  
असंज्ञप्तोऽयमश्वस्ते ध्वसेत्यध्वयुं मश्रवीत् ॥१४

जैसे विप को छोड़ कर गर्प श्लोप-रहित हुआ चला जाता है, वैसे ही राजा जनमेजय वैर और श्लोप का परित्याग कर वहाँ से चले गये ॥८॥ तभी महर्षि आस्तीक होमाग्नि से प्रदीप्त शिर वाले तक्षक की रक्षा करने के उपरान्त अपने आश्रम को चले गये ॥९॥ अपने अनुयायियों सहित हास्तिनापुर में जाकर राजा जनमेजय ने हर्ष महित राज्य का गवामन किया और प्रजा भी अपने राजा के दर्शन करते बहूत प्रगन्न हुई ॥१०॥ कुछ काल में उपरान्त मश्राश्रम जनमेजय शिधि महित अश्वमेध यज्ञ के लिये दीक्षित हुए ॥११॥ फिर जब मश्र

के घोड़े को बलि किया गया तब राजमहिषी काशिराजमुता वपुष्टमा, उस के पास जा बैठी ॥ १२॥ तभी उस सर्वाङ्गसुन्दरी रानी वपुष्टमा को देख कर इन्द्र उस पर मोहित होगये और सूक्ष्म रूप धरण कर उन्होंने उस घोड़े के देह में प्रवेश किया । इस प्रकार उसने रानी का सग प्राप्त किया ॥१३॥ तब राजा जनमेजय ने इस प्रचार का बिकार देख कर रानी से कहा—यह मृत अश्व ही तेरा काल हो जायगा ॥१४॥

अध्वयुर्जातसपन्नस्तदिन्द्रस्य विचेष्टितम् ।  
 कथयामास राजर्षे शशापसपुरदरम् ॥१५  
 यद्यस्ति मे यज्ञफलतपो वा रक्षत प्रजा ।  
 फलेनानेन सर्वेण ब्रवीमि श्रूयतामिदम् ॥१६  
 अद्यप्रभृति देवेन्द्रमजिनेन्द्रिमजितेन्द्रियमस्थिरम् ।  
 क्षत्रिया वाजिमेधेन न यक्ष्यतीति शौनक ॥१७  
 ऋत्विजश्चाब्रवीत्क्रुद्धस राजा जनमेजय ।  
 दौर्बल्यभवतामेतद्यद्यर्षितव्रतु ॥१८  
 विषये मे न वस्तव्य गच्छश्वसहवान्धव ।  
 इत्युक्तास्तत्यजुर्विप्रास्त नृपजातमन्यव ॥१९  
 अमर्षादिन्वशासच्च पत्नीशालागतस्त्रिय ।  
 राजा परमधर्मज्ञस्तामसो जनमेजय ॥२०  
 असती वपुष्टमामेता निर्यातयत् मे गृहात् ।  
 यया मे चरणौ मूर्ध्नि पातितौ रेणुगुण्ठितौ ॥२१  
 शौण्डीर्यमेऽनया भग्न यशो मानश्च दूषित ।  
 तच्चानाद्रष्टुमिच्छामि परिवलिष्टामिव स्रजम् ॥२२

तभी ज्ञानवान् अध्वयुर् ने अपनी ज्ञान दृष्टि के प्रभाव से इन्द्र की कुचेष्टा को जान लिया और उसका सब वृत्तान्त राजा से यथावत् कहा ॥ १५ ॥ तब राजा ने कुपित होकर इन्द्र को शाप दिया कि यदि मेरे यज्ञ का, तप का अथवा प्रजा-पालन का कुछ भी धर्म फल बचा हो तो मेरे उसी फल से अश्वमेध यज्ञ

वा अनुष्ठता कोई भी क्षत्रिय अब से इन्द्र को नहीं पूजेगा ॥ १६-१७ ॥ फिर उस क्रोधित हुए राजा जनमेजय ने ऋत्विजो को सम्बोधित करके कहा—  
 ऋत्विजो ! आपकी ही असावधानी से मेरे यज्ञ में यह विघ्न उपस्थित हुआ है इसलिये अब से आप मेरे राज्य में नहीं रहेंगे । आप सभी सपरिवार मेरे राज्य से तुरन्त ही चले जाय । राजा के वचन कर क्रोधित हुए ऋत्विज् गण तुरन्त ही वहाँ से चल दिये ॥१८-१९॥ फिर राजा जनमेजय अपने अन्त पुर में पहुँचे और अत्यन्त क्रोध पूर्वक अपनी पत्नियों से कहने लगे मेरी आज्ञा है कि इस असती दण्डुमा को मेरे गृह से तुरन्त ही निवाल बाहर करो, क्योंकि इस दुष्टा ने अपना धूलधूसरित पाँव मेरे सिर पर रख दिया है ॥२०-२१ ॥ इसके कुछकाल से मेरा सम्मान, गौरव और कीर्ति—सभी बुद्ध समाप्त होगया । उपभोग की हुई माला के समान नीरस हुई इस दुष्ट स्त्री का अब मुख भी नहीं देखूँगा ॥२२॥

न स्वादु सोऽश्नाति नर. सुखं स्वपिति वा रहः ।  
 अन्वास्ते य. प्रिया भार्या परेण मृदितामिह ॥२३  
 पुनर्नोपभुञ्जन्ति श्वावलीढं हविर्यथा ।  
 एवमुच्चैः प्रभापन्त क्रुद्धपारीक्षतं नृपम् ।  
 गन्धर्वराज. प्रोवाच विश्वावसुरिद वचः ॥२४  
 त्रियंशतयज्वानं वासवस्त्या न मृष्यते ।  
 अप्सरास्तेन पत्नी ने विहितेयं वपुष्टमा ॥२५  
 रम्भानामाप्मरा देवी काशिराजमुता मता ।  
 सैपा योषिद्वग राजनूरत्नभूताऽनुभूयताम् ॥२६  
 यज्ञे विवरमासाद्य विघ्नमिन्द्रेण ते कृतम् ।  
 यज्वा ह्यसि गुरुश्रेष्ठ समृद्ध्या वासवोपम. ॥२७  
 विभेत्यभिगवाच्छतम्तव व्रतुफर्नं नृप ।  
 तस्मादावर्तितरश्च क्रनुरिन्द्रेण ते विभो ॥२८  
 भार्यया वासवेनेह प्रयुता विघ्नमिच्छता ।  
 क्रनुरिवरमासाद्य गण्डपं दृश्य याजिनम् ॥२९

जो पुरुष पराये संसर्ग को प्राप्त हुई स्त्री के साथ जीवन-यापन करे, उसको कभी सुस्वादु पदार्थों से भी वृष्टि नहीं मिल सकती ॥ २३ ॥ इसलिये बुद्धिमान् पुरुष कुत्ते द्वारा दूषित हुई हवि के समान ही इस प्रकार की दुष्टा स्त्रियों का परित्याग कर देते हैं । जिस समय राजा जनमेजय इस प्रकार का कटु भाषण कर रहे थे, तभी गंधर्वराज विश्वावसु राजा के पास आकर बोले— हे राजन् ! आपके सौ यज्ञों का पूर्ण होना इन्द्र को किसी प्रकार भी सहन नहीं हुआ, इसीलिये उन्होंने अपनी रम्भा नाम की अप्सरा को वपुष्टमा बना कर आपकी भार्या कर दी ॥ २५ ॥ इसीलिये उस रम्भा ने काशिराज की पुत्री के रूप में जन्म लिया था । अतः आपकी रानी वपुष्टमा दुष्टा नहीं, स्त्रियों में रत्न रूपा है ॥ २६ ॥ यह तो आपके यज्ञ को भ्रष्ट करने की इन्द्र की ही चाल थी, क्योंकि आप ऐश्वर्य और यज्ञ-कर्म—दोनों में इन्द्र से कम नहीं हैं ॥२७॥ आपको सौ यज्ञों के पूर्ण होने पर जिस फल की प्राप्ति होती, उससे उनका इन्द्रत्व न छिन जाय, इसी आशंका से इन्द्र भयभीत रहते थे, इसीलिये अवसर मिलने पर उन्होंने आपके यज्ञ को निविघ्न पूर्ण नहीं होने दिया है ॥२८-२९॥

रतिमिन्द्रेण रम्भार्या मन्यसे या वपुष्टमाम् ।  
 अथ ते गुरवः शप्तास्त्रियज्ञशतयाजिनः ॥३०  
 भ्र शितस्त्वं च विप्राश्च बलादिन्द्रसमादिह ।  
 त्वत्तश्चैव सुदुर्घर्षास्त्रियज्ञशतयाजिनः ॥३१  
 विभेति हि सदा त्वत्तो ब्राह्मणेभ्योऽपि वासवः ।  
 एकेन वै तदुभय तीर्णं शक्रेण मायया ॥३२  
 स एष सुमहातेजा विजिगीषुः पुरन्दरः ।  
 कथमन्यैरनाचोणं नप्तुर्दारानतिक्रमेत् ॥३३  
 यथैव हि परा बुद्धिः परो धर्मः परो दमः ।  
 यथैव परमैश्वर्यं कीर्तितं हरिवाहने ।  
 तथैव त्वयि दुर्घर्षे त्रियज्ञशतयाजिनि ॥३४  
 मा वासवं मा च गुरुमात्मानं मा वपुष्टमाम्  
 गच्छ दोषेण कालो हि सर्वथा दूरतिक्रमः ॥३५

आपने जिसे वपुष्टमा मान रखा है, वह यथार्थ में रम्भा है। आपके यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने के लिये ही इन्द्र ने यह पड्यन्त्र रचा था, जिसे न समझ कर आपने गुरुजनो को अपमानित किया है ॥३०॥ ऐसा करके आप सब ब्राह्मणों सहित इन्द्रत्व के फल से वंचित होगये हैं। इन्द्र को जो भव आपसे था, वही उन ब्राह्मणों से था, इसलिये एक ही छल में उन्होंने दोनों को जीत लिया है ॥३१-३२॥ यदि यह बात न होती तो वे ऐसे जघन्य दुराचरण में क्यों प्रवृत्त होते ? ॥३३॥ हे राजन् ! जिस प्रकार इन्द्र ज्ञान, धर्माचरण, दम, ऐश्वर्य और कीर्ति से युक्त हैं, उसी प्रकार आप में भी वे सब गुण समान रूप से हैं ॥३४॥ इसलिये आप इन्द्र, गुरुजन, वपुष्टमा, अथवा स्वयं को भी दोष मत दीजिये। यह तो काल का प्रभाव था, जिसके अतिक्रमण में कोई भी समर्थ नहीं है ॥३५॥

ऐश्वर्येणाश्वमाविश्य देवेन्द्रेणासि रोषितः ।

आनुकूलेन देवस्य वर्तितव्य सुखार्थिना ॥३६ ।

दुस्तरं प्रतिकूलं हि प्रतिस्वोत इवाम्भसः ।

स्त्रीरत्नमुपभुङ्क्ष्वेमामपापा विगतज्वरः ॥३७

अपापास्त्यज्यमाना धृ त्यजेयुरपि योषितः ।

अदुष्टस्तु स्त्रियी राजन्दिव्यास्तु सविशेषतः ॥३८

इन्द्र ने अश्व के देह में प्रवेश करके आप में क्रोध उत्पन्न कर दिया है, यदि आप सुख की कामना करते हो तो इन्द्र के अनुकूल कार्य कीजिये ॥३६॥ जैसे जल का वेग नहीं रक सकता, वैसे ही इन्द्र से प्रतिकूल होकर जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता। इसलिये आप इस नारी रत्न को निष्कलक समझिये ॥३७॥ निरपराधिनी नारी का त्याग उसके क्रोध का कारण हो सकता है। एक तो नारी जाति के दोष को वैसे ही अधिक नहीं माना जाता, जिस पर वपुष्टमता में तो दिव्यागना होने की विशेषता है ॥३८॥

एवं स विश्वावमुनाऽनुनीतः प्रसादमागम्य वपुष्टमायाः ।

चकार मिथ्या च्यतिशङ्कितान्मा शान्ति परा मानवधर्मदृष्टाम् ॥३९॥

श्रमममिविनिवर्तमानसं स समभिलपज्जनमेजयो ऽयशः स्वम् ।  
 विषयमनुशशास घर्मंबुद्धिमुदितमना रमयन्वपुष्टमां ताम् ॥४०  
 नही विरमति विप्रपूजनान्न च वितिवर्तति यज्ञदानशीलात् ।  
 न विषयपरिक्षणाच्च्युतोऽभून्न च परिगर्हति तां वपुष्टमां च ॥४१  
 विधिविहितमशक्यमन्यथा हि कर्तुं यदृषिरचिन्त्यतया पुराऽब्रवीत्सः ।  
 इति स नृपतिरात्मवांस्तदाऽसौ तदनु विचिन्त्य बभूव वीतमन्युः ॥४२  
 इदं महाकाव्यभृपेर्महात्मनः पठन्मृणां पूज्यतमो भवेन्नरः ।  
 प्रकृष्टमायुः समवाप्य दुर्लभं लभेच्च सर्वज्ञफलं च केशवम् ॥४३  
 शतक्रतोः कल्मषविप्रमोक्षणं पठन्निद मुच्यति कल्मषान्तरः ।  
 तथैव कामान्विविधान्समश्नुते ह्यवाप्तकामश्च चिराय नन्दति ॥४४

इस प्रकार विश्वावसु के वचनो को मान कर राजा जनमेजय ने वपुष्टमा के प्रति शंका रहित होकर अपने चित्त को शान्त कर लिया ॥३६॥ फिर अपनी यश-वृद्धि के लिये दत्त चित्त होकर राज्य-शासन चलाने लगे और वपुष्टमा भी दोपारोपण को भूल कर प्रसन्न चित्त रहने लगी ॥ ४० ॥ उस समय से राजा जनमेजय ने ब्राह्मणों के पूजन में प्रमाद नहीं किया, दान और यज्ञ पहिले के समान ही होने लगे, देश-रक्षा के कार्य में भी वे कभी उदासीन नहीं रहे ॥४१॥ महर्षि व्यासजी का वचन यथायंथा कि काल की गति का उल्लघन नहीं हो सकता—यह स्थिर कर राजा जनमेजय राज्य कार्य एव विहार करने लगे ॥४२॥ महर्षि व्यास प्रणीत इस महाकाव्य और इन्द्र के पाप नष्ट होने सम्बन्धी इस इतिहास के पढ़ने वाले को मान, दीर्घायु, सर्वज्ञता और सुख प्राप्त होता है, उसका कोई भी अभीष्ट अपूर्ण नहीं रहता ॥४३-४४॥

॥ सनातन ब्रह्म का वर्णन ॥

शृणुष्वैकमना राजन्यञ्चेन्द्रियसमाहितः ।

कथा कथयतो राजन्निर्विकारेण चेतसा ॥११

ब्रह्मसम्बन्धसंबद्धमबद्धं कर्मभिनृप ।

पुरस्ताद्ब्रह्म संपन्नं ब्रह्मणो यददक्षिणम् ॥२

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।  
 निष्कलः पुरुषस्तस्मात्सः बभूदात्मयोनिजः ॥३  
 दिव्यो दिव्येन वपुषा सर्वभूतपतिर्विभुः ।  
 अचिन्त्यश्चाव्ययश्चैव युगानां प्रभवोऽव्ययः ॥४  
 अभूतश्चाप्यजातश्च सर्वत्र समता गतः ।  
 अव्यक्तात्परमं यत्तन्नारायणविदो विदुः ॥५  
 सर्वत्र पाणिपादं तं सर्वतोऽक्षशिरोमुखम् ।  
 सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥६  
 असत्तश्च सतश्चैव विज्ञेयं तत्र कारणम् ।  
 अव्यक्तो व्यक्तरूपस्यश्चरन्नपि न दृश्यते ॥७  
 विकारपुरुषोऽव्यक्तो ह्यारूपी रूपमाश्रित ।  
 चरत्यचिन्त्य सर्वेषु गूढोऽग्निरिव दारुपु ॥८

वैशम्पायनजी कहने लगे—हे राजन् ! आपने जो पचेन्द्रियों से न जान सकने योग्य परब्रह्म का स्वरूप सुनने की इच्छा की है, मैं उसे कह रहा हूँ, आप पवित्र भाव से सुनिये । उस सारूप-सिद्धान्त के अनुसार सूक्ष्म और स्थूल जगत के कारण परम पुरुष का कभी नाश नहीं होता, वह सदा पूर्ण रहता है । अहंकार तत्त्व तथा ब्रह्म की उत्पत्ति उसी से होती है ॥१-३॥ वह समस्त जीवों और सभी विषयों का स्वामी, सर्वत्र-व्याप्त, विचार में न आ सकने योग्य और खडित न होने वाला है । काल सम्बन्धी परिवर्तन उसी के कारण होता है । वह किसी से उत्पन्न नहीं होता, फिर भी वह सर्वत्र विद्यमान रहता है । इसी से विद्वान् उसे विभु और नारायण कहते हैं ॥४-५॥ उसके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर और मुख हैं और वह इस समस्त विश्व को घेर कर रहता है । विश्व में सत् और असत् जो कुछ है उसका कारण वही है पर वह कभी प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ सकता वह सकळी में गर्भित अग्नि की तरह विश्व के प्रत्येक पदार्थ में समाया है, पर रूप रहित होने के कारण यह कभी देखा नहीं जा सकता ॥ ६-७-८ ॥

भूतभव्योद्भवो नाथः परमेष्टी प्रजापतिः ।  
 प्रभुः सर्वस्य लोकस्य नाम चास्येति तत्त्वतः ॥९६  
 अर्पदात्तु पदो जातस्तस्मान्नाारायणोऽभवत् ।  
 अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नो ब्रह्मयोगेन कामतः ॥९७  
 ब्रह्मभावे च तं विद्धि स शब्दं लब्धवान्प्रभुः ।  
 प्रभुः सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्येतरस्य च ॥९८  
 अहं त्विति स होवाच प्रजाः स्रक्ष्यामि भारत ।  
 प्रभवः सर्वभूतानां यस्य तन्तुरिमाः प्रजाः ॥९९  
 स्वभावाज्जायते सर्वं स्वभावाच्च तथाऽभवत् ।  
 अहंकारः स्वभावाच्च तथा सर्वमिदं जगत् ॥१००  
 सर्वव्यापी निरालम्बो ह्यग्राह्योऽथ जयो ध्रुवः ।  
 एवं ब्रह्ममयो ज्योतिर्ब्रह्मशब्देन शब्दितः ॥१०१  
 अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नः पञ्चभिः क्रतुलक्षणैः ।  
 धारयन्ब्रह्मणो व्यक्तं विविधं चिन्तितं त्वरन् ॥१०२

काल तथा अवस्था की दृष्टि से वही भूत, भविष्य और वर्तमान काल के रूप में 'परिवर्तित' होता रहता है । वह सब लोकी व जीवों का स्वामी, परम आश्रय और रक्षयिता है । उस 'नारायण' के बिना पैर हुये भी अनेको पैर हो जाते हैं और वह ब्रह्म योग द्वारा ही जाना जा सकता है । वह ब्रह्म कहा जाने वाला चराचर जगत् का एकमात्र स्वामी है ॥९६-१०१॥ वही सृष्टि-रचना का निश्चय करके उनमें सलग्न हो जाता है और तब उसी के शरीर से समस्त प्रजा का प्रादुर्भाव होता है ॥१०२॥ इस विश्व-रचना के उद्भाव रूप समस्त तत्त्व तथा सम्पूर्ण विश्व उसी से उत्पन्न होता है यह विजयी, अवलम्बन रहित, सर्वव्यापी अदृश्य रहने वाला और स्वयं-प्रकाशित वाला तत्त्व ही 'ब्रह्म' शब्द से उल्लिखित होता है । यह ब्रह्म यद्यपि अव्यक्त है पर वही पाँच सूक्ष्म भूतों की उपाधियाँ ग्रहण करके सृष्टि-रचना का साधन बन जाता है ॥१०३-१०५॥

अथ भूति समाधाय स्वभावाद्ब्रह्मचोदितः ।

ससर्ज सलिलं ब्रह्मा येन सर्वमिदं ततम् ॥१०६



वायु पूर्वमथो दृष्ट्वा यो धातुर्घातृसत्तमः ।  
 धारणाद्घातृशब्द च लमते लोकसंज्ञितम् ॥१७  
 तदेतद्वायुसंभूतं वृत्स्नं जगदभूत्पुरा ।  
 एतद्देवैरतिक्रान्तं पूर्वमेव सरस्वती ॥१८  
 पृथक्त्व गमितं तोयं पृथिवीशब्दमिच्छता ।  
 धनत्वाच्च द्रवत्वाच्च निखिलेनोपलभ्यते ॥१९  
 कलत्वात्सीदमानाच्च सलिले सलिलोद्भवः ।  
 व्याजहार शुभा वाणी समन्तात्पूरयन्निव ॥२०  
 ऊर्ध्वोऽहं स्यातुमिच्छामि ससीदाम्युद्धरस्व माम् ।  
 गम्भीरे तोयविवरे मूर्तिविधोभित्तान्तरम् ॥२१

विषय वा आरम्भिक रूप जल बनलाया गया है, तदनुसार ब्रह्मा जल  
 की ही सृष्टि करते हैं । जल से पूर्व वायु होनी है । ये ब्रह्मा ही सत्तार को धारण  
 करते हैं इसलिये जगत् में 'घाता' बहे जाते हैं ॥१६-१७॥ उस जलमय सत्तार  
 में जब ब्रह्मा की इच्छा प्राणियों के निवास योग्य स्थान बनाने की हुई तो जल  
 और भूमि पृथक् पृथक् हो गये और द्रव तथा ठोस पदार्थों का भेद जा पड़ने  
 लगा ॥ १८ १९ ॥ उस अवसर पर जल में दूबी हुई पृथ्वी ने स्वयं ही ब्रह्मा का  
 ध्यान करते हुये कहा—इस अनन्त जल स्थिति में दूबी रहने से मैं व्यर्थ बने-  
 गित है, आप मुझे शृषा कर बाहर निकालिये ॥२०-२१॥

ततो मूर्तिधरा देवी सर्वभूतप्ररोहिणी ।  
 ययायोगेन संभूता सर्वत्र विषयं पिपी ॥२२  
 भूत्वा च गदितं तस्या गिरं तां च गुणापिनाम् ।  
 यरात्स्वमास्याय निषपानं महापानं वै ॥२३  
 उद्धर्य मोऽवनि तोयात्पृथ्वा सर्वं गुदुष्टान्गम् ।  
 समाधौ प्रतपं गत्या प्रतीनो न च हस्यते ॥२४  
 यराद्ब्रह्ममयं ज्योतिरासामिति न शिाम् ।  
 तत्र ब्रह्मा समुद्रगता सर्वभूतगणामह ॥२५

अद्यापि मवमा घात्रा घायते सर्व योगिना ।  
 ज्ञानयोगेन सूक्ष्मेण प्रजाना हितकाम्यया ॥२६  
 भित्त्वा तु पृथिवीमध्यमुपयाति समुद्भवम् ।  
 तपनस्तूर्ध्वं मातिष्ठन् रश्मिभिः स दहन्निव ॥२७  
 तस्य मण्डलमध्यात्तु नि सृत सोममण्डलम् ।  
 स सनातनजो ब्रह्मा सौम्य सोमत्वमन्वगात् ॥२८

इस पर भगवान ने 'बाराह रूप' द्वारा उसे बाहर निकाला। इस महान कार्य को पूरा करके वे अपने समाधि योग से वही अदृश्य हो गये ॥२२-२४॥ इस प्रकार वे ज्योति स्वरूप नारायण ही उस समय 'आकाश स्वरूप थे, उन्ही से विश्व-स्रष्टा ब्रह्माजी का उदभव हुआ। अब भी वे अपनी इच्छा से योग-शक्ति द्वारा सब प्राणियों को धारण किये हुये हैं ॥२५-२६॥ उस पृथ्वी रूप-पिण्ड को विदीर्ण करके सूर्य प्रकट हुये जिनका तेज ऐसा था कि उससे विश्व जलता-सा जान पड़ता था। इस लिये उस मण्डल से एक दूसरा मण्डल प्रादुर्भाव हुआ जो अपने सोम्यत्व के कारण सोम-मण्डल कहा गया ॥२७-२८॥

सोममण्डलपर्यन्तात्पवन समजायत ।  
 तदक्षरमय ज्योतिस्तेजोभिरभिवर्द्धयन् ॥२९  
 स तु योगमयज्ञानात्स्वभावाद्ब्रह्मास भवात् ।  
 सृजते पुरुष दिव्य ब्रह्मयोनि सनातनम् ॥३०  
 द्रव यत्सलिल तस्य घन यत्पृथिवी भवत् ।  
 छिद्र यच्च तदाकाश ज्योतिर्यच्चक्षुरेव तत् ॥३१  
 वायुना स्पन्दते चैन स घाताज्ज्योतिस भव ।  
 पुरुषात्पुरुषो भाव पञ्चभूतमयो महान् ॥३२  
 भूतात्मा वै समे नस्मि स्तप्मिन्देह सनातन ।  
 गुहाया निहित ज्ञान योगद्यज्ञ सनातन ॥३३  
 तपनस्यैव तद्रूप योऽग्निर्वसति देहिनाम् ।  
 शरीरे नित्यशो युक्ते धातुभि सह स गत ॥३४

स्वभावात्क्षयमायाति स्वभावाद्भयमेति च ।  
स्वाभावाद्धिन्दते शान्ति स्वभावाच्च न विन्दति ॥३५

उस सोम मण्डल से जो पवन रूप तत्त्व निकला वह सर्व प्रकाशक तथा ज्योतिमय था, वही ससार मे 'वेद' के नाम से विख्यात हुआ । भगवान नारायण ने ही अपनी इच्छा से वेदोक्त सनातन पुरुष की सृष्टि की । उस सनातन पुरुष का द्रव भाग जल, स्थूल भाग पृथ्वी, पोला भाग आकाश ज्योति भाग नेत्र और शरीर का स्पन्दन ही बायु था । इस प्रकार उस अव्यक्त ब्रह्म से पंचभौतिक विश्व की उत्पत्ति हुई ॥२६-३२॥ इस प्रकार वह सनातन पुरुष समस्त प्राणियों मे समान रूप से स्थित रहता है और इसका ज्ञान योग दृष्टि प्राप्त होने से ही होता है । शरीर में पंचभूतो के साथ जो यह तपन रूप शक्ति रहनी है उसको ही सामान्यजन 'जीव' कहते हैं पर तत्त्वदर्शी उसे परमात्मा का ही अंश आत्मा मानते हैं । यह आत्मा ही पूर्व सत्कारो के कारण गुणध्व-गुण या शान्ति-अ-शान्ति का अनुभव किया करती है ॥३३-३५॥

इन्द्रियं व्यंतिमूढात्मा मोहितो ब्रह्मणः पदे ।  
सम्भवं निधनं चैव कर्मभिः प्रतिपद्यते ॥३६  
यावत्तद्ब्रह्मविषयं नोपयातीह तत्त्वतः ।  
तावत्संसारमाप्नोति सम्भवाश्च पुनः पुनः ॥३७  
इन्द्रियं व्यंतिरिक्तो वै यदा भवति योगवित् ।  
तदा ब्रह्मत्वमापन्नः प्रलयाग्रे प्रतिष्ठति ॥३८  
प्रतिपिद्धममुं लोकं ब्रह्मवान्स भवत्युत ।  
न च रागव्ययं याति न च सज्जति कर्हिचित् ॥३९  
आगतिं च गतिं चैव निधनं सम्भवं तथा ।  
भूतेभ्यो वेत्ति सर्वज्ञः परा सिद्धिमुपागतः ॥४०  
आत्मनो गतयश्चैव तथा विषयगोचरम् ।  
पुरस्तात्कर्म निवृत्तेः पदे ब्रह्म प्रतिष्ठितम् ॥४१  
चित्तग्रन्थीश्च मनसा रुन्ध्यात्पूर्वाश्च यातनाः ।  
भिद्यमानाः प्रलोभेन वायुमिन्नमिवाणं वम् ॥४२

इन्द्रियों के व्यसनो मे कैसे हुये प्राणी ब्रह्मज्ञान की ओर आकर्षित नही होते और इससे ससार-चक्र मे ही फसे रहते है । पर जो इन्द्रियो को वशीभूत करके ब्रह्मयोग मे अग्रसर होते हैं, वे उम अचिन्त्य आनन्द को भोग कर प्रलय के पश्चात् भी परमानन्द की स्थिति को स्थायी कर लेते है ॥३६-३८॥ इसलिये ब्रह्मज्ञानी सासारिक सुखो को क्षणस्थायी समझ कर कभी उनके लिप्त नही होते । वरन् वे अन्य लोगो की गति, अग्नि, मृत्यु-जन्म के कर्म फलको देखते हुये अपनी मुक्ति के लिये ही प्रयत्न करते रहते हैं । जो विषय वासनायें सामान्य लोगो के चित्त मे हल-चल मचाती रहती है, ब्रह्मज्ञानी उनको दुःख मूलक जान कर त्याग देते हैं ॥३६-४२॥

पच्यते हृदयं नीलं परम्यो ज्ञानचक्षुषा ।  
 व्रजप्रोक्तमिवात्मा वै विमुक्तो देहबन्धनात् ॥४३  
 सृजेदपि परं लोकं सहरेदपि विद्यया ।  
 तेजोमूर्तिरिवाविद्धमिह लोकं च ससृजेत् ॥४४  
 तिर्यग्योनी गताश्चैव कर्मभिर्नियमोपमै ।  
 तान्यपि प्रणिमुच्ये ब्रह्मयुक्तेन चेतसा ॥४५  
 अक्षरं च। क्षरं चैव योगकर्माभिविद्यते ।  
 न क्षरं विद्यते तत्र यद्ब्रह्म कर्मभिर्ध्रुवम् ॥४६

सच्चा ब्रह्मज्ञान उसी की समझना चाहिये जिससे हृदय काम-क्रोध आदि दुर्वासनाओ से मुक्त होकर ज्ञान चक्षु खुल जाते है और मन शुद्ध हो जाता है । ऐसा होने से मनुष्य देह बन्धन से छुटकारा पा जाता है । ऐसे ब्रह्मज्ञान सम्पन्न व्यक्ति ब्रह्मा के समान लोक की सृष्टि और सहार करने मे भी-समर्थ होते हैं ॥ ४३-४४ ॥ वे स्वय ही नही अन्य पापग्रस्त तथा पशु-पक्षी योनियो में पड़े जीवो का भी उद्धार कर देते हैं । सासारिक भोग और मोक्ष-दोनो ही योग कर्म के परिणाम हैं पर सत्य स्वरूप ब्रह्मयोगी मे कर्मकल का कोई अंश शेष नही रहता ॥ ४५-४६ ॥

## ॥ शुभाशुभ कर्मों का फल ॥

पृथिव्यां यत्कृतं छिद्रं तपनेन विवर्द्धता ।  
 तस्मिन्न्यस्तोऽथ मैनाकः स्वभावविहितोऽचलः ॥१  
 पर्वभिः पर्वतत्वं च लभते नाम संज्ञितम् ।  
 अचलादचलत्वं च स्वभावान्मेरुरेव सः ॥२  
 यस्य पृष्ठे सुविस्तीर्णो नगस्य सुमर्हाद्विमान् ।  
 तस्मिस्तु पुरुषो व्यक्तो वगति ज्योतिरुद्भवः ।  
 विहितश्च स्वभावेन तेनैव परमात्मना ॥३  
 यत्तद्ब्रह्ममयं तेजो निहितं शिरसोऽन्तरे ।  
 तस्य ज्योतिर्मयं रूपं दीप्तं पुरुषविग्रहम् ॥४  
 वदनादभिनिष्क्रान्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ।  
 चतुर्भिवर्दनैर्युक्तं चतुर्भिश्च भुजोत्तमैः ॥५  
 वक्त्र ब्रह्मसमुद्भूत ब्रह्मा ब्राह्मणपुङ्गवः ।  
 तदेव तन्महाभूतं पुनर्भावित्वमागतम् ॥६  
 उदधृता पृथिवी देवी पुरस्नात्सलिलाशयात् ।  
 ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः स्थानादलोको लोकरता गतः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे महाराज ! पृथ्वी के मध्य भाग को विदीर्ण करके जब सूर्य आकाश में स्थित हो जाते हैं, तो इनसे जो छिद्र होता है उस जगह सुमेरु और मैनाक पर्वत उपस्थित हो जाते हैं । इनमें 'पर्व' (बागना पूण करने की प्रवृत्ति ) होनी है इसलिये उनका नाम पर्वत' पड़ा । चलने फिरने की शक्ति न होने से इनको अचल, कहा गया ॥ १-२ ॥ उस सुमेरु पर्वत की पीठ पर ज्योतिर्मय परमेस्वर की स्थिति होती है । वेदान्त के अनुसार जिसे ब्रह्ममय तेज कहा गया है, उस ज्योतिर्मय परम पुरुष उसका विग्रह होता है ॥३-४॥ उस परम पुरुष के मुख में चार नूत मुख तथा प्रदीप्त जान पड़ने वाला जो तेज निरसता उसी को चतुर्मुख कहते हैं । ब्रह्म के मुख से उत्पन्न होने के कारण ही उसे ब्रह्मा कहते हैं और इसी से द्विज वा नाम ब्राह्मण कहा गया है ॥ ५-६ ॥

पृथ्वी का जल के भीतर से उद्धार करने वाले भगवान् बाराह चतुर्भुज बहे गये है ॥ ७ ॥

पदसंधौ ब्रह्मलोकं शृङ्गं मेरोस्तदाऽभदत् ।  
 उच्छ्रितं योजनशतं सहस्रशतमेव च ॥८  
 एवमेव च विस्तारं चतुर्भिर्गुणितं गुणैः ।  
 अथवा नैव सख्यातु शक्य भूतेन केनचित् ॥९  
 चतुर्भिः पार्श्वविस्तारैः शिलाभिरभिसवृत्तैः ।  
 नगस्य यस्य राजेन्द्र विस्तारं शतयोजनैः ॥१०  
 कोटिकोटीशतगुणैर्गुणितं ब्रह्मवादिभिः ।  
 योगयुक्तैः सदा सिद्धं नित्यं ब्रह्मपरायणैः ॥११  
 महद्भिः सह देवेन्द्रै रूर्ध्वं सुभिरेव च ।  
 आदित्यं विश्वसहितं ररक्ष वसुधाधिपान् ॥१२  
 ररक्ष पृथिवी चैव भगवान्विष्णुना ।  
 विचस्वद्वरुणाभ्या च संघातं गमिता नृप ॥१३  
 तेन ब्राह्मणेण वपुषा ब्रह्मप्राप्तेन भारत ।  
 यत्तद्विष्णुमयं तेजः सर्वं स समता गतम् ॥१४  
 यत्तद्ब्रह्मैति वै प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।  
 नियमं बंधुभिः प्राप्तं सत्यव्रतपरायणैः ॥१५

सुमेरु के शिखर की ऊंचाई सौ हजार योजन और विस्तार इससे चौगुना बतलाया गया है । उसी के ऊपर ब्रह्मलोक की स्थिति कही जाती है । इस पर्वत के विस्तार की नाप-जोख कोई लाखों वर्षों में भी नहीं कर सकता ॥८-९॥ उसके चारों ओर स्वर्गों की तरह महाविशाल शिलायें दिखाई पड़ती हैं । योग-परायण सिद्ध ब्रह्मज्ञानी भी उनका विस्तार करोड़ों योजन बतलाते हैं । वास्तव में उसके विस्तार को कोई जान नहीं सकता वह अनन्त है ॥१०-११॥ उन चास मरुत, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य विश्वे देव, वरुण और इन्द्रादि देवों से यह पृथ्वी व्याप्त रहती है और भगवान् विष्णु और ब्रह्मा अपने तेज से पृथ्वी का

पालन करते हैं और कर्म तथा ज्ञान के मोक्षप्रद उपदेशों से यहाँ के राजाओं आदि का मार्ग दर्शन करते हैं ॥१२-१५॥

एवमेते त्रयो लोका ब्राह्मोऽहनि समाहिताः ।  
 अहनि ब्रह्म चाव्यक्तं व्यक्तं प्राणे प्रतिष्ठितम् ॥१६  
 ब्रह्मणो नियतं कर्म प्रभावेण प्रचोदितम् ।  
 प्रवर्त्तमानं भावेन शश्वदच्छलवादिनाम् ॥१७  
 एतद्धितमिति प्रोक्तं ब्राह्मणं वेदपारगैः ।  
 यदेकं ब्रह्मणः पादं दिष्टत्वं गमितं पदम् ॥१८  
 बहुत्वादिप्रभावानां विश्वशब्दः प्रयुज्यते ।  
 ब्राह्मणं ब्रह्मभूतात्मा सत्यव्रतपरायणैः ॥१९  
 विश्वरूपं मनोरूपं बुद्धिरूपं च मानयन् ।  
 एवं द्वन्द्वं स भगवान्प्रथमं मिथुनं सृजत् ॥२०  
 स एव भगवान्निश्वो देव्या सह सनातनः ।  
 विधाय विपुलान्भोगान्ब्रह्मा चरति सानुगः ॥२१

जिस ब्रह्म की तीनों लोक वासी अव्यक्त और यज्ञ में प्रतिष्ठित कहते हैं, योगी जन उसे प्रत्यक्षरूप से अपनी अन्तरात्मा में स्थिति देखते हैं। पुण्य कर्मों में अनुराग रखने वाले धार्मिक जन जो कर्म वेद विहित करते हैं, वेदोंके ज्ञाता उसे हितकर कहते हैं। पर इस प्रकार के कर्म जनित पुण्य परमात्मा के एक अंश भाग ही होते हैं, क्योंकि वह वास्तव में कर्म से नहीं आत्मज्ञान से ही प्राप्त हो सकता है। इसी लिये सत्य को मानने वाले ब्रह्मविद् 'विश्व' शब्द से उसका उल्लेख करते हैं ॥ १६-१९ ॥ वही परमात्मा स्थूल रूप, मनोरूप तथा बुद्धिरूप जगत् को रच कर सर्व प्रथम मिथुन (स्त्री-पुरुषों) की रचना करता है। वही विश्वरूप भगवान् आदि देवपियों के रूप में विपुल भोग करता सर्वत्र स्थित है ॥ २०-२१ ॥

३ एष भगवान्ब्रह्मानित्यं ब्रह्मविदा वरः ।  
 नैवाणिभयगन्तृणामकिंचनपथैषिणाम् ॥२२

सोमात्सोमः समुत्पन्नो धारासलिलविग्रहात् ।  
 यथाभिपिक्तो भूतानामाधिपत्ये महेश्वरः ॥२३  
 अभिपिच्य च भूतेशं कृत्वा कर्म स्वभावतः ।  
 नदति स्म तदा नादं तेन सा ह्युच्यते नदी ॥२४  
 सा ब्रह्मलोकं सम्भाव्य अभिमूय सहस्रधा ।  
 गा गता गगनाद्देवी सप्तधा प्रससार च ॥२५  
 सहस्रधा च राजेन्द्र बहुधा च पुनः पुनः ।  
 इमं लोकममुं चैव भावयन्क्षरसम्भवम् ॥२६  
 ततो भूतानि रोहन्ति महाभूतफलानि च ।  
 ततः सर्वे क्रियारम्भाः प्रवर्तन्ते मनीषिणाम् ॥२७

जो ब्रह्मज्ञान परायण ऋषि-मुनि निर्वाण-पदगामी जनों में अग्रणी और श्याम परायण थे उनके नियन्ता ब्रह्माजी ही होते हैं । परमेश्वर के सलिल रूप से सोमदेव की उत्पत्ति हुई है । उसी सलिल से परमात्मा ने समस्त जीवों के अद्यक्ष पद पर भगवान् महेश्वर को अभिपिक्त किया ॥२२-२३॥ तत्पश्चात् वे बहुत गम्भीर रूप से नाद करने लगे, जिससे उस सलिल धारा का नाम नदी हुआ । परमाला द्वारा प्रकट नदी ब्रह्मलोक होकर पर्वतादि को विदीर्ण करके पृथ्वी पर आई । गगन से आने के कारण ही उसका नाम गगा पडा और वह पृथ्वी पर सात धाराओं में विभक्त होकर बहने लगी ॥२४-२५॥ फिर उन गगा ने सहस्रों तीर्थों के रूप में अपना विस्तार किया जिससे लोक और पर लोक में उनका विस्तार हुआ और मान वृद्धि हुई । गगाजी के जल के तेज से धान्य के बीज अकुरित होने लगे और उनसे तरह-तरह के प्राणियों की वृद्धि होने लगी । इन धान्य तथा मनुष्यादि में ही मनीषियों द्वारा समस्त धार्मिक क्रियाएँ प्रवर्तित की गईं ॥ २६-२७ ॥

चतुर्भिर्बर्दनैस्तस्यः मुखपद्माद्विनिःसृता ।  
 तदाऽक्षरमयी सिद्धिदिशत्व समुपागता ॥२९



तस्य ज्ञानमयं पुण्यं चतुष्पादं सनातनम् ।  
 पतित्वेनाभवद्देवो ब्रह्मा चात्र पितामह ॥२८  
 पादा धर्मस्य चत्वारो यैरिदं धार्यंते जगत् ।  
 ब्रह्मचर्येण व्यक्तेन गृहस्थेन च पावने ॥३०  
 गुरुभावेन वाक्येन गुह्यगामिनगामिना ।  
 इत्येते धर्मपादा स्युः स्वर्गहेतो प्रचोदिताः ॥३१  
 न्यायाद्धर्मेण गुह्येन सोमो वर्धति मण्डले ।  
 ब्रह्मणो ब्रह्मचरणाद्देवा वर्तन्ति शाश्वता ॥३२  
 गृहस्थानभिवाक्येन तृज्यन्ति पितरस्तथा ।  
 श्रुपयोऽपि च धर्मेण नगस्य शिरसि स्थिता ॥३३  
 नगस्य तस्य सम्पश्य मेरोः शिखरमुत्तमम् ।  
 पद्भ्यां सम्पीड्य वृषणावृषिभिस्तैर्विचार्यते ॥३४  
 ग्रीवा निगृह्य पृष्ठं च विनाम्य प्रहसन्निव ।  
 नाभिदेशे करौ न्यस्य सव शोऽङ्गानि स क्षिपन् ॥३५

ब्रह्माजी के चारो मुखों से जो-जो ज्ञानमय शब्द निकले वे ही चारों वेद हो गये जो मनुष्यों को धर्म साधन और ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग दिखलाते हैं । यही वेद रूपी ज्ञान आगे चल कर यज्ञ के ब्रह्मा, उद्गाता, होता और भृगवु— इन चार भागों से सम्पन्न होकर अनन्त विस्तार को प्राप्त हो गया और स्वयं भगवान् ब्रह्मा ही उस पद के अधिपति हुये ॥२८-२९॥ धर्म के भी ये ही चार चरण हैं जिनसे वह ससार को धारण करता है । ब्रह्मचर्य आदि चारो आश्रम भी धर्म के चार चरण हैं । धर्म के ये चरण ही स्वर्ग और मोक्ष के साधन रूप माने गये हैं ॥३०-३१॥ योग का गुह्य ज्ञान स्वाध्याय और मनन द्वारा होता है, जिससे मानसिक विवास होता है और वहाँ वेदोक्त ब्रह्मपर्यं की स्थिति होती है । गृहस्थ आश्रम का पालन करने वाले व्यक्ति जब इस प्रकार ब्रह्म-योग की ओर प्रवृत्त होते हैं तो मेरु शिखर पर रहने वाले श्रुपिगण तथा उनके पितृगण इससे परम सतुष्ट हो जाते हैं ॥३२-३३॥ वे श्रुपि उमी उत्तम शिखर पर विराजमान होकर सबका दबलोकन करते रहते हैं और जपामूत्र में दाँये और बाँये पंर के

गुम्फ की रख कर गर्दन तथा रीढ़ की हड्डी को सीधा रखते हुये नाभि देस पर हथेलियों को रख कर, मुख को सट्टज रूप से प्रसन्न मुद्रा में रखते हुये साधना पर बैठने हैं । यही योगियों का आसन बहलाता है ॥३४-३५॥

मूर्त्ति ब्रह्म समुत्क्षिप्य मनसाऽपि पितामहः ।  
 अमृजन्मनसा विष्णुं योगाद्योगेश्वरस्य च ॥ ३६  
 व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्विम्बाद्विम्बमिवोद्धृतः ।  
 तेजोमूर्तिधरो देवो नगसीन्दुरिवोदितः ॥ ३७  
 रराज ब्रह्मयोगेन सहसाशुरिवापरः ।  
 विराजन्मनसो मध्ये प्रभाभिरतुलं प्रभुः ॥ ३८  
 नोपलभ्यति मूढानां प्रत्यक्ष ब्रह्म साश्वतम् ।  
 ललाटमध्ये तिष्ठन्तं द्विधाभूतं क्रिया प्रति ॥ ३९  
 ज्योतिश्चक्षुषि सम्बद्धं विम्बं चास्करसोमयोः ।  
 बुद्ध्या पूर्वं तु पश्यन्ति अध्यात्मविषये रताः ॥ ४०  
 ब्राह्मणा वेदविद्वांसः सत्यव्रतपरायणाः ।  
 नेतरे जातु पश्यन्ति अध्यात्मं नावबुध्यते ॥ ४१

इस प्रकार स्थिर आसन पर बैठ कर योग-साधक स्वास को नियंत्रित करते हुये मस्तक के मध्य में विष्णु-भगवान का ध्यान करते हैं । उस समय सब इन्द्रियों के दिवशी-से निवृत्त हो जाने से रूप में ऐसा ज्ञानालोक होता है मानो आकाश में चन्द्रमा का उदय ही हो ॥ ३६-३७ ॥ इसी ब्रह्मयोग की साधना से अन्तरामा में ज्ञान का ऐसा प्रकाश हो जाता है मानो एक नया सूर्य ही प्रकाशित हो उठा हो । यद्यपि यह भूतात्मा ब्रह्म ललाट के मध्य में ही स्थिति रहता है, पर अज्ञानी जन उसे नहीं जान पाते ॥ ३८-३९ ॥ चन्द्रमा तथा सूर्य सूर्य पर ज्योति मनुष्य के दोनों नेत्रों में समाई रहती है, पर ध्यान द्वारा मन को एकाग्र कर सकने वाले ही उसका दर्शन कर सकते हैं । वेदोक्त मार्ग से आत्म साधना करने वाले मनीषी ही उसका अनुभाव करने में समर्थ होते हैं अन्य लोगों को इस अध्यात्म तत्त्व का परिचय नहीं हो पाता ॥ ४०-४१ ॥

तस्य ज्ञानमयं पुण्यं चतुष्पादं सनातनम् ।  
 पतित्वेनाभवद्देवो ब्रह्मा चात्र पितामहः ॥२९  
 पादा धर्मस्य चत्वारो यैरिदं धार्यते जगत् ।  
 ब्रह्मचर्येण व्यक्तेन गृहस्थेन च पावने ॥३०  
 गुरुभावेन वाक्येन गुह्यगामिनगामिना ।  
 इत्येते धर्मपादाः स्युः स्वर्गहेतोः प्रचोदिताः ॥३१  
 न्यायाद्धर्मेण गुह्येन सोमो वर्धति मण्डले ।  
 ब्रह्मणो ब्रह्मचरणाद्देवा वर्तन्ति शाश्वताः ॥३२  
 गृहस्थानभिवाक्येन तृप्यन्ति पितरस्तथा ।  
 ऋपयोऽपि च धर्मेण नगस्य शिरसि स्थिताः ॥३३  
 नगस्य तस्य सम्पश्य मेरोः शिखरमुत्तमम् ।  
 पद्भ्यां सम्पीड्य वृषणावृषिभिस्तं विचार्यते ॥३४  
 ग्रीवां निगृह्य पृष्टं च विनाम्य प्रहसन्निव ।  
 नाभिदेशे करौ न्यस्य सवंशोऽङ्गानि संक्षिपन् ॥३५

मुन्क को रख कर गर्दन तथा रोड की हड्डी को सीधा रखने हुये नामि देस पर हथेलियों को रख कर, मुन्क को सट्टज रूप से प्रमन्न मुद्रा में रखते हुये साधना पर बंठे हैं । यही योगियों का आसन कहलाता है ॥३४-३५॥

मूर्ध्नि ब्रह्म समुत्तिष्ठत्य मनसाऽपि पितामहः ।  
 असृजन्मनसा विष्णुं योगार्द्योगेश्वरस्य च ॥ ३६  
 व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्विम्वद्बिम्बमिवोद्भूतः ।  
 तेजोमूर्तिघरो देवो नमसीन्दुरिवोदितः ॥ ३७  
 रराज ब्रह्मयोगेन सहस्राशुरवापरः ।  
 विराजन्मनसो मध्ये प्रभाभरतुलं प्रभुः ॥ ३८  
 नोऽलम्यति मूढानां प्रत्यक्षं ब्रह्म शाश्वतम् ।  
 ललाटमध्ये तिष्ठन्तं द्विधाभूतं क्रियां प्रति ॥ ३९  
 ज्योतिरक्षुपि सम्यद्धं बिम्बं भास्करसोमयोः ।  
 बुद्ध्या पूर्वं तु पश्यन्ति अध्यात्मविषये रताः ॥ ४०  
 ग्राह्याणां वेदविद्वांसः सत्यव्रतपरायणाः ।  
 नेतरे जातु पश्यन्ति अध्यात्मं नावबुध्यते ॥ ४१

शान्ति प्राप्त करता है। वेदज्ञ महात्मा इसी को 'वैष्णव-यज्ञ' कहते हैं ॥ ५३-५६ ॥

चेतसस्तूपलम्भं हि मनोग्राह्यस्य कामतः ।  
 कारणं श्रोतुमिच्छामि यथा त्वं मन्यसे मुने ॥५७  
 न ह्यस्य कारणं किञ्चिद्ब्राह्मं भवति भारत ।  
 अन्तर्गतं कारणं तु शारीरं मानसं नृप ॥५८  
 येन वेद्यं विदुर्मर्त्या ब्राह्मणाः सशितव्रताः ।  
 अवेद्यमपि वेद्यं च शक्यं वेत्तुं न कर्मणा ॥५९  
 ब्राह्मणेन विनीतेन सदा ब्रह्मनिषेविणा ।  
 सदा विदिततत्त्वेन सिद्धिहेतोर्मंहीपते ॥६०  
 सदा चैव शुचिभूत्वा नियतो ब्रह्मकर्मणा ।  
 उपतिष्ठेत स गुरु बद्धाञ्जलिपुटो द्विचः ॥६१  
 सायं प्रातश्च तत्त्वज्ञो मोक्षकर्माणि कारयेत् ।  
 विनीतो ब्रह्मभावेन समाहितमतिभुनिः ॥६२  
 सम्प्रपद्येत मनसा वैष्णव पदमुत्तमम् ।  
 ध्यायन्नेव प्रसीदेत् समाहितमतिद्विजः ॥६३

राजा जनमेजय ने प्रश्न किया—जिस प्रकार ईंधन के न मिलने पर आग स्वयं वृक्ष जाती है उसी प्रकार भोगों के उपलब्ध न होने पर उनका शान्त हो जाना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में यदि मन एक घार समाधि अवस्था में पहुँच जाता है तो फिर वह विषयों की ओर क्यों आवृष्ट होता है ॥ ५७ ॥ वैशम्पायनजी ने कहा—इस प्रकार मन का पुनरावर्तन आन्तरिक, शारीरिक अथवा मानसिक कारणों से ही होता है। ऐसे कारण मन में उपस्थित होकर चित्त को चलायमान कर देते हैं। इन कारणों को जिस ज्ञान द्वारा जाना जा सकता है उसका प्राप्त करना भी कठिन ही है। यह श.स्त्रों के स्वाध्याय तथा सुयोग्य आचार्यों के उपदेश से ही प्राप्त हो सकता है, कर्म द्वारा उसका जानना संभव नहीं ॥५८-५९॥ निर्वाण अभिलाषी को शुद्ध-पवित्र होकर मग्नता पूर्वक—आचार्यों की उपासना करनी और दोनों समय धारणा-ध्यान आदि मोक्ष

प्रदायक कर्मों में दत्तचित्त होना चाहिये । उसे समाहित चित्त से विनीत भाव रखते हुये ब्रह्म की भावना करनी चाहिये ॥६०-६२॥ ऐसा करने से अवश्य ही श्रेष्ठ वैष्णवपद की प्राप्ति होती है । इसमें सन्देह नहीं कि मनः प्रसाद ऐसी उच्चगति प्राप्त करने का मुख्य साधन है ॥६३॥

गच्छते परमं ब्रह्म निर्विकारेण चेतसा ।  
 अपुनभवभावज्ञो निर्भमो भावबन्धनात् ॥६४  
 तदेवाक्षरमित्याहुयत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।  
 तर्हि तत्कर्मयोगेन विद्यायोगेन दर्शितम् ॥६५  
 ब्राह्मणानां विनीतानां वैष्णवे पदसञ्चये ।  
 सर्वद्रव्यातिरिक्तानां कामयोगविर्गहणाम् ॥६६  
 अपुनर्भाविना लोका कर्मयोगप्रतिष्ठिता ।  
 अनादानेन मनसा राजन्कर्मणि कर्मणि ॥६७  
 आदानाद्वद्वचते जन्तुनिरादानात्प्रमुच्यते ।  
 ब्राह्मणेभ्यः क्रियावाप्तिर्जन्तो पूर्वाञ्जनाधिप ॥६८  
 मुक्तश्चेन्द्रियबन्धेन प्राप्नश्च परमं पदम् ।  
 न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ॥६९

जब साधक का चित्त सासारिक विकारों से शून्य हो जाता है तो ब्रह्म साक्षात्कार में विलम्ब नहीं होता और भव बन्धनों से शीघ्र ही छुटकारा हो जाता है ॥६४॥ इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि सनातन ब्रह्म की प्राप्ति कर्मयोग और ज्ञान योग द्वारा ही निश्चिन है । जो साधक वेदों के ज्ञाता और विनीत होते हैं और सासारिक पदार्थों और विषय भोग से अनासक्त होते हैं वे ही वैष्णव-पद तक पहुँच सकते हैं ॥६५-६६॥ यद्यपि कर्मों को पुनर्जन्म का कारण बतलाया गया है पर जो अनासक्त भाव से कर्म करते हैं उनके लिये यही मोक्ष का आधार बन जाता है और ऐस साधनों का कभी पुनरानयन नहीं होता । फलाकांक्षा से कर्म करने के कारण प्राणी बन्धन में पड़ता है और फलाशा का त्याग करते-करते, से इन्द्रियों के चयन, से, यत्न, श्रेष्ठ, परम पद को, प्राप्त

कर लेता है, और उसको मानव देह गृह्य करने के लिये इस जगत में नहीं आना पड़ता ॥६७-६९॥

## ॥ सनातन जगत का प्रमाण ॥

उपसर्गं च योगं च ध्यातव्यं चैव यत्पदम् ।  
 न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ॥१  
 शृणु विस्तरतः सर्वं यथा पृच्छसि मेधया ।  
 उपपन्नेन मनसा ब्रह्मादीनामनेकधा ॥२  
 पञ्च सिद्धिगुणांस्त्यक्त्वा पश्यतो ब्रह्मणो नृप ।  
 योगयुक्तेन मनसा पञ्चेन्द्रियनिवासिनः ॥३  
 ब्रह्मणश्चिन्तयानस्य ब्रह्मयज्ञं सनातनम् ।  
 बहुरूपमनैश्वर्यात्प्रवर्त्तति निरोधनम् ॥४  
 पञ्चेन्द्रियस्य ग्रामस्य नवद्वारस्य भारत ।  
 कामक्रोधस्य लोभस्य सन्निरुद्धस्य मेधया ॥५  
 तेजसा मूर्ध्नि चाघाय धूमो दोधूयते महान् ।  
 नीललोहितवर्णाभिः पीतैः श्वेतैश्च घातुभिः ॥६  
 माञ्जिष्ठरागवर्णाभिः कपोतसदृशैस्तथा ।  
 शुद्धवैदूर्यवर्णाभिः पद्मवर्णदलप्रभैः ॥७  
 स्फाटिकैर्मणिवर्णाभैर्नगिन्द्रसदृशैस्तथा ।  
 इन्द्रगोपकवर्णाभैश्चन्द्रांशुसलिलप्रभैः ॥८  
 बह्वर्णैः सुधूमौर्घरिन्द्रायुधसमप्रभैः ।  
 सपतद्भिश्च युगपन्मेघैरिव समागमे ॥९

राजा जनमेजय ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ मैं योग मार्ग और उसमें आने वाले विष्णु, ध्यान करने योग्य सद्य के विषय में विशेष रूप से गुनना चाहता हूँ तबसे जानकर फिर मानव-देह में नहीं आना पड़ता ॥१॥ बंशम्यापन जी ने कहा—हे राजन् ब्रह्म योग की साधना में जो धनेकों प्रकार के उपसर्ग आते हैं

में उनका बलन विस्तार पूर्वक सुनाता हूँ ॥२॥ जो साधक पाँचो इंद्रियो के विषयो को त्याग कर सनातन ब्रह्म का ध्यान करते हैं उनको स्वयमेव ही दूर-दर्शन, दूर श्रवण आदि योगेश्वर्यं प्राप्त हो जाते हैं और ये योग मार्ग की सर्वोच्च सिद्धि मे बाधा स्वरूप सिद्ध होते हैं ॥३-४॥ इस पचेन्द्रिय युक्त गृह मे नौ द्वार हैं जिनको काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अवरुद्ध बिये रहते हैं ॥५॥ जब साधक योग साधन मे सलग्न होता है तो उसमे एक तेज का प्रादुर्भाव होता है जो मस्तरु मे होकर निकलने लगता है । उससे एक गहरा धुँवा सा निकलने लगता है । वह धुँवा समय समय पर नीला, लाल पीला श्वेत, मजीठ के रंग का, क्यूतर के रंग का, बंदूयं पद्मराग, एकटिक मणियों के रंग का अथवा नागेन्द्र-गाज, इन्द्रगोप कीट, चन्द्रकिरण, इन्द्रधनुष आदि के विविध वर्णों का होता है और आकाशस्थ मेघो के समान छा जाता है ॥६ ॥

निरुध्यन्त इवानाशे पक्षवद्भिरिवाद्रिभि ॥  
 ते धूमवर्णा सघाता घना सलिलधारिण ।  
 निर्वेमुश्चैव तोयीघान्विविश्रुर्वसुघातलम् ॥१०  
 मूर्ध्नि चैव महानग्निमनिस्तो भूयते प्रभु ।  
 युक्त परमयोगेन शतशोऽर्चिभिरावृत ॥११  
 तस्यार्चो विस्फुलिङ्गाना सहस्राणि शतानि च ।  
 विसुम्भु सर्वगात्रेभ्यो ज्वलन्निव यूगान्नय ॥१२  
 याव त्यो वर्षा धारास्तु ताव त्योऽर्च्योऽनलस्य च ।  
 समेयुर्वारिधाराभिर्विपुले वसुघातले ॥१३  
 वणभ्या युज्यमानस्य वायुर्दोषूयते महान् ।  
 दिव्यसिद्धगुणोद्भू न सूक्ष्मप्राणविवर्द्धन ॥१४  
 वेगवान्मीमनिर्घोषो बलवान्प्राणगोचर ।  
 तैरेव चाग्निसघातैर्घातुभि सह सगत ॥१५

जब वह धुँवा निरुद्ध होकर घनीभूत होता है तो वह वर्षा करने वाले बादलो का रूप ग्रहण कर लेता है और उससे जो जल बरसता है उससे समस्त



वसुधा आद्र हो जाती है ॥१०॥ इसके पश्चात् ऐसा जान पड़ता है मानो मरतक मे अत्यन्त भयकर अग्नि भडक उठी है और योगी की समस्त देह से असंख्य चिनगारियाँ निकल रही हैं और उस अग्नि ने प्रलयान्नि का-सा रूप धारण कर लिया है ॥११-१२॥ उस समय यह आश्चर्य होता है कि मेघ से जितनी जल-धारण बरसती है उतनी ही अग्नि अधिक भडकती है, पर अन्त मे ये दोनों ज्ञान्त हो जाती हैं ॥१३॥ तत्पश्चात् बड़े जोर की वायु चलने का आभास होता है । वह दिव्य गुणो युक्त वायु अन्य तत्त्वो से मिलकर 'सूक्ष्म प्राण' का नाम धारण कर लेता है । उसका वेग बड़ा तीव्र और शब्द अत्यन्त भयकर होता है । उसकी शक्ति समस्त जगत का भेदन कर सकने वाली जान पड़ती है ॥१४-१५॥

सहस्रशोऽथ शतशो मूर्तिकृत्वा पृथग्विधाम् ।  
 अग्निर्वायुर्जल भूमिर्घातवो ब्रह्मचोदिताः ॥१६॥  
 समवायत्वमापन्ना वीजभूता महीपते ।  
 संघातं ब्रह्मवेगेन घातवो गमिता नृप ॥१७॥  
 यद्ब्रह्म चक्षुषोर्मध्ये स सूक्ष्मः पुरषो विराट् ।  
 तयोरन्यान्वहून्सूक्ष्मान्ससृजे पुरुषोत्तम ॥१८॥  
 स एव भगवान्विष्णुर्व्यंक्ताव्यक्तः सनातनः ।  
 आधारः सर्वविद्यानां प्रलये प्रलयान्तर्गत् ॥१९॥  
 तं मूर्ध्नि घातुमिर्नद्धं विशन्ति ब्रह्मचोदिताः ।  
 तेऽन्तरा पुरुषा सर्वे ज्ञानारः सुद्यदुद्ययोः ॥२०॥  
 अथ चेष्टितुमारब्धा मूर्तयो ब्रह्मसमिताः ।  
 भित्त्वा च धरणी देवी प्रापद्यन्त दिशो दश ॥२१॥

बैष्णव्य जी ने जनमेजय से फिर कहा—हे राजन् ! इस प्रकार अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश आदि तत्त्व एक दूसरे में सम्मिलित होकर एक ही प्रकार के रूप धारण कर लेते हैं, पर वास्तव में इन प्रकार के आभास होने का कारण वह ब्रह्म ही होता है ॥१६-१७॥ उन समय प्राण के दो नेत्रों के मध्य में जो 'ब्रह्म' परिनिहित होता है उगी ही सूक्ष्म और विराट्

जाता है। इससे वह साधक भगवान विष्णु की तरह ही स्थूल सूक्ष्म और सब विद्याओं का आधार तथा प्रलय कर सकने वाला प्रतीत होने लगता है और भगवान का अंग ही बन जाता है ॥१८-१९॥ उस समय ससार के सुख दुःख का अनुभव करने वाले सभी जीव भगवान की शक्ति से उस योगी के भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार सबभूतमय हो जाने से उसको समस्त जगत और दसों दिशाओं का ज्ञान हो जाता है ॥२०-२१॥

इत्येते पार्थिवा सर्वे ऋपयो ब्रह्मनिर्मिता ।  
 तत्रैव प्रलय याता भूमित्वमुपयान्ति च ॥२२  
 कर्मक्षयाद्विमुच्यन्ते धातुभि कर्मबन्धनै ।  
 कर्मक्षयाद्विमुक्तत्वादिन्द्रियाणा च बन्धनान् ॥२३  
 तामेव प्रकृतिं यान्ति अज्ञाता कर्मगोचरं ।  
 क्षराद्धूमक्षय चैव अग्निगर्भास्तमोमया ॥२४  
 येन तन्तुरिवाच्छन्नो भावाभाव प्रवर्तते ।  
 धूमादध्रास्तु सभूता अध्रात्तोय सुनिर्मलम् ॥२५  
 जगती जलात्तु सभूता जग येव च यत्फलम् ।  
 फलाद्रसस्तु सजज्ञे रसात्प्राणस्तु देहिनाम् ॥२६  
 रसश्च तन्मयो जज्ञे यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।  
 प्रधानं ब्रह्म चोद्दिदष्ट बहुभि कारणांतरै ।  
 ब्रह्मणैस्तपसि श्रान्तै सत्यव्रतपरायणै ॥२७

ससार के अ य ऋषि भी उन्हीं योगियों में विलीन हो जाते हैं और पार्थिव सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं। जो योगी कर्म बन्ध से मुक्त होकर इन्द्रियों के बन्धनों को भी काट फेंकते हैं, वे ही उस परम पद तक पहुँचने में समर्थ होते हैं। पर जो, यज्ञ, अग्नि होत्रादि में लगे रहते हैं वे वहाँ नहीं पहुँच सकते। यज्ञादि सत्कर्मों से पुण्य की प्राप्ति होती है और उसका फल भोगने के लिये इस ससार में ही आना पड़ता है। कर्म के द्वारा ही इन जगत का क्रम अग्रसर होता रहता है ॥२१-२२॥ गृष्टि रचना में सबसे पहले धुँये से मेघ मेघ से जल जल से पृथ्वी,

पृथ्वी से फल और फल से रस की उत्पत्ति होती है । उस रस से प्राणियों में 'प्राण' की प्रतिष्ठा होती है । इस प्रकार रस को ही सनातन ब्रह्म का रूप मानना चाहिये । तपस्या में निरत तथा सत्य परायण विद्वानों ने इस प्रकार विचार करके ब्रह्म का यही रूप प्रतिपादित किया है ॥२५-२७॥

अव्यक्तताद्व्यक्तमापन्नं स्वेन भावेन भारत ।  
 अन्त स्थं सर्वभूतेषु चरन्त विद्यया सह ॥२८  
 कर्म कर्तेति राजेन्द्र विषयस्थमनेकधा ।  
 नोपलभ्येत चक्षुर्भ्यां तपसा दग्धकिल्बिषै ॥२९  
 उपलभ्येत चक्षुर्भ्यां ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।  
 नि.सृतस्तु भ्रुवोर्मध्यान्मेघमृकत इवाशुमान् ॥३०  
 चरद्भिः पक्षिवल्लोके निर्द्वन्द्वं निष्परिग्रहैः ।  
 योगधर्मेण कौरव्य ध्रुवमासाद्यते फलम् ॥३१  
 प्रादुर्भावं क्षयं चैव भूतस्य निघन तथा ।  
 विघत्ते षतशो ब्रह्मा सक्रये च भवेत्तदा ॥३२  
 कर्मणाद्योगज्ञो भूतेभ्यो नात्र सशयः ।  
 अविनाशाय लोकस्य घर्मस्याप्यायनेन च ॥३३  
 युग द्वादशसाहस्रं सहस्रयुगसहितम् ।  
 एतद्ब्रह्मयुग नाम युगानां प्रथमं युगम् ॥३४  
 सहस्रयुगयोरन्ते सहारः प्रलयान्तवृत् ।  
 सूक्ष्म भवति लोकानां निर्विकारमचेतनम् ॥३५  
 तथा प्रलयमापन्न जगत्सर्वं सनातनम् ।  
 ब्रह्म संपद्यते सूक्ष्मं निमित्त कारणैर्गुणैः ॥३६

यद्यपि वह ब्रह्म अव्यक्त है, यद्यपि में अपनी माया और विद्या से वह समस्त जीवों में समाविष्ट होकर विपरण करता है । पर सांसारिक मन्धनों में पड़ा माया ग्रस्त जीव उग विविध वेप धारण करने वाले ब्रह्म को पहिचान नहीं सक्ता ॥२८-२९॥ पर योग मापन तथा ब्रह्म का ध्यान करने से जिनकी ध्यन्त-

रात्मा पवित्र तथा निर्मल हो गई है वे ही अपनी ज्ञान-दृष्टि से उस ब्रह्म को देख सकने में समर्थ होते हैं । वह ब्रह्म बादलों से बाहर प्रकाशित सूर्य की तरह उन साधकों के भ्रूमध्य में स्थित होता है ॥३०॥ पर यह फल उन्हीं को मिलता है जो योगमार्ग को ग्रहण करके सर्वस्व त्यागी होकर पक्षियों के समान संसार में विचरण करते रहते हैं ॥३१॥ हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्मा जी सँकड़ो हजारों बार इस अगत की रचना और प्रलय करके जीवों को उत्पन्न और समाप्त कर चुके हैं । उनकी इच्छा से ही यह जगत का कर्म चक्र चलता रहता है ॥३२-३३॥ ब्रह्मा जी का युग सहस्र युग युक्त बारह हजार वर्षों का होता है । इसी को ब्रह्म-युग या महायुग कहते हैं । इसका अन्त होने पर प्रलयकाल उपस्थित होकर सबका संहार कर देता है । तब सब पदार्थ सूक्ष्म रूप में हो जाते हैं और यह त्रिगुणमय संसार सूक्ष्म होकर एक रूप हो जाता है और उसी परब्रह्म में विलीन हो जाता है ॥३४-३६॥

### ॥ कर्मफल वर्णन ॥

प्राग्वशं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामुने ।  
 आद्ययोग्युगयोर्ब्रह्मन्ब्रह्मप्राप्तस्य सर्वशः ॥१  
 शृणु विस्तरशः सर्वं यन्मा पृच्छसि मेधया ।  
 उपपन्नेव मनसा देवप्रत्ययसाधिना ॥२  
 ऋद्धिं प्राप्तस्तु भगवान्योगात्मा ब्रह्मसंभवः ।  
 भूतानां बहुलत्वं च चकारेहेश्वरः प्रभुः ३  
 स्थितो ब्रह्मासने ब्रह्मा विक्षिप्तः सहसा प्रभुः ।  
 अचलेनैव भावेन स्थाणुभूतेन भारत ॥४  
 रवतश्च मोक्षविषये स च ज्ञानमये पदे ।  
 यस्मात्पदसहस्राणि प्रभवन्ति भवन्ति च ॥५  
 ब्रह्मायज्ञं तु यजते योगद्वेदात्मकं सदा ।  
 ब्रह्माणो विपुलं ज्ञानमैश्वर्यं च प्रवर्तते ॥६  
 राजा जनमेजय ने कहा — हे मुनिश्रेष्ठ ! अब आप मेरे ऊपर कृपा कर

अन्य युगो मे ब्रह्म की प्राप्ति का वृत्तान्त मुनाऽये ॥१॥ वैशम्पायन जी कहने लगे—हे राजन् ! जो कुछ आपने पूछा है उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त चित्त लगाकर सुनिये—जब परब्रह्म ऋद्धियो सहित योगासक्त भाव से ब्रह्म रूप मे अवतीर्ण होते हैं तो स्थानु की तरह अचल रूप से ब्रह्मासन पर विराजमान रहते हैं ॥२-४॥ जब वे रजोगुण की ओर आकृष्ट होते है तब जीवसृष्टि की अधिवृता होने लगती है । वे भगवान जिस प्रकार मोक्षपद के विषय मे अनुरक्त होते हैं वैसे ही ज्ञान पद के विषय मे भी होते हैं । इसलिये मोक्षमार्ग की तरह ज्ञानमार्ग मे हजारो तरह के पदो का आविर्भाव हुआ है । जो माघक वेदात्मक ब्रह्मयज्ञ का अनुष्ठान करते हैं उनको विपुल ज्ञान और ऐश्वर्य की प्राप्ति होनी है ॥६॥

ततः प्रथममैश्वर्यं युञ्जानेन प्रवर्तितम् ।  
 ब्रह्मणा ब्रह्म भूतेन भूताना हितमिच्छता ॥७  
 तदा त्वाकाशमैश्वर्यं युञ्जानस्य प्रवर्तते ।  
 ब्रह्मणो ब्रह्ममूतस्य निर्विकारेण कर्मणा ॥८  
 तदाऽन्तरिक्षं संप्राप्तं निर्मलं ब्रह्म चाव्ययम् ।  
 सहारः सर्वभूतानां नराणां ब्रह्मवादिनाम् ।  
 ध्रुवमैश्वर्ययोगानां प्रतिपद्यन्ति देहिनः ॥९  
 आकाशमैश्वर्यं भूतेन संयुगे ब्रह्मवादिना ।  
 प्रवर्त्तमानमैश्वर्यं वायुभूतं करोति च ।  
 विकारैर्बहुभिः प्राप्तं सपतद्विमहाबलैः ॥१०  
 एतं विकारैः सवृत्तीनिदृष्टं च समन्ततः ।  
 ध्रुवमैश्वर्यमाधन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥११  
 शरीरादभिनिष्क्रम्य आकाशेन प्रधावति ।  
 निरालम्बो निरालम्बान्नालम्ब्य मनसा ततः १२  
 ऐश्वर्यं भूतो भूतात्मा चरन्दिवि न दृश्यते ।  
 चक्षुर्मिथैर्बहुभिर्लोकैः पुरंदग्गमेरपि ॥१३  
 ओसारं ये त्वधीयन्ते मनसा ब्रह्मसत्तामाः ।  
 विमुक्ताः सर्वकर्मभ्यस्ते तं पश्यन्ति साधवः १४

सच्चे ब्राह्मण का कर्तव्य है कि उस ऐश्वर्य को स्वार्थ में व्यय न करके अन्य प्राणियों के उपकार में ही लगावे । विकार रहित साधना करने से साधक में सर्व प्रथम आकाश रूप ऐश्वर्य का उदय होता है जो विशुद्ध ब्रह्म का स्वरूप है । ब्रह्म यज्ञ की साधना से जब परब्रह्म में आकाश रूपी ऐश्वर्य का ज्ञान होता है तो योगी उन्हें वायु रूप कहने लगते हैं । इसी प्रकार अग्नितत्व आदि का भी उदय होता है जिससे ध्रुव ऐश्वर्य रूप परब्रह्म का ज्ञान हो जाता है और उसकी गणना सिद्ध पुरुषों में होने लगती है ॥७-११॥ इस प्रकार विकारों का निरोध होने पर वह योगी शरीर से पृथक होकर अदृश्य भाव से आकाश में विचरण कर सकता है ॥१२॥ सामान्य मनुष्य लटे कभी नहीं देख सकते चाहे उनके इन्द्र की तरह हजारों आँखें क्यों न हो जायें ॥१३॥ उसका दर्शन करने में वे ही श्रेष्ठ साधक समर्थ हो सकते हैं जो सब कर्म बन्धनों से मुक्त अक्षर रूप परब्रह्म को जान जाते हैं ॥१४॥

एतद्धि परमं ब्रह्म ब्राह्मणानां मनीषिणाम् ।  
 अन्तश्चरन्ति भूताना विद्धि चेतनया सह ॥१५॥  
 एष शब्दो महानादः पुराणो ब्रह्मसंभवः ।  
 वायुभूतोऽक्षरं प्राप्तो वदन्त्येवं द्विजातयः ॥१६॥  
 अरूपी रूपसंपन्नो धातुभिः सह संगतः ।  
 अन्तश्चरति भूतेषु कामकारकरो वशी ॥१७॥  
 एतत्पूर्वमनुष्ठाय मनसाऽऽपूर्यग्निव ।  
 वेदात्मकं तदा यज्ञं चिन्तयन्तो मनीषिणः ॥१८॥  
 ब्राह्मणाः शुचो दान्ता यशो यञ्जस्तदन्वयाः ।  
 ब्रह्मलोकं काङ्क्षमाणा वैष्णव पदमुत्तमम् ॥१९॥  
 पदहेतोः क्रियाः सर्वाः कुर्वन्ति विगतज्वराः ।  
 न ह्येते प्रसवादाने भवमिच्छन्ति भारत ॥२०॥  
 त्तिभिर्माल्योपहारैश्च प्रतिभावेश्च वै द्विजाः ।  
 यजन्ति परमात्मानं विष्णुं सत्त्वपराक्रमम् ॥२१॥

विद्वान् साधकों के लिये यह ॐकार, जो चैतन्य तत्त्व के साथ समस्त जीवों में व्याप्त रहता है, परब्रह्म के तुल्य ही है ॥१५॥ वे कहते हैं कि इस महाशब्द 'ॐ' और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। यह भविनाशी सर्व वर्ण प्रकाशक और अदृश्य होता है ॥१६॥ यह रूप रहित होने पर भी पंचभूतों के साथ मिल कर रूप युक्त हो जाता है और तब समस्त प्राणियों के भीतर व्याप्त होकर रहता है ॥१७॥ जो पवित्र और शुद्ध स्वभाव के साधक ब्रह्म में तन्मय हो जाते हैं और ब्रह्म में ही जिनकी स्थिति होती है वे ही इस ॐकारमय ब्रह्म का ध्यान करने में समर्थ होते हैं और विसुद्ध आत्मा वाले महानुभाव ही इस प्रकार का साधन करके उत्कृष्ट वंष्णव-पद को प्राप्त कर सकते हैं ॥१८-१९॥ वे समस्त प्रकार के आलस्य आदि को त्याग कर पूर्ण सज्जनता के साथ इस पद को प्राप्त करने के लिये समस्त प्रयत्न करते हैं ॥२०॥ वे तीन बार उपहार दी गई पुष्प-माला की तरह अपनी प्रतिभा तथा शुद्ध भावना से सतोगुण सम्पन्न विष्णु भगवान् की आराधना करते हैं ॥२१॥

यजनं विक्रमं चैव ब्रह्मपूर्वाः प्रचक्रिरे ।  
 ब्रह्मापि वैष्णवं तेजो वेदोक्तैर्वचनेन ॥२२  
 ग्राह्यं ब्रह्मद्विद्भिश्च ब्रह्मज्ञैर्ब्रह्मादिभिः ।  
 शुचिभिः कर्मनिर्मुक्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥२३  
 धातुभिर्मोक्षकाले च महात्मा संप्रदृश्यते ।  
 तदेव परमं ब्रह्म वैष्णवं परमाद्भुतम् ॥२४  
 रसात्मकं तदैश्वर्यं विकाराग्ते प्रदृश्यते ।  
 घोरस्या विकारास्ते व्यथयन्ति महात्मनः ॥२५  
 संछाद्यातीव तोयेन धुश्यमाणो विचेतनः ।  
 ऊर्मिभिश्छाद्यते चैव गीतोष्णामिविवागतः ॥२६  
 महान्ययगतश्चैव दक्षिणे न च गज्जते ।  
 मग्नश्चैव महानद्याः सलिलेनैव मोदति ॥२७  
 मीदमानश्च गलिले ग क्षीतास्वात्यते यवान् ।  
 आगनाच्छादनाच्चैव मुच्यमानो विचेतनः ॥२८

हे राजन् जिन श्रेष्ठ साधकों की सच्ची श्रद्धा वेद के वचनों पर रहती है, वे ही ब्रह्मयोग और विष्णु भगवान् की आराधना इन दोनों कार्यों को एक साथ कर सकते हैं । वे वैदिक मन्त्रज्ञान के द्वारा यह भली प्रकार जान जाते हैं कि ब्रह्मा और विष्णु में कोई अन्तर नहीं ॥२२-२३॥ वे निर्मल अन्तःकरण वाले साधक मोक्षावस्था में जिस एक तत्त्व का दर्शन करते हैं वही ब्रह्म, विष्णु रस, ऐश्वर्य आदि सब कुछ है ॥२४॥ पर इस प्रकार सत्य ज्ञान और सर्वोच्च लक्ष्य पर पहुँचने के पूर्व अनेक प्रकार के घोर विकार-विघ्न साधक को व्यपित करते हैं । २५॥ उसे कभी ऐसा जान पड़ता है कि जल राशि ने उसे ढक लिया है और कभी अत्यन्त उष्ण और शीतल लहरें ऊपर आती मालूम पड़ती है ॥२६॥ कभी ऐसा अनुभव होता है वह एक महासागर में निमग्न हो रहा है और भस्म हुआ जा रहा है, कभी किसी बहुत बड़ी नदी में डूबता-सा मालूम पड़ता है ॥२७॥ कभी आभास होता है कि वह जल में पड़ा है और अत्यन्त शीत को सहन कर रहा है और उसके रहने और भोजन आदि का भी कहीं ठिकाना नहीं है ॥२८॥

श्वभ्रं प्रपद्यमानश्च तोयेन परिपिच्यते ।

शुक्लवर्णेन बहूना स्रोतसा मूर्ध्नि सर्वशः ॥२९

ऊर्ध्वं ज्योतिरवेक्षंश्च शुक्लः पीतंश्च बाध्यते ।

वारिपूर्णेः सुगम्भीरे विद्युद्भरिव भासितः ॥३०

एतं विकारैः संवृत्तं निरुद्धंश्चैव सर्वशः ।

ध्रुवमश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥३१

रसात्मकं तदश्वर्यं जिह्वाग्रादभिनिःसृतम् ।

सहस्रधारं विततं मेघत्वं समुत्पागतम् ॥३२

रसांश्च विविधान्योगात्संसिद्धं सृजते प्रभुः ।

घातवर्यं सर्वभूतानां योगप्राप्तेन हेतुना ॥३३

तेजसो रूपमश्वर्यं विकारैः सह वर्द्धते ।

आत्मनो विघ्नजननं स्वस्यो ब्राह्मणकारणे ॥३४

कभी ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी गहरे गड्ढे में पहुँच गया है और



उसके मस्तक पर चारो ओर से शुभ्र जल धारा गिर रही है ॥२६॥ कभी मस्तक के ऊपर श्वेत और पीत वर्ण का विज्रली का प्रकाश-ता चमकता दिखाई पड़ता है ॥३०॥ इन प्रकार अनेको विकार योग साधन के अवसर पर अनुभव होने लगते हैं, पर जो साधक इनकी ओर कुछ ध्यान न देकर अपने मार्ग पर अग्रसर होना जाता है उसे ब्रह्मज्ञान होकर सिद्धि प्राप्त होती है ॥३१॥ उसकी जिह्वा से जो रस निसृत होता है वह मेघरूप होकर सदृशो धाराओं से पृथ्वी को जल से आप्नाविन कर देता है ॥३२॥ वह अपनी योगसाधना द्वारा विविध प्रकार के रसों की सृष्टि करते हैं जो सब प्राणियों के लिये हितकारी होते हैं ॥३३॥ इस प्रकार ब्रह्मयोग के अभ्यास से साधक का चित्त स्वभावतः शांत और सुस्थिर हो जाता है, पर अकस्मात् उसमें तेज और रूप के विकार उठ खड़े होते हैं ॥३४॥

उग्ररूपं विरूपंश्च हन्यते दण्डपाणिभिः ।  
घोररूपं सुगम्भीरं पिङ्गाक्षं न रविग्रहे ॥३५॥  
नेत्र समुद्धरन्भीम जिह्वाग्र चास्य विन्दति ।  
नदति युगपन्नाद जृम्भमाणा पुन पुन ॥३६॥  
पुनरेव तदा भक्त्वा बहुरूपास्तदाऽभवत् ।  
नृत्यमाना प्रगायन्ति तरयन्तो त्रिशेपतः ॥३७॥  
स्त्रीभूताश्च तत सर्वे युञ्जानाश्चावलम्बिरे ।  
वण्ठेषु बहुरूपत्वाद्धिघ्नंश्चैव प्रलोभयन् ॥३८॥  
मधुरं रमिधानंश्च व्याहरन्ति न भीतवत् ।  
पतन्ति युगपत्सर्वे पादयोर्मूर्धंभियुक्ता ॥३९॥  
प्रसाद काक्षमाणाश्च योगस्यान्तरविघ्नतः ।  
बहुप्रकार वययन्नृत्यन्ति च तरन्ति च ॥४०॥  
एतं विचारं सृत्तानिरुद्धंश्चैव सर्वंशः ।  
ध्रुवमंश्वर्यमासाद्य निदो भवति ग्राहाण ॥४१॥  
तदर्चिष इवाग्नेया आदित्यस्येव रश्मयः ।  
तेजोरूपामंश्वर्यं जनितास्तेजविन्दवः ॥४२॥

इन विकारों के उठने पर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि क्रोधी, बुरी आकृति के पीले नेत्र वाले पुरुष रोप पूर्वक दण्ड प्रहार करने को उद्यत हैं ॥३५॥ मालूम पड़ता है कि वे आँखें निकाल लेंगे और जीभ को काट डालेंगे । वे मुँह फंसा कर बहुत जोर से चीत्कार करते हुये भय उत्पन्न करते है ॥३६॥ कुछ ही क्षण पश्चात् वे अपना भाव बदल कर नाच गान द्वारा साधक को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगते हैं । फिर वे सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर साधक के कंधे पर हाथ रख कर उसे मोहित करा लगने हैं और हँस हँस कर बातें करते हैं ॥३६-३८॥ फिर मानो दया की भीक्ष माँगते हुये वे अपना मस्तक साधक के पैरों पर रख देते हैं और तरह-तरह नाच-गान का अभिनय करते हुये उसको लुभाने की चेष्टा करते हैं ॥३९-४०॥ हे राजन् ! इस प्रकार के अनेक प्रकार के उत्नात योग का साधन करने वाले के मामने आते रहते हैं, पर जो धर्मशाली पुरुष उनसे विचलित नहीं होते वे अन्त मे अवश्य सिद्धि को प्राप्त करते हैं । उनका ऐश्वर्य आरम्भ मे अग्नि गिखा और सूर्य के सदृश्य तीव्र होता है, तत्पश्चात् वह सौम्य रूप मे हो जाता है ॥४१-४२॥

ज्योतीषि च वै संवृत्ता आकाशभुपसंगताः ।

चरन्ति लोके सततं सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ॥४३

चन्द्रसूर्यात्मिकं दिव्यं ज्योतिष्मद्दनमुत्तमम् ।

एतद्विभ्राजते लोके कोके कालचक्रं ध्रुवं वरम् ॥४४

अर्धमासाश्च मासाश्च श्रुतुसंवत्सराण्यथ ।

क्षणं लवा मृहूर्ताश्च कलाः काष्ठास्तथैव च ॥४५

अहोरात्रप्रमाणं च निमित्तेभ्योपणं तथा ।

ताराणां गतयश्चैव ग्रहाणां च विशेषतः ॥४६

अथ पार्थिवमंश्वर्यं विकारग्रहसंभवम् ।

योगयुक्तास्त्वभिग्रस्ता यान्येन ह्यचलासनात् ॥४७

अलोमाच्छिद्यते सद्यो वेपमानोऽनुकीर्यते ।

सीदते वगुग्रामध्ये भिद्यमानः पुनः पुनः ॥४८

भूताना बहुरूपैश्च अन्यैश्च तलवासिभिः ।

विषये यज्यते क्षिप्रं स क्षेपात्समवहृद्यते ॥४६

वे योगी-गण लघिमा ऋद्धि के प्रभाव से ज्योति के रूप में इच्छानुसार आकाश में बिचरते रहते हैं । वे योगी ज्योति स्वरूप धारण करके सूर्य चन्द्र से सलग्न होकर ध्रुव नक्षत्र को केन्द्र मान कर घूमते घूमते क्षण, लय मुहूर्त, कला, काण्डा, दिवा, रात्रि निमेष उन्मेष, अर्द्धमास, मास, ऋतु, सवतसर, नक्षत्र और विशेषतः ग्रहों की गति प्राप्त कर लेते हैं ॥४२-४६॥ जो योगी इन हीन सासारिक प्रलोभनों में लुभा कर पवनोन्मुख हो जाते हैं तो वे अपने उच्च पद से गिर जाते हैं । यदि वे लोभ पर विजयी हो जाते हैं तो उन विकारों का उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता । जो लोग पतित हो जाते हैं आरम्भ में तो उनको अपनी हीनता पर बड़ी लज्जा आती है, पर फिर वे शीघ्र तरह तरह विजय रूपी रसों की ओर झुका जाते हैं ॥४७-४०॥

तत पाथिवमश्वर्यं सेवमानश्च सर्वत ।

मूर्तिमद्भिभुश्च बहुधा धातुभिः स च हन्यते ॥५०

शक्तितीमरनिस्त्रिशैर्गदाभिश्चाप्य नेकधा ।

असिभिः पात्यते चैव क्षुरधारैः सहस्रश ॥५१

भिद्यते चैव बाणाग्रैः सुतीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिः ।

एभिर्विकारैर्निर्वृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वश ॥५२

ध्रुवमश्वर्यमापन्न सिद्धो भवति ब्राह्मण ।

तत पाथिवमश्वर्यं निर्मुक्तस्य विकारत ॥५३

प्रादुर्भवति सजाते समाधौ प्रलय गते ।

दिव्य गन्ध समाध्याय दिव्यार्थास्ताञ्छुणोति च ॥५४

दिव्यरूपैश्च पुरुषैश्छिद्यते न च भिद्यते ।

गच्छन्सुकृतिना चान्त प्रधानात्मा क्षरन्निव ॥५५

ऐसी परिस्थिति आने पर उस विषयासक्त योगी को ससारी णन शक्ति,

१) तोमर, गदा, तलवार, बाण रूपी स्वार्थ युक्त वचनाओं से नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं । उनके ये प्रहार बड़े मर्मभेदी होते हैं ॥४६-५२॥ पर जो साधक धर्म अवलम्बन करके समस्त विघ्नों को पार कर लेते हैं, तो वे आत्म-विकास के शिखर पर

पहुँच कर मोक्ष पद के अधिकारी हो जाते हैं। जब तक वह योगी शरीर धारण किये रहता है जीवन भुक्त महात्माओं के ससर्ग में रहकर दिव्य पदार्थों का आनन्द प्राप्त करता रहता है ॥५३-५४॥ शरीर त्यागने पर वह सर्वोच्च अविनाशी पदवी को प्राप्त कर लेता है और कोई भी शक्ति उसे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकती ॥५५॥

## ॥ मधु और विष्णु भगवान का युद्ध ॥

ते तु गोब्राह्मणा नागाश्चन्द्रादित्यपुरस्कृता ।  
 ब्राह्मणान्पूजयन्देवान्वसुभिर्ब्रह्मसम्भवं ॥१॥  
 नारदप्रमुखाश्चैव गन्धर्वा ऋषयो नृप ।  
 कुर्वन्ति सतत यज्ञे क्रमप्राप्त पितामहम् ॥२॥  
 वचोभिर्मंथुराभाषं पञ्चेन्द्रियनिवासिभि ।  
 सर्वभूतप्रियकरं सर्वभूतहितं विभि ॥३॥  
 स्तूयमानश्च यज्ञान्ते पञ्चेन्द्रियसमाहितं ।  
 प्रोवाच भगवान्ब्रह्मा दिष्ट्या दिष्ट्येति भारत ॥४॥  
 तत कश्यपमाभाष्य प्रोवाच भगवान्प्रभु ।  
 भवानपि सुतं साद्वं यश्चते वसुधातले ॥५॥  
 मनुभि परमप्राप्तं सपूर्णं वरदक्षिणं ।  
 यथा सुराश्च ते सर्वे यथा प्रतिगुणं प्रभो ॥६॥  
 वय यश्यामहे पूर्वं पूर्वं यश्यामहे वयम् ।  
 एवमन्योन्यस रम्भाद्विद्यन्ते बलदपिता ॥७॥  
 देतेयाश्चाप्यदेतेया परस्परजयं विण ।  
 युद्धायैव प्रतिष्ठन्ति प्रगृह्य विपुली भुजा ॥८॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! देवों में पारंगत, पवित्र शरीर वाले तथा दान-योग्यता आदि यज्ञों के अनुष्ठान नारद आदि देवों और सर्वमण्डल हिंदू शक्तियों के द्वारा प्राप्त करने के लक्ष्य में लोका विनाश के

ब्रह्माजी का पूजन करके प्रिय वाणी में उनका स्तव करने लगे ॥१-३॥ उनके यज्ञ को देख कर और सब प्राणियों का कल्याण करने वाले उस स्तोत्र को सुन कर श्रीब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने कहा—सौभाग्य से ही तुम इस प्रकार के यज्ञ में प्रवृत्त हुए हो । इसके पश्चात् उन्होने महर्षि कश्यप से कहा— हे कश्यप ! तुम भी अपने पुत्रों के सहित पृथिवी पर जाकर यज्ञ करोगे । तुम्हारे देवता और दैत्य प्रभृति सभी पुत्र सात्विक, राजसिक और तामसिक—तीनों प्रकार के यज्ञों का दक्षिणा सहित अनुष्ठान करोगे ॥४-६॥ इसके पश्चात् पिता-मह ब्रह्माजी की बात सुन कर देवताओं ने कहा 'हम यज्ञ करेंगे' और दैत्यों ने कहा कि पहिले हम यज्ञ करेंगे । इस प्रकार स्पर्धा करते हुए उन देव-दानवों में बाहु-युद्ध होने लगा ॥७-८॥

निवार्यमाणा ऋषिभिस्तपसा दग्धकिल्बिषैः ।  
 अन्यैश्च विविधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥८  
 निवार्यमाणा युध्यन्ते वृषभा इव गोकुले ।  
 प्रयुद्धारम्भसंक्रान्ताः सर्वे प्राणजयैषिणः ॥१०  
 पश्यतां सर्वभूतानां मृत्योर्विषयमागताः ।  
 ततः शब्देन महता परं कृत्वा महाबलाः ॥११  
 रुन्धन्ति बाहुभिः क्रुद्धाः सपक्षा इव पक्षिणः ।  
 चचाल वसुधा चैव पादक्रान्ता च रोचिभिः ॥१२  
 नीर्यथा पुरुषाक्रान्ता निपीदति महाजले ।  
 पर्वताश्च विशीर्यन्ते नर्द्माना गजा इव ॥१३  
 चुक्षुभुश्च महानद्यस्ताडिता मातरिश्वना ।  
 ततः समभवद्युद्धं मघोर्विष्णोश्च भारत ॥१४  
 युगान्तकरणं घोरं सर्वं प्राणिभयंकरम् ।  
 प्रममाथ बलं विष्णुः समग्रं बलपीरुपम् ॥१५  
 बह्नेरिव बलं दीप्तं शमयत्यम्बुना यथा ।  
 तथा प्रशमितं तेन भगवत्यपकारिणा ॥१६

उस समय पुण्य शरीर और वेद-वेदान्त के ज्ञाता विप्रा ने उहे निवारण करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु दोनों ही उनकी बात को न मान कर युद्ध में प्रवृत्त होगये । तब देव दानव घोर सिंहनाद करते हुए एक दूसरे का मार्ग रोकने लगे । जैसे जल में नौका भार से डगमग करती है, वैसे ही देव दानवों के भार से पृथिवी हिलने लगी । गजनशील बैलों के समान गर्जना करते हुए पर्वत विदीर्ण होकर इधर उधर गिरने लगे ॥६-१३॥ प्रचण्ड वायु के थपेड़ों से नदियाँ उमड़ पड़ीं । फिर भगवान् विष्णु और मधु दानव में युग का अन्त करने वाला पोर युद्ध होने लगा । जैसे अग्नि की उग्र ज्वालाओं को जल वृष्टि से भेध शान्त कर देता है, वैसे भगवान् विष्णु ने अपना थपवार करने वाले मधु दानव के सम्पूर्ण बल-पराक्रम का हरण कर लिया ॥१४-१६॥

## ॥ भगवान् विष्णु द्वारा मधु का वध ॥

वलवान्स तु दैतेयो मधुर्भिमपराक्रम ।  
वधन्ध पाशं निशितं महेन्द्र पर्वतान्तरे ॥१  
त वं प्रह्लादवचनाल्लक्षणज्ञश्च भारत ।  
ऐश्वर्यं मन्द्रमाकाङ्क्षन्भविष्य बुद्धिस क्षयात् ॥२  
वदध्वेन्द्र सहता मध्ये पाशंर्ममं विवर्जितं ।  
आयसैर्वह्निभिश्चित्तं वलवद्भ्रुविदारणं ॥३  
विष्णुमेवाग्रणी रुद्रमाह्वयद्युद्धकाविद ।  
मृधे गणाना सर्वेषां कालस्थं वशमागत ॥४  
द्वैधीभूता काश्यपेया मधोर्वशमुपागता ।  
युद्धार्थं मम्यधावन्त प्रगृह्य विपुला गदा ॥५  
गन्धर्वा किन्नराश्चैव वाद्ये गीते च कोविदा ।  
प्रनृत्यन्ति प्रगायन्ति प्रहसन्ति च सर्वश ॥६  
तन्त्रोमि सुप्रयुवताभिर्मधुराभि स्वभावत ।  
मनो मध्याविधन्वन्ति युध्यमास्य रागिण ॥७

मधोर्वलार्थं मधुनो नियोगात्पद्मयोनिनः ।

एतान्विकाराङ्कुर्वन्ति गन्धर्वाः सत्यवादिनः ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस अत्यन्त पराक्रमी मधु ने प्रह्लाद के वचनो के अनुसार इन्द्रत्व को प्राप्त करने की कामना से मर्म भेदी पाशास्त्र में बाँध कर पर्वतो की शिलाओं के मध्य बन्दी बना लिया ॥ १-३ ॥ इसके पश्चात् उसने काल के वशीभूत होकर भगवान् विष्णु को युद्ध की चुनौती दी ! तभी कश्यप के पुत्र दो दलो में बँट कर देव-पक्ष और दैत्य-पक्ष में हो गये । फिर दैत्यपक्ष के लोग भयकर गदाओं को ग्रहण कर-करके युद्ध के लिये आगये ॥ ४-५ ॥ उधर देव पक्ष के गन्धर्व और किन्नर हर्षित होकर गायन, वादन और नृत्य में लगे ॥६॥ उसमें वीणा की मधुर शंकार के कुशलता पूर्वक उठने से दैत्यराज मधु तथा युद्धोन्मत्त दानव मुग्ध हो गये ॥ ७ ॥ इस प्रकार पद्मयोनि ब्रह्माजी की प्रेरणा से गन्धर्वों ने दानवों के हृदयों में विकार उत्पन्न कर दिया ॥८॥

तत्र शक्तो हि गान्धर्वो तस्मिञ्छब्दे मधुमनः ।

दानवाश्चासुराश्चैव प्रत्यक्षं यान्ति प्राणदन् ॥८

मधोश्च मन जाक्षिप्य पश्यन्योगेन चक्षुषा ।

मन्दरं प्रयते विष्णुर्गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥९०

ऋषयो दीप्तमनसं किञ्चिद्व्यथितमानसाः ।

पितामह पुरस्कृत्य क्षणेनान्तरधीयत ॥९१

विष्णु सोऽभ्यहनत्क्रुद्धो मधुमंघुनिभेक्षणः ।

भुजेन शङ्खदेशान्ते न चकम्पे पदात्पदम् ॥९२

विष्णुश्चाभ्यहनहृत्यं कराग्रेण स्तनान्तरे ।

स पपात मही तूर्णं जानुभ्या रुधिरं वमन् ॥९३

न चैनं पतितं हन्ति विष्णुर्द्विविशारदः ।

बाहुयुद्धे हि समयं मत्वाऽचिन्त्यपराक्रमः ॥९४

इन्द्रध्वज इवोत्तिष्ठञ्जानुभ्यां स महीतलात् ।  
मधू रोपपरीतात्मा निर्द्दहन्निह चक्षुषा ॥१५

घोर गर्जन करता हुआ दैत्यराज मधु भी गन्धर्वा के उस संगीत-कौशल के प्रति आकर्षित हो उठा तथा अन्यान्य सभी दैत्य उसमें तन्मय होने लगे ॥६॥ तब विकार युक्त मन वाले मधु के सामने से हट कर भगवान् विष्णु भी काष्ठ में प्रविष्ट अग्नि के समान मदर पर्वत में प्रविष्ट होगये ॥१०॥ तब उज्ज्वल तेज वाले ऋषिगण ब्रह्माजी के साथ ही अदृश्य होगये ॥११॥ फिर क्रोधित हुए मधु ने भगवान् विष्णु की कनपटी में कर प्रहार किया, परन्तु उन पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ और उन्होंने उसके वक्षःस्थल पर मुष्टिका का भीषण प्रहार किया जिससे वह मुख से रुधिर डालता हुआ पृथिवी पर गिर गया ॥१२-१३॥ फिर संभल कर उठा और रोष पूर्ण लाल नेत्रों से इस प्रकार देखने लगा, जैसे उन्हें अभी भस्म कर देना चाहता है ॥१४-१५॥

परुषाभिस्ततो वाग्भिर्न्योन्यमभिगर्जतुः ।  
समीयतुर्बाहुयुद्धे परस्परवधं पिणौ ॥१६  
उभौ तौ बाहुवलिनावुभौ युद्धविशारदौ ।  
उभौ च तपसा शान्तावुभौ सत्यपराक्रमौ ॥१७  
दृढप्रहारिणौ वीरान्योन्यं विचकर्षतुः ।  
शंलेन्द्राविव युद्धचन्तो पक्षः पापाणसन्निभः ॥१८  
विकर्षन्तौ वमन्तो च अन्योन्यं वसुधातले ।  
गजाविव विषाणाग्रं नंलाग्रैश्च विचेरतु ॥१९  
ततो व्रणमुखैश्च व सुस्त्राव रुधिरं बहु ।  
ग्रीष्मान्ते घातुसंसृष्टं शंलेभ्य इव काञ्चनम् ॥२०  
संसिक्तौ रुधिरौर्घंश्च स्रवद्भिः समरञ्जितौ ।  
अयोधतः पदाग्रैश्च तौ व्यदारयता महीम् ॥२१  
अभिहत्य तु तौ वीरौ परस्परमनेकधा ।  
पतङ्गाविव युव्येता पक्षाम्या मांसगृद्धिनौ ॥२२



फिर दोनों में अत्यन्त कठोर वचनों का आदान-प्रदान हुआ और तब दोनों ही ताल ठोक कर मल्लयुद्ध करने लगे ॥१६॥ बाहुबल, रण चातुर्य, तन और सत्य पराक्रम में दोनों ही समान थे। प्रहार करने में दोनों में कोई भी नहीं चूकता था। कभी एक-दूसरे को खींचते और कभी धक्का देते हुए पर्वत-राजों के समान लड़ रहे थे ॥१७-१८॥ जैसे दो मदमत्त हाथी परस्पर लड़ते हैं, वैसे ही वे दोनों रणमत्त रणभूमि में पैतरे बदल-बदल कर विचरण करते थे ॥१९॥ दोनों ही महाबली आह्वन होगये थे, इससे उनके देह से रक्त की धाराएँ बह रहीं थीं, जैसे वर्षाकाल में कोई झरना प्रवाहित हो रहा हो ॥२०॥ दोनों के शरीर रुधिर से लथपथ हो रहे थे और दोनों ही अपने पाँवों के प्रहार से पृथिवी को पीड़ित कर रहे थे ॥२१॥ वे दोनों भीषण पक्षियों के समान परस्पर अपने देहां को बचाते हुए महा भयकर युद्ध कर रहे थे ॥२२॥

शुश्रुवुश्चान्तरिक्षेऽथ सर्वभूतानि पुष्करे ।  
 सिद्धाना वदनोन्मुक्त्वा परया वर्णं सम्पदा ॥२३  
 स्तुतयो विष्णुसयुक्ता सत्या सत्यपराक्रमे ।  
 शरीरं धातुसंयुक्तं सयुक्त चेतनेन च ॥२४  
 तद्ब्रह्मा इन्द्रिययुंक्तं तेजोभूतं सनातनम् ।  
 ध्रुवं तिष्ठन्ति भूतास्ते सूक्ष्मे प्रलयता गते ॥२५  
 पुनश्चोद्भवते सूक्ष्मं बहुरूपमनेकधा ।  
 प्रबोध्य भाव भूताना त्रिषु लोकेषु कामद ॥२६  
 सुरूपो बहुरूपास्तांल्लोकान्तं चरते वशी ।  
 मानसी तनुमास्थाय बहभिः कारणान्तरैः ॥२७  
 योगात्मा धारयन्नुर्वीं नागात्मानं दिवन्धरः ।  
 ब्रह्मभूतं परं चैव सूक्ष्मेणात्मानमीश्वरः ॥२८

तभी आकाश में स्थित सिद्धगण भगवान् विष्णु की स्तुति करने हे प्रभो ! इस पंचमीतिव देह में आत्म रूप से जो विराजमान हैं, वही आप चिन्मय ब्रह्म और देह तथा इन्द्रियाँ वाले प्राणी के रूप में प्रसिद्ध होते हैं ॥२३-

२५॥ यही पंचभौतिक उपादान प्रलय के उपस्थित होने पर सूक्ष्म रूप ग्रहण कर आप भगवान् मे ही विलीन होता है तथा वह सूक्ष्म उपादान विभिन्न जीवों को उत्पन्न करके स्वयं निर्लिप्त भाव से सर्वत्र घूमते हैं ॥ २५-२७ ॥ वही आप योगात्मा दुष्टों का दमन और साधुओं का पालन करने के लिये पृथिवी पर अवतीर्ण होते हैं । यह आप ही भूतों के धारण करने वाली पृथिवी, शेष सजक अनन्त, स्वर्ग के पालक इन्द्र तथा पंचमहाभूत हैं ॥२८॥

५

स्तूयमानैश्च विबुधैः सिद्धं मुनिवरं स्तया ।  
 सस्मार विपुलं देहं हरिर्हयशिरो महान् ॥२९॥  
 कृत्वा वेदमय रूपं सर्वदेवमयं वपुः ।  
 शिरोमध्ये महादेवो ब्रह्मा नु हृदये स्थितः ॥३०॥  
 आदित्यरश्मयो बालाश्चक्षुषी शशिभास्करौ ।  
 जङ्घे, तु वसवः साध्याः सर्वसंघिपु देवता ॥३१॥  
 जिह्वा वैश्वानरौ देवः सत्या देवी सरस्वती ।  
 मरुती वरुणश्चैव जानुदेशे व्यवस्थिताः ॥३२॥  
 एवं कृत्वा तथा रूपं सुराणामद्भुतं महत् ।  
 असुरं पीडयामास क्रोधाद्रक्तान्तलोचनः ॥३३॥  
 मधोर्मदोम्बुपूर्णां च पृथिवीं समहृष्यत ।  
 प्रमदेव घना चैव शुक्लाशुकनिवासिनी ॥३४॥  
 मेदिनीत्येव शब्दश्च लब्धः पृथ्व्या नरोत्तम ।  
 नामासुरसहस्रेण धरण्या सप्रतिष्ठितम् ॥३५॥

हे राजन् ! इस प्रकार सिद्धगण, देवगण, और महर्षि, गण द्वारा स्तुत होने पर भगवान् ने अपने हृषीकेश रूप का स्मरण किया, जिससे उनका वेद तथा सर्वदेव मय स्वरूप प्रकट होगया । उस समय भगवान् रक्त उनके मस्तक में तथा ब्रह्माजी वक्ष स्थल में प्रनिष्ठित हो गये ॥ २९-३० ॥ सूर्य की किरणों उनकी रोमाञ्जलि हुई तथा सूर्य-चन्द्रमा दोनों नेत्र होगये, वसुगण जाँघ पर और अग्न्यान्व देवगण उनकी अग-सन्धिओं पर आ विराजे ॥३१॥ अग्नि देवता उनकी जिह्वा

और वेद मन्त्र उनकी बाणी हुई। मरद्गण और वरुण उनके जानु प्रदेश पर बैठे ॥३२॥ हे राजन् ! देवताओं के हितार्थं ममवान् विष्णु ने अपना ऐसा विक-  
राल वेश बना कर तथा क्रोध से लाल नेत्र कर दैत्य श्रेष्ठ मधु का मर्दन किया  
॥३३॥ इस प्रकार मधु के मृत होकर पतित होने से उसके रुधिरादि से भरी हुई  
पृथिवी श्रेष्ठ वस्त्र धारण करने वाली स्त्री जैसी प्रनीत होने लगी उसी समय  
से अमुरगण इस पृथिवी को मेदिनी कहने लग गये ॥३४-३५॥

## ॥ समुद्र मंथन वर्णन ॥

ब्रह्मन्विले वर्तमाने निर्मयदि महाग्रहे ।  
अविनाशे च भूतानां कथमासन्नप्रजास्तदा ॥१॥  
अभ्यपिञ्चत्पृथुं वैन्यं पुरा राज्ये प्रजापतिः ।  
राज्याय श्रुपिभिः सार्द्धं प्रजाधर्मपरायणः ॥२॥  
एष नः परमो राजा सानुरागादजायत ।  
संतायां संप्रवृत्तायामन्योन्यमनुजत्पिरे ॥३॥  
एष नो वृत्तिदाता च विप्राणा च प्रवर्तिता ।  
निर्माता सर्वभूतानां सत्यप्राप्तेन कर्मणा ॥४॥  
एतस्मिन्नन्तरं देवा गन्धमादनसानुषु ।  
बहुभिर्नियमैः श्राग्ता त्रिपुष्पा गिरिसानुषु ॥५॥  
अथ गन्धं समामाद्य ममन्ताद्देवदानवाः ।  
माधये समयं प्राप्ते तेन गन्धेन दक्षिताः ॥६॥

जनमेजय ने कहा—हे राजन् ! मर्यादा-रहित महापट्टों के विपत रहीं हुए प्राणियों को मोक्ष किते मिल सकती है ? ॥१॥ यंगम्यापनत्री ने कहा—हे राजन् ! प्रजा धर्म के पासने याने प्रजापति ने ऋषियों के परामर्श से वेणु पुत्र पृथु को राज्य पद पर अनिवार्य किया था ॥२॥ उक्त समय नेता गुण का प्रारंभ था । प्रजापति उन राजा के भाग्य में गुण पूर्वक रहीं हुए परस्पर कहते थे कि यह प्रजा में अनुरक्त महाराज सर्व श्रेष्ठ हैं, यह हमारी जीवन। और रक्षा का

प्रबन्ध करते हैं, इन्हीं के लिये हमारी भी शिल्प कार्य में प्रवृत्ति हुई है ॥३-४॥  
तभी वनंत काल की प्राप्ति पर तपस्यारत देवगण विभिन्न व्रतो से दुर्बल ६ कर  
गधम दन पर्वत पर रहने लगे । उस समय पवन के सयोग से पुष्पो से मन्द सुगध  
निकल कर फैल रही थी ॥५-६॥

पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं मास्तेन विसर्पितम् ।  
मनोग्राहि सुखं सर्वं पार्थिवं गन्धमुत्तमम् ॥७  
ते दैत्यास्तेन गन्धेन किञ्चिद्विस्मयमागताः ।  
प्रसन्नमनसो भूत्वा परं सौख्यमुपागताः ॥८  
ऊचुश्च सहिताः सर्वे तेन गन्धेन दर्पिताः ।  
पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं किं तस्य फलतो भवेत् ॥९  
अनुमानेन विज्ञेया विविधाः कर्मबुद्धयः ।  
शुभाश्चैवाशुभाश्चैव बुद्धिप्राणेन देहिनाम् ॥१०  
तस्माद्वयं पयोमद्ये औपद्यो निर्मथामहे ।  
मन्दरेण विशालेन बलिना कामरूपिणा ॥११  
समुद्रमभिसंरम्भान्मथ्नीमः सोमजं जलम् ।  
पीत्वा च सहिताः सर्वे प्रस्थिताः कामरूपिणः ॥१२  
विष्णु रेवाग्रणीस्तेषां भविष्यति महाबलः ।  
दिवं च वसुधा चैव भोक्ष्यामः सह शत्रुभिः ॥१३  
समूलपत्रशाखाश्च सपुष्पाः फलशालिनः ।  
सर्वं ग्रहांश्च गृह्णीमः स्रां च वसुधातले ॥१४

उस मुगन्ध से देवता और दैत्य सभी उन्मत्त हो गये, क्योंकि वह पार्थिव  
मुगन्ध अत्यन्त आनन्द दायिनी और मन को हरने वाली होगई । वायु के झोंकों  
से पुष्प सब ओर फैल गये । उससे आश्चर्य चकित और हर्षित हुए दैत्य  
सोचने लगे कि जिस वृक्ष का ऐसा मुगन्धिन पुष्प है सो फल भी अत्यन्त मा  
होगा ॥८-९॥ जैसे देह पारियों के शुभाशुभ कर्मों का अनुमान से ज्ञान होता  
उसै ही अनुमान करके हम समुद्र में विभिन्न प्रकार की औषधों को निकाले ।

॥१७१८॥ घट घट की जानने वाले ब्रह्माजी उनकी कामना जान कर विश्व का कल्याण करने के लिये अकाश से ही बोने—हे दानवगण । इस पर्वत का उखाड़ना तुम्हारे लिये समभव नहीं है इसलिये तुम आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण, देवता, यक्ष, गंधव और किन्नररादि से मिल कर पुन इनका उद्योग करो तो तुम्हारे त्रिये हिमालय ने समान सार युक्त यह पर्वत बहुत छोटा हो जायगा ॥ २० २२ ॥

सुरासुरगणा सर्वे समुत्पाट्य महागिरिम् ।  
हस्तारूढा प्रपश्यन्ति वीरुधो हिमवद्रसम् ॥२३  
एतच्छ्रुत्वा च वचन सर्वेषामन्तिके तदा ।  
दैतेया बाहुवल्चिनो मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥२४  
आक्रीडभूता बहुधा बभूवुलं वणाम्भस ।  
यत्र पुष्करविन्ध्यस्त सहितैर्देवदानवै ॥२५  
सुरासुरगणा सर्वे सहिता लवणामस ।  
मन्दर पुष्कर कृत्वा नेत्र वासुकिमेव च ॥२६  
समा सहस्र मथित जलमौपधिभि सह ।  
क्षीरभूत समायोगादमृत समपद्यत ॥२७  
तज्जहुरसुरा पूर्वमाक्रान्ता लोभमन्युना ।  
धन्वन्तरिस्तथा मद्य श्चीर्देवी वीस्तुभो मणि ॥२८  
शशाङ्को विमलश्चापि समुत्तस्थु समन्तत ।  
उच्चं श्रवा हयो रम्य पीयूष तदनन्तरम् ॥२९  
पश्चाद्देवास्तदादातुमुद्यता राहुमश्रुवन् ।  
न तु केचिरिपवति स्म दैत्या नैव च दानवा ॥३०  
चिच्छेदाथ हरि सख्ये राहोश्चक्रेण क तदा ।  
अनिमुं वत पितृगणं मुं निभिश्च सनातनं ॥३१  
तदिद्रहस्तादमृत जहार पृथिवी स्वयम् ।  
जगामागता देवी ब्रह्मवाक्मप्रचोदिता ॥३२

ब्रह्माजी का वचन सुन कर वे दैत्यगण देवताओं के पास गये और उन्हें साथ लेकर पर्वत को उखाड़ने लगे । इससे पर्वत उखड़ गया, जिसे मघानी बना कर एक हजार वर्ष तक समुद्र को मथने लगे । इससे अमृत की उत्पत्ति हुई । देवताओं के हाथ में स्थित उस अमृत को दैत्यों ने अतिक्रम लोभ के कारण छीन लिया । यह अमृत समुद्र मथन में धवतरि, लक्ष्मी वाष्णी, कौस्तुभ मणि, चन्द्रमा और उच्चैश्रवा अश्व के पश्चात् निकला था ॥ २२-२६ ॥ फिर जब देवता अमृत पीने को तत्पर हुए तो राहु की ओर सकेत करते हुए उन्होंने कहा —हमारे मध्य में कोई दैत्य तो नहीं है ? ॥२०॥ यह सदेत मिलते ही भगवान् विष्णु ने अपने चक्र से राहु का मस्तक काट डाला । तब ब्रह्मावाक्य से प्रेरित हुई पृथिवी ने इंद्र के हाथ से ऋषियों के उस सनातन पेय रूप अमृत का हरण कर लिया ॥ ३१-३२ ॥ ,

॥ भगवान् वामन का बलि को छालना ॥

निहते दैत्यस घात त्रिष्णोश्चातिपराक्रमे ।  
 दैतेया दानवेयाश्च किमिच्छन्ति पराक्रमात् ॥१  
 दानवा राज्यमिच्छन्ति पराक्रम्य महाबला ।  
 तप इच्छन्ति सहिता देवा सत्यपराक्रमा ॥२  
 कथं कालस्य महतो हैरण्यकशिपुस्तदा ।  
 यजते ब्रह्मण क्षेत्रे प्राप्नोष्वर्यं स कामद ॥३  
 यजेद्बहुमुवर्षेण राजसूयेन पार्थिव ।  
 ऋतुना दानं श्रेष्ठो वसुधाया महाबला ॥४  
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये यदभूद्विपुल तप ।  
 समेयुस्तत्र सहिता यजमाने महासुरे । ५  
 ब्राह्मणा वेदविद्वांसो महाव्रतपरायणा ।  
 यतयश्चापरे सिद्धा योगधर्मेण भारत ॥६  
 मुनयो बालखिल्याश्च धया धर्मेण शोपिता ।  
 वहवो हि द्विजा मुर्या नित्या धर्मपरायणा ॥७

ऋषयश्च महाभागा विप्रैः पूज्याः सहस्रशः ।  
विपुलै रत्र विभवै र्हियमाणै स्ततस्ततः ॥८

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भगवान् विष्णु से परास्त हुए दैत्य-दानवों ने अपने बल से क्या करने का विचार किया, सो कहिये ॥१॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस समय दैत्य-दानवों ने अपने पराक्रम से राज्य-भार समाला और देवता तप करने लगे ॥२॥ इस पर राजा जनमेजय ने पुनः प्रश्न किया—हे विप्र श्रेष्ठ ! अत्यन्त बनी, पराक्रमी एवं दानशील राजा बलि ने अपना यज्ञ दीर्घ काल तक किस प्रकार किया ? ॥३॥ इस पर वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस अत्यन्त दानशील राजा बलि ने बहूत-सा स्वर्ण लेकर ऐसे राजसूय यज्ञ का प्रारम्भ किया था, जैसा गंगा-प्रमुखा के बीच में रहने वाला कोई भी राजा नहीं कर पाया । उसके यज्ञ में वेदज्ञाता ब्राह्मण, यती, सिद्ध, बालखित्यादि ऋषि तथा अन्यान्य प्रमुख ब्राह्मण और ऋषि सम्मिलित हुए थे । उन यज्ञ का प्रारम्भ विपुल धन के व्यय पूर्वक किया जा रहा था ॥४-८॥

शुक्रस्तु सह पुत्रेण दैत्य याजयते प्रभुः ।  
हैरण्यकशिपुं मध्ये गणाना प्रभव. प्रभुः ॥६  
हैरण्यकशिपुश्च व व्याजहार सरस्वतीम् ।  
कामाद्वरं ददातीति तद्वै संप्रतिपद्यताम् ॥१०  
विष्णुर्वामनरूपेण भिक्षां ता प्रतिगृह्णति ।  
हैरण्यकशिपोर्हस्ताद्द्वे पदे पदमेव च ॥११  
ततः क्रमितुमारेभे विष्णुः सत्यपराक्रमः ।  
सौत्तिकान्मुनिभिः क्रान्तं दिव्यं वपुरधारयन् ॥१२  
हृतराज्याश्च ते दैत्याः पातालविवरं ययुः ।  
सप्तन्यगणसंवष्टाः सप्रासाः सासितोमराः ॥१३  
सयन्सलगुडाश्चैव सपत्ताकारधृष्वजाः ।  
सचर्मवर्मकोशाश्च सायुधाः सपरश्वधाः ॥१४

तथेन्द्रविष्णुसहिताः सद्यस्तेऽभ्युत्थिता गणाः ।  
अभ्यपिञ्चनप्रमुदिता लोकानामत्रिपे सुराः ॥१५

उस यज्ञ को अग्नि के समान तेजस्वी महर्षि शुक्राचार्य ने अपने पुत्रों के साथ आकर प्रारम्भ कराया । उसी समय वामन रूप धारण करके भगवान् विष्णु ने स्वयं वहाँ जाकर भिक्षा माँगी । यह देख कर बलि ने कहा—आप जो चाहें वही माँग लीजिये, मैं आपकी याचना अवश्य पूरी करूँगा ॥६-१०॥ यह सुन कर वामन रूप भगवान् विष्णु ने उससे तीन पग पृथिवी की याचना की ॥११॥ बलि के स्वीकार करने पर भगवान् ने तुरन्त ही दिव्य रूप धारण कर लिया और अपने तीन पगों का विस्तार कर उनसे तीनों लोकों को नाप लिया ॥१२॥ इस प्रकार दैत्यों का सम्पूर्ण राज्य छिन गया और प्रास, असि, तोमर, यत्र, लसुह, रथ, चर्म, चर्म, कोप तथा परशु-उ आदि शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सम्पूर्ण सेना के सहित सभी दैत्य पाताल लोक में चले गये ॥ १३-१४ ॥ तब विष्णु आदि देवताओं ने प्रसन्न होकर तीनों लोकों का शासन इन्द्र को सौंप दिया ॥ १५ ॥

स तान्स्वधामृतेनाशु पितृत्वे समतर्पयत् ।  
ब्रह्मा तदमृतं दिव्यं महेन्द्राय प्रयच्छति ।  
अक्षयश्चाव्ययश्चैव स वृत्तस्तेन कर्मणा ॥१६  
ततः शङ्खमुपाध्मासीद्द्विपता लोमहर्षणम् ।  
पितामहकरोद्भूतं जनितृप्रथमे पदे । १७  
तं श्रुत्वा शङ्खशब्दं तु त्रयो लोकाः समाहिताः ।  
निर्वृतिं परमां प्राप्ता इन्द्रं नाथमवाप्य च ॥१८  
सर्वैः प्रहरणंश्चैव सयुक्ता वह्निसंभवाः ।  
मन्दराग्रेषु विहितंज्वलद्भिरिव पावकैः ॥१९

इन्द्र ने स्वधामृत से उसी समय सब देवताओं को तृप्त किया तब ब्रह्मा-  
जी ने उस अमृत को इन्द्र के लिये पुन दे दिया । उस अमृत को पीकर इन्द्र



अमर होगये ॥१६॥ तभी ब्रह्माजी के द्वारा बजते हुए शख की घोर ध्वनि तीनों लोकों में गूँज उठी, जिससे इन्द्र के प्रलोकयाधिपति होने की बात सब को विदित होगई । तब सब को अत्यंत ह्य हुआ और सभी लाग अग्नि से अत्यन्त तेजोमय आग्नेयास्त्र प्राप्त करके आनन्द मनाने लगे ॥१७ १६॥

## ॥ वाराह भगवान द्वारा पृथ्वी का उद्धार ॥

जगदण्डमिद पूर्वं मासीत्सर्वं हिरण्मयम् ।  
 प्रजापतेर्मूर्तिमयमित्येव वंदिकी श्रुति ॥१॥  
 ततो वर्षसहस्रान्ते विभेदोर्ध्वमुख विभु ।  
 लोकस जननार्थाय विभेदाघोमुख पुन ॥२॥  
 भूयोऽष्टधा विभेदाण्ड प्रभुर्व लोकयोनिकृत् ।  
 चकार जगत्श्चात्र विभाग सर्वभागवित् ॥३॥  
 यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाश परा सुकृतिना गति ।  
 विहित विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥४॥  
 यदण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकसिन्धुक्षया ।  
 समन्तादष्टधा यानि छिद्राणि कृत्वास्तु स ॥५॥  
 विदिशस्ता दिश सर्वा मनसंवाकरोद्द्विधा ।  
 नानारागविरागाणि यान्यण्डशकलानि वै ॥६॥  
 बहुवर्णधराश्चिन्ता बभूवुस्ने वलाहका ।  
 यदण्डमध्ये स्कन्न तद्द्रवमासीत्समाहितम् ॥७॥

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! वेदों की श्रुतियों से यह जाना जाता है कि प्राचीन काल में यह ससार एक सर्वाणम अण्ड के रूप में था ॥ १ ॥ एक सहस्र वर्षों के पश्चात् भगवान् ने उस अण्ड का मुख ऊपर की ओर करके उसके दो भाग किये और कुछ समय के पश्चात् सृष्टि की इच्छा से उस अण्ड का मुख नीचे की ओर करके उसके आठ भाग कर डाले । इस प्रकार इस विश्व के अनेक खण्ड होगये ॥२ ॥ उस अण्ड का ऊपरी छेद आकाश हुआ जो श्रेष्ठ पुरुषों के कर्म का साधन बन गया और उसके नीचे का भाग रसातल बन गया ॥ ४ ॥

वीर ! हे नारायण ! आप युग-युग में मुझ पर बड़े हुए भार को जन-कल्याणार्थ उतारते रहे हैं ॥२२॥

तवैव तेजसाक्रान्तां रसातलतलं गताम् ।  
 स्नायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् ॥२३  
 दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसंश्च दुरात्मभिः ।  
 त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ॥२४  
 तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्भिन्म् ।  
 शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ॥२५  
 मा भर्धंरणि कल्याणि शान्तिं व्रज समाहिता ।  
 एष त्वामुचितं स्थानमानयामि मनीषितम् ॥२६  
 ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ।  
 किं नु रूपमहं कृत्वा उद्धरामि वसुन्धराम् ॥२७  
 जले निमग्ना धरणी येनाहं वं समुद्धरे ।  
 इत्येवं चिन्तयित्वा तु देवो नारायणः प्रभुः ॥२८  
 जलक्रीडारुचिस्तस्माद्द्वाराहं रूपमस्मरत् ।  
 हरिरुद्धरणे युवतस्तदाऽभूदस्य भूमिभृत् ॥२९

हे प्रभो ! दैत्यो-दानवों के द्वारा पीड़ित हुई मैं अब आपकी ही शरण को प्राप्त हुई हूँ, क्योंकि अब मैं दानवादि के बोझ और आपके तेज से क्षीण होकर रसातल में धँसक रही हूँ, इसलिये मेरी रक्षा करिये । हे नाथ ! मैं जब तक आपकी शरण में नहीं आती तभी तक मुझे भय रहता है, आपकी शरण मिलते ही मैं शंका रहित हो जाती हूँ ॥२३-२५॥ भगवान् बोले—हे देवि ! तुम किसी प्रकार का भय मत करो । मैं तुम्हें अभी तुम्हारे इच्छित और पूर्व स्थान पर स्थित किये देता हूँ ॥ २६ ॥ धर्मम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! पृथिवी को आश्वासन देकर भगवान् सोचने लगे कि इसका उद्धार करने के लिये मुझे कौन-सा रूप धारण करना चाहिये ? फिर उन्होंने जलक्रीडा की इच्छा करके पतवारारूपा रूप से पृथिवी का उद्धार करना स्थिर किया ॥२७-२९॥

अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंमितम् ।  
 दशयोजनविस्तारमुच्छ्रितं शतयोजनम् ॥३०  
 नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ।  
 महागिरेः संहननं श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणम् ॥३१  
 विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ।  
 पीनवृत्तायतस्कन्धं हृत्पशादूर्लगामिनम् ॥३२  
 पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ।  
 रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः ॥३३  
 पृथिव्यद्वरणार्थाय प्रविवेश रसातलाम् ।  
 वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ॥३४  
 अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।  
 अहोरात्रेक्षणधरो देवागश्चुतिभूषणः ॥३५

फिर उन्होने जो वाराह रूप धारण किया, उसका विस्तार दस योजन और ऊँचाई सौ योजन थी उस मूर्ति के समीप जाने का किसी में साहस नहीं था । उनका गर्जन नीलवर्ण के मेघ जैसा था, उनके श्वेत दाँत अत्यन्त उग्र थे जिनके द्वारा पर्वत भी सुगमता से विदीर्ण हो सकते थे ॥३०-३१॥ उनके नेत्र विद्युत्, अग्नि और आदित्य के समान प्रकाशमान थे । उनका स्कन्ध प्रदेश मोटा और गोल था तथा क्रोडित सिंह के समान भीषण पराक्रम था ॥३२॥ उनकी कटि मोटी और ऊँची थी । उनमें अत्यन्त विकसित बल के सभी लक्षण विद्यमान थे । इस प्रकार वाराह रूप धारी भगवान् विष्णु पृथिवी का पुनर्द्धार करने की इच्छा से रसातल में घुस गये । उनके चरण चारों वेद थे, उनकी दंष्ट्राएँ यज्ञयूप थे, यज्ञ उनकी भुजाएँ, श्चिती मुख, अग्नि जिह्वा, दर्भ रोम, प्रणव मस्तक, दिन-रात्रि दोनों नयन, वेदाङ्ग कुण्डल, थे ॥३३-३५॥

आज्यनासाः स्रुवस्तुण्डः सामघोषस्वरो भहान् ।

सत्यधर्ममयः श्रीमान्क्रमविक्रमसत्कृतः ॥३६

क्रियासत्रमहाघोणः पशुजानुर्मखाकृतिः ।

उद्गासान्धो महालिङ्गो बीजोपधिमहाफलः ॥३७

देवताओं की उत्पत्ति के लिये जो अण्ड बनाया गया, उसके सब ओर आठ छेद बनाये गये। वही छेद दिशा और विदिता हुए। विभाग करते समय जो छोटे टुकड़े बचे, वे सब मेघ होगये ॥५-८॥

जातरूपं तदभवत्तत्सर्वं पृथिवीतले ।

तस्य बलेदार्षावौघेन प्राच्छाद्यत समन्ततः ॥८

पृथिवी निखिला राजन्युगान्ते सागरंरिव ॥९

यच्चाण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकाचिकीर्षया ।

तत्र तत्सलिलं स्कन्नं सोऽभवत्काञ्चनो गिरिः ॥१०

तेनाम्भसा प्लुताः सर्वा दिशश्चोपदिशस्तथा ।

अन्तरिक्षं च नाकं च यच्चान्यर्किचिदन्तरम् ॥११

यत्न-यत्न जलं स्कन्नं तत्र तत्र स्थितो गिरिः ।

शंलः समस्तं गं हना विषमा मेदिनी भवत् ॥१२

तैः सपर्वतजालौघं वंह्योजनविस्तृतं ।

पीडिता गुरुभिर्देवी पृथिवी व्यथिताऽभवत् ॥१३

महीतले भूरि जलं विव्यं नारायणात्मकम् ।

हिरण्यमयं समुद्रिष्टं तेजो विमलरूपितम् ॥१४

अशक्तता वं धारयितुमघः सा प्रविशेश ह ।

पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तेन सा क्षितिः ॥१५

उस अण्ड के तरल अंश से पृथिवी सब ओर से आच्छादित होगई। देवताओं की उत्पत्ति के लिये हिरण्यमय अण्ड के विभाजित होने समय निकलने वाले जल से वाचनगिरि की अवतारणा हुई ॥८-१०॥ बचे हुए जल से दिशा, विदिता, अन्तरिक्ष और स्वर्गादि स्थान सिंचित हुए ॥११॥ जहाँ-जहाँ वह जल गिरा, वही-वही पर्वत होगये। इस प्रकार पर्वत और बनों के उत्पन्न होने में पृथिवी जँधी-नीची तथा अगमान होगई ॥१२॥ इन अनेक योजन लम्बे चौड़े थोर घट्टन भार वाले पर्वतों के कारण पृथिवी बोलित होगई, उम पर भी

नारायणात्मक दिव्य जल के बोल से तो और भी पीड़ित हो उठी। इस प्रकार भार वहन करने में असमर्थ हुई पृथिवी नीचे की ओर धँसकने लगी ॥१३-१५॥

पृथिवी विशती दृष्ट्वा तामधो मधुसूदन ।

उद्धाराय मनश्चक्रे लोकाना हितकाम्यया ॥१६

मत्तेज एव बलवत्समासाद्य तपस्विनी ।

रसातलं विशेददेवी पङ्के गौरिव दुर्वला ॥१७

त्रिविक्रमायामितविक्रमायहानसिंहाय चतुर्भुजाय ।

श्रीशाङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरूपोत्तमाय ॥१८

त्वयाऽऽत्मना धार्यते वै त्वया सह्यते जगत् ।

त्व धारयसि भूतानि भुवन त्व विभपि च ॥१९

यत्त्वया धर्यते किञ्चित्तेजसा च बलेन च ।

ततस्तव प्रसादेन मया पश्चात्तु धार्यते ॥२०

त्वया धृत धारयामि नाधृत धारयाम्यहम् ।

न हि तद्विद्यते रूप यत्त्वया न तु धार्यते ॥२१

त्वमेव पुरुषो वीर नारायण युगे युगे ।

मम भारवतरण जगतो हितकाम्यया ॥२२

जब भगवान् ने पृथिवी को रसातल में धँसकते हुए देखा तो अपने तेज-बल से उसका उद्धार करने का विचार किया ॥१६॥ भगवान् सोचने लगे कि यह तपस्विनी धरा मेरे तेज को न सह कर कीच में फँसी गी के समान रसातल में घुसी जा रही है ॥१७॥ तभी पृथिवी ने कहा हे त्रिविक्रम ! हे महा नृसिंह ! हे चतुर्भुज ! हे शाङ्गधर ! हे खड्ग, गदा और चक्रधारी पुरुषोत्तम ! आपकी नमस्कार है ॥१८॥ आप ही जगत् और जीवों का पालन तथा रक्षण करते हैं एव आप ही अपने तेज और बल के कारण सब के धारण में समर्थ हैं। इसीलिये आपके प्रभाव से मैं भी सब कुछ धारण करने वाली हुई हूँ ॥ २० ॥ आपकी धारण शक्ति से ही मुझे उस शक्ति की प्राप्ति हुई है, क्योंकि ससार का ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो आपके द्वारा धारण न किया जाता हो ॥ २१ ॥ हे

वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिक्विक्रमः सोमशोणितः ।  
 वेदीस्कन्धो हविगन्धो हृद्यकव्योतिवेगवान् ॥३८  
 प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरचितः ।  
 दक्षिणाहृदयो योगी महासत्त्वमयो महान् ॥३९  
 उपाकर्म्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूपणः ।  
 नानाछन्दोगतिपर्यो गुह्योपनिषदासनः ॥४०  
 छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः ।  
 भूत्वा यज्ञवराहोऽसौ युगपत्प्राविशद्गुरुः ॥४१

घृत नासिका, खुवा तुण्ड, साम-ध्वनि स्वर, क्रियामय दानादि उनका  
 घ्राण, पशु जानु, यज्ञ आकृति, उदगाता आर्ति, होम उपस्य, महाफल धीर्य, पवन  
 धन्तरात्मा, सत्र स्फिक् विक्रम, सोम हृदिर, वेदी स्कंध, हवि गध, हृद्य-कव्य  
 वेग, प्राग्वंश देह, द्युति दीक्षा दक्षिणा वक्ष.स्यल, उपकरण ओष्ठ के अलंकार,  
 होमाग्नि नाभि का अलंकार, छन्द मार्ग, गुह्य उपनिषद आसन और छाया पत्नी  
 थी । उनका शरीर मणिमय शिखर के समान ऊँचा था । सत्य धर्म युक्त,  
 अत्यन्त यली-पराक्रमी, श्री सम्पन्न एवं योगी वराह रूपी भगवान् पाताल में पुस  
 गये ॥३६-४१॥

अदिमः संछादितामुर्वी स तामाच्छ्रित्प्रजापतिः ।  
 रसातलतले मग्नां पातालान्तरसंश्रयाम् ॥४२  
 प्रभुलोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार गाम् ।  
 ततः स्वस्थानमानीय पृथिवी पृथिवीधरः ॥४३  
 मुमोच पूर्वं सहसा धारयित्वा धराधरः ।  
 ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् ॥४४  
 पकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शंभवे ।  
 एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ॥४५  
 उद्धृता पृथिवी देवी लोकानां हितकाम्यया ।  
 अथोद्धृत्य क्षिति देवो जगतः स्थापनेच्छया ॥४६

पृथिवीप्रविभागाय मत्तश्चवत्रेऽम्बुजेक्षणः ।

रसातलगतामेवं विचिन्त्य स सुरोत्तमः ॥४७

ततो विभुः प्रवरवराहहृषधृग्वृषारुपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया ।

समुद्धरद्धरणमतुल्यविक्रमो महायशाः सकलहितार्थमच्युतः ॥४८

वहाँ जाकर रसातल में घुसी और जल में डूबी हुई पृथिवी को उन्होंने अपने दाँतो के अगले भाग पर रख लिया ॥४२॥ फिर उन्होंने उस पृथिवी को जल से बाहर लाकर स्थापित किया । इस प्रकार पृथिवी को धारण करने से वे 'धराधर' नाम से विख्यात हुए । उनके द्वारा धारण की गई पृथिवी भी अब मुक्त होकर भय-रहित होगई ॥४३-४४॥ यज्ञ वराह रूप में अवतीर्ण हुए भगवान् से रक्षित होकर उस पृथिवी ने उन्हें नमस्कार किया ॥४५॥ हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् विष्णु ने यज्ञवराह रूप से लोक कल्याणार्थं पृथिवी का उद्धार किया ॥ ४६-४८ ॥

## ॥ हिरण्याक्ष और इन्द्र का संग्राम ॥

कदाचित्तु सपक्षास्ते पर्वता धरणीधराः ।

प्रस्थिता धरणी त्यक्त्वा नूनं तस्यैव मायया ॥१

तदाऽसुराणां निलयं हिरण्याक्षेण पालिताम् ।

दिश प्रतीचीमागम्य हृदेऽमज्जन्यथा गजाः ॥२

तत्रासुरेभ्यः शंसन्त आधिपत्यं सुराश्रये ।

तच्छ्रुत्वाऽथासुराः सर्वे चक्रुर्द्योगमुत्तमम् ॥३

क्रूरा च बुद्धिमतुला पृथिवीहरणे रताः ।

आयुधानि च सर्वाणि जगृहुर्भीमविक्रमाः ॥४

चक्राशनीस्तथा खड्गान्भुशुण्डीश्च धनू पि च ।

प्रासान्पाशाश्च शकतीश्च मुसलानि गदास्तथा ॥५

केचित्कवचिनः सज्जा मत्तनागांस्तथा परे ।  
 केचिदश्वरथान्युक्ता अपरेऽश्वान्महासुराः ॥६  
 केचिदुष्ट्रांस्तथा खङ्गान्महिपात्नंभानपि ।  
 स्वबाहुबलमास्थाय केचिच्चापि पदातयः ॥७  
 परिवार्यं हिरण्याक्षं तलवद्धाः कलापिनः ।  
 इतश्चेतश्च निश्चेरुहंष्टाः सर्वे युयुत्सवः ॥८

वंशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! एक बार की बात है कि अगुरों के पक्ष वाले पर्वतों ने पृथिवी छोड़ कर हिरण्याक्ष द्वारा पालन की जाने वाली पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया और वहाँ जाकर वे सरोवर के जल में हाथी के समान घुस गये ॥१-२॥ उस समय दैत्य श्रेष्ठ हिरण्याक्ष दैत्यनगरी का पालक था । उन पक्ष वाले पर्वतों ने वहाँ जाकर देवताओं द्वारा सीनों सोकों के आधिपत्य-प्राप्ति की बात अगुरों को बताई, जिसे सुनकर वे अमुरगण युद्ध करने का विचार करने लगे ॥३॥ तब वे चक्र, अशनि, सङ्ग, भुशुंडी, घनुप, प्रास, पाश, शक्ति, मूसल और गदा आदि अत्यंत सुतीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हुए । वे सब क्रूर युद्धि वाले दानव सम्पूर्ण पृथिवी पर अधिकार की अभिलाषा करते थे ॥४-५॥ युद्ध दैत्य कवचादि धारण करके हाथियों, अश्वों, रथों, ऊँटों, बैलों, भैंसों और बुद्ध गधों पर बैठ गये तथा युद्ध अपने भुज-बल के भरते पर पैदल ही युद्ध करने को तत्पर हुए ॥६-७॥ इस प्रकार सुसज्जित हुए सभी दैत्य अपने स्वामी हिरण्याक्ष की सब ओर से घेर कर युद्ध की इच्छा से घूमने लगे ॥८॥

ततो देवगणाः पश्चात्पुण्डरपुरोगमाः ।  
 दैत्यानां विदितोद्योगाश्चक्रुःद्योगमुत्तमम् ॥६  
 महता घतुरङ्गेण बलेन गुप्तमाहिताः ।  
 यद्गोपांगुलित्राणास्तूणवन्तः समार्गणा ॥७  
 उद्रापुषधरा देवाः स्वैध्वनीकेव्यवन्विताः ।  
 भूरावनगतं शक्रमन्वगच्छन्त पृथ्वः ॥८



ततस्तूर्यं निनादेन भेरीणां च महास्वनैः ।  
 अम्यद्रवद्विरण्याक्षो देवराज पुरन्दरम् ॥१२  
 तीक्ष्णं परशुनिस्त्रिशङ्गं दातोमरशक्तिभिः ।  
 मुसलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास वासवम् ॥१३  
 ततोऽस्त्रबलवेगेन सोचिष्मत्य सुदारुणाः ।  
 घोररूपा महावेगा निपेतुर्वाणवृष्टय ॥१४

जब इन्द्रादि देवताओं को दैत्यों के युद्ध के लिये सजने का समाचार मिला तब वे भी युद्ध-सामग्री एकत्र करने में तत्पर हुए ॥६॥ वे सभी अगुलित्राण, तूणीर, बाण आदि अत्यंत तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों को धारण कर अपने-अपने दल में मिल गये और तब देवराज इन्द्र को हाथी पर चढ़ा कर उनके पीछे-पीछे सभी चल दिये ॥१०-११॥ उस समय भेरी, तुरही आदि विविध प्रकार के वाजे बज उठे । इन्द्र को युद्ध क्षेत्र में देखकर हिरण्याक्ष वेग पूर्वक उनकी ओर अग्रसर हुआ ॥१२॥ उनके सामने जाकर उस दैत्य-श्रेष्ठ ने परशु, निस्त्रिश, यदा, सोमर, शक्ति, मूसल और भिन्दिपाल जैसे शस्त्रों को बरसा कर इन्द्र को आच्छादित कर दिया ॥१३॥ फिर अत्यंत वेग पूर्वक तेजोमय बाणों की घोर वर्षा होने लगी ॥१४॥

समुद्यतायुग्ं दृष्ट्वा सर्वे देवगणास्तदा ।  
 ते हिरण्याक्षमसुर दैत्यानामग्रत स्थितम् ॥१५  
 युगान्तसमये भीम स्थितं मृत्युमिवाग्रत ।  
 प्रविब्यधु सुरा सर्वे तदा शक्रपुरोगमा ॥१६  
 दृष्ट्वाऽऽयान्त हिरण्याक्ष महाद्रिमिव जङ्गमम् ।  
 देवा स विग्नमनस प्रगृहीतशरासना ॥१७  
 सहस्राक्षं पुरस्कृत्य तस्थु संग्राममूर्धनि ।  
 सा च दैत्यचमू रेजे हिरण्यकवचोज्ज्वला ॥१८  
 प्रवृद्धनक्षत्रगणां शारदी द्यौरिवामला ।  
 तैऽन्योन्यमपि सम्पेतु पातयन्त परस्परम् ॥१९

वभञ्जुर्वाहुभिर्वान्द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ।

गदानिपातैर्भग्नाङ्गा वाणैश्च व्यथितोरसः ॥२०

विनिपेनुः पृथक्केचित्ताथान्येऽपि विजघ्निरै ।

वभञ्जिरे रथान्केचिकेचित्संभृदिता रथैः ॥२१

उस समय उद्यतायुध हिरण्याक्ष को सामने देखकर सभी देवगण उसे सब ओर से मारने को दौड़े ॥१५-१६॥ इस पर भी वह दैत्य श्रेष्ठ आगे ही बढ़ता गया । तब उस विशाल देह वाले हिरण्याक्ष को पीछे न हटता देख कर देवताओ ने युद्ध छोड़ दिया और वे भाग-भाग कर इन्द्र के पीछे खड़े होने लगे । इधर सोने के कवचो को धारण करने वाले दैत्य नक्षत्रो से युक्त शरत्वालीन आकाश के समान सुशोभित हुए । फिर दैत्य और देवताओ मे भीषण टक्कर होने लगी ॥१७-१९॥ तब किसी का हाथ, किसी का पाँव, किसी का मस्तक और किसी का पूरा शरीर ही छिन्न-भिन्न हो गया । कुछ दैत्य घराशायी हुए, कुछ चक्कर खाने लगे, कुछ देवताओ के रथो को तोड़ने लगे तथा कुछ उन रथो के नीचे आ गये ॥२०-२१॥

सम्बाधमन्ये सम्प्राप्ता न शोकुश्चलितुं रथाः ।

दानवेन्द्रवलं ततुं देवाना च महद्वलम् ॥२२

अन्योन्यवणवर्षेण युद्धद्विदिनमावभौ ।

हिरण्याक्षस्तु बलवान्क्रुद्धः स दितिनन्दन ॥२३

व्यवर्द्धत महातेजाः समुद्र इव पर्वणि ।

तस्य क्रुद्धस्य सहसा मुखान्निर्गच्छेरच्चिपः ॥२४

शस्त्रजालं बहुविधैर्धनुभिः परिघं रपि ।

सर्वमाकाशमावध्रे पर्वतरुत्थितं रिव ॥२५

वहुभिः शस्त्रनिस्त्रिशैः छिन्नभिन्नशिरोरसः ।

न शोकुश्चलितुं देवा हिरण्याक्षादिता युधि ॥२६

सर्वे वित्रासिता देवा हिरण्याक्षेण संयुगे ।

न शोकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कतुं विचेतसः ॥२७

तेन शक्र सहस्राक्ष. स्तम्भितोऽम्ब्रेण धीमता ।  
 ऐरावतगतं स टये नाशकच्चलितु भयात् ॥२८  
 सर्वाश्च देवानखिलान्स पराजित्य दानवः ।  
 स्तम्भयित्वा च देवेशमात्मस्थं मन्यते जगत् ॥२९  
 सतोयमेघप्रतिमोग्रनि स्वन प्रभिन्नमातङ्ग विलास विग्रहम् ।  
 धनुर्विधुन्वन्तमुदारवचंस तदाऽमुरेन्द्र ददृशुः. गुरा. स्थिताः ॥३०

फिर घमासान युद्ध होने के कारण रथों के लिये चलने योग्य स्थान ही न रहा । इस प्रकार दानव रूपी महाभेद्यों के उमड़ने और देवताओं के विद्युत् के समान अस्त्रों के चमकन तथा दोनों पक्ष द्वारा होने वाली बाण वर्षा से युक्त युद्धरूपी दुर्गिन आ गया । तब पच दिन पर क्षुब्ध हुए समुद्र के समान, दैत्यवर हिरण्याक्ष कुपित होकर मुख से आग उगलने लगा । २२-२४॥ फिर उसके विभिन्न प्रकार के अस्त्रों से नभमण्डल ढक कर ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे वह उन्नत पर्वतों से आच्छादित हो गया हो । २५॥ हिरण्याक्ष द्वारा अस्त्र प्रहार होने से देवताओं के शिर बट गये और हृदय विदीर्ण हो गये । इस प्रकार घायल हुए देवताओं में चलने फिरने की भी शक्ति न रही । २६॥ इससे उनमें इतना भीषण भय छा गया कि किञ्चेर्त्तव्य विमूढ़ के समान खड़े रहने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय उन्हें नहीं सूझ पडा । २७॥ ऐरावत पर आरूढ़ इन्द्र भी दैत्य-राज के अस्त्र से स्तम्भित होकर अविचल जैसे खड़े हो गये । २८॥ इस प्रकार भद्रमत्त हाथी के समान हिरण्याक्ष ने सब देवताओं को जीत कर सब लोकों को अपना समझ लिया । २९॥ उस समय देवताओं ने जलयुक्त मेघ के समान भीषण गर्जनशील तथा मत्त गजराज के समान क्रीडायुक्त हिरण्याक्ष को धनुष की टकोर करते हुए देखा । ३०॥

॥ वाराह भगवान द्वारा हिरण्याक्ष-वध ॥

निष्प्रयत्ने सुरपती घणितेषु सुरेषु च ।  
 हिरण्याक्षवधे बुद्धि चक्रे चक्रगदाधर ॥१

वाराहः पर्वतो नाम यः पूर्वं समुदाहृतः ।  
 स एष भूत्वा भगवानाजगामासुरान्तवृत् ॥२  
 ततश्चन्द्रप्रतीकाशमगृह्णाच्छङ्खमुत्तमम् ।  
 सहस्रारं च तच्चक्रं चक्रपर्वतसन्निभम् ॥३  
 महादेवो महाबुद्धिर्महायोगी महेश्वरः ।  
 पठ्यते योऽमरैः सर्वैर्गुह्यैर्नामभिरव्ययः ॥४  
 सदसच्चात्मनि श्रेष्ठः सद्भिर्यः सेव्यते सदा ।  
 इज्यते यः पुराणैश्च त्रिलोके लोकभावनः ॥५  
 यो वैकुण्ठः सुरेन्द्राणामनन्तो भोगिनामपि ।  
 विष्णुर्यो योगविदुषां यो यज्ञकर्मणाम् ॥६

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! इन्द्रादि देवताओं के पराजित होने पर चक्र गदा धारण करने वाले वाराह भगवान् ने हिरण्याक्ष को मारने का निश्चय किया ॥१॥ इससे पूर्व इसी रूप से उन्होंने पृथिवी का उद्धार किया था, वे ही असुरों का संहार करने वाले भगवान् विष्णु अब युद्ध क्षेत्र में जा पहुँचे ॥२॥ जहाँ उन्होंने शरद् काल के स्वच्छ चन्द्रमा के समान अपने सहस्रधार वाले चक्र को ग्रहण किया ॥३॥ जो महादेव, महाबुद्धि, महायोगी एवं महेश्वर कहे जाते हैं, जो सब जीवां में निवास करते हैं, जिन जगत् के पूज्य की सन्तजन सदा सेवा करते हैं, जो योगियों के लिये, विष्णु भोगियों के लिये अनन्त और याज्ञिकों के लिये यज्ञ है ॥४-६॥

ततः संरक्तनयनो हिरण्याक्षो महासुरः ।  
 कोऽयमित्यन्नवीद्रोषान्नारायणमुदक्षत ॥७  
 वाराहरूपिणं देवं संस्थितं पुरुषोत्तमम् ।  
 शङ्खचक्रोद्यतकरं देवानामार्तिनाशनम् ॥८  
 रराज शङ्खचक्राभ्यां ताभ्यामसुरसूदनः ।  
 सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये यथा नीलपयोधरः ॥९  
 सतोऽसुरगणाः सर्वे हिरण्याक्षपुरोगमाः ।  
 उद्यतायुधनिस्त्रिंशो दृप्ता देवमुद्रावन् ॥१०

पीड्यमानोऽतिवलिभिर्देवैः सर्वायुधोद्यतः ।  
 न च्चाल हरिर्यद्वेऽनभ्यमान इवाचल ॥११  
 तत प्रज्वलिता शक्ति वाराहोरसि दानव ।  
 हिरण्याक्षो महातेजा पातयामास वीरवान् ॥१२  
 तस्या शक्त्या प्रभावेण ब्रह्मा विस्मयमागतः ।  
 समीपमागता दृष्ट्वा महाशक्ति महाबल ॥१३  
 हु कारेणैव निर्भत्स्य पातयामास भूतले ।  
 तस्या प्रतिहताया तु ब्रह्मा साध्विति चाब्रवीत् ॥१४

तब वह घोर दैत्य हिरण्याक्ष अपने नेत्रों को क्रोध से रक्त वर्ण करके 'यह कौन है?' सोचता हुआ वाराह भगवान् को टकटकी लगा कर देखने लगा ॥७॥ इस प्रकार उन शस्त्र चक्रारी देव दुःख-नाशक पुण्योत्तम वाराह भगवान् को उसने अपने सामने अवस्थित देखा ॥८॥ उनके एक हाथ में शस्त्र और दूसरे में चक्र था । उस समय वे सूर्य और चन्द्रमा के मध्य स्थित नील मेघ के समान प्रतीत हो रहे थे ॥९॥ इसके पश्चात् हिरण्याक्ष आदि सभी दैत्यगण विविध प्रकार के श्रेष्ठ रास्त्रास्त्रों को लेकर वेग पूर्वक उनकी ओर दौड़े ॥१०॥ समीप में पहुँचकर वे दैत्यगण वाराह भगवान् पर घोर प्रहार करने लगे । परन्तु भगवान् उन प्रहारों से किञ्चित् भी विचलित न होकर पर्वत के समान दृढ़ रूप से खड़े रहे ॥११॥ तब उस तेजस्वी दैत्यराज ने उनके वक्ष स्थल पर महातेजोमय शक्ति से आघात किया ॥१२॥ उस शक्ति के महान् प्रभाव के निष्फल होने से ब्रह्माजी को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि वाराह भगवान् ने उस शक्ति को एक हु कार मात्र से पृथिवी पर गिरा दिया । उस समय ब्रह्माजी 'साधु-साधु' कह उठे ॥१३ १४॥

य प्रभु सर्वभूताना वराहस्तेन ताडित ।  
 ततो भगवता चक्रमाविध्यादित्यसन्निभम् ॥१५  
 पातित दानवेन्द्रस्य शिरस्युत्तमकर्माणा ।  
 तत स्थितस्यैव शिरस्त्वस्य भूमौ पतात ह ।  
 हिरण्मय वज्रहत मेरुशृङ्गमिवोत्तमम् ॥१६

हिरण्याक्षे हृते दैत्ये शेषा ये तस्य दानवाः ।

सर्वे तस्य भयक्षस्ता जग्मुराशु दिशो दश ॥१७

स सर्वलोकाप्रतिचक्रचक्रो महाह्वेष्वप्रतिमोग्रचक्रः ।

वभौ वराहो युत्रि चक्रपाणिः कालो युगान्तेष्विव दण्डपाणिः ॥१८

जन्होंने कहा—जो सभी देवताओं के ईश्वर हैं, उनके लिये यह तुच्छ शक्ति क्या महत्व रखती है ? ॥१५॥ हे राजन् ! फिर भगवान् वाराह ने अपने सूर्य के समान प्रकाशमान सुदर्शन चक्र को हिरण्याक्ष पर छोड़ा, जिससे वह दैत्य स्तम्भित हो गया और तभी छिन्न-भिन्न हुए मेरुशृङ्ग के समान उसका सिर कट कर पृथिवी पर गिर गया ॥१६॥ उसकी मृत्यु होते ही बचे हुए सभी दैत्य भय से अत्यन्त व्याकुल होकर सब दिशाओं में भाग निकले ॥१७॥ इधर वाराह भगवान् युग का अन्त करने वाले दण्डधारी यम के समान चक्र धारण किये रणभूमि में अविचल भाव से खड़े रहे ॥१८॥

## ॥ नृसिंहावतार की कथा ॥

वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु ।

यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥१

पुरा कृतयुगे राजन्हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।

दैत्यानामादिपुरुषश्चकार मुमहत्तपः ॥२

दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।

जलवासी समभवत्स्थानमौनव्रतस्थितः ॥३

ततः शमदमाभ्या च ब्रह्मचर्येण चैव हि ।

ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥४

ततः स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागत्य तत्र ह ।

विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥५

आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्देवतैः सह ।

रुद्रैर्विश्वसहायश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥६

दिग्भिश्चाथ विदिग्भिश्च नदीभि सागरैस्तथा ।  
 नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खचरैश्च महाग्रहै ॥७  
 देवैर्ब्रह्मिणिभि सार्द्धं सिद्धै सप्तपिभिस्तथा ।  
 राजर्षिभि पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणं ॥८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार वाराह भगवान् का वृत्तान्त हुआ, अब तुम्हे नृसिंहावतार की कथा सुनाता हूँ, जिसके द्वारा उन्होंने हिरण्यकशिपु को मारा था ॥१॥ पूर्वकाल की बात है कि दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्यकशिपु ने सत्ययुग में घोर तप का आरम्भ किया ॥२॥ उसने प्रथम मीन पूर्वक जल में निवास करते हुए साढ़े ग्यारह हजार वर्ष तक तपस्या की थी ॥३॥ उसके शमदम आदि गुण ब्रह्मचर्य-पालन और तप तथा नियमों को देखकर लोक पितामह ब्रह्माजी उस पर अत्यंत प्रसन्न हुए ॥४॥ इस प्रकार प्रसन्न हुए ब्रह्माजी अपने सूर्य के समान तेजस्वी हस्ताकार विमान पर चढ़ कर उसके पास गये ॥५॥ उस समय उनके साथ आदित्य, वसु, साध्य, मरुत्, रुद्र यक्ष, राक्षस, किन्नर, गन्धर्व, अप्सरा, नद, नदी, समुद्र, नक्षत्र, मुहूर्त, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, सप्तर्षि और सिद्ध आदि भी वहाँ पहुँचे ॥६॥

चराचरगुरु श्रीमान्वृतो देवगणे सह ।  
 ब्रह्मा ब्रह्मविदा श्रेष्ठो दैत्य वचनमब्रवीत् ॥८  
 प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत ।  
 वरं वरय मद्र ते यथेष्ट काममाप्नुहि ॥९॥  
 ततो हिरण्यकशिपु प्रीतात्मा दानवोत्तम ।  
 कृताञ्जलिपुट श्रीमान्वचन चेदमब्रवीत् ॥१०॥  
 न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसा ।  
 न मानुषा पिशाचाश्च निहन्मुर्मा कथंचन ॥११॥  
 श्रपयो नैव मा क्रुद्धा सर्वलोकपितामह ।  
 दापेयुस्तपसा युक्ता वर एष वृत्तो मया ॥१२॥  
 न दक्षिणेन चाक्षिणे गिरिणा पादपेन च ।  
 न शुक्रेण न चाद्रिणे स्यान्न चायेन मे वध ॥१३॥

तब देवताओं से घिरे हुए चराचर गुरु और देवज्ञानियों में पूज्य ब्रह्माजी ने हिरण्यकशिपु से कहा—हे सुव्रत ! तुम मेरे अत्यंत भक्त और प्रीति-भाजन हो, तुम्हारे कठोर तप से मैं अत्यंत संतुष्ट हूँ । तुम्हारा मंगल हो, तुम्हें जो चाहिये, वही मुझसे माँग लो ॥६-१०॥ यह सुन कर हिरण्यकशिपु ने हाथ जोड़ कर उनसे कहा—हे सर्वलोक पितामह ! मुझे यह वर दीजिये कि देवता, दैत्य, गधर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, मनुष्य और पिशाचादि में से कोई भी मेरे वध में समर्थ न हो सके ॥११-१२॥ तपस्वी ऋषिगण मुझे शाप न दे पावें और कोई भी शस्त्र, अस्त्र, पर्वत, वृक्ष, सूखे या गीले पदार्थ मेरी मृत्यु के कारण न बनें ॥१३-१४॥

न स्वर्गोऽप्यथ पाताले नाकाशे नावनिस्थले ।  
 न चाभ्यन्तररात्र्यहोर्न चाप्यन्येन मे वधः ॥१५॥  
 पाणिप्रहारेण केन सभृत्यबलवाहनम् ।  
 यो मा नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति ॥१६॥  
 भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हृताशनः ।  
 सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ।  
 अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ॥१७॥  
 धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षकिंपुरुषाधिपः ।  
 मूर्तिमन्ति च दिव्यानि ममास्ताणि महाहवे ।  
 उपतिष्ठन्तु देवेश सर्वलोकपितामह ॥१७॥  
 एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः ।  
 सर्वान्कामानल्पभावात्प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥१८॥  
 एवमुक्त्वा स भगवाञ्जगामाकाशमेव च ।  
 वं राज्यं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥२०॥  
 ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनिभिः सह ।  
 बरुपदानं श्वन्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥२१॥

स्वर्ग, आकाश, पृथिवी आदि किसी भी स्थान अथवा दिक्क-रात्रि आदि किसी भी समय मैं न मर सकूँ । मेरी यही कामना है ॥१५॥ यदि मृत्यु हो तो



उसी के हाथ से जो एक ही थप्पड़ के प्रहार से मेरी सेना के सहित मुझे मार सके ॥१६॥ सूर्य, चन्द्र वायु अग्नि, जल, आकाश, नक्षत्र, दसो दिशायेँ, काम, क्रोध, वरुण और कुबेर मैं स्वय ही हो जाऊँ । सभी दिव्य शस्त्रास्त्र साकार रूप मे सदा मेरी सेवा मे तत्पर रहे ॥१७ १८॥ इस पर ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स । तुम्हारे माँगे हुए सभी अद्भुत वरो को मैं तुम्हे प्रदान करता हूँ । तुम्हारी सब इच्छाएँ नि सदेह पूर्ण होगी । हे राजन् । यह कह कर ब्रह्माजी आकाश मार्ग से अपने स्थान को चले गये । तदनन्तर देवता ऋषि गधर्वादि न जब इस वरदान के विषय मे सुना तो वे सब एकत्रिन होकर ब्रह्माजी के पास गये ॥१६ २१॥

वरेणानेन भगवन्वधिष्यति स नोऽसुर ।

तत्प्रसीदस्व भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥२२

भगवान्सर्वभूतानामादिकर्ता स्वय प्रभु ।

स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यवतप्रकृतिध्रुव ॥२३

सर्वलोकहित वाक्य श्रुत्वा देव प्रजापति ।

आशवासयामास सुरान्मशीतवचनान्बुभि ॥२४

अवश्य त्रिदशास्तेन प्राप्तव्य तपस फलम् ।

तपसोऽन्ते स भगवान्वध विष्णु करिष्यति ॥२५

एतच्छ्रुत्वा सुरा सर्व वाक्य पङ्कजजन्मन ।

स्वानि स्थानानि दिव्यानि प्रतिजग्मुर्मुदान्विता ॥२६

लब्धमात्रे वरे तस्मिन्सर्वा सोऽवाधत प्रज ।

हिरण्यकशिपुर्दत्यो वरदानेन दपित ॥२७

आश्रमेपु मुनीन्सर्वान्ब्रह्माणान्स शितव्रतान् ।

सत्यधर्मरतान्दान्तान्धर्पयामास वीर्यवान् ॥२८

वहाँ पहुँच कर देवगण बोले—हे भगवान् । आपके वरदान से गवित हुआ हिरण्यकशिपु हमारा सहार कर देगा, इसलिये अब आप हम पर प्रसन्न होकर उसकी मृत्यु का भी कोई उपाय निश्चित कीजिये ॥२२॥ यह मुन कर लोकर कर्ता भगवान् ब्रह्माजी ने उन देवताओ को शीतल जल जैसी अपनी शान्त

वाणी मे आश्वासन दिया ॥२३-२४॥ हे देवताओ ! तप का फल तो मिलेगा ही, परतु जब उसका पुण्य क्षीण हो जायगा तब स्वयं भगवान् विष्णु उसे मारेगे ॥२५॥ पद्मयोनि श्री ब्रह्माजी के आश्वासन को सुनकर हतित हुए देवता अपने-अपने स्थान को लौट गये ॥२६॥ वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! दैत्यराज हिरण्यकशिपु अत्यन्त अहंकारी होकर विश्वभर के सब जीवों पर अत्याचार में प्रवृत्त हुआ ॥२७॥ आश्रमों में निवास करने वाले, सत्य-धर्म का आचार करने वाले, शान्त एवं व्रती विप्रगण उससे अत्यन्त क्षुब्ध हुए ॥२८॥

देवास्त्रिभुवनस्यांश्च पराजित्य महासुरः ।  
 त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गं वसति दानव ॥२९॥  
 यदा वरमदोन्मत्तश्चोदितः कालधर्मणा ।  
 यज्ञियानकरोद्द्वैत्यान्दैवतानप्ययज्ञियान् ॥३०॥  
 तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तया ।  
 रुद्रा देवगणा यक्षा देवद्विजमहर्षयः ॥३१॥  
 शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ।  
 देवं देवमय यज्ञं ब्रह्मा देवं सनातनम् ॥३२॥  
 भूतं भव्यं भविष्यं च प्रजालोअनमस्कृतम् ।  
 नारायण महाभाग देव त्वा शरणं गताः ॥३३॥  
 त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः ।  
 त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीना सुरोत्तम ॥३४॥  
 त्वं पद्यामलपनाक्ष शलुपक्षभयावह ।  
 क्षयाय दितिवंशस्याक्षयाय भव नः प्रभो ॥३५॥

इस प्रकार उस दैत्य ने तीनों लोको को परास्त कर अपने आधीन कर लिया और स्वर्ग में रहकर सम्पूर्ण विश्व पर शासन करने लगा ॥२९॥ फिर उसने देवताओं से यज्ञ-भाग का अधिकार छीन कर दैत्यों को उसका अधिकारी बनाया ॥३०॥ तब आदित्य, साध्य, विश्वेदेवा, वसु, रुद्र, देवता, यक्ष, प्राण्य और महर्षि आदि एकत्रित होकर उन एक मात्र शरण योग्य, देवमय, यज्ञ तथा

वेदमय, त्रिकाल स्वरूप, सर्वलोक पूज्य भगवान् विष्णु की शरण में गये और उनसे निवेदन करने लगे—हे प्रभो ! हे देव ! हे नारायण ! हम आपकी शरण में उपस्थित हुए हैं ॥३१-३३॥ हे देवोत्तम ! आप ही हम सब के धाता, परम-गुरु तथा परम देवता हैं ॥३४॥ हे पद्माक्ष ! हे महाप्रभो ! इस शत्रु के मारने के लिये कोई उपाय करके हमें बचाइये ॥३५॥

स्त्रायस्व जहि दैत्येन्द्र हिरण्यभोकशिपु प्र ।  
 भय त्यजध्वममरा अभय चो ददाम्यहम् ॥३६॥  
 तथैव त्रिविद देवा प्रतिपत्स्यथ मा चिरम् ।  
 एष त सगण दैत्य वरदानेन दर्पितम् ॥३७॥  
 अवध्यममरेन्द्राणा दानवेन्द्र निहन्म्यहम् ।  
 एवमुक्त्वा स भगवान्विसृज्य त्रिदिवीकस ॥३८॥  
 वध स कल्पयित्वा तु हिरण्यकशिपो प्रभु ॥३९॥  
 सोऽचिरेणैव कालेन हिभवत्पाश्र्वभागत ।  
 किं नु रूप समास्थाय निहन्म्येन महासुरम् ॥४०॥  
 यत्सिद्धिकरमाशु स्याद्वधाय विबुधद्विष ।  
 अनुत्पन्न ततश्चक्रे सोऽत्यन्त रूपमास्थित ॥४१॥  
 नारसिंहमनाघृष्य दैन्यदानवरक्षसाम् ।  
 सहाय तु महाबाहुर्जग्राहोकारमेव च ॥४२॥  
 अथोङ्कारसहायोऽसौ भगवान्विष्णुरव्यय ।  
 हिरण्यकशिपो स्थान जगाम प्रभुरीश्वर ॥४३॥

हे नाथ ! किसी भी प्रकार इसे नष्ट कीजिये । तब भगवान् ने कहा—  
 हे देवगण ! तुम भयभीत मत होओ ॥३४॥ आपको स्वर्ग का आधिपत्य पुनः  
 प्राप्त होगा । मैं शीघ्र ही उसे उसकी सेना के सहित मार डालूँगा । वंशम्पायनजी  
 ने कहा—हे राजन् ! यह कहकर भगवान् ने देवताओं को विदा किया और स्वयं  
 हिमालय पर्वत के निकट जाकर विचार करने लगे कि हिरण्यकशिपु को मारने  
 के लिये भूके कौन-सा रूप धारण करना चाहिये ॥३५-४०॥ देवताओं का घेरी

वह दैत्य किस रूप के द्वारा मारा जा सकता है ? इस पर विचार करके उन्होंने नृसिंह रूप धारण करना स्थिर किया । क्योंकि वह रूप अत्यंत भयभीत करने और साहस छोड़ाने वाला था । तब इस रूप को ओंकार के सहित धारण करके वे हिरण्यकशिपु के पास पहुँचे ॥४१-४३॥

तेजसा भास्कराकारः कान्त्या चन्द्र इवापरः ।  
 नरस्य कृत्वाद्धंतनुं सिंहस्याद्धंतनुं विभुः ॥४४  
 नारसिंहेन वपुषा पाणि संस्पृश्य पाणिना ।  
 ततोऽपश्यत विस्तीर्णा दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ॥४५  
 सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् ।  
 विस्तीर्णा योजनशतं शतमध्यद्धं सुच्छिताम् ॥४६  
 विहायसी कामगमां पञ्चयोजनमुच्छिताम् ।  
 जराशोककलमत्यक्तां निष्प्रकम्प्यां शिवां शुभाम् ॥४७

उनके उस नृसिंह रूप का रूप के समान तेज था, उनकी सौम्यता चन्द्रमा के समान थी, उनका आधा देह मनुष्य जैसा और आधा सिंह के समान था ॥४४॥ ये भगवान् नृसिंह हिरण्यकशिपु की अत्यंत विस्तार वाली सभा में आकर उसकी शोभा देखने लगे ॥४५॥ आकाश में बनी हुई वह सभा सौ योजन विस्तार वाली तथा डेढ़ सौ योजन लम्बी और पाँच योजन ऊँची थी । उग सभा को इन्द्रानुगार चाहे जहाँ लाया ले जाया जा सकता था । उसमें किंगी बस्तु का अभाव नहीं था । वहाँ जाते ही अजरत्व, अमरत्व की प्राप्ति और शोकादि से मुक्ति होती थी ॥४६-४७॥

॥ प्रह्लाद को नृसिंह का दर्शन ॥

तनो दृष्ट्वा महाबाहुं बालपक्रमिवागतम् ।  
 नारमिह्वपुच्छन्नं भस्मच्छन्नमिवाननम् ॥१  
 विवृञ्चितगटं तस्य नारमिह्वम्य भारत ।  
 रूपोऽयं यमो तस्य गटस्यशशितग्निभम् ॥२

अहो रूपमिदं चित्रं शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम् ।  
 अब्रुवन्दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥३॥  
 एवं हि ब्रुवतां तेषां निर्दग्धानां महात्मनाम् ।  
 नारसिंहेन चक्षुर्म्यां चोदिताः कालधर्मणा ॥४॥  
 हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान् ।  
 दिव्येन चक्षुषा सिंहेमपश्यद्देवमागतम् ॥५॥  
 तं दृष्ट्वा रुक्मशं लाभमपूर्वां तनुमास्थितम् ।  
 विस्मता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥६॥  
 महाराज महाबादो दैत्यानामादिसंभव ।  
 न श्रुतं नैव दृष्टं च नारसिंहमिदं वपुः ॥७॥  
 अव्यवतप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमद्भुतम् ।  
 दैत्यान्तकरणं धीरं क्ष सतीव मनांसि नः ॥८॥

वंशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! भस्म में दबी हुई अग्नि के समान और सहस्र पूर्ण चन्द्र के समान नृसिंह भगवान् को वहाँ आये हुए देख कर दानव-गण परस्पर में बोले—अरे, शङ्ख, कुन्द और चन्द्रमा के समान भाभा युक्त ऐसा अद्भुत रूप इससे पहिले कभी नहीं देखा ॥१-३॥ इस प्रकार कहते हुए सभी दैत्य उन नृसिंह भगवान् को टकटकी लगाकर देखने लगे थे ॥४॥ हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद ने भी उस दिव्य स्वरूप के भले प्रचार दर्शन किये ॥५॥ इस प्रकार उस अद्भुत स्वरूप को देखकर सभी दैत्य अत्यंत विस्मित हुए ॥६॥ तभी प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु से कहा—हे महाराज ! आप तो दैत्यो के धादि पुरुष हैं, मैंने तो ऐसा अद्भुत नृसिंह रूप कभी भी देखा-सुना नहीं ॥७॥ यह रूप अत्यंत विस्मयोत्पादक है, इस रूप को देखकर मुझे प्रतीत होता है कि इसी के द्वारा हम दैत्यो का सहार होने वाला है ॥८॥

अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितस्तथा ।  
 हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः ॥९॥  
 चन्द्रमाः सह नक्षत्रं रादित्याश्चाश्विनौ तथा ।  
 घनटो घटणश्चैव ममः शक्रः दक्षीपनिः ॥१०॥

मरुतो देवगन्धर्वा मुनयश्च तपोधनाः ।  
 नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमयिक्रमाः ॥११  
 ब्रह्मदेवः पशुपतिर्लाटस्था विभान्ति वै ।  
 स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च ॥१२  
 भवाश्च सहितोऽस्माभिः सर्वे देत्यगणैर्वृतः ।  
 विमानशतसंकीर्णा तथाऽभ्यन्तरजा सभा ॥१३  
 सर्वं त्रिभुवने राजल्लोकधर्मश्च शाश्वतः ।  
 दृश्यते नारसिंहेऽस्मिन्यथेन्दौ विमलं जगत् ॥१४  
 प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगाश्च मही नभश्च ।  
 उत्पातकालश्च धृतिः स्मृतिश्च रजश्च सत्त्वं च तमो दमश्च ॥१५  
 सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवाप्सरसश्च सर्वाः ।  
 क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो दर्पश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥१६

इस नृसिंह के देह में मुझे सभी देवता, समुद्र, नदी, पर्वत, पारियात्र, कुलाचल, चन्द्रमा, नक्षत्र, आदित्य, अग्नि, वरुण, कुबेर, यम, इन्द्र, मरुत, गधर्व, ऋषि, तपस्वी, नाग, यक्ष, पिशाच और राक्षसादि सभी स्थित दिखाई दे रहे हैं ॥११-११॥ जैसे चन्द्रमा की किरणों से सब ससार प्रकाशित होने लगता है, वैसे ही इनके ललाट में मुझे स्थावर-जगम विश्व, आप, मैं, हमारे विमान, यह सभा, सभी लोकधर्म और तीनों लोक ही विद्यमान प्रतीत हो रहे हैं ॥१२-१५॥ प्रजापति, मनु, घरातल, नभ, ग्रह, उत्पातकाल, धृति, स्मृति, गुण, दम, सनत्कुमार, विश्वेदेव वसु, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, गर्व तथा सभी पितरगण इनके देह में विद्यमान दिखाई दे रहे हैं ॥१५-१६॥

## ॥ कर्मफल वर्णन ॥

प्रह्लादस्य च तच्छ्रुत्वा हिरण्यकशिपुर्वचः ।  
 उवाच दानवान्सर्वान्सनगणाश्च गणाधिपः ॥१  
 मृगेन्द्रो गृह्यतां शीघ्रमपूर्वा तनुमास्थितः ।  
 यदि वा संशयः कश्चिद्दृष्यता वनगोचरः ॥२

तच्छ्रुत्वा दानवा सर्वे मृगेन्द्र भीमविक्रमम् ।  
 परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥३॥  
 सिंहनाद नदित्वा नु पुन सिंहो महाबल ।  
 बभञ्ज ता सभा रम्या व्यादितास्य इवान्तक ॥४॥  
 सभाया भज्यमानाया हिरण्यकशिपु स्वयम् ।  
 चिक्षेपास्त्राणि मिहस्य रोषव्याकुललोचन ॥५॥

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! प्रह्लाद के वचनों को सुनकर दैत्य-  
 राज हिरण्यकशिपु ने अपने अनुचरों से कहा—हे दैत्यो ! इस अद्भुत रूप वाले  
 नृसिंह को तुरत पकड़ लो और यदि कोई शका हो तो इसका वध कर डालो  
 ॥१-२॥ आदेश मिलते ही दैत्यगण अत्यन्त प्रसन्न होकर नृसिंह भगवान् को ताल  
 ठोक कर भयभीत करने लगे ॥३॥ यह देखकर उन महाबली नृसिंह भगवान् ने  
 मुख खोल हुए यमराज के समान घोर गर्जना कर उस सभा में भगदड मचा दी  
 ॥४॥ सभा के भग होने ही दत्तपराज हिरण्यकशिपु ने उन पर शस्त्र वर्षा आरम्भ  
 की, क्रोध से उसके नेत्र अत्यन्त व्याकुल दिखाई दे रहे थे ॥५॥

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुराधिप ।  
 विवस्वान्घर्मसमये हिमवन्तमिवाग्नि ॥६॥  
 स ह्यमपानिलोद्धूतो दैत्याना संन्यसागर ।  
 क्षणेनाप्लावयत्सिंहमैनाकमिव सागर ॥७॥  
 प्रासं पार्श्वस्तथा शूलैर्गदाभिर्मुसलैस्तथा ।  
 वज्रं रशविकल्पेण च शिलाभिश्च महाद्रुमं ॥८॥  
 मुद्गरं कूटपार्श्वश्च शूलोलूखलपर्वतं ।  
 शतघ्नीभिश्च दीप्याभिर्दण्डैरपि सुदारुणं ॥९॥  
 परिवार्य समन्तात्तु निघ्नन्नस्त्रं हंरिं तदा ।  
 स्त्रल्पमप्यस्य न क्षुण्णमूर्जितस्य महात्मन ॥१०॥  
 ते दानवा पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रवज्राशनिवृत्त्यवेगा ।  
 समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुशस्त्रा स्थितास्त्रिशीर्षा इव पन्नगेन्द्रा ॥११॥

सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गा नानाङ्गवाभोगपिनद्धगान्ताः ।

मुक्तावलीदामविभूषिताङ्गा हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः ॥१२

जैसे ग्रीष्म-ऋतु में आदित्य अपनी रश्मियों के द्वारा हिमालय को आच्छादित कर देते हैं, वैसे ही हिरण्यकशिपु ने अपने चमचमाते हुए शस्त्रों से नृसिंह भगवान् को आच्छादित कर दिया ॥६॥ जैसे समुद्र ने मंजाक पर्वत को अपने जल में निमग्न कर रखा है, वैसे ही दैत्य सेना ने उन्हे अपने क्रोध में डुबो लिया ॥७॥ फिर प्रास, पाश, सङ्ग, गदा, मूसल, बज्र, अशनि, शिला, वृक्ष, मुद्गर, कूटपाश, ऊखल, शूल, शतघ्नी और दण्ड आदि ले-लेकर दैत्यों ने नृसिंह भगवान् पर प्रहार किया, परंतु वे उससे किंचित् भी चलायमान् नहीं हुए ॥८-१०॥ दानवगण पाशास्त्र ग्रहण कर उनके चारों ओर खड़े हुए ऐसे लगते थे, जैसे तीन शिर वाले नाग खड़े हो ॥११॥ उन दानवों के कंठ में स्वर्ण की माला तथा सभी अंगों में आभूषण सुशोभित थे, हाथों में केयूर और ऊपरी भाग में मुक्तामाला धारण की हुई थी, इस प्रकार वे सब दैत्य पक्ष फैलाये हुए हम जैसे लग रहे थे ॥१२॥

तैः प्रक्षिपद्भिर्ज्वलितानलोपमैर्महास्त्रपूगैः स रामावृतो वभी ।

गिरिर्यथा सततवर्षिभिर्घनैः कृतान्धकारोऽद्भुतकन्दरद्रुमः ॥१३

तैर्हैन्यमानोऽपि महास्त्रजालैः सर्वैस्तदा दैत्यगणैः समेतैः ।

नाकम्पताजो भगवान्प्रतापवान्स्थितः प्रवृत्त्या हिमवानिवाचलः ॥१४

संतापितास्ते नरसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकदीप्ततेजसा ।

भयाद्विचेलुः पवनोद्धता यया महोर्मयः सागरवारिसंभवाः ॥१५

शतैर्घनुभिः सुमहातिवेगा युगान्तकालप्रतिमाञ्छरीघान् ।

एकायनस्या मुमुचुर्नृसिंहे महासुराः क्रोधविदीपिताङ्गाः ॥१६

उसी समय अग्नि के समान प्रकाशमान् शस्त्रास्त्र सब ओर से बरसने लगे । संनिवों के शस्त्रों से आच्छादित हुए नृसिंह भगवान् वृक्ष और श्रेणियों से आवृत पर्वत-गुफाओं के समान अधकार से ढँक गये ॥१३॥ उन महाबली दैत्यों



ने भीषण बाण-वर्षा की तो भी नृसिंह भगवान् पर्वत के समान अचल भाव से खड़े रहे ॥१४॥ फिर सहसा अग्नि के समान तेजस्वी वे दैत्य ही उनके रूप से डर कर समुद्र में उठी हुई तरंगों के समान क्षुब्ध हो उठे ॥१५॥ तब वे क्रोध से लाल हुए दैत्य प्रलय के समान अपने भीषण बाणों में नृसिंह भगवान् पर प्रहार करने लगे ॥१६॥

## ॥ नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु वध ॥

तत्रादित्याश्च साध्याश्च वसवो मरुतस्तथा ।  
 रुद्रा देवा महात्मानो विश्वेदेवा महाबलाः ॥१  
 आगम्य ते मुगेन्द्रस्य सकाशं सूर्यवर्चसः ।  
 ऊचुः संत्रस्तमनसो देवा लोकक्षयार्दिताः ॥२  
 जहि देव दितेः पुत्र दानवं लोकनाशनम् ।  
 दुर्वृत्तमसदाकारं सह सर्वमहासुरैः ॥३  
 त्वं ह्यपामन्तकृन्नान्यो दैत्यानां दैत्यताशन ।  
 तन्नाशय हितार्थाय लोकानां स्वस्ति वै कुरु ॥४  
 त्वं गुरुः सर्वलोकानां त्वमिन्द्रस्त्वं पितामहः ।  
 श्रुते त्वदन्यच्छरणं न भूतं न भविष्यति ॥५  
 तच्छ्रुत्वा वचनं देवो देवानामादिसंभवः ।  
 ननाद सुमहानादमतिगम्भीरनिःस्वनम् ॥६  
 पाटितान्यसुरेन्द्राणां मृगेन्द्रेण महात्मना ।  
 सिंहनादेन महता हृदयानि मनासि च ॥७

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस समय लोक नाश के भय में इतत हुए आदित्य, साध्य, वसु, मरुद्गण, रुद्र, विश्वेदेवा आदि सब देवता मिल कर उन अरथग्न तेजस्वी नृसिंह भगवान् के समीप गये और कहने लगे—हे देव ! गीह-नाश के मूल कारण रूप हिरण्यकशिपु को उसके सब अनुचरों सहित नष्ट कीजिये ॥१-३॥ हे दैत्यनाशन ! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इन दैत्यों का

सहार नहीं कर सकता, इसलिये अब आप लोक-रक्षा के लिये इनका शीघ्र ही वध करिये ॥ ४ ॥ भूतल के सभी देह धारियों के गुरु, इन्द्र और पितामह आप ही हैं, इनका कोई अन्य सहायक न तो रहा है और न कभी होगा ॥५॥ उनकी स्तुति सुन कर नृसिंह भगवान् ने दैत्यो के सामने घोर सिंहनाद किया ॥ ६ ॥ उनके सिंहनाद को सुन कर देवताओ को बड़ी प्रसन्नता हुई और दैत्यों के वधः स्थल फट गये ॥७॥

गणः क्रोधवशो नाम कालकेयस्तथाऽपरः ।

वेगश्च वैगलेयश्च संहिकेयश्च वीर्यवान् ॥८

संहादीयो महानादो महावेगस्तथाऽपरः ।

कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः ॥९

खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलचारिणः ।

गणस्तथाऽपरोरौद्रो मेघनादोऽङ्कुशायुधः ॥१०

ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च भीमकर्माऽर्कलोचनः ।

वज्री शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्ततः ॥११

जीमूतघनसंकाशो जीमूत इव वेगवान् ।

जीमूतघनसंनादो जीमूतसदृशद्युतिः ॥१२

देवारिदितिजो दृप्तो नृसिंहं समुपाद्रवत् ।

समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णं मृगेन्द्रेण महानखं ॥१३

तक्षोद्धारसहायेन विदार्य निहतो युधि ॥१४

मही च लोकश्च शशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः ।

नद्यश्च शलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रकाशं दितिपुत्रनाशात् ॥१५

ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।

तुष्टुर्विविधैः स्तोत्रैरादिदेवं सनातनम् ॥१६

इसके पश्चात् कालकेश, वेग, वैगलय, संहिकेय, संहादीय, महानदी, महावेग, कपिल, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन, खेचर, अंकुशायुध, ऊर्ध्वगो, भीमवेग, गर्जन युक्त तथा वज्र और शूल के समान दीप्तिवाला हिरण्यकशिपु तुरन्त ही

नृसिंह भगवान् की ओर झपटा । यह देख कर भगवान् ने ऊँची छलांग भर कर ओरार के प्रभाव से दैत्यराज पर भीषण नखाघात किया, जिससे उसका हृदय विदीर्ण होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥८-१४॥ इस प्रकार उस दानवराज का वध होने पर पृथिवी, सब प्राणी, आकाश, आकाश के जीव, सूर्य, चन्द्र, दमो दिशाएँ, नदी, पर्वत और समुद्रादि को अत्यन्त आनन्द हुआ ॥१५॥ तब सब देवता, ऋषि, तपस्वी आदि ने मिल कर उन आदि देव नृसिंह भगवान् की स्तुति की ॥१६॥

यत्त्वया विहितं देव नारसिंहमिदं वपुः ।  
 एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदो जनाः ।  
 मृगेन्द्रत्व च लोकेषु सर्वसत्त्वेषु वा विभो ॥१७  
 गायन्ति त्वा च मुनयो मृगेन्द्र इति नित्यशः ।  
 त्वत्प्रसादात्स्वकं स्थानं प्रतिपन्नाः स्म वै विभो ॥१८  
 एवमुक्तो देवसंघं नरसिंहो महामनाः ।  
 ब्रह्मा च परमप्रीतो विष्णो स्तोत्रमुदीरयत् ॥१९  
 भवानक्षरमव्यक्तमचिन्त्यं गुह्यमुत्तमम् ।  
 कूटस्यमकृतं कर्तुं सनातनमनामयम् ॥२०  
 सात्त्वयोगे च या बुद्धिस्तत्त्वार्थपरिनिष्ठिता ।  
 भगवान्नेदं विद्यात्मा पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः ॥२१

देवताओं ने कहा—हे देव ! आपके इस नृसिंह रूप वा तत्त्व-ज्ञानी जन सदा पूजन किया करेंगे । सभी मुनियो, सौको और प्राणियो में आपका यह मृगेन्द्र स्वरूप प्रतिद्वि हो जायगा और वे सदैव आपका गुणगान करेंगे । हे प्रभो ! आपकी परम दया से ही हमे अपने-अपने अधिभार की पुनः प्राप्ति हुई है ॥१७-१८॥ जब देवगण इस प्रकार स्तुति करके मौन हुए तब ब्रह्माजी ने महारत्ना नृसिंह भगवान् की इस प्रकार स्तुति की—हे देव ! आप अक्षर, अक्षय, अचिन्त्य, गुह्य, कूट, सनातन एवं अनामय हैं ॥१९-२०॥ नाश्व शोभ मे क्रिय

तत्त्व का निरूपण हुआ है, वह तत्त्व आप ही हैं, आप इस विश्व के आत्मा, शाश्वत, सूक्ष्म तथा स्थूल पुरुष है ॥२१॥

परं शरीरं परमं च धाम परं च योगं परमां च वाणीम् ।  
 परं रहस्यं परमां गतिं च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥२२  
 परं परस्यापि परं च यत्परं परं परस्यपि परं च देवम् ।  
 परं परस्यापि परं प्रभुं च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥२३  
 परं परस्यापि परं प्रधानं परं परस्यापि परं च तत्त्वम् ।  
 परं परस्यापि परं च धाता त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥२४  
 परं परस्यापि परं रहस्यं परं परं यत् ।  
 परं परस्यापि परं तपो यत्त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥२५  
 परं परस्यापि परं च गुह्यं च परं च धाम ।  
 परं च योग परमं प्रभुत्वं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥२६  
 एवमुक्त्वा स भगवान्सर्वलोकपितामहः ।  
 स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ॥२७  
 ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ।  
 क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम प्रभुरीश्वरः ॥२८  
 नारसिंही तनुं त्यक्त्वा स्थापयित्वा च तद्वपुः ।  
 पौराणं रूपमास्थाय ययौ स गरुडध्वजः ॥२९  
 अष्टचक्रेण यानेन भूतियुक्तेन शोभिना ।  
 अव्यक्तः प्रकृतिर्देवः संस्थानमगमत्प्रभुः ॥३०  
 एवं महात्मना तेन नृसिंहवपुषा तदा ।  
 देवेन निहतः पूर्वं हिरण्यकशिपुश्च सः ॥३१

आप परम शरीर, परमधाम, परमयोग एवं परम वाणी हैं आप ही परम रहस्य, परमगति एवं पुराण पुरुष हैं ॥२२॥ आप ही परात्पर, परम पद तथा उससे भी उत्कृष्ट एवं पर तत्व और उससे भी श्रेष्ठ हैं, आप से बड़ कर अन्य कोई नहीं है । आप ही पुरातन पुरुष बहे जाते हैं ॥२३॥ आप परम से

भी परम तथा परमतप हैं, ज्ञानी जन आपको ही घाता एव पुराण पुरुष कहते हैं ॥२४॥ आप ही परात्पर, परम रहस्य तथा परम से भी परे हैं, इसीलिये बुद्धिमानो ने आपको पुराण पुरुष कहा है ॥२५-२६॥ वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! लोक पितामह ब्रह्माजी भगवान् नृसिंह देव की इस प्रकार स्तुति करके अपने लोक को गये । उस समय तुरही वज्र उठी और अक्षराएँ नृत्य करने लगी, तभी भगवान् नारायण उस नृसिंह रूप को छोड़ कर अपने पूर्व स्वरूप को धारण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्यो महित गहड पर घड कर क्षीर सागर के उत्तरीय तट स्थित अपने घाम को गये ॥ २७-३० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार नृसिंह रूप में भगवान् विष्णु ने ही देवताओं के शत्रु हिरण्यकशिपु को नष्ट किया था ॥३१॥

## ॥ श्रीकृष्ण का कैलास जाने का विचार ॥

केशवेन पुरा विप्र कुर्वता तप उत्तमम् ॥१  
 अर्चितो देववेन शंकरश्चेति नः श्रुतम् ॥२  
 देवो तत्र जगन्नाथो दृष्टवन्तो पुरातनौ ॥३  
 अर्चयाचक्रिरे देवा इन्द्राद्याः शंकरं हरिम् ॥४  
 तौ हि देवो महादेवावेकीभूतो द्विधा कृतौ ।  
 एकात्मानौ जगद्यौनी सृष्टिसंहारकारकौ ॥५  
 परस्परसमावेशाज्जगतः पालने स्थितौ ।  
 तयोस्तत्र यथावृत्तं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥६  
 श्रुण्वयः किमचेष्टन्त दृष्ट्वा तौ पुरुषोत्तमौ ।  
 एतत्सर्वमेशपेण वक्तुमर्हसि सत्तम ॥७  
 यथा गतो हरिविष्णुः कृष्णो जिष्णुः पुरातनः ।  
 तथा च शंकरः साक्षात्कृतवान्नागभूषणः ।  
 एतत्सर्वं विप्रधर्मं ब्रूहि तत्त्वेन यत्नतः ॥८

उपरोक्त यथा गुनने के पश्चात् राजा जनमेजय ने कहा—हे भगवन् ! सुना जाया है कि पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने धीरे तपस्या द्वारा देवदेव भगवान् शंकर की वरासना की थी ॥ १-३ ॥ उसी पर्वत पर भगवान् श्रीहरि और

महादेवजी का इन्द्रादि देवताओं ने भी पूजन किया था ॥४॥ वे दोनों देव एकात्म रूप होकर भी पृथक्पृथक् कल्पित हुए हैं । परन्तु वे ही ससार की सृष्टि के मूल कारण और सहार करने वाले हैं ॥५॥ वे परस्पर मिल कर ही जगत् का पालन करते हैं । इसलिये कैलाश पर्वत पर उन दोनों के मिलने पर जो कुछ हुआ हो वह सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने की मेरी इच्छा है, उसे आप कहने की कृपा करिये ॥ ६ ७ ॥ पुरातन पुरुष भगवान् विष्णु जिस कारण कैलाश पर्वत पर गये और भगवान् शंकर से जिस प्रकार साक्षात्कार हुआ उसी वृत्तान्त को आप मुझ से कहिये ॥ ८ ॥

श्रुणुष्वावहितो राजन्यथा कृष्णो गतो नगम् ।  
 यथा च दृष्टो देवेश शंकरो वृषवाहन ॥६  
 यथा चचार स तपो यथा ते मुनयो गता ।  
 एव तयोर्यथा वृत्त तथा श्रुणु नरोत्तम ॥७  
 द्वैपायनोऽथ भगवान्यथा प्रोवाच मा तथा ।  
 नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि केशव खगवाहनम् ॥११  
 यथाशक्ति यथाप्रज्ञ श्रूणु यत्नेन सुव्रत ।  
 न चाशुश्रपवे वाच्यं नृश सायातपस्विने ॥१२  
 नानधीताय वक्तव्यं पुण्यं पुण्यवता सदा ।  
 स्वर्ग्यं यशस्य धन्यं च बुद्धिशुद्धिकरं सदा ॥१३  
 ध्येयं पुण्यं प्रात्मना नित्यमिदं वेदार्थनिश्चितम् ।  
 अनेकारण्यसंयुक्तं सेवन्ते नित्यमीदृशम् ॥१४  
 मुनयो वेदनिरता नारदाद्यास्तपोधना ।  
 आत्यद्भूतं महापुण्यं वृत्तं कैलासपर्वते ॥१५

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् । भगवान् श्रीकृष्ण के कैलाश पर्वत पर जाकर देवदेव शिवजी से साक्षात्कार करने विषयक वृत्तान्त मैंने भगवान् व्यासजी के मुख से सुना था । जैसे अनेक मुनियों ने यहाँ जाकर शिवजी का दर्शन और घोर तप किया था, वह भी तुम से कहना है ॥६-१०॥ अब मैं गहट-

वाहन भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करके, जिस कथा को कहता हूँ उसे सुनो । परन्तु यह कथा अनिच्छुक, कुपट क्रूर और तप-रहित मनुष्यों से कभी न कहे ॥११ १२॥ यदि यह कथा पुण्यवान् पुरुषों के समक्ष कही जाय तो अत्यन्त शुभ, सूक्ष्म बुद्धि वाली और स्वर्ग प्रदान करने वाली हो जाती है ॥१३॥ वेदार्थ का निश्चय करने वाली यह कथा पुण्यात्माओं के लिये अवश्य श्रवणीय है । इसीलिये नारदादि वेद परामर्श देवर्षि और तपस्वी गण भी इस अत्यन्त पवित्र और विस्मय जनक कैलास वृत्तांश को सुनते और मनन करते हैं ॥१४ १५॥

शिवयोर्देवयोस्तत्र हररेश्चैव भवस्य ह ।  
 हतेष्वसुरसङ्घेषु नरकादिषु भूमिषु ॥१६  
 हतेष्वथ नृपेष्वेव किञ्चिच्छिष्टेषु शत्रुषु ।  
 शासति स्म सदा विष्णु पृथिवी पुरुषोत्तम ॥१७  
 द्वारवत्या जगन्नाथो वसन्वृष्णिभिरीश्वर ।  
 रुक्मिण्या स गतो देवो वस स्तत्र पुरे हरि ॥१८  
 कदाचिच्च तथा सार्द्धं शेते राशो जगत्पति ।  
 विहर श्च यथायोग प्रोत प्रीतियुजा तथा ॥१९  
 अथोवाच तदा देवी रुक्मिणी ह्वमभूयणा ।  
 पुत्रमिच्छामि देवेश त्वत्तो माधव नन्दनम् ॥२०  
 बलिन रूपसम्पन्न त्वयैव सदृश प्रभो ।  
 वृष्णीनामपि नेतार वीर्यवन्त तपोनिधिम् ॥२१  
 सर्वशास्त्रार्थकुशल राजविद्यापुरस्कृतम् ।  
 एवमादिगुणैर्युक्त दातुमर्हसि सताम ॥२२  
 त्वयि सर्वस्य दातृत्व नित्यमेव प्रतिष्ठितम् ।  
 त्व हि सर्वस्य वर्ता च दाता भोक्ताजगत्पति ॥२३

नरकादि दैत्यो और अत्यान्ध रात्र राजाओं के नष्ट होने पर वृष्णियों से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त आनन्द पूर्वक द्वारका में निवास करते हुए पृथिवी का पालन कर रहे थे ॥१६ १७॥ तभी एक रात्रि में भगवान् श्रीकृष्ण

से सम्भाषण करती हुई रुक्मिणीजी ने उनसे कहा—हे देव ! यदि आपकी कृपा हो तो मैं आपके समान बलवान्, रूपवान्, सर्व शास्त्रो और नीतियों का ज्ञाता एक सुन्दर पुत्र चाहती हूँ । आप चाहें तो ऐसा होना कोई असंभव बात नहीं है, क्योंकि आप सम्पूर्ण विश्व के रक्ता, दाता, भोक्ता और सत्कार के स्वामी हैं, इसलिये आप सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं ॥१८-२३॥

विशेषतस्तु भृत्यानां शुश्रूषानियतात्मनाम् ।

वक्तव्यं किम देवेश यदि भक्ताऽस्मि केशव ॥२४

अनुग्रहो यदि स्यान्मे देवदेव जगत्पते ।

दातुमर्हसि पुत्रं त्वं वीर्यवन्तं जनार्दन ॥२५

इत्युक्तो देवदेवेशः प्रियया प्रीयमाणया ।

तया महिष्या रुक्मिण्या रुक्मिण्यश्च यदूहः ॥२६

प्रोवाच वचनं काले रुक्मिणी यादवेश्वरः ।

दातास्मि तादृशं पुत्रं यं त्वमिच्छसि भामिनि ॥२७

नित्यं भक्तासि मे देवि नात्र कार्या विचारणा ।

अवश्यं तव दास्यामि पुत्रं शत्रुनिबर्हणम् ॥२८

पुत्रेण लोकाञ्जयति सतां कामदुषा हि ये ।

नरकं पुदिति स्यात् दुःखं च नरकं विदुः ॥२९

पुदस्त्राणात्ततः पुत्रमिहेच्छन्ति परस च ।

अनन्ताः पुत्रिणो लोका पुरुषस्य प्रिये षुभाः ।, ३०

शुश्रूषा करने वाले भक्तों पर कृपा करना आपके लिये कुछ आश्चर्यजनक नहीं है । इसलिये आप मुझे भी एक सुष्ठु भविष्यत समस्त कर यदि मुझ पर कृपा करें तो मैं एक अत्यन्त श्रेष्ठ पुत्र भी प्राप्ति कर सकूँगी ॥२४-२५॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अपनी प्राण-वत्तमा रुक्मिणीजी की यात्रा सुन कर भगवान् को बड़ा हर्ष हुआ और ये उनसे कहने लगे—हे प्रिये ! तुम जैसा पुत्र चाहती हो, वैसा ही पुत्र मैं तुम्हें प्रदान करूँगा ॥२६-२७॥ हे देवि ! तुम मेरी अनन्ध भविष्य एवं पुत्रं तथा अनुरक्त हो, इसमें किसी प्रकार का



विचार ही क्या करना है, मैं तुम्हें अवश्य ही शत्रुभो का नाश करने वाला पुत्र प्रदान करूँगा ॥ २८ ॥ पुत्र से सभी लोक जीते जा सकते हैं । पुन्नाम नरक से बचने के लिये ही इहलोक और परलोक में पुत्र की कामना की जाती है, क्योंकि पुत्रवान् व्यक्ति के लिये असह्य लोक सुलभ है ॥२९-३०॥

पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम् ।  
 तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ॥३१  
 पुत्रवन्तं विभेतीन्द्रः किन्तु तेनाजितं भवेत् ।  
 नापुत्रो विन्दते लोकान्कुपुत्राद्वन्ध्यता वरा ॥३२  
 कुपुत्रो नरको यस्मात्सुपुत्रात्स्वर्ग एव हि ।  
 तस्माद्विनीतं सत्पुत्रं श्रुतवन्तं दत्तापरम् ॥३३  
 विद्ययः विनयो यस्माद्विद्यायुक्तं सुधार्मिकम् ।  
 इच्छेत्पुत्र पुत्रकामः पुरुषो यत्नवान्बुधः ॥३४  
 तस्माद्दास्यामि ते पुत्रं विद्यावन्तं सुधार्मिकम् ।  
 एष गच्छामि पुत्रार्थं कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥३५  
 तन्नोपास्य महादेवं शंकरं नीललोहिनम् ।  
 ततो लब्धास्मि पुत्रं ते भवाद्भूतहिते रतात् ॥३६

पति ही पुत्र रूप में पत्नी के गर्भ से नवीन देह धारण पूर्वक उत्पन्न होता है । पुत्रवानो के लिये कोई भी लोक अप्राप्य नहीं है, उनसे इन्द्र भी भयभीत रहते हैं । परन्तु पुत्रहीन को किसी भी लोक में ठिकाना नहीं रहता और यदि कुपुत्र का जन्म हो तो वह उससे भी अधिक दुःखदायी होता है ॥३१-३२॥ कुपुत्र साधान् नरक और सुपुत्र स्वर्ग है । विद्या से विनय की उपलब्धि होती है, इसलिये दयानु, विनीत, धार्मिक और विद्वान् पुत्र की ही कामना करनी चाहिये ॥३३-३४॥ इसलिये मैं तुम्हें एक विद्वान्, धार्मिक और ज्ञानी पुत्र दूँगा, इसके लिये मैं आज ही कैलास पर्वत के लिये प्रस्थान कर रहा हूँ ॥३५॥ यहाँ जाकर भगवान् नीलकण्ठ की आराधना करने उनसे इस प्रकार का श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करूँगा ॥३६॥

## ॥ श्रीकृष्ण का बदरिकाश्रम पहुँचना ॥

तत स चिन्तयामास गण्ड पक्षिपुङ्गवम् ।  
 आगच्छ त्वरित ताक्ष्यं इति विष्णुर्जगत्पति ॥१  
 तत स भगवास्ताक्ष्यो वेदराशिरिति स्मृत ।  
 बलवान्विक्रमी योगी शास्त्रनेता कुरुद्वह ॥२  
 यज्ञमूर्ति पुराणात्मा साममूर्द्धा च पावन ।  
 ऋग्वेदपक्षवान्पक्षी पिङ्गलो जटिलाकृति ॥३  
 ताम्रतुण्ड सोमहर शक्रजेता महाशिरा ।  
 पन्नगारि पद्यनेत्र साक्षाद्विष्णुरिवापर ॥४  
 बालुन देवदेवस्य दानवीगभकृन्तन ।  
 राक्षसासुरसङ्घाना जेता पक्षबलेन य ॥५  
 प्रादुरासीन्महावीर्यं केशवस्याग्रतस्तदा ।  
 जानुभ्यामपतद्भ्रूमौ नमो विष्णो जगत्पते ॥६  
 नमस्ते देवदेवेश हरे स्वामिन्निति ब्रुवन् ।  
 पस्पशं पाणिना कृष्ण स्वागत ताक्ष्यपुङ्गवम् ॥७  
 इत्युवाच तदा ताक्ष्यं यास्ये कालासपर्वतम् ।  
 शूलिन द्रष्टुमिच्छामि श कर शाश्वत शिवम् ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर भगवान् श्रीहरि ने गण्ड का स्मरण करते हुए मन ही मन कहा—हे ताक्ष्यं ! शीघ्र ही यहाँ आओ । उनके स्मरण करते ही वेदराशि रूप, अत्यन्त बल-विक्रम से सम्पन्न, योगी, शास्त्रज्ञ गण्ड यज्ञ रूप मे भगवान् के सामने आ उपस्थित हुए । उनका मस्तक सामवेद, और पक्ष ऋग्वेद था । वे विंगल वर्ण और जटिल आकार वाले थे । साल चोब, और कमल जैसे नेत्र थे । वे सोम रस पीने वाले, नागों और असुरों के विजेता, दानव-नारियों के गर्भ नष्ट करने वाले गण्ड भगवान् के सामने जाते ही मस्तक छुवा कर प्रणाम करते हुए बोले—हे देवेश आपको नमस्कार है । गण्ड को देख

कर भगवान् ने उनके देह को स्पर्श करते हुए कहा—हे खग श्रेष्ठ ! भगवान्  
[कर के दर्शनार्थ कौलास पर्वत पर चलने की मेरी इच्छा है ॥१-८॥

वाढमित्यन्नवीत्ताक्षर्य आरुह्य नं जनार्दनः ।  
तिष्ठध्वमिति होवाच यादवान्पाश्र्ववर्तिनः ॥८॥  
तेतो ययौ जगन्नाथो दिशं प्रागुत्तरा हरिः ।  
रवेण महता ताक्षर्यस्रैलोक्य समकम्पयत् ॥९॥  
सागर क्षोमयामास पद्भ्या पक्षी व्रज स्तदा ।  
पक्षेण पर्वतान्सर्वान्देवं जनार्दनम् ॥१०॥  
ततो देवाः सगन्धर्वा आकाशेऽधिष्ठितास्तदा ।  
तुष्टुबु पुण्डरीकाक्षं वाग्भिरिष्टाभिरीश्वरम् ॥११॥  
जय देव जगन्नाथ जयविष्णो जगत्पते ।  
जयाजेय नमो देव भूतभावन भावन ॥१२॥  
नम परमसिंहाय दंत्यदानवनाशन ।  
जयाजेय हरे देव योगिद्येय परागते ॥१३॥  
नारायण नमो देव कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।  
आदिकर्तः पुराणात्मन्ब्रह्मयोनेः सनातनः ॥१४॥  
नमस्ते सकलेशाय निर्गुणाय गुणात्मने ।  
भक्तिप्रियाय भवताय नमो दानवनाशन ॥१५॥

‘जो आज्ञा’ कह कर गरुड ने सहमति प्रकट की और तब भगवान् यादवों  
को सावधानी पूर्वक रहने को कह कर गरुड की पीठ पर चढ़े और उत्तर दिशा  
की ओर चल दिये । उस समय गरुड के पंखों को विक्षेप से तीनों लोक कांपने  
लगे ॥८-१०॥ उनसे पदाघात से समुद्र शुन्ध होगये और पल की वायु से पर्वत  
हिल गये ॥ ११ ॥ उस समय भगवान् के दर्शनार्थ सभी देवता और गन्धर्वगण  
आकाश में अवस्थित हुए और मधुर वचनों से उनकी स्तुति करने लगे—हे देव !  
हे जगन्नाथ ! हे विष्णो ! हे जगत्पते ! आपकी जय हो ! हे अजेय हे भूतभावन  
आपकी सदा जय हो, हे प्रभो आपको नमस्कार है ॥१२-१३॥ हे दंत्यो के सदा-

रक ! हे परम सिंह आपको नमस्कार है, हे अजेय ! हे देव ! हे योगीध्वेय !  
हे हरे ! आपकी जय हो ॥१४॥ हे नारायण ! हे कृष्ण ! हे हरे ! आप आदि-  
कर्त्ता, पुराणात्मा, ब्रह्मयोनि एव सनातन पुरुष हैं आपके लिये हमारा बारबार  
नमस्कार है ॥१५॥ हे सर्वेश्वर ! हे निर्गुण ! हे गुणात्मन् ! हे भक्तिप्रिय ! हे  
भवत ! हे दानव-संहारक आपको नमस्कार है ॥१६॥

अचिन्त्यमूर्तये तुभ्यं नमस्ते सकलेश्वर ।  
इत्यादिभिस्तदा देवं वाग्मिरीशानमव्ययम् ॥१७  
तुष्टुवुर्देवगन्धर्वा ऋषय सिद्धचारणाः ।  
श्रृण्वन्नेवं जगन्नाथः स्तुतिवाक्यानि तानि च ॥१८  
ययौ साद्धं सुरगणैर्मुनिभिर्वेदपारगैः ।  
यत्न पूर्वं स्वयं विष्णुस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥१९  
लोकवृद्धिकरः श्रीमाल्लोकानां हितकाम्यया ।  
वर्षायुतं तपस्तप्त विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२०  
यत्न विष्णुर्जगन्नाथस्तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।  
द्विघाऽकरोत्स्वमात्मानं नरनारायणाद्यया ॥२१

हे अचिन्त्य रूप ! हे सर्वेश्वर ! आपको बारबार नमस्कार है । इस  
प्रकार से देवता, गन्धर्व चारण, ऋषि, सिद्ध आदि ने उनकी स्तुति की । तब  
भगवान् श्रीकृष्ण उन देवताओं और ऋषियों के सहित बिलास पर्वत पर पहुँचे,  
जहाँ कभी भगवान् विष्णु ने अत्यन्त घोर तपस्या की थी ॥१७-१९॥ उन लोगों  
की वृद्धि करने वाले भगवान् विष्णु ने जगत् के बल्याण की कामना से वहाँ दस  
हजार वर्ष तप किया था ॥२०॥ फिर यही उन्होंने अपने देह के दो भाग  
कर लिये और नर नारायण रूप में प्रकट हो गये थे ॥२१॥

गङ्गा यत्न सरिच्छ्रेष्ठा मध्ये धायति पावनी ।  
यत्न शक्रः स्वयं हत्वा वृत्रं वेदार्थतत्त्वयम् ॥२२  
ब्रह्महत्याविनाशार्थं तपो वर्षायुतं चरत् ।  
यत्न सिद्धाश्च तित्वा. स्तुधर्मिना देवं जनार्दनम् ॥२३

यत्र हत्वा रणे रामो रावणं लोकरावणम् ।  
 एतच्छासनमिच्छंश्च तपो घोरमतप्यत ॥२४  
 देवाश्च मुनयश्चैव सिद्धिं यान्ति शुचिव्रताः ।  
 यत्र नित्यं जगन्नाथः साक्षाद्भवति केशवः ॥२५  
 सिद्धक्षेत्रमिदं प्राहुर्ऋषयो वीतमत्सराः ।  
 विशालां बदरीं विष्णुस्ता द्रष्टुं सकलेश्वरः ॥२६  
 सायाह्ने चामरगणैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।  
 प्रविवेश महापुण्यमृषिजुष्टं तपोवनम् ॥२७

सरिताओं में श्रेष्ठ गगाजी जहाँ प्रजल वेग से बहती है । जहाँ देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर को मार कर ब्रह्म-हत्या दूर करने के लिये दस हजार वर्ष तक तपस्या की थी । जहाँ भगवान् श्रीहरि का ध्यान करने वाले सिद्धों ने सिद्धि को प्राप्त किया था । जहाँ लोक को भय प्रदान करने वाले रावण को मार कर भगवान् श्रीराम ने घोर तप किया था । जहाँ अनेक देवताओं और महर्षियों ने पवित्र व्रत पूर्वंक तप करके सिद्धि को प्राप्त किया था तथा जहाँ स्वयं भगवान् केशव का नित्य निवास है ॥२२-२५॥ जिसे वीतरागी मुनियों ने सिद्ध क्षेत्र कहा है, उसी ऋषियों से युक्त बदरी नामक तपोवन के दर्शनार्थं अनेकों ऋषियों और देवताओं के सहित भगवान् श्रीकृष्ण सायं समय पहुँच गये ॥२६-२७॥

अग्निहोत्राकुले काले पक्षिष्वाहारसंकुले ।  
 नीडस्येषु विहङ्गेषु दुह्यमानासु गोषु च ॥२८  
 ऋषिष्वप्यथ तिष्ठत्सु मुनिवीरेषु सर्वतः ।  
 समाधिस्येषु सिद्धेषु चिन्तयत्सु जनार्दनम् ॥२९  
 अधिश्रितेषु हविषु ज्वालयमानेषु चाग्निषु ।  
 हूयमानेषु तत्रैव पावयेषु समन्ततः ॥३०  
 अतियो पूज्यमाने च संध्याविष्टे जगन्मये ।  
 स तस्यामथ खेलाया देवैः सह जनार्दनः ॥३१

विवेश बदरी विष्णुमुनिजुष्टां तपोमयीम् ।  
 आश्रमस्याथ मध्यं तु प्रविश्य हरिरीश्वरः ॥३२  
 गरुडादवरुह्याथ दीपिकादीपिते तदा ।  
 प्रदेशे पुण्डरीकाक्षः स्थितस्तावत्सहामरः ॥३३

उस समय वहाँ यज्ञ हो रहा था, पक्षिगण अपने-अपने स्थानों में जाकर मधुर शब्द कर रहे थे और गौओं का दौहन हो रहा था ॥२८॥ कुशों के आसनों पर प्रतिष्ठित हुए मुनिजन भगवान् का ध्यान कर रहे थे ॥२९॥ प्रदीप्त अग्नि में आहुतिर्पा दी जा रही थी । अतिथियों का सब स्थानों पर सत्कार हो रहा था । धीरे-धीरे सम्पूर्ण विश्व पर अधकार छा गया । उस समय भगवान् श्री-कृष्ण देवता आदि के सहित उम पवित्र बदरी वन के मध्य में अवस्थित हुए ॥३०-३२॥ तभी दीपक जल उठे, पृथिवी जगमगा उठी, गरुड से उतर कर भगवान् कृष्ण भी देवताओं के तुल्य विश्राम करने लगे ॥३३॥

॥ ऋषियों द्वारा भगवान् को स्तुति ॥

ततो मुनिगणा दृष्ट्वा देवदेवमुपस्थितम् ।  
 समाप्य चाग्निहोत्राणि संपूज्यातिथिसत्तमान् ॥१  
 मुनयो दीर्घतपसः समाधौ कृतनिश्चयाः ।  
 जटिनो मुण्डिनः केचिच्छिराघमनिसंतताः ॥२  
 निर्मज्जा नीरसाः केचिद्धेताला इव केचन ।  
 अश्मकुट्टाशनपराः पणभक्षास्तथाऽप्यपेर ॥३  
 ते च गत्वा हरिकृष्णं विष्णुमीशं जनादेनम् ।  
 भक्तिमन्नास्नदा देवं प्रणेमुर्भवत्सलम् ॥४  
 नमोऽस्तु कृष्ण कृष्णेति देवदेवेति केशवम् ।  
 प्रणवात्मजगन्नाथ नताः स्म शिरसा हरे ॥५  
 कृष्ण विष्णो हृषीकेश केशवेति च सर्वदा ।  
 प्रणामप्रवणा विप्राः प्राहुरित्यं जगत्पतिम् ॥६  
 इदमर्घ्यं मिदं पाद्यमिदं विष्टरमेव च ।  
 गृतार्थाः सर्वदा देव प्रसन्नो नो जगत्पतिः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे रामन् ! तपस्वी मुनियों ने अपना अग्निहोत्र और आतिथ्य-सत्कार वाला निश्चय कर्म समाप्त किया और भगवान् श्रीकृष्ण के पास चल दिये ॥१॥ वे मुनिगण वहाँ दीर्घकाल से तपस्या करते थे और समाधि की प्राप्ति के लिये उनका हृदय निश्चय था । उनमें कुछ सिर मुँडायें हुए और कुछ जटा रखे हुए थे, किसी के देह पर शिराएँ उभड़ी हुई थीं, कुछ सूखे और निर्बल देह वाले, कुछ संज्ञा-रहित और कुछ उन्मत्त थे । कुछ मुनि भिक्षा से उदर पालन करते और कुछ पत्थर से कुटे हुए अनाज का भक्षण करते थे ॥ २-३ ॥ उन मुनिगणों ने भगवान् श्रीकृष्ण के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और उनको स्तुति करने लगे—हे कृष्ण ! हे देवदेव ! हे प्रणवात्मन् ! हे हरे ! हे जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है ॥४-५॥ हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे हृषीकेश ! हे केशव ! इस प्रकार कह कर उन बहूत-से ब्राह्मणों ने उन जगत्पति को प्रणाम किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर उन मुनियों ने पुनः कहा—हे भगवन् ! यह अर्घ्य, पाद्य और आसन ग्रहण करिये, अब आपकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेने पर हम हर प्रकार से धन्य हो गये हैं ॥७॥

ॐ कुम्भेः किं नु नः कृत्यं कश्चिद्दोषः प्रभो हरे ।  
 इति प्राञ्जलयः सर्वे प्राहृद्वैवस्य पश्यतः ॥८  
 कृष्णोऽपि तद्यथायोगमुभयुज्य सहामरैः ।  
 कृतं सर्वं मुनिवरा बद्धंतां तप उत्तमम् ॥९  
 इति ब्रह्मपुराणात्मा प्रीतस्तेन गरुत्मता ।  
 आसनं लम्भयामास रात्री देवो जनार्दनः ॥१०  
 कुशलं पृष्टवान्भूयो मुनीनां भावितात्मनाम् ।  
 अग्निहोत्रेषु तपसि यथा भृत्येषु सर्वतः ॥११  
 एवमादि जगन्नाथः पृष्टवानीश्वरस्तदा {  
 सर्वं कुशलं तेऽत्र ब्रूयुः कृष्णस्य सर्वतः ॥१२  
 आतिथ्यं चक्रिरे ते तु नीवारैः फलमूलकैः ।  
 देवानामप्य सर्वेषां विष्णोः कृष्णस्य यत्नतः ।  
 आतिथ्यमुपयुञ्जानस्ततः प्रीतोऽभवद्धरिः ॥१३

हे प्रभो ! हे हरे ! हम में कोई दोष तो नहीं है ? हे नाथ ! अब हमारा क्या कर्त्तव्य है ? यह आप हमें बताइये । ऐं॥ कह कर सभी मुनिगण भगवान् के समक्ष हाथ जोड़ कर खड़े हो गये ॥८॥ तब भगवान् ने उनसे आदर पूर्वक कहा—हे मुनियो ! आप सब ने अपने-अपने अनुरूप ही कार्य किया है, आपकी तप-वृद्धि हो ॥९॥ यह कह कर भगवान् श्रीवृष्ण ने गरुड से उन्हें आसन प्रदान कराया ॥१०॥ जब वे मुनि सुद्युम्बक आसन पर स्थित होगये तब भगवान् ने उन सब से कुशल प्रश्न किया ॥११॥ इस पर मुनिवर्ग ने अपना-अपना कुशल वृत्तान्त कह कर फल, पुष्प, नीवार आदि के प्रदान द्वारा भगवान् श्रीवृष्ण का सत्कार किया । इस प्रकार उनके आतिथ्य सत्कार को प्राप्त करके वे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १२-१३ ॥

## ॥ भयभीत मृगों और दो पिशाचों का आना ॥

ततः स भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ।  
 तत्र पूर्वं तपस्तप्तमात्मना यादवेश्वरः ॥१॥  
 गङ्गायाश्चोत्तरे तीरे देशं द्रष्टुमुपागतः ।  
 स्वयमेव हरिः साक्षात्प्रविवेश तपोवनम् ॥२॥  
 प्रविश्य सुचिरं देशं ददर्श च मनोरमम् ।  
 निपसाद ततस्तस्मिन्नाश्रमे पुण्यदहनः ॥३॥  
 समाधौ योजयामास मनः पद्मनिभेक्षणः ।  
 किमप्येष जगन्नाथो ध्यात्वा देवेश्वरः स्थितः ॥४॥  
 स्थिते देवगुरौ तत्र समाधौ दीपवद्धरो ।  
 तप्त शब्दो महाघोरः प्रादुरासीत्समन्ततः ॥५॥  
 छाद ग्राह्य मोक्षेत् यात यात मृगानिमान् ।  
 प्रेषेद् पुनः सर्वाङ्गनाशच्छान्धनः ॥६॥  
 एष विष्णुरयं वृष्णो हरिर्गण इतोऽप्युगः ।  
 नोऽस्तु विष्णो देवेन श्यामिन्माधव केनच ॥७॥



इत्यादिशब्द सुमहानाविहासीत्तदा निशि ।  
 ततश्च सुमहानाद सिंहाना मृगविद्विषाम् ॥८  
 धावता च शुना राजन्मृगाननु विनर्दताम् ।  
 मृगाणा भीतियुक्तानामृक्षाणा द्वीपिना ॥९

वंशम्पावनजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् की इच्छा को कौन जान सकता है ? वे सर्व प्रथम गंगाजी के उत्तरीय किनारे जाकर उस तपस्थली का निरीक्षण करने लगे ॥ १-२ ॥ वहाँ जाकर वे बहुत देर तक स्थान खोजते रहे और अन्न में एक श्रेष्ठ स्थान पर आधम देख कर उसी में बैठ कर ध्यानावस्थित होये । परन्तु, वे किस का ध्यान कर रहे थे, इसे कोई न जान सका ॥३-४॥ उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् जब दीपक जल उठे, तब वहाँ एक भीषण षोचाहल होने लगा ॥५॥ उसमें सुनाई पड़ रहा था—इसे खाओ, खाकर मौज करो, उन मृगो को घेरो, भगवान् की प्रसन्नता के लिये उन्हें इधर भेजो ॥६॥ अरे यही भगवान् विष्णु, ईश्वर एव अच्युत हैं । हे विष्णो ! हे माघव ! हे केशव ! हे देवदेव ! इत्यादि की भयानक प्रकार होने लगी और साथ ही भयभीत मृगो, भालुओ सिंहाओ और कुत्तो के भूँकने का घोर शब्द व्याप्त हो उठा ॥ ७-९ ॥

ततो मृगा समाधावन्यत्र तिष्ठति केशव ।  
 ताश्च वानुचरो राजन्सगण रामपद्यत ॥१०  
 अथ व दीपिका राजञ्छनशोऽथ सहस्रश ।  
 ततस्तमोऽपि व्यनशद्दिवेव समपद्यत ॥११  
 ततोऽनु भूतसङ्घाश्च समदृश्यन्त तत्र ह ।  
 पिशाचाश्च महाघोरा नदन्तो बहुविस्वनम् ॥१२  
 भक्षयन्तोऽथ पिशित पिवन्तो रुधिर बहु ।  
 प्रादुरासन्महाघोरा पिशाचा विकृतानना ॥१३  
 हन्यमाना हता राजन्पतन्त पतिता मृगा ।  
 द्रुतश्चेतश्च धावन्तो बाणविद्धा मृगा द्विषा ॥१४

ततो मृगसहस्राणि समुदीर्णानि भारत ।  
 यत्रासौ तिष्ठते देवस्तत्र याता निरन्तरम् ॥१५  
 अन्तरीकृत्य देवेशं स्थितानीत्यनुशुश्रुम ।  
 पिशाच्यो विकृताकाराः कराला रोमहर्षणाः ॥१६

उसी समय सब ओर से भयभीत होकर भागते हुए मृग भगवान् के पास आने लगे, उनके पीछे-पीछे बहेलिये भी वहाँ आये ॥१०॥ हे राजन् ! उस समय वहाँ हजारों मशालें जल उठी और दिन के समान प्रकाश फैल गया ॥११॥ उसके कुछ समय पश्चात् ही भयकर आकार के अनेक भूत-पिशाच विविध प्रकार की विकृत बोली बोलते हुए वहाँ आये ॥१२॥ उनमें से कुछ पिशाच मांस रक्त का भक्षण कर रहे थे । बहेलियों के द्वारा मारे जाते हुए मृगों में से जो बच रहे थे, वे भगवान् की शरण में आये । उसी समय वहाँ बहुत-नी भयकर आकार की पिशाचिनी भी आगई ॥१३-१६॥

पुत्रवत्यः समापेतुर्यत्न तिष्ठति केशवः ।  
 श्वगणस्तत्र राजेन्द्र चरत्येवं ततस्ततः ॥१७  
 ततः स भगवान्विष्णुः सर्वमालोक्य वेष्टितः ।  
 विस्मयं परमं गत्वा पश्यन्नास्ते स्म केशवः १८  
 कस्यैप विस्तृतो नादः कस्य वाय जनोऽनतत् ।  
 को नु मां स्तोति भक्त्या वै भविष्ये प्रीतिमानहम् ॥१९  
 कस्य मुक्तिः समायाता प्रीते भयि सुदुर्लभा ।  
 इति संचिन्त्य भगवानास्ते प्राकृतवद्वरिः ॥२०

हे राजन् ! कुत्तों के दल के दल इधर-उधर घूम रहे थे । उस दृश्य को देख कर भगवान् अत्यन्त आश्चर्यं चकित हुए और सोचने लगे कि यह कैसा अंकर बोलाहल है ? यह विशाल प्राणी-समूह इस समय यहाँ कैसे आया ? न मेरी शृणा के त्रिवे प्रार्थना कर रहा था ? कौन पुण्यात्मा इस समय मोक्ष प्रतीक्षा कर रहा है ? सामान्य मनुष्य के समान ही भगवान् श्रीविष्णु इन बातों को सोचने लगे ॥१७-२०॥

तेपामनु महाघोरी पिशाची विवृताननौ ।  
 प्राशू पिङ्गनरोमाणी दीर्घजिह्वी महाहनू ॥२१॥  
 लम्बकेशी विरुपाक्षी हा हा हा हेति वादिनी ।  
 खादन्तो मासपिटक पिवन्तो रुधिर बहु ॥२२॥  
 वदन्तो कृष्ण कृष्णेति माघवेति च स ततम् ।  
 कदा नु द्रक्ष्यते विष्णुः स इदानीं क्व तिष्ठति ॥२३॥  
 स्वामिनः कुत्र वसतिः कुतो द्रष्टुं यतामहे ।  
 अत्र वा कुत्र देवेशः कुतो नु स्यास्यते हरि ॥२४॥

वंशम्नायनजी ने कहा—ह राजन् ! उसके बाद ही दो भयवर ऊँचे आ-  
 कार वाले पिंगल धरण, लम्बी जिह्वा और विस्तृत चिबुक वाले पिशाच वहाँ उपस्थित  
 हुए ॥२१॥ उनके वंश बड़े लम्बे और नेत्र अत्यन्त भीषण थे, धोलने में हा-हा  
 करते हुए वे दोनों मास भक्षण और रुधिर पान कर रहे थे ॥२२॥ वे दोनों हे  
 कृष्ण ! हे माघव ! पुकारते हुए परस्पर बहने लगे कि इस समय विष्णु वहाँ  
 है ? वे मुझे कब दर्शन देंगे ? उन्हें वहाँ देखा जा सकता है ? वे देवेश इस समय  
 वहाँ होंगे ? ॥२३-२४॥

॥ घण्टाकर्ण को समाधि-लाभ ॥

ततः स भगवान्त्रिष्णुः पिशाची मासभक्षको ।  
 ददर्शाय महाघोरी दीपिकाधारिणौ हरिः ॥१॥  
 विलोकयान्चक्रतुस्तौ पिशाचो देवकीसतम् ।  
 स्थित सुखासने विष्णुं दृष्ट्वा लोकेश्वरेश्वरम् ॥२॥  
 तौ च गत्वा समुद्देशं पिशाची केशवस्य ह ।  
 ततस्तावूचतुर्विष्णुमन्तरीश्वर्य केशवम् ॥३॥  
 को भवान्नस्य वा मर्त्यं युत्तश्चागम्यते त्वया ।  
 निमयं मिह संप्राप्तो यने घोरे मृगायुले ॥४॥

निमंनुष्ये द्वीपिवृते पिशाचगणसेविते ।  
 श्वापदः सेव्यमाने च विपिने व्याघ्रसंकुले ॥५  
 सुकुमारोऽनवद्याङ्गः साक्षाद्विष्णुरिवापरः ।  
 पद्मपत्रेक्षणः श्यामपद्माभः श्रीपतिः स्वयम् ॥६  
 अस्मत्प्रीतिकरः साक्षात्प्राप्तो विष्णुरिवापरः ।  
 देवो वा यदि वा यक्षो गन्धर्वः किन्नरोऽपि वा ॥७  
 इन्द्रो वा धनदो वापि यमोऽथ वरुणोऽपि वा ।  
 एकाकी विपिने घोरे ध्यानापितमना इव ॥८

वंशम्गायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन दोनों  
 मांस भक्षक राक्षसों की ओर देखा और तभी उन दोनों ने सुखपूर्वक आसन  
 लगाये हुए उन तीनों लोकों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण को वहाँ देखा ॥१-२॥  
 तब वे भगवान् के पास जाकर भी उन्हें न पहचान सके और बोले—तुम कौन  
 हो ? किसके पुत्र और वहाँ से आये हो ? इस मृगों से परिपूर्ण भयंकर विपिन में  
 तुम्हारा आगमन किस लिये हुआ है ? ॥३-४॥ इस वन में सिंह, श्वापद, व्याघ्र  
 और पिशाचों का साम्राज्य है, मनुष्य के कहीं दर्शन भी नहीं हैं, इसलिये तुम्हें  
 यहाँ देख कर हमें अत्यन्त विस्मय होरहा है ॥५॥ साथ ही तुम अत्यन्त सुन्दर  
 रत्न वाले हो, तुम्हारा श्याम वर्ण और कमल जैसे विशाल नेत्र हमें बड़ा आनन्द  
 दे रहे हैं । तुम्हें देख कर ऐसा लगता है, जैसे साक्षत् भगवान् विष्णु ही विरा-  
 जमान हों । क्या तुम देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण में  
 से कोई हो ? और तुम यहाँ समाधि में क्यों स्थित होना चाहते हो ? ॥६-८॥

ब्रूहि मर्त्यं ययात्स्वं ज्ञातुमिच्छामि मानद ।  
 एयं पृष्टः पिशाचाभ्यामाह विष्णुरुत्क्रमः ॥९  
 क्षतिप्रोऽस्मीति मामाहुर्मनुष्याः प्रकृतिस्थिताः ।  
 यदुयंशे समुत्पन्नः क्षात्रं वृत्तमनुष्ठिनः ॥१०  
 लोकाणामय पाताऽस्मि शास्ता दृष्टस्य सर्वंश ।  
 फलासं गन्तुकामोऽस्मि द्रष्टुं देवमुमापतिम् ॥११

इत्येव' मम वृत्तान्त. कथ्यतां की युवामिति ।  
 युवामिह समायाती किमर्थं ब्राह्मणाश्रमम् ॥१२  
 एषा हि महती पुण्या नानामिप्रनिषेविता ।  
 बदरीयं समाप्याता न क्षुद्रै राश्रिता वचचिद् ॥१३

हम तुम्हारा वृत्तान्त जानना चाहते हैं, इसलिये उने पूर्ण रूप से हमसे कहो । यह सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—मैं क्षत्रिय हूँ, यदुवश मे उत्पन्न हुआ हूँ, इनलिये क्षात्र धर्म ब्राह्मण रहता हूँ ॥६-१०॥ मैं दुष्टो का सहारक और साधुजनो का रक्षक हूँ, तथा इस समय भगवान् शंकर के दर्शनार्थ कैलास पर्वत पर जाने का इच्छुक हूँ ॥ ११ ॥ मेरा यही वृत्तान्त है, जो तुमसे कह चुका । अब तुम अपने विषय में बताओ कि कौन हो और ब्राह्मणो के इस आश्रम में किस लिये आये हो ? ॥१२॥ इस पवित्र स्थान का नाम बदरीवन है यहाँ ब्राह्मणगण नित्य निवास करते हैं, क्षुद्र पुष्टो का यहाँ आना बर्जित है ॥१३॥

श्रूयतामभिधाप्यामि समहितमना भव ।  
 नमस्कृत्य जगन्नाथं हरिं वृष्णं जगत्पतिम् ॥१४  
 आदिदेवमजं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ।  
 वक्ष्यामि सकलं यद्वत्तया श्रुणु यदीच्छसि ॥१५  
 घण्टाकर्णोऽस्मि नाम्नाऽहं पिशाचो घोर.शंनः ।  
 मासादो विहृतो घोरः साक्षान्मृत्युरिवापरः ॥१६  
 धनदस्यानुगन्ताऽहं साक्षाद्रुद्रसखस्य च ।  
 ममायमनुजः साक्षादन्तकस्यान्तको ह्यहम् ॥१७  
 मृगयेयं सुमहती विष्णो. मूजार्थमित्युत ।  
 ममेयं यत्तंते सेना श्वगणोऽपि ममैव तु ॥१८  
 आगतोऽहं महाशैलात्कैलासाद्भूतसेवितात् ।  
 अहं पिशाचवेपेण संविष्टः पापकर्मवृत् ॥१९  
 सततं दूषयन्विष्णुं घण्टामावध्य वर्णयो. ।  
 गम नं प्रविशेन्नाम विष्णोरिति विचिन्तयन् ॥२०

पिशाच ने कहा—अब मैं उन अनादि देव, निष्पाप, परम पावन, एवं नमस्कार योग्य भगवान् विष्णु को नमस्कार करके अपने विषय में कहता हूँ, यदि आप चाहें तो सुनिये ॥ १४-१५ ॥ मे घण्टाकारण नामक एक मासाहारी पिशाच हूँ और मेरी आकृति को तो तुम मृत्यु के समान देख ही रहे हो ॥१६॥ मैं भगवान् शंकर के प्रिय सखा कुबेर का अनुचर हूँ और यह यमराज के समान दूसरा पिशाच मेरा भाई है ॥१७॥ यह विशाल कुत्ते का समूह मेरा ही है, इस समय भगवान् विष्णु के पूजनार्थ ही मैं मृगया में तत्पर हुआ हूँ ॥१८॥ इस समय मैं कैलास पर्वत से यहाँ आ रहा हूँ । घोर पाप करने के कारण ही मुझे इस पिशाच योनि की प्राप्ति हुई है ॥१९॥ मैं भगवान् विष्णु का इतना बड्ढर द्वेषी था कि उनका नाम न सुन सकूँ इसके लिये कानों से घटे बांध कर विचरण करता था ॥२०॥

अहं कलासनिलयमासाद्य वृषभध्वजम् ।  
 आराध्य तं महादेवमस्तुवं सततं शिवम् ॥२१  
 तता प्रसन्नो मामाह वृणीष्वेति वरं हरः ।  
 ततो मुक्तिर्माया तत्र प्रार्थिता देवसन्निधौ ॥२२  
 मुक्तिं प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः ।  
 मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः ॥२३  
 तस्माद्गत्वा च बदरी तक्षाराध्य जनार्दनम् ।  
 मुक्तिं प्राप्नुहि गोविन्दान्नरनारायणाश्रमे ॥२४  
 इत्युपतो देवदेवेन शूलिना शतवानहम् ।  
 तमेव परमं मत्वा गोविन्दं गरुडध्वजम् ॥२५  
 तस्मात्प्रार्थयमानः सन्मुक्तिदेशममुं गतः ।  
 अन्यच्च शृणु मे कार्यं यदि कौतूहलं तव ॥२६  
 पुरी द्वारावती नाम पश्चिमस्योदधेस्तटे ।  
 यदुवृष्णिसमाकीर्णा सागरोर्मिसमाबुलाम् ॥२७  
 यथास्ते स हरिविष्णुस्तां पुरी पुर्योत्तमः ।  
 द्रष्टुं लोहितार्थाय यमन्तं द्वारनापुरे ॥२८

निर्गतः साम्प्रतं मर्त्यं वयमेतः सहानुगै ।

विष्णु सर्वेश्वरः साक्षः द्रष्टव्योऽस्माभिरद्य वै ॥२६

फिर मैं कैलास पर्वत पर जाकर भगवान् रुद्र की आराधना करने लगा, जिससे प्रसन्न होकर उन्होने मुझ से कहा— हे वत्स ! अपना इच्छा वर माँगो । यह सुन कर मैंने उनसे मोक्ष माँगी । तब भगवान् शबर मुझसे बोले— सब को भगवान् विष्णु ही मोक्ष प्रदान करते हैं ॥२१-२३॥ इसलिये तुम बदरी वन में जाकर उनकी उपासना करो तो तुम्हें उसी नर नारायण आश्रम में मोक्ष की प्राप्ति होगी ॥ २४ ॥ भगवान् शबर के उक्त वचनों से मैं जान गया कि विष्णु ही सर्वोपरि देव है ॥२५॥ इसलिये मोक्ष की कामना से ही मैं इस वन में उपस्थित हुआ हूँ । इसके अतिरिक्त एक और भी उद्देश्य है, यदि चाहो तो उसे भी सुन लो ॥ २६ ॥ पश्चिमी समुद्र के किनारे द्वारका नाम की पुरी में यादव-गण निवास करते हैं और उस पुरी में ही भगवान् श्रीकृष्ण भी लोक-कल्याण के लिये रहते हैं । यदि मुझे यहाँ उनके दर्शन न हुए तो अपने अनुचरो सहित द्वारका के लिये प्रस्थान करूँगा, क्योंकि उनके दर्शन आज मैं अवश्य ही करना चाहता हूँ ॥२७-२६॥

॥ घण्टाकर्ण को भगवान का साक्षात्कार ॥

ततः स भगवान्विष्णुः पिशाचं दृष्ट्वास्तदा ।

चिन्तयंतं स्वमात्मानं शुद्धबुद्धिसमन्वितम् ॥१

आत्मन्यवस्थितं साक्षात्पठन्त प्रणवं सकृत् ।

प्रार्थयन्तं स्वमात्मानमेकान्ते नियतं हरिः ॥२

अचिन्तयज्जगन्नाथः कारणं पुण्यसंचये ।

ध्वात्वा तु सुचिरं विष्णु कारणं पुण्यकर्मणः ॥३

घनदस्योपदेशेन पठन्सुबहुशः क्षिती ।

वासुदेवेति कृष्णेति माघवेति च मां सदा ॥४

जनार्दन हरे विष्णो भूतभावन भावन ।

नराकार जगन्नाथ नारायणपरायण ॥५

इति मां नामभिनित्यं पठत्येव दिवानिशम् ।

स्वपञ्जाग्रस्तथा तिष्ठन्भुञ्जन्गच्छंस्तथा वदन् ॥६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि वह पिशाच उन्हीं के दृशन में तन्मय होगया है ॥१॥ इसके साथ ही उसके मुख से ओंकार का जाप भी ध्वनित होरहा था ॥२॥ यह देख कर भगवान् सोचने लगे कि इसके संचित पुण्यो का उदय ही इसे इस मार्ग में प्रवृत्त करने का मुख्य कारण हो सकता है ॥ ३ ॥ यह कुयेर के उपदेश से बारम्बार जप पूर्वक हे वामुदेव ! हे कृष्ण ! हे माधव ! हे जनादन ! हे हरे ! हे विष्णो ! हे भूत-भावन ! हे नराकार प्रभो ! हे जगन्नाथ ! हे नारायण आदि नामों का निरन्तर उच्चारण किये जा रहा है ॥ ४-६॥

भक्षयन्मांसपिटकं पिबञ्छोणितमेव वा ।

बाधमानं च सुचिरं हत्वा चापि मृगान्बहून् ॥७

हनने भोजने चैव जाग्रत्स्वप्न तथैव च ।

सर्वेष्वपि च कार्येषु कर्त्ताहमिति मन्यते ॥८

एतस्य कर्मणः पाक ए घोरस्य कर्मणः ।

निश्चित्यैवं जगन्नाथः प्रीतस्तस्य बभूव ह ॥९

अदर्शयत्स्वमात्मानमनन्यस्य जगत्पतिः ।

शुद्धेऽन्तःकरणे तस्य पिशाचस्यापि भूमिप ॥१०

स च घोरः पिशाचोऽपि ददर्शात्मनि केशवम् ।

पीतक्रीशेयवसनं पद्माक्षं श्यामलं हरिम् ॥११

सह्निनं चक्रिणं विष्णुं सग्विणं गदिनं विभुम् ।

किरीटिनं कौस्तुभिनं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥१२

नीलमेघनिभं कान्तं गरुडस्थं प्रभञ्जनम् ।

चतुर्भुजं शुभगिरं निश्चलं सर्वगं शिवम् ॥१३

अनादिनिघनं नित्यं मायायिनममायिनम् ।

सत्ययुक्तं सदा शब्दं बुद्धिगम्यं सदाऽमलम् ॥१४



मनस्येवं जगन्नाथं दृष्ट्वा विष्णुमनेकधा ।

अनुन्मील्यैव नयने कृतार्थोऽस्मीत्यमन्यत ॥६५

यह मास भक्षण, रक्त-पान और असंख्य पशुओं को नष्ट करता हुआ भी सोते, बैठते, जागते सब समय और सभी कार्यों में मुझे कर्त्ता मानता है ॥७-८॥ इसलिये, यह इसके श्रेष्ठ कर्मों का फल ही हो सकता है। ऐसा स्थिर वर भगवान् उसके अतः करण में साक्षात् हुए ॥६-१०॥ तब वह भयकर पिशाच अपने हृदयस्य पीताम्बरधारी, पद्म नेत्र, श्याम देह, राख-चक्र-गदा संतुलन, माला, किरीट, कोस्तुभ और श्रीरत्न से विभूषित हृदय, नील मेघ जैसी कान्ति, चार भुजा, श्रेष्ठ वाणी, स्थिर बुद्धि, आदि और अन्त से रहित, मायातीत, सत्यमय, शुद्ध, बुद्ध, निर्मल भगवान् विष्णु के अनेक रूपों का अपने हृदय में दर्शन कर अपने भाग्य को धन्य मानने लगा ॥११-१५॥

अथ दृष्टो हरिविष्णुः साक्षात्सर्वं व्रगः शुभः ।

प्रसन्नो हि हरिर्मह्यं तेनाहं दृष्टवान्हरिम् ॥१६

सिद्धं मे जन्मनः कृत्यं किमतः कृत्यमस्ति मे ।

ग्रन्थयो मम निर्मिन्ना वश्यान्वेवेन्द्रियाणि मे ॥१७

प्रायेण जितमित्येव मनो मन्ये स्मृते हरौ ।

ईपणा च निरस्ता मे प्रसन्नोऽहं तथाऽभवम् ॥१८

एतेभ्योऽपि पिशाचिभ्यो निर्मुक्तः साप्रतं तथा ।

योऽसौ ममानुजः साक्षात्स च भक्तस्तथा हरौ ॥१९

कालेन चैव निर्मुक्तो विष्णोः सामुज्यमाप्नुयात् ।

इत्येवं चिन्तयित्वा स आन्त्रपाशं विभिद्य च ॥२०

क्रमेण प्राणानुमुच्य विलोक्य च दिशस्तथा ।

शरीरं सुगमं वृत्त्वा प्राविशत्स सुखेन ह ॥२१

उसने सोचा कि भगवान् ने मुझे दर्शन दिया है तो अवश्य ही वे मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न प्रतीत होते हैं। मेरे हृदय की गाँठें खुल गईं और इन्द्रियाँ बशीभूत होगईं। आज मेरा जीवन सफ़ल होगया। मेरा मन मेरे आधीन होने

से अब मैं नितान्त प्रसन्न हूँ ॥१६-२८॥ अब मैं पिशाच शरीर से मुक्त होगया । मेरा यह छोटा भाई भी प्रभु-भवन है, इसलिये यह भी कुछ समय में मुक्त हो जायगा । ऐसा विचार करते हुए घण्टाकर्ण ने आन्त्र पाश को काट कर और प्राण वायु को रोक कर एक बार सब ओर देखा और फिर आनन्द समुद्र में डुबकियाँ लगाने लगा ॥१६-२१॥

## ॥ श्रीकृष्ण की कैलास पर तपस्या ॥

ततः स भगवान्विष्णुर्मुनिभ्यस्तत्त्वमादितः ।  
 कथयामास यद्वृत्तं पिशाचस्य महात्मनः ॥१  
 तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विस्मयं परमं गताः ।  
 अहोऽस्य कर्मणः पाकस्तव संदर्शनमिति ॥२  
 अर्चितो मुनिभिः सर्वैः प्रीतः प्रीतिमतां प्रियः ।  
 ततः प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ॥३  
 आरुह्य गरुडं विष्णुर्यपी कैलासमुत्तमम् ।  
 भवद्भिस्तत्र गन्तव्यमित्युक्त्वा मुनिसत्तमान् ॥४  
 यत्र विश्वेश्वराः सिद्धास्तपस्यन्ति यतव्रताः ।  
 यत्र वैश्रवणः साक्षादुपास्ते शंकरं सदा ॥५  
 यत्र तन्मानसं नाम सरो हंसालयं महत् ।  
 यत्र भृङ्गी रिटिर्देवमुपास्ते शंकरं शिवम् ॥६  
 गाणपत्यमवाप्याथ हरपाश्वरः सदा ।  
 यत्र सिंहा वराहाश्च द्विपद्वीपिमृगः सह ॥७  
 ऋषिर्नृपि वन्यरतयः परस्परहिते रताः ।  
 यत्र नद्यः समुत्पन्ना गङ्गादवाः सागरंगमाः ॥८

धैर्यशायनत्री ने कहा—हे राजन् ! फिर उग पिशाच का मग्नूर्ण वृत्तान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने मुनियों से कहा ॥१॥ त्रिते गुन कर धर्यन्त विस्मित होए हुए मुनिशे ने कहा—उत पिशाच का इस प्रकार मग्नूर्ण होना भाषने दर्शनो का

ही फल है ॥२॥ फिर उन मुनियो द्वारा पूजित हुए भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और रात्रि के व्यतीत होने पर सूर्य के समान सुशोभित होते हुए गहड पर चढ़ कर मुनियो से बोले—हे मुनिगण ! मैं अब कैलास पर्वत पर जा रहा हूँ ॥३-४॥ इतना कह कर भगवान् श्रीकृष्ण ने कैलास की ओर प्रस्थान किया । हे राजन् ! जहाँ सिद्ध गण तपस्या करते और कुबेर भी रुद्र भगवान् की उपासना में लगे रहते हैं ॥५॥ जहाँ हंसों से परिपूर्ण मानसरोवर स्थित है तथा जहाँ भृगी और रिटि द्वारपाल के रूप में भगवान् शंकर की नित्य उपासना करते रहते हैं । जहाँ सिंह व्याघ्र, वराहादि अहिंसक वन कर घूमते हैं और जहाँ से निकल कर गया आदि सरिताएँ समुद्र में जा मिली हैं ॥६॥

यत्र विश्वेश्वर शम्भुरच्छिन्नद्वह्यण शिर ।  
यत्रोत्पन्ना महावेत्ता भूताना दण्डता ययु ॥८  
उभया यत्र सहित शं करो नीललोहित ।  
श्रुपिभि प्रार्थित पूर्वं ददौ यत्न गिरि सुताम् ॥१०  
शं कराय जगद्वात्र शिवाय जगतीपते ।  
यत्र लेभे हरिश्चक्रमुपास्य बहुभिदिनै ॥११  
पुष्करं शतपत्रैश्च नेत्रेण च जगत्पतिम् ।  
गुहा यत्र समाश्रित्य कीडन्ते सिद्धपिन्नरा ॥१२  
प्रियाभि सह मोदन्ते पिवन्ते मधु चोत्तमम् ।  
यमुद्धृत्य भुजं सर्वे पीलस्त्यो विरराम ह ॥१३  
तमारुह्य महाशैल देवकीनन्दनो हरि ।  
मानसस्योत्तर तीर जगाम यदुनन्दन ॥१४  
तपश्चतुर्विंशति हरिविष्णु सर्वेश्वर शिव ।  
जटी चोरी जगन्नाथो भानुप वपुरास्यित ॥१५  
तपसे धृतचित्तास्तु शुची भूमावुपाविशत् ।  
अवरुह्य ततो यानाद्गहडाद्देसमिताम् ॥१६

विश्वेश्वर रुद्र ने शम्भु का शीर्षक छिन्न जहाँ कर दिया था

और जहाँ नेत्रों ने उत्पन्न होकर जीवों के दण्ड-विधान में सहायता दी है ॥९॥  
 जहाँ भगवान् शंकर और भगवती पार्वतीजी का मिलन होता रहता है तथा जहाँ  
 मुनियों से प्रार्थित पर्वतराज ने अपनी कन्या उमा शिवजी को प्रदान की थी  
 ॥१०॥ जिस स्थान पर भगवान् विष्णु ने दीर्घकाल तक भगवान् रुद्र की आरा-  
 धना की थी और उनसे चक्र प्राप्त किया था । जहाँ सिद्ध और किन्नर सोम-पान  
 करते हुए नित्य विहार करते रहते हैं और जिसे रावण ने अपनी विशाल भुजा-  
 ओ से उठाना चाहा था, परन्तु वह अपने प्रयत्न में निष्फल रहा था । उसी  
 कैलास पर्वत पर जाकर भगवान् श्रीकृष्ण मान सरोवर के उत्तर-तट पर पहुँचे  
 ॥ ११-१४ ॥ वहाँ उन्होंने तप करने के लिये जटी चीरी मनुष्य रूप बनाया  
 और फिर गहड़ से उतर कर एक शुद्ध स्थान पर विराजमान हुए ॥१५-१६॥

द्वादशाब्दं तपश्चतुं मनो दध्ने ततो हरिः ।  
 फाल्गुनेन तु मासेन समारेभे जगत्पतिः ॥१७  
 शाकभक्षः कृतजपो वेदाध्ययनतत्परः ।  
 किमुद्दिश्य जगन्नाथस्तपश्चरति मानवः । १८  
 तं न विद्मो यथाकामं दुर्जयेश्वरचिन्तना ।  
 तपस्यति तदा विष्णो पर्वते भूतसेविते ॥१९  
 गरडः कश्यपसुत इन्धनानि ममाचिनोत् ।  
 होमायं वासुदेवस्य चरतस्तप उत्तमम् ॥२०  
 चक्रराजोऽथ पुष्पाणि संचिनोति तदा हरेः ।  
 दिशु सर्वासु सर्वत्र ररक्ष जलदस्तदा ॥२१  
 षंग आहृत्य यत्नेन कुशान्गुबहुशस्तदा ।  
 गदा कौमोदकी चंय परिचर्या प्रकार ह ॥२२  
 धनुःप्रवरमत्युग्रं शांगं दानवभीषणम् ।  
 स्मितं हि पुरतस्तस्य यथेष्टं भृत्यवस्त्वयम् ॥२३  
 जहोति भगवान्निष्णुरेधोभिवं हृभिः सदा ।  
 आज्यादिभिस्तदा हृष्यं रग्निं गंपूज्य मापयः ॥२४

फिर उन्होंने बारह वर्ष तक तपस्या करने का विचार किया और फाल्गुन मास में वेदाध्ययन पूर्वक केवल शाक भोजन करते हुए तप का आरम्भ किया । परन्तु उन जगदीश्वर का तप करने में क्या उद्देश्य था, इसे वही जानें ॥ १७-१६ ॥ उस समय होम के लिये ईंधन यरूढ एकत्र करते थे, चक्र पुष्प संचित करते थे । खंख उनकी सब ओर से रक्षा करता था, खंग कुश लाता था, गदा उनकी सेवा करती थी और शार्ङ्ग घनुप भृत्य के समान सदा उनके समक्ष स्थित रह कर परिचर्या में लगा रहता था ॥१६-२३॥ इस प्रकार ईंधन से अग्नि को प्रज्वलित करके भगवान् श्रीकृष्ण आग्यादि की आहुतियाँ देने लगे ॥२४॥

सप्तार्चिपः समार्पित च समस्तव्यस्ततः कृती ।  
 एकस्मिन्नेकदा मासे भुञ्जानो नियतात्मवाद् ॥२५  
 द्वितीये त्वथ पर्याये भुञ्जन्नेकेन केशवः ।  
 एकस्मिन्वत्सर भुञ्जास्तथैवैकेन केनचित् ॥२६  
 समाप्य तत्तपः सर्वमेवमेव जगत्पतिः ।  
 द्वादशाब्दे तथा पूर्णे ऊनमासे जगत्पतिः ॥२७  
 जुह्वन्तग्नि समास्थाय पठन्मन्त्रं जनार्दनः ।  
 आरण्यकं पठन्विष्णुः साक्षात्सर्वेश्वरो हरिः ।  
 आस्ते ध्यानपरस्तत्र पठन्प्रणवमुत्तमम् ॥२८

यथाविधि होमों के सम्पन्न होने पर उद्यापन करने लगे । वे प्रथम एक मास में एक दिन और फिर एक वर्ष में एक दिन भोजन करते रहे ॥२५-२६॥ इस प्रकार बारह वर्ष पूर्ण होने में जब एक मास शेष रह गया, तब उन्होंने पूर्णाहुति दी, और फिर अग्नि का ध्यान करके आरण्यक आदि मंत्रों के जप पूर्वक ओंकार उच्चारण करते हुए भगवान् शंकर के ध्यान में तल्लीन होगये ॥ २७-२८ ॥

॥ श्रीकृष्ण को शिवजी का दर्शन देना ॥

ततो यमस्तु भगवानारुह्य महिषं वरम् ।  
 क्रिकरैश्च स्वयं साक्षादययौ नगमुत्तमम् ॥२  
 श्वेतच्छलसमामुवतः श्वेतव्यजनवीजितः ॥३  
 ययौ कंलासशिखरं द्रष्टुं केशवमञ्जसा ।  
 अन्ये चापि तथा देवा आदित्या वसेवस्तथा ॥४  
 रुद्राश्चैव तथा राजन्द्रष्टुं केशवमाययुः ।  
 सिद्धाश्च मुनयश्चैव गन्धर्वा यक्षकिन्नराः ॥५  
 सर्वाश्चाप्सरसो राजन् त्वगीतविशारदाः ।  
 ततो देवगणाः सर्वे कंलासं समपद्यत ॥६

वंशम्पापनजी ने कहा—हे राजन् ! जब भगवान् श्रीकृष्ण तपस्या कर रहे थे, तब उनके दर्शनार्थं देवराज इन्द्र कंलास पर्वत पर आये ॥१॥ यमराज भी अपने भैंसा पर चढ़ कर अनुचरों के सहित उनके दर्शन की अभिलाषा से वहाँ पहुँचे ॥२॥ जलराज वरुण अपने घाहन हंस पर बैठ कर अपने क्रिकरों के साथ वहाँ आये और अन्य सभी देवता, आदित्य, वसु, रुद्र आदि तथा सिद्ध, मुनि, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, अप्सरादि सभी भगवान् के दर्शन के लिये वहाँ आकर एकत्र हुए ॥३-६॥

पर्वतो नारदश्चैव तथाऽन्ये मुनिसत्तमाः ।

विस्मयस्यतलोलाक्षाः सर्वदेवगणास्तथा ॥७

आश्चर्यं यत्तु पश्यध्वं न भूतं न भविष्यति ।

योगिध्येयः स्वयं कृष्णो यत्तप्यति गुरुः स्वयम् ॥८

को न्वत्र समयो भयादिति ते मेनिरे गणाः ।

ततः समाप्ते सकले जगत्पतेर्ब्रह्मे समूले सकलेश्वरः शिवः ।

द्रष्टुं हरिलोकहितं पिणं प्रभुं ययौ भवान्या सह भूतसंघः ॥९

साद्धं क्रुधेरेण सगुह्यकेन सरया प्रियेण प्रभुरीश्वरः शिवः ।

स्वयं जटो भूतपिशाचसंघृतः दारी चण्डी शक्तिचण्डशेखरः ॥१०

करेण विभ्रन्मह दभंकुण्डिकां करेण साक्षादपरेण दीपिकाम् ।

अन्येन विभ्रन्महती सच्छिण्डमांशूलं च विभ्रन्नपरेण वाहुना ॥११

गुणान्स रुद्राक्षकृतान्समुद्बहुजटाभिरापिगलताम्रमूर्तिः ।

विराजमानः प्रभुरिन्दुशेखरो वृषेण युक्तः स सितेन शंकरः ॥१२

सभी पर्वत, अन्य सभी मुनिजन और अन्यान्य देवताओं ने आश्चर्य व्यक्त नेत्रों से कहा—अहो, कैसा विस्मय है कि जिनका योगीजन प्रयत्न-पूर्वक ध्यान करते हैं, वही जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही तपस्या करते हैं। ऐसी घटना तो कभी देखी, सुनी नहीं ॥ ७-८ ॥ उनके द्वारा तपस्या करने में अवश्य ही कोई कारण होगा। इस प्रकार का वार्तालाप चल ही रहा था, तभी भगवान् श्रीकृष्ण की तपश्चर्या पूर्ण होने पर भगवती पावेंती के सहित भगवान् शंकर साक्षात् रूप में उनके पास आये ॥६॥ उस समय भगवान् शंकर जटा धारण किये हुए थे, उनके साथ बुधेर और बहुत-से यक्षगण थे, उनके मस्तक पर चंद्रमा और हाथों में बाण तथा खड्ग सुशोभित थे ॥१०॥ उनके हाथों में कुश की पिंडी, कमण्डलु, दीपक, वीणा, डमरू और त्रिशूल भी थे ॥११॥ कंठ में रुद्राक्ष धारण किये हुए थे, जटाओं के कारण उनकी देह वान्ति ताम्र और पिगल वर्ण की थी, उस समय वे वृषभ पर आरूढ थे ॥१२॥

एवं बहुविधैर्भूतैः पिशाचैरुदरीः सह ।

आगत्य भगवान् रुद्रः शकरो वृषवाहनः ॥१३

ददर्श विष्णुं देवेशं तपन्त तप उत्तमम् ।

जुह्वानमग्निं विधिवद्द्रव्यैर्मर्ष्यैर्जंगत्पतिम् ॥१४

गदडाहृतकाष्ठं तु जटिलं चौरवासनम् ।

चक्रेणानीतकुसुमं खंगानीतकुशं तथा ॥१५

गदाकृतसमाचारं देवदेवं जनार्दनम् ।

इन्द्राद्यैर्दधसंघैश्च वृतं भूनिगर्णैः सह ॥१६

अचिन्त्यं सर्वभूतानां ध्यायन्तं किमपि प्रभुम् ।

अवरुह्य वृषान्ठर्वो भगवान्भूतनावनः ॥१७

ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा सलाटाक्ष उमापतिः ।

ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसा गुह्यतास्तथा ॥१८

मुनयो विप्रर्याश्च जयशब्दं प्रचक्रिरे ।  
 जय देव जगन्नाथ जय रुद्र जनार्दन ॥१९  
 जय विष्णो हृषीकेश नारायणपरायण ।  
 जय रुद्र पुराणात्मञ्जय देव हरेश्वर ॥२०  
 आदिदेव जगन्नाथ जय शंकर भावन ।  
 जय कौस्तुभदीप्ताखङ्ग जय भस्मविराजित ॥२१  
 जय चक्रगदापाणे जय शूलिखिलोचन ।  
 जय मौक्तिकदीप्ताखङ्ग जय नागविभूषण ॥२२

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! असंख्य भूतादि के साथ गये हुए भगवान् साकर ने भगवान् श्रीकृष्ण को तपश्चर्या में निमग्न देखा । उस समय वे प्रज्वलित अग्नि में आहुतियाँ प्रदान कर रहे थे ॥१३-१४॥ गरुड बाष्प ला-रहे हैं, चक्र पुण्य और खग कुश एकत्र कर रहे हैं, गदा उनकी मुद्रुपा में लगी है । उन जटा एव वल्कल धारी श्रीकृष्ण को इन्द्रादि देवताओं और मुनियों ने सब ओर से घेर रखा है ॥ १५-१६ ॥ प्राणियों के चिन्तन में न आने वाले य महाप्रभु उस समय ध्यान में रत थे, तभी भूत भावन भगवान् सांकर अपने वृषभ से उतर कर उस भव्य यातावरण को देखा । उसी समय सभी भूत, पिशाच, राक्षस, गुह्यक और मुनि आदि ने सब ओर से जय-जयकार किया—हे जगन्नाथ देव ! आपकी जय हो, हे रुद्र ! हे जनार्दन ! आपकी जय हो ॥ १७-१८ ॥ हे विष्णो ! हे हृषीकेश ! हे नारायण-परायण आपकी जय हो, हे रुद्र ! हे पुण्यात्मन् ! हे देव ! हे हरेश्वर ! आपकी सदा जय हो ॥२०॥ हे आदिदेव ! कौस्तुभ दीप्तांग ! भस्म विराजित ! हे साकर ! हे जगन्नाथ ! आपकी जय हो ॥२१॥ हे चक्रगदापाणे ! हे शूलिन् ! हे त्रिसोचन ! हे मौक्तिक दीप्तांग ! हे नागविभूषण ! आपकी जय हो ॥२२॥

इति ते मुनय सर्वे प्रणामं चक्रिरे हरिम् ।  
 ता उदयाय भगवान्दृष्ट्वा देवमवस्थितम् ॥२३



वृषध्वज विरूपाक्ष शङ्कर नीललोहितम् ।  
 ततो हृष्टमना विष्णुस्तुष्टाव हरमीश्वरम् ॥२४  
 नमस्ते शिनिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे ।  
 नमस्ते शोचिपे अस्तु नमस्ते उपवासिने ॥२५  
 नमस्ते मीढुपे चास्तु नमस्ते गदिने हर ।  
 नमस्ते विश्वतनवे वृषाय वृषरूपिणे ॥२६  
 अमूर्तयि च देवाय नमस्तेऽस्तु पिनाकिने ।  
 नम कुब्जाय कूप्याय शिवाय शिवरूपिणे ॥२७  
 नमस्तुण्डाय तुष्टाय नमस्तुटितुटाय च ।  
 नम शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नम ॥२८  
 नमो हराय हिप्राय नमो हरिहराय च ।  
 नमोऽघोराय घोराय घोरघोरप्रियाय च ॥२९  
 नमोऽघण्टाय घण्टाय नमो घटिघटाय च ।  
 नम शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नम ॥३०

यह कह कर उन मुनिगण आदि ने रुद्रदेव को प्रणाम किया, फिर उन्हें  
 अपने सामने स्थिर देखा कर भगवान् वृष्ण हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति करने  
 लगे ॥ २३-२४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे शिनिकण्ठ ! आपको नमस्कार  
 है । हे नीलग्रीव ! हे वेध ! हे शोचि ! हे उपवासिन ! आपको भरा नमस्कार  
 है ॥ २५ ॥ हे मीढुप ! हे गदावर ! हे विद्वन्नो ! हे वृष ! हे वृषरूपिन् !  
 आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे अमूर्त ! पिनाकिन् ! कुब्ज ! कूप्य ! गिव !  
 निवरूपिन् ! आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥ हे तुण्ड ! तुष्ट ! बुटितुट ! गिव !  
 शान्त ! गिरिन ! आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे हर ! हिप्र ! हृष्टिहर !  
 अघोर ! घोर ! घोरघोर प्रिय ! घण्ट ! अघण्ट ! घटिघट ! गिव ! शान्त !  
 गिरिन ! आपको बारबार नमस्कार है ॥ २९-३० ॥

नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक ।  
 नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः ॥३१  
 का नु वाक्स्तुतिरूपा ते को नु स्तोतुं प्रशक्नुयात् ।  
 कस्य वा स्फुरते जिह्वा स्तुतिमतां वर ॥३२  
 क्षमस्व भगवान्देव भक्तोऽहं त्राहि मां हर ।  
 सर्वात्मन्सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हर ॥३३  
 रक्ष देव जगन्नाथ लोकान्सर्वात्मना हर ।  
 त्राहि भक्तान्सदा देव भक्तप्रिय सदा हर ॥३४

हे सर्वात्मन् ! आपको नमस्कार है, हे भूतिदायक ! हे वामदेव ! हे महादेव ! आपको नमस्कार है ॥३१॥ हे प्रभो ! ऐसा कोई वाक्य समझ में नहीं आता, जिसके द्वारा आपका स्तव करूँ । फिर ऐसा है भी कौन जिसकी जिह्वा आपकी भले प्रकार स्तुति करने में समर्थ हो ? ॥३२॥ हे भगवन् ! हे देव ! हे हर ! आप अपने मुझ भक्त की रक्षा करिये, हे सर्वात्मन् ! हे सर्वभूतेश ! आप सदैव ही मेरी रक्षा करने वाले रहें ॥३३॥ हे देव ! हे जगन्नाथ ! आप सदा ही सब लोकों के रक्षक रहें । हे देव ! हे महादेव ! आप भक्तों पर प्रीति करने वाले हैं, इसलिये अपने भक्तों की सदा रक्षा करें ॥३४॥

## ॥ शिव द्वारा कृष्ण-स्तुति ॥

ततो वृषध्वजो देवः शूली साक्षादुमापतिः ।  
 करं करेणं संस्पृश्य विष्णोश्चक्रधरस्य ह ॥१  
 प्रोवाच भगवान् रुद्रः केशवं गरुडध्वजम् ।  
 शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥२  
 किमिदं देवदेवेश चक्रागणे जनार्दन ।  
 तपश्चर्या किमयं ते प्रार्थना तव का विमो ॥३  
 स्वयं विष्णुर्भवान्नित्यस्तपस्त्वं तपसां हरे ।  
 पुत्राय यदि ते देव तपश्चर्या जनार्दन ॥४

पुत्रो दत्तो मया देव पूर्वमेव जगत्पते ।  
 शृणु तन्नापि भगवान्कारणं कारणात्मक ॥५॥  
 तपश्चतुं प्रवृत्तोऽहं कुशित्कारणाद्वर ।  
 वर्षायुतं महाधीर पुरा कृतयुगे तदा ॥६॥  
 भगानी तन्न मे देव परिचत्तुं तदाऽभवत् ।  
 पित्रा नियुक्ता देवेश उर्मपा वरवर्णिनी ॥७॥  
 भीत इन्द्रस्तदा देव मारं मां प्रपयत्तदा ।  
 मधुना सह स मुक्ती मारो मामागतस्तदा ॥८॥

वंशम्पायनजी ब्रूने—हे राजन् ! फिर झूलपाणि वृषभवाहन भगवान् शकर ने सुनने के लिये उत्कंठित हुए देवताओं और मुनियों के सामने ही चक्रपाणि गरुडवाहन भगवान् श्रीकृष्ण रूप विष्णु के कर स्पर्श पूर्वक कहा ॥१-२॥ हे देवदेवेश ! हे चक्रपाणो ! हे जनार्दन ! आपके ऐभी घोर तपश्चर्या में प्रवृत्त होने का क्या कारण है ? हे विभो ! आप क्या च करते हैं ? ॥३॥ आप तो स्वयं ही विष्णु हैं इसलिये स्वयं ही तप तपो मे परम तप हैं । हे जनार्दन ! यदि आपका यह कार्य पुत्र की अभिलाषा से हो तो वह तो मैंने आपको पहिले ही दे दिया है : अब आपकी इस तपस्या को जो कार णमें ममेशंता हूँ उसे भी मुनिये ॥४-५॥ सत्पयुग की बात है कि मैंने दश हजार वर्षों मे पूर्ण होने वाली कठोर तपस्या की ॥ ६ ॥ उस समय वरवर्णिनी उभा अपने पिता हिमराज की अज्ञा से मेरी परिचर्या मे नियुक्त हुई ॥७॥ तभी मेरे कठिन तप को देख कर इन्द्र को भय उत्पन्न हुआ और विघ्न उपस्थित करने के उद्देश्य से उन्होंने कामदेव को मेरे पास भेजा, जो हि अपने चतन्व-वाल आदि साधनों के साथ वहाँ आ गया । ८ ॥

लक्ष्यं मामकरोत्तत्र वाणस्य प्रेषितम्प ः  
 एषा मा सेवते तत्र दानात्पुष्पादिना हरे  
 ततः क्रुद्धोऽहममयं दृष्ट्वा मारं तथाविध  
 क्रुद्धस्तो मय देवेश नैक्षदग्निः परात्त ह

सोऽयमग्निस्तदा मारं भस्मसात्कृतवान्हरे ।  
 अचिन्तयं तदा विष्णो शक्रस्यैतच्चिकीर्षितम् ॥११  
 ततः प्रभृति देवेश दया तं प्रति पर्वते ।  
 ब्रह्मणा च नियुक्तोऽस्मि प्रीतस्तन्न जनार्दन ॥१२  
 नियुक्तः पुत्ररूपेण स ते देव जगत्पते ।  
 ज्येष्ठस्तव सुतो देव प्रद्युम्नेत्यभिविश्रुतः ॥१३  
 स्मरं तं विद्धि देवेश नान्न कार्या विचारणा ।  
 इत्युक्त्वा पुनराहेदं याथात्म्यं दर्शयन्निव ॥१४

मेरे पास आकर उमने मुझ पर अपना बाण चलाया, उस समय पुष्पादि  
 संचय पूर्वक उमा मेरी सेवा करती थी ॥१६॥ फिर भी कामदेव को विघ्न रूप  
 में उपस्थित देख मेरे नेत्रों से क्रोध के कारण अग्नि की लपटें निकलने लगी  
 ॥१०॥ हे हरे ! उस क्रोधाग्नि में पड़ कर कामदेव तुरन्त ही भस्म होगया, फिर  
 मुझे ज्ञात हुआ कि वह कुन्तल इन्द्र की ही थी ॥११॥ फिर ब्रह्माजी के प्रयत्न  
 से प्रसन्न होकर मैं कामदेव के प्रति दयाद्रो हो उठा ॥१२॥ हे जगत्पते ! तभी  
 मैंने उस कामदेव को 'प्रद्युम्न' रूप से आपका-ज्येष्ठ पुत्र निश्चित किया ॥१३॥  
 वही कामदेव आपका ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न है, इसमें कोई सदेह न करिये ॥१४॥

मुनीनां श्रोतुकामानां याथात्म्यं तन्न सत्तमः ।  
 अञ्जलि संपुटं कृत्वा विष्णुमुद्दिश्यैशंकरः ॥१५  
 उमया सार्द्धं मीशानो याथात्म्यं वक्तुमर्हत ।  
 हरे क्वंति तन्नैवमञ्जलि कुक्षस्ताम ॥१६  
 मुनयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह किन्नरः ।  
 अञ्जलि चक्रिरे विष्णो देवदेवेश्वरे हरी ॥१७  
 यत्तत्कारणमाहुस्तत्सांड्याः प्रकृतिसंज्ञकम् ।  
 ततो महान्समुत्पन्नः प्रकृतिर्यस्य कारणम् ॥१८  
 त्रिधा भूतं जगद्योनिं प्रचानं कारणात्मकम् ।  
 मत्स्यं रजस्तमो विष्णो जगदण्डं जनार्दन ॥१९

तस्य कारणमाहुस्त्वां सांख्यप्रकृतिसंज्ञकम् ।  
 तद्रूपेण भवान्विष्णो परिणम्याधितिष्ठति ॥२०॥  
 तस्मात्तु महतो घोरादहंकारो महानभूत् ।  
 स त्वमादौ जगन्नाथ परिणामस्तथा हि सः ॥२१॥

हे राजन् ! भगवान् शंकर ने उपरोक्त वाक्य पूर्ण करके मुनियो पर विष्णुत्व प्रकट करने केलिये श्रीकृष्ण के लिये हाथ जोडे । उनके ऐसा करते ही सब मुनि, देवता, गन्धर्व, सिद्ध, किन्नर आदि ने भी उनके लिये हाथ जोडे ॥ १५-१७ ॥ तभी भगवान् शंकर ने उनसे कहा—हे जनादेन ! आप ही सांख्य योगियों द्वारा ब्रह्म प्रकृति सन्नक त्रिगुणात्मक कारण हैं ॥१८॥ आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है । जिस प्रकृति के आप कारण है, उसी से महत्त्व उत्पन्न हुआ है । उस महत्त्व के रूप में भी आप ही परिवर्तित होते तथा आप ही सर्वत्र व्याप्त रहते हैं ॥ १९-२० ॥ उस महत्त्व से ही अहंकार तत्व की उत्पत्ति हुई । हे जगदीश्वर ! यह सब आपके परिणाम और आप इन सब के मूल कारण हैं ॥२१॥

अहंकारात्प्रभो देव कारणानि महान्ति च ।  
 तन्मात्राणि तथा पञ्च भूतानि प्रभवन्त्युत ॥२२॥  
 तानि त्वामाहुरीशानं भूतानीह जगत्पते ।  
 पृथिवी वायु गकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥२३॥  
 चक्षुर्घ्राणि तथा स्पर्शो रसन श्रोत्रमेव च ।  
 मनः पष्ठं तथा देव प्रेरकं तन्न तन्न ह ॥२४॥  
 कर्मन्द्रियाणि चान्यानि वागादीनि जनाह्वन ।  
 त्वमेव तानि सर्वाणि करोपि नियतात्मवान् ॥२५॥  
 स्वेपु जगन्नाथ विपयेषु तथा हरे ।  
 निवेशयसि देवेश योग्यामिन्द्रियपद्धतिम् ॥२६॥  
 यदा त्वं रजसा युक्तस्तदा भूतानि सृष्टवान् ।  
 यदा च सत्त्वयुक्तोऽसि तदा पाता जयत्रयम् ॥२७॥

यदा त्व तमसाकृष्टस्तदा संहरसे जगत् ।  
 त्त्रिभिरेव गुणैर्युक्तः सृष्टिरक्षाविनाशने ॥२८

उसी अहंकार तत्व से पृथिवी, पवन, आकाश, जल और अग्नि इन पंच महाभूतों की उत्पत्ति हुई । हे प्रभो ! वे पंच महाभूत आप ही हैं । उन पंच महाभूतों को प्रेरण करने वाली छ इन्द्रियाँ नेत्र, नासिका, स्पर्श, रसना, श्रोत्र और मन हैं ॥२२-२४॥ इनके अतिरिक्त कर्मेन्द्रिय और वाणी आदि अन्यान्य इन्द्रियाँ भी आपके द्वारा ही उत्पन्न हुई हैं ॥२५॥ हे जगन्नाथ ! इन इन्द्रियों को आपने ही अपने अपने बाधों में नियुक्त किया है ॥२६॥ आप रजोगुण से युक्त होकर सब प्राणियों की रचना और सत्त्वगुण से युक्त होकर तीनों लोकों का पालन करते हैं ॥२७॥ तमोगुण से युक्त होकर आप ही विश्व का सहार करते हैं । इस प्रकार आप पृथक्-पृथक् तीनों गुणों से मिल कर सृष्टि, पालन और विनाश करते रहते हैं ॥२८॥

वत्तं से त्रिविधा भूतिमादाय नियतात्मवान् ।  
 इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नियोजयसि माधव ॥२९  
 प्राणिनामुपभोगार्थमन्त स्थित्वा जगद्गुरो ।  
 तस्मात्सर्वं भूनेषु वत्तति सर्वमोगवान् । ३०  
 ब्रह्मा त्वं सृष्टिकाले तु स्थितौ विष्णुरसि प्रभो ।  
 संहारे रुद्रनामासि त्रिधामा त्वमसि प्रभो ॥३१  
 वादिस्त्वं सर्वभूताना मध्यमन्तस्तथा भवान् ।  
 त्वत्तं समभवद्विश्वं त्वयि सर्वं प्रतीयते ॥३२  
 अहं त्वं सर्वं गो देव त्वमेवाहं जनार्दन ।  
 आद्ययोगन्तरं नास्ति शब्दः रथैर्जगत्पते ॥३३  
 नामानि तत्र गोविन्द यानि लोके महान्ति च ।  
 तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥३४  
 त्वदुपागा जगन्नाथ गंयान्तु मम गोपते ।  
 यश्च त्वां दृष्टि देवेन स मां दृष्टि न गंयतः ॥३५

हे माधव ! आप एक ही काल में तीनों रूपा के धारण में समर्थ हैं । आप ही जीवों के प्राण धारणाय अन्न उत्पन्न कर इन्द्रियो को उनके निश्चित कार्यों में नियुक्त करते हैं तथा आप ही सब भूतो में भोगवान् रूप से स्थित रह कर सब भोगो को भोगते हैं ॥२६३०॥ हे प्रभो ! आप ही त्रिगुणात्मक हैं तथा सृष्टि काल में ब्रह्मा, स्थिति काल में विष्णु और प्रलय काल में रुद्र हो जाते हैं ॥३१॥ आप ही सब जीवों के आदि, मध्य और अन्त हैं । यह जगत् आप से ही उत्पन्न हुआ है और अन्त में आप में ही मिल जायगा ॥३२॥ आप और मैं दोनों ही सर्वगत हैं, आप में और मुझ में शब्द से या अर्थ से भी भेद नहीं है ॥३३॥ हे गोविन्द ! इस लोक में आपको जिन-जिन नामों से पुकारा जाता है, उन-उन नामों से मैं भी प्रसिद्ध हूँ, यह निःसन्देह सत्य है ॥३४॥ हे जगन्नाथ ! आपकी आराधना से ही मेरी आराधना सम्पन्न हो जाती है और आपके प्रति वैर-भाव का होना मुझसे ही शत्रुता होना है ॥३५॥

त्वद्विस्तारो यतो देव अहं भूतपतिस्तत ।  
 न तदस्ति विना देव यत्ते विरहित हरे ॥३६॥  
 यदासीद्वर्तते यच्च यच्च भावि जगत्पते ।  
 सर्वं त्वमेव देवेश विना किञ्चित्त्वया न हि ॥३७॥  
 स्तुवन्ति देवा सततं भवन्त स्वर्गुणैः प्रभो ।  
 ऋचं त्वं यजुरेवासि सामासि सततं प्रभो ॥३८॥  
 किमुच्यते मया देव सर्वं त्वं भूतभावन ।  
 नमः सर्वात्मना देव विष्णो माधव केशव ॥३९॥  
 नमस्वरोमि सर्वात्मन्ममस्तेस्तु सदा हरे ।  
 नमः पुष्करनाभाय वन्दे त्वामहमीश्वर ॥४०॥

आपकी महिमा जिससे विस्तीर्ण होती है, उसी से मेरी भी महिमा बढ जाती है और मैं भूतनाथ हो जाता हूँ । आपके बिना किसी भी कार्य की सिद्धि सम्भव नहीं है ॥ ३६ ॥ मृत, भविष्यत्, वर्तमान में जो कुछ भी है, वह आपके बिना कुछ भी नहीं है ॥३७॥ अपने गुणों के द्वारा देवता भी आपका यश गाते

हैं । हे प्रभो ! आप ही ऋक्, यजु' और साम स्वरूप हैं ॥ ३८ ॥ हे देव ! हे विष्णो ! हे माधव ! हे केशव ! अब मैं अधिक क्या कहूँ ? हे भूत भावन ! मैं जो कुछ भी कह कर पुकारूँ वह सभी कुछ आप हैं ॥३९॥ इसलिये हे सर्वात्मन् ! मेरा आपको नमस्कार है । हे पुष्करनाभ ! हे ईश्वर ! मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥४०॥

## ॥ श्रीकृष्ण का बदरिकाश्रम लौटना ॥

ततः स भगवान् रुद्रः सर्वान्विस्मापयन्निव ।  
 स्तुत्या प्रचक्रमे स्तोतुं विष्णुं विश्वेश्वरं हरिम् ।  
 अर्थ्याभिस्तु तदा वाग्भिर्मुनीनां शृण्वतां तथा ॥१॥  
 नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमते ।  
 यस्य भासा जगत्सर्वं भासते नित्यमच्युत ॥२॥  
 नमो भगवते देव नित्यं सूर्यात्मने नमः ।  
 यः शीतयति शीतांशुर्लोकांस्सर्वानिमान्विभुः ॥३॥  
 नमस्ते विष्णवे देव नित्यं सोमात्मने नमः ।  
 यः प्रजाः प्रीणयत्येको विश्वात्मा भूतभावनः ॥४॥  
 नमः सर्वात्मने देव नमो घाघ्वात्मने हरे ।  
 यो दधार करेणासौ कुशचीरादि यत्सदा ॥५॥  
 दधार वेदान्सर्वाश्च तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः ।  
 सर्वान्तिंहरते यस्तु सहारे विश्वदृक्सदा ॥६॥  
 क्रोघ्रात्माऽसि विरूपोऽसि तुभ्यं रुद्रात्मने नमः ।  
 सृष्टी स्रष्टा समस्तानां प्राणिनां प्राणदायिने ॥७॥  
 अजाय विष्णवे तुभ्यं स्रष्ट्रे विश्वसृजे नमः ।  
 आदौ प्रकृतिमूलाय भूतानां प्रभवाय च ॥८॥

बंशभायनजी ने कहा—हे राजन् ! तदनन्तर भगवान् सर्व  
 के सामने ही वेदार्थमयी वाणी में उन जगदीश्वर विष्णु की गुण



जिसे सुनते हुए मुनियों को अत्यंत विस्मय हुआ ॥१॥ भगवान् महेश्वर ने कहा—हे वासुदेव ! जिन सूर्य की किरणों से यह जगत् प्रकाशमान है, आप उन्ही सूर्य के स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । जो अपनी शीतल किरणों से सुख-शान्ति प्रदान करते हैं आप उन चन्द्र स्वरूप को नमस्कार है । जो विश्वात्मा सब को जीवन प्रदान करते हैं, आप वह वायु रूप हैं, इसलिये हे वाय्वात्मन् ! आपको नमस्कार है । जो ब्रह्माजी अपने शरीर में कुशादि धारण करते हैं तथा जो वेदों के भी धारक हैं, आप वही ब्रह्मात्मा को नमस्कार है । जो क्रोधात्मा रुद्र देव प्रलयकाल में विश्व का लय करते हैं, आप उन रुद्रात्मा को नमस्कार है । जो अजन्मा त्रिष्णु सृष्टि को रच कर प्राणियों को प्राण देते हैं, उन आप सृष्टिकर्ता को नमस्कार है । आपने ही सर्व प्रथम प्रकृति के अवलम्ब से सृष्टि उत्पन्न की है, इसलिये आप सर्व प्रधान को नमस्कार है ॥६-८॥

नमस्ते देवदेवेश प्रधानाय नमो नमः ।

पृथिव्या गन्धरूपेण संस्थितः प्राणिना हरे ॥६

दृढाय दृढरूपाय तुभ्यं गन्धात्मने नमः ।

अपां रसाय सर्वत्र प्राणिना सुखहेतवे ॥७

नमस्ते विश्वरूपाय रसाय च नमो नमः ।

तेजसा भास्करो यस्तु घृणो जन्तुहितः सदा ॥११

तस्मै देव जगन्नाय नमो भास्कररूपिणे ।

वायोः स्पर्शगुणो यत्र शीतोष्णमुखदुःखदः ॥१२

नमस्ते वायुरूपाय नमः स्पर्शात्मने हरे ।

आकाशोऽवस्थितः शब्दः सर्वत्रोन्ननिवेशनः ॥१३

नमस्ते भगवन्विष्णो तुभ्यं शक्तात्मने नमः ।

यो दधार जगत्सर्वं मायामानुपदेहवान् ॥१४

नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मायिनेऽमायदायिने ।

नमः आकाशाय शीतोष्णय त्रिगुणाय गणात्मने ॥१५

आप ही पृथिवी पर गंध रूप से विद्यमान हैं, अतः ! हे गघात्मन् आपको नमस्कार है । आप सब प्राणियों के सुख के लिये रस रूप होते हैं, इसलिये हे रसात्मन् ! आपको प्रणाम है । आप सदा प्राणियों का हित करते हुए अपने तेज से सब कुछ प्रकाशित करते रहते हैं, इसलिये हे भास्कर रूप ! आपको नमस्कार है ॥६-११॥ वायु में शीत, उष्ण, सुख-दुःख आदि का अनुमान कराने वाला जो स्पर्श गुण है, आप ही उससे सम्पन्न हैं, इसलिये हे स्पर्शात्मन् ! आपको नमस्कार है । आकाश का गुण शब्द पृथिवी के सब प्राणियों के श्रोत्र पर रहता है, और आप ही वह शब्द रूप हैं, इसलिये आप शब्दात्मा को नमस्कार है । जिन माया मय देव ने माया मानव रूप से, इस विश्व को धारण किया हुआ है, वे आप ही हैं, अतः हे मायाविन् ! आपको नमस्कार है । हे जगन्नाथ ! हे आदिवीज ! हे निर्गुण ! हे गुणात्मन् ! आपको नमस्कार है ॥१२-१५॥

अचिन्त्याय सुचिन्त्याय तस्मै चिन्त्यात्मने नमः ।

हराय हरिरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्माद्याग्निने ॥१६

नमो ब्रह्माविदे तुभ्यं ब्रह्मब्रह्मात्मने नमः ।

नमः सहस्रशिरसे सहस्रकिरणाय च ॥१७

नमः सहस्रवक्त्राय सहस्रनयनाय च ।

विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्त्रे नमो नमः ॥१८

विश्ववक्त्र नमो नित्यं भूतावास नमो नमः ।

इन्द्रियायेन्द्ररूपाय विषयाय सदा हरे ॥१९

नमोऽश्वशिरसे तुभ्यं वेदाभरणरूपिणे ।

अग्नयेऽग्निपुत्रे तुभ्यं ज्योतिषां पतये उमः ॥२०

सूर्याय सूर्यपुत्राय तेजसां पतये नमः ।

नमः सोमाय सौम्याय नमः शीतात्मने हरे ॥२१

हे विष्णो ! आप अचिन्त्य, सुचिन्त्य, चिन्त्यात्मा, शिव, हरि; ब्रह्मा, ब्रह्मपदात्ता, ब्रह्मज्ञानी, सहस्रशिर, सहस्रकिरण, ब्रह्म और ब्रह्मात्मा हैं, आपको

नमस्कार है ॥१६-१७॥ हे सहस्रमुख ! हे सहस्रनेत्र ! हे विश्व ! हे विश्व-  
रूप ! हे विश्वकर्त्तार ! आपको नमस्कार है ॥१८॥ आप विश्ववक्त्र, भूतवास,  
इन्द्रिय एव विषय रूप हैं । हे हरे ! आपको नमस्कार है ॥१९॥ आप अपवशिर,  
वेदाभरण, अग्नि, अग्नि-पति, ज्योतिष-पति, सूर्य, सूर्यतनय, तेजो के स्वामी,  
सोम तथा सौम्य हैं । हे शीतात्मन् ! हे हरे ! आपको नमस्कार है ॥२०-२१॥

नमो यज्ञाय इज्याय हविषे हव्यसंस्कृते ।

नमः स्रुवाय पात्राय यज्ञाङ्गाय पराय च ॥२२

नमः प्रणवदेहाय क्षरायाप्यक्षराय च ।

वेदाय वेदरूपाय शस्त्रिणे शस्त्ररूपिणे ॥२३

गदिने खड्गिने तुभ्यं शस्त्रिणे चक्रिणे नमः ।

शूलिने चर्मिणे नित्यं वरदाय नमो नमः ॥२४

बुधप्रियाय बुद्धाय प्रबुद्धाय सुखाय च ।

हरये विष्णवे तुभ्यं नतः सर्वात्मने गुरो ॥२५

नमस्ते सर्वलोकेश सर्वकाले नमो नमः ।

नमः स्वभावशुद्धाय नमस्ते यज्ञसूकर ॥२६

नमो विष्णो नमो विष्णो नमो विष्णो नमो हरे ।

नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते ॥२७

नमः कृष्णाय कृष्णाय सर्वावास नमो नमः ।

नमो भूयो नमस्तेऽस्तु पाहि लोकाञ्जनार्दन ॥२८

आप ही यज्ञ, इज्य, हवि, हव्य संस्कृत, स्रुव, यज्ञाङ्ग, पर, प्रणव-शरीर,  
क्षर, अक्षर, वेद, वेदमूर्ति और शस्त्र स्वरूप हैं ॥२२-२३॥ आप ही गदा-खण्ड,  
शंख-चक्र के धारण करने वाले, शूल-चर्म से युक्त तथा वर-प्रदायक हैं । आपको  
नमस्कार है ॥२४॥ आप ही ज्ञानप्रिय, बुद्ध, प्रबुद्ध, सुख, हरि, विष्णु, गुरु  
और सर्वात्मा हैं, आपको नमस्कार है ॥२५॥ हे सर्वलोकेश्वर ! आप सर्वकर्त्ता,  
शुद्धस्वभाव हैं आपको नमस्कार है ॥२६॥ हे विष्णो ! हे विष्णो ! हे हरे ! हे  
धीमत्त ! धी वासुदेव ! आपको नमस्कार है ॥२७॥ हे कृष्ण ! हे सर्ववास

श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार है । हे जनादंन ! आप सब प्रकार से सब भूतों की रक्षा कीजिये, आपको बारंबार नमस्कार है ॥२८॥

इति स्तुत्वा जगन्नाथमुवाच मुनिसत्तमान् ।  
 इमं स्तोत्रमधीयाना नित्यं व्रजत केशवम् ॥२८  
 शरण्यां सर्वभूतानां तत्र श्रेयो विधास्यति ।  
 ये चेमं धारयिष्यन्ति स्तवं पापविमोचनम् ॥३०  
 तेषां प्रीतः प्रसन्नात्मा पठतां शृण्वतां हरिः ।  
 श्रेयो दास्यति धर्मात्मा नात्र कार्या विचारणा ॥३१  
 अवश्यं मनसा ध्यात केशवं भक्तवत्सलम् ।  
 श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छन्ति भवन्तः शंसितव्रताः ॥३२  
 इत्युक्त्वा भगवान् द्रुस्तत्रैवान्तरधीयत ।  
 सगणः शंकरः साक्षादुभया भूतभावनः ॥३३  
 नेमुस्तं मुनयः सर्वे परां निर्वृतिमाययुः ।  
 तमेव परमं तत्त्वं मत्वा नारायणं हरिम् ।  
 विस्मयं परमं गत्वा मेनिरे स्वकृतार्थताम् ॥३४  
 लोकपालास्तदा विष्णुं नमस्कृत्य हरिं तदा ।  
 जग्मुः स्वान्यथ वेश्मानि गणैः सर्वैर्नृपोत्तम ॥३५  
 आरुह्य भगवान्विष्णुगुरुडं पक्षिपुंगवम् ।  
 शंखी चक्री गंदो खंगी शांगी तूणी तनुलवान् ॥३६  
 यथागतं जगन्नाथो ययौ बदरिकामनु ।  
 सायाह्ने पुण्डरीकाक्षो नित्यं मुनिनिपेविताम् ॥३७  
 तत्र गत्वा यथायोग विनम्य हरिरीश्वरः ।  
 धांचितो मुनिभिः सर्वैर्निपसाद सुखासने ॥३८

• भूतभावन भगवान् शंकर जगदीश्वर विष्णु की इस प्रकार स्तुति करके मुनिजनों से बोले—हे मुनिगण ! आप इस स्तोत्र का नित्य प्रति पाठ करते हुए, भगवान् विष्णु की शरण को प्राप्त हो ॥२८॥ इससे शरणागतों की रक्षा

करने वाले भगवान् आप सब की रक्षा में तत्पर होंगे और जो इस पाप विमोचन स्तोत्र हृदय में धारण करेंगे या पढ़ेंगे-मुनेंगे उनका निस्सदेह सब प्रकार से मंगल होगा ॥३०-३१॥ हे मुनिगण ! यदि आप अपनी कल्याण-कामना करते हैं तो भगवान् विष्णु को प्रसन्न करो ॥३२॥ यह कह कर अपने गणों तथा पार्वतीजी के सहित भगवान् शंकर उसी समय अंतर्धान होगये ॥३३॥ फिर उन मुनियों ने भगवान् कृष्ण को ही परमत्व मानकर उन्हे प्रणाम किया तथा हरि-हर को इस लीला को देखकर वे अत्यंत विस्मित हुए ॥३४॥ हे राजन् ! इसके पश्चात् लोकेपाल भी भगवान् को प्रणाम कर अपने अनुचरों के सहित स्वधाम को गये ॥३५॥ तब शख, चक्र, गदा, धनुष, तरकस और कवच धारी भगवान् कृष्ण गरुड पर आरूढ होकर मुनिजनों द्वारा सेवित बदरी वन में आगये और गरुड से उतर कर वहाँ सुख से विराजमान हुए, उस समय सब ओर से एकत्रित हुए मुनिगण उनका पूजन करने लगे ॥३६॥

## ॥ पौण्ड्रक के दर्पपूर्ण वचन ॥

एतस्मिन्नेव काले तु पौण्ड्री नृपवरोत्तमः ।  
 बलवान्सत्त्वसंपन्नो योद्धा विपुलविक्रमः ॥१  
 वृष्णिशत्रुस्तदा राजा कृष्णद्वेषी बलात्तदा ।  
 नृपान्सर्वान्सिमाहूय प्रोवाच नृपसंसदि ॥२  
 जिता च पृथिवी सर्वा जिताश्च नृपसत्तमाः ।  
 वृष्णयस्ते बलोन्मत्ता. कृष्णामाश्रित्य गर्विताः ॥३  
 दास्यन्ति मे करं सर्वे न हि ते वृष्णसंश्रयात् ।  
 स तु कृष्णश्चक्रप्रदान्मामवज्ञाय तिष्ठति ॥४  
 अहं चकीति गर्वोऽभूत्तस्य गोपस्य सर्वदा ।  
 शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी शरी तूणी सहायवान् ॥५  
 एवमादिमंहागर्वस्तस्य सप्रति वत्तंते ।  
 लोके च मम यन्नाम वासुदेवेति विश्रुतम् ॥६  
 अगृह्णन्मम तन्नाम गोपे गच्छन्ममिदम् ।

तस्य चक्रस्य यच्चक्रं ममापि निशितं महत् ॥७  
 गवं हन्तुं सदा तस्य नाम्ना चापि सुदर्शनम् ।  
 सहस्रारं महाघोरं तस्य चक्रस्य नाशनम् ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इन्ही दिनों राजाओ मे अत्यंत बलशाली, धीर्यशाली पौण्ड्रक यादवो सहित भगवान् श्रीकृष्ण का बैरी बन गया और एक दिन उसने अनेक राजाओं को अपनी सभा में बुला कर उनसे कहा— हे राजागण ! मैंने इस सम्पूर्ण पृथिवी पर विजय प्राप्त करली है और प्रायः सब राजा मेरे आधीन हो चुके हैं । केवल यादव ही ऐसे हैं जो कृष्ण की सहायता के कारण गवित हो रहे हैं ॥१-३॥ उनके अतिरिक्त अन्य सभी राजा मुझे कर देते हुए, मेरा सम्मान करते हैं, परन्तु कृष्ण ही अपने चक्र के अभिमान में मदमत्त होकर मेरा तिरस्कार करता है ॥४॥ वह समझता है कि मैं शस्त्र, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धारी हूँ, मेरे समान बाण-तूणीर धारी और संगठनकर्त्ता अन्य कोई नहीं है ॥५॥ इस प्रकार वह इतना मदान्ध होगया है कि उस गोपपुत्र ने मेरे नाम वासुदेव को ही स्वयं रख लिया है । परन्तु उसे यह विदित नहीं है कि मेरा हजार धार का चक्र उसके चक्र से अधिक तीक्ष्ण है । मैं अपने इसी चक्र से उस छत्रवेशी वासुदेव के चक्र का अहंकार नष्ट कर डालूँगा ॥६-८॥

क्षणेकमहतं चक्रं गोपजस्य नृपोत्तमाः ।  
 ममाप्येतद्वनुदिव्यं शार्ङ्गं नाम महारवम् ॥९  
 गदा कौमोदकी नाम ममेयं बृहती दृढा ।  
 कालायससहस्रस्य भारेण मुकृता मया ॥१०  
 पंगो नन्दकनामाऽसौ ममायं विपुलो दृढः ।  
 अन्तकस्यान्तको घोरस्तस्य पंगस्य नाशकः ॥११  
 तस्मायं च गदी पंगी शंखी चक्री तनुत्रवान् ।  
 युधि जेता च कृष्णस्य नात्र कार्या विचारणा ॥१२  
 मां संव्रूत नृपाश्चैव गदिनं चक्रिणं तथा ।  
 शंपिनं शार्ङ्गिण वीरं ध्रुत नित्यं नृपोत्तमाः ॥१३

वासुदेवेति मां ब्रूत न तु गोपं यदूत्तमम् ।  
 एकोऽहं वासुदेशो हि हत्वा तं गोपदारकम् ॥१४  
 सद्युर्मम वलाद्धन्ता नरकस्य महात्मनः ।  
 मां तथा यदि न ब्रूत दण्डचा भारशतैः शतम् ॥१५  
 सुवर्णस्य च तिष्कस्य ग्रहीष्ये बहुशस्तदा ।  
 तथा ब्रूवति राजेन्द्रे मनसा दुःसह यथा ॥१६  
 केचिल्लज्जासमायुक्ता आसंस्ते बलवत्ताराः ।  
 रसज्ञा बलवीर्यस्य राजानस्ते सदा नृप ॥१७  
 धपरे तु नृपा राजन्नेवमेवेति चुक्रुशुः ।  
 अन्ये बलमदोत्सवता जेष्यामः केशव रणे ॥१८

हे राजाओ ! मेरे पास भी शाङ्ग नामक घोर टकोर वाला यह भीषण धनुष तथा कौमोदकी नाम वाली अत्यन्त सुदृढ तथा हजार भार की लौहमयी गदा विद्यमान है । १-१०॥ मैं भी नन्दक नाम का अत्यन्त तीक्ष्ण खंग सदैव अपने पास रखता हूँ । मेरा यह खंग काल का भी काल और कृष्ण के खंग को काट देने में पूर्ण रूपेण समर्थ है ॥११॥ इस प्रकार मैं भी शल, चक्र, गदा, शङ्ग और शाङ्ग धनुष का धारण करने वाला हूँ, इसलिये उस कृष्ण का युद्ध में अवश्य ही वध कर डालूँगा ॥१२॥ हे राजागण ! अब से आप सभी मुझे शल-चक्र-गदा धारी भगवान् वासुदेव कहाँ करें, परंतु इस बात को भी न भूले कि मैं यदुवशी खाला नहीं हूँ । इस जगत में अकेला वासुदेव मैं ही हूँ और उस गोव बालक को मैं ही मारूँगा ॥१४॥ मेरे प्रिय मित्र नरकासुर का उसी ने वध किया था । यदि आप मेरी आज्ञा के अनुसार मुझे वासुदेव न कहेंगे तो मैं स्वर्ण, मुद्रा और अन्नादि वस्तुओं का आपको दण्ड दूँगा । हे राजन् ! पीण्डक की इस असंगत बात को सुनकर भगवान् कृष्ण के पराक्रम को जानने वाले राजा लज्जा से झुक गये ॥१५-१७॥ तथा अन्य राजाओं ने 'ऐसा ही होगा' कहा और कुछ मदीन्मत राजा तो युद्ध में कृष्ण को मारेंगे—कहते हुए पीलाहल करने लगे ॥१८॥

## ॥ पौण्ड्रक नारद संवाद ॥

ततः कैलासशिखरान्निगंतो मुनिसत्तमः ।  
 नारदः सर्वलोकज्ञः पौण्ड्रस्य नगरं प्रति ॥१  
 अवतीर्य नभोभागात्प्रत्यागम्य नरोत्तमम् ।  
 द्वारस्थेन च समाज्ञप्तः प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥२  
 अर्धादिसमुदाचारं नृपाल्लब्ध्वा महामुनिः ।  
 निपसादासने शुभ्रे ह्यास्तृते शुभवाससा ॥३  
 कुशलं पृष्ट्वान्भूयो नृपः स मुनिसत्तमम् ।  
 उवाच नारदं भूयः पौण्ड्रको बलर्गवितः ॥४  
 भवान्सर्वज्ञ कुशलः सर्वकार्येषु पण्डितः ।  
 प्रथितो देवसिद्धेषु गन्धर्वेषु महात्मसु ॥५  
 सर्वत्रगो निराबाधो गत्वा सर्वत्र सर्वदा ।  
 अगम्यं तव विप्रेन्द्र ब्रह्माण्डे न हि किञ्चन ॥६  
 नारदेदं वद त्व हि यत्न यत्न गतो भवान् ।  
 तत्र तत्र तपः सिद्धो लोके प्रथितवीर्यवान् ।  
 पौण्ड्र एव च विख्यातो वासुदेवेति शब्दितः ॥७  
 शंगी चक्री गदी शांगी खंगी तूणी तनुत्तवान् ।  
 विजेता राजसिंहानां दाता सर्वस्य सर्वदा ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा — हे राजन् ! उसी अवसर पर देवर्षि नारदजी ने कैलास पर्वत से चल कर राजा पौण्ड्र के नगर की ओर प्रस्थान किया और वहाँ जाकर द्वारपाल के द्वारा राजसभा में पहुँच गये ॥१-२॥ राजा ने उन्हें देन वर सुरन्त ही अर्घ्य-पात्र आदि प्रदान किया और तब ये देवर्षि राजा द्वारा प्रदत्त एक उज्ज्वल आसन पर बैठ गये ॥३॥ तदनन्तर पौण्ड्रक ने मुनिद्येष्ठ नारदजी से कुशल प्रश्न के पश्चात् इस प्रकार कहा— हे भगवन् ! आप सभी कार्यों के शाता हैं तथा सब देवता, सिद्ध, गंधर्व और महारमा आदि में आप प्रतिष्ठित हैं ॥४-५॥ आपकी सर्वत्र अवाप गति है, ब्रह्माण्ड में कहीं भी जाने में आप नहीं



रुक सकते ॥३॥ इसलिये, आप यह बताने की कृपा करिये कि आपका जहाँ-जहाँ जाना हुआ है, वहाँ-वहाँ मैं तपसिद्ध और लोक प्रतिष्ठित वासुदेव के रूप में प्रसिद्ध हूँ अथवा नहीं ? ॥७॥ मैं शख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनु, तूणीर और कवच धारण करने, भूतल के सब राजाओं को हराने और प्रचुर दान देने वाला हूँ ॥८॥

भोक्ता राज्यस्य सर्वस्य शास्ता राजा बलाहली ।  
 अजेयः शत्रुसैन्यानां रक्षिता स्वजनस्य ह ॥८॥  
 योऽद्य गोपकनामाऽसौ वासुदेवेति शब्दितः ।  
 तस्य वीर्यवले न स्तो नाम्नोऽस्य मम धारणे ॥९॥  
 स हि गोपो वृथा बाल्यादारयत्येव नाम मे ।  
 इद निश्चिनु विप्रेन्द्र एक एव भवाम्यहम् ॥११॥  
 वासुदेवो जगत्यस्मिन्निर्जित्य बलिनं यदुम् ।  
 वृष्णीन्सर्वान्बलात्क्षिप्त्वा निहनिष्ये च ता पुरीम् ॥१२॥  
 द्वारका विष्णुनिलया योद्धा चाहं महामते ।  
 एते च बलिनः सर्वे नृपा मम समागताः ॥१३॥  
 अश्वाश्च वेगिनः सन्ति रथा वायुजवा मम ।  
 नानामन्त्रा. सहस्रं च गजा नियुतमेव च ॥१४॥  
 एतेनाहं बलेनाजी हनिष्ये केशव रणे ।  
 तस्मादेव सदा विप्र वद ब्रह्मन्पुरे मम ॥१५॥  
 इन्द्रस्यापि सदा विप्र वद नारद साम्प्रतम् ।  
 प्रार्थनं पा मम विभो नमस्ये त्वां तपोधन ॥१६॥

मैं सभी राज्यों का भोक्ता, शासक और महाबली राजा हूँ । अपने जनो का रक्षक तथा शत्रुओं के लिये अजेय हूँ ॥८॥ वह बल-वीर्य-हीन म्वाला वृष्ण मेरे नाम की मिथ्या रूप से धारण करता हुआ अपने को वासुदेव कहता है ॥१०॥ उसने अपने छिद्रोत्पेन से ही मेरा यह नाम ग्रहण कर लिया है, परन्तु मपर्यं रूप में तो मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी वासुदेव इस लोक में नहीं

है ॥११॥ इसलिये मैं अपने महान् पराक्रम से सब यादवों को परास्त और  
 द्वारका को ध्वस्त कर डालूँगा ॥१२॥ हे महामते ! यह सम्पूर्ण राजागण यहाँ  
 इसी कार्य में एकत्र हुए हैं ॥१३॥ फिर मेरे पास भी अत्यन्त वेगवान् असह्य  
 अश्व, वायु के समान प्रचंड गति वाले रथ, एक सहस्र ऊँट और दस सहस्र  
 मत्त गजराज सदा तैयार रहते हैं ॥१४॥ अपनी इस विशाल सेना के बल से  
 उस छद्मवेशी वामुदेव को मैं शीघ्र ही युद्ध में पछाड़ दूँगा । इसलिये हे ब्रह्मन् !  
 आप मेरे इस विचार मेरे नगरवासियों और स्वर्ग में रहने वालों को शीघ्र ही  
 अवगत कराने की कृपा करें । अच्छा अब आपको मेरा नमस्कार है ॥१५-१६॥

सर्वत्रगः सदा चास्मि यावद्ब्रह्माण्डसंस्थितिः ।  
 आचार्यः सर्वकार्येषु गमने केनचिन्नृप ॥१७  
 किन्तु वक्तुं तथा राजन्नुत्सहे नृपसत्तम ॥  
 मही शासति देवेशे चक्रपाणी जनार्दने ॥१८  
 विष्णो सर्वत्रगे देवे दुष्टान्हुत्वा सबान्धवान् ।  
 वामुदेवेति को नाम तिष्ठत्यस्मिन्हराविति ॥१९  
 को नाम वक्तुमेवेदं कृष्णे शासति गोमती ।  
 अज्ञानाद्वक्तुमेव च समर्था प्राकृता जनाः ॥२०  
 हरिः सर्वसगो विष्णुर्दुर्षं ते व्यपनेष्यति ।  
 अचिन्त्यविभवो विष्णुः शांगंधन्वा गदाधरः ॥२१  
 आदिदेवः पुराणात्मा दुर्षं ते व्यपनेष्यति ।  
 हास्यमेतन्महाराज यच्च वै तत्र संस्थितम् ॥२२  
 शांगं खंगं तथा राजन्महाधोरं न दाप्यते ।  
 अतीव हासकालोऽयं तव सम्प्रति वर्तते ॥२३

नारदजी ने कहा—हे राजन् ! मैं इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में घूमण कर  
 ॥१७॥ मैं यहाँ भी किसी कार्य के लिये जाने में मुझे बाधा नहीं होती  
 ॥१७॥ मछलि कहना नहीं चाहता, फिर भी कहता हूँ, कि जब स्वर्ग चक्रपाणि  
 जनार्दन दस पृथिवी का पालन कर रहे हैं, तब अग्य कौन पुरुष वामुदेव नाम को

धारण कर उनके समाप्त हो सकता है ? ॥१८ १६॥ उन भगवान् के शासन में ऐसा करने का साहस केवल प्रमाद अथवा अज्ञान के कारण ही किया जा सकता है ॥२०॥ वे भगवान् महान् पराक्रमी शार्ङ्गधनु और गदाधारी, आदि देव पुराणात्मा हैं । तुम्हारे इस अहंकार को वे ही नष्ट करेंगे । तुम्हारे पास भी शार्ङ्गधनु और खग आदि हैं, परन्तु उनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के आगुथो का सामना नहीं किया जा सकेगा । मैं तो समझता हूँ कि तुम अपना परिहास कराना चाहते हो ॥२१ २३॥

### ॥ पौण्ड्रक का द्वारका पर आक्रमण ॥

तत क्रुद्धो महाराज पौड्रो मदबलान्वित ।  
 नारद विप्रवर्यं त प्रोवाच नृपससदि ॥१  
 किमिदं प्राह विप्रर्षे राजाऽहं च द्विजं सह ।  
 गच्छ त्व काममथ वा मुने शापप्रद सदा ॥२  
 भीतस्त्वत्तो महाबुद्ध गच्छ त्व काममद्य हि ।  
 इत्युक्तो नृपवर्येण तूष्णीमेव स नारद ॥३  
 जगामाकाशगमनो यत्न तिष्ठति केशव ।  
 स गत्वा विष्णुसकाश विष्णो सर्वं शशस ह ॥४  
 तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुर्ग्रथेष्ट वदतामिति ।  
 दर्पं तस्यापनेष्यामि श्वोभूते द्विजसत्ताम ॥५  
 इत्युक्त्वा विररामैव तस्मिन्वदरिवाश्रमे ।  
 तत पौण्ड्रो महाबाहुर्वैश्वंभुभिरीश्वर ॥६  
 अश्वैरनेकसाहस्रैर्गजैर्बहुभिरन्वित ।  
 शस्त्रकोटिसमायुक्त स राजा सत्यसगर ॥७  
 अनेकशतसाहस्रं पत्तिभिश्च समन्वितः ।  
 एव लब्धप्रमृतिभी राजभिश्च समन्ता ॥८

यंज्ञम्पायन जी ने कहा—हैं राजन् । देवपि नारदजी के वचनों से क्रुद्ध

हुए बल के मद में मत्त पौण्ड्र ने कहा—हे देवर्षि ! आप क्या कहते हैं ? आप विप्र हैं और मैं राजा हूँ । परन्तु आप शाप न दे दें, इसी से कुछ भय है । अच्छा, अब आप यहाँ से चले जाने की कृपा करें । पौण्ड्र की बात सुन कर नारदजी तुरन्त ही आकाश मार्ग से बदरीवन के लिये चल दिये और वहाँ पहुँच कर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को पौण्ड्र के अभिप्राय से पूर्ण प्रकारेण अवगत किया ॥१-४॥ जिसे सुन कर श्रीकृष्ण ने कहा—हे देवर्षि ! मैं उसके अहंकार को कल नष्ट करूँगा ॥५॥ यह कह कर भगवान् मोम होगये । उधर युद्ध की प्रतिज्ञा किये हुए राजा पौण्ड्र ने असह्य गजराज, अश्व, रथ एवं हजारों पदाती सेना के सहित अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से अपने को सुसज्जित किया । उसके साथ एकलव्य आदि बहुत-से राजा भी तैयार होकर निकले ॥६-८॥

अष्टौ रथसहस्राणि नागानामयुतं तथा ।  
 अर्जुनं पत्तिसङ्घानां तद्वल समपद्यत ॥६  
 एतेन च बलेनाजौ प्रस्फुरन्नुपसत्तमः ।  
 विरराज महाराज उदयस्थो महारविः ॥१०  
 स ययौ मध्यरात्रेण नगरी द्वारकामनु ।  
 पत्न्यो दीपकाहस्ता रात्रौ तमसि दारुणे ॥११  
 ययुर्विविधशस्त्रीघा संपतन्तो महाबलाः ।  
 द्वारका वीर्यसम्पन्ना महाघोरां नृपोत्तमाः ॥१२  
 रथं महान्तमारुह्य शस्त्रौघैरथ समावृतम् ।  
 पट्टिशासिसमाकीर्णं गदापरिघसङ्कुलम् ॥१३  
 शकिततोमरसंकीर्णं ध्वजमालासमाचितम् ।  
 किङ्किणीजालमयुक्तं शरसिप्रामसंयुतम् ॥१४  
 महाघोरं महागोदं युगान्तजलदोषमम् ।  
 धनुर्गदासमाकीर्णं महाबाहोषमं महत् ॥१५

उस प्रयाण में आठ हजार रथ, दस हजार गज और अर्जुन संख्या में सती रात्र गये ॥६॥ रात्रा पौण्ड्र इन सब सेनाओं से घिर कर उदय बाल के

भास्कर के समान सुशोभित हुआ ॥१०॥ फिर आधीरात के समय वह द्वारका पर चढ़ चला । उस समय सर्वत्र रात्रि का घोर अघकार छाया हुआ था, इसलिये सेना मशाल लेकर चल रही थी ॥११॥ वह सेना अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सजी हुई अत्यंत भयकर प्रतीत होरही थी । वह सेना वेग से द्वारका की ओर अग्रसर हुई ॥१२॥ थ्रेण्ड रथों पर रथी चढ़े हुए थे और उनके साथ पट्टिसा, तलवार, गदा, परिध, शक्ति, तोमर आदि शस्त्रास्त्र उन रथों पर रखे थे, ध्वजा-पताकायें सब ओर उड़ रही थी और उनमें लटकी हुई घंटियों से शब्द निकल रहा था ॥१३-१४॥ उस अमल्य सेना को देख कर प्रतीत होता था कि आकाश में प्रलय कालीन बादल छा गये हों । सैनिकों के शस्त्रास्त्र उस समय एक विशाल बाजे जैसे दिखाने दे रहे थे ॥१५॥

अग्न्यर्कसदृशाकारं ययौ द्वारवतीमनु ।

गृहीतशीपिको राजा वीर्यवान्वलवान् नृप ॥१६

हन्तुमैच्छज्जगन्नाथ वृष्णीश्चैव समन्ततः ।

आकर्षन्वलमुहर्षास्तानुराजः सर्वान्महाद्युतिः ॥१७

पुरद्वारं समासाद्य बलं सस्थाप्य यत्नतः ।

इदं प्रोवाच राजा तु नृपान्सर्वानिवस्थितान् ॥१८

ताड्यतामत्र भेरी तु नाम विश्राव्य मामकम् ।

युध्यतां युध्यतामन्न देयं वा प्रतिदीयताम् ॥१९

आगतः पौण्ड्रको राजा युद्धार्थी वीरवत्तरः ।

हन्तुकामः समग्रान्वः कृष्णवाहुबलाश्रयान् ॥२०

हे राजन् ! उस समय सब ओर आग घपकती हुई और मूर्खोदय होता हुआ प्रतीत हुआ । महाबली राजा पौण्ड्र भी भगवान् श्रीकृष्ण और समस्त यदुवंशियों का संहार करने की अभिनाया से हाथ में प्रज्ज्वलित मशाल लेकर द्वारका की ओर आगे-आगे बढ़ रहा था । उसके पीछे पीछे अनुयायी राजाओं की विनाल सेनाएँ चल रहीं थीं ॥१६-१७॥ द्वारका पुरी के द्वार पर जाकर पौण्ड्र ने सिंहरों की स्थापना की और फिर वहाँ उपस्थित सब राजाओं से

कहा—हे राजाओ ! अब आप मेरे नाम से भेरी बजवा कर यह घोषणा करा दीजिये कि महाबली महाराज पौण्ड्र कृष्ण के बल-भरोसे पर रहने वाले द्वारका निवासियों के विष्वमार्थ यहाँ आये हैं ॥१८-१६-२०॥

इति ते प्रे पिताः सर्वे समीयुः सूचकान्ब्रह्मन् ।

दोषिकाश्च प्रदीप्यते बह्व्यः शतसहसहस्रशः ॥२१

इतश्चेतश्च राजानो युध्यन्ते युद्धलालसाः ।

पुरी ते पुरतस्तत्र क्षत्रियाः शस्त्रिणस्तथा ॥२२

सिंहनादं प्रकुर्वन्तः शस्त्रधारासमाकुलाः ।

कुतोऽयं वृष्णिप्रवरः कुतो राजा जगत्पतिः ॥२३

कुतोऽयं सात्यकिर्वीरः कुनो हार्दिक्य एव च ।

कुतो न बलभद्रश्च सर्वयादवसत्तमः ।

इत्येवं कथयन्तो वै राजानः सर्व एव ते ॥२४

आदाय शस्त्राणि बहूनि सर्वतः शरांश्च चापानि सर्वे ।

युद्धाय सन्नाहनिबद्धशो ययुर्हरेः पुरी द्वारवती नृपोत्तमाः ॥२५

इसलिये अब तुम लोग राज्य का परित्याग करो अथवा युद्ध के लिये सामने आओ । यह सुनते ही उन राजाओ ने सूचना प्रसारित कराने के लिये हजारों मशालें जलवाईं ॥२१॥ तथा वे सब शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर पुरी के द्वार पर सिंहनाद करते हुए पुकार उठे—इस समय वे जगत्पति राजा, धीरे सात्यकि, हार्दिक्य और यादवों में श्रेष्ठ बलरामजी कहाँ हैं ? वे यहाँ आकर हमसे युद्ध करें । यह कह कर वे युद्धावाधी राजागण बोलाहल करते हुए द्वारकापुरी के द्वार पर धूमने लगे ॥२२-२५॥

॥ यादवों द्वारा पौण्ड्रक की सेना का संहार ॥

सतस्य यादवाः सर्वे दृष्ट्वा सैनिकसंचयम् ।

राशौ च व्यसनं प्राप्तं महाशस्त्रसमाकुलम् ॥१

महावातसमुद्भूतं कल्पान्ते समरोपमम् ।  
 सन्नद्धा समपद्यन्त शस्त्रिणो युद्धलालसा ॥२  
 गृहीतदीपिका सर्वे यादवा शस्त्रयोधिनः ।  
 सात्यकिर्बलभद्रश्च हार्दिकयो निशठस्तथा ॥३  
 उद्धवोऽथ महाबुद्धिरुग्रसेनो महाबल ।  
 अन्ये च यादवा सर्वे कवचप्रग्रहे रता ॥४  
 समस्तयुद्धकुशला रात्रौ सन्नाहयोधिनः ।  
 शस्त्रिणश्छिन्नशर्चैव सर्वे शस्त्रसमाकुला ॥५  
 युद्धाय समपद्यन्त बहवो बाहुशालिनः ।  
 रथिनो गदिनश्चैव सादिनः सायुधास्तथा ॥६  
 नित्ययुक्ता महात्मानो धन्विनः पुरुषोत्तमा ।  
 नियंयुर्गरात्तूर्णं दीपिकाभिः समन्तत ॥७  
 कुतः पौण्ड्रक इत्येवं वदन्त सर्वसात्वताः ।  
 दीपिकादीपिता देशा निस्तमा समद्यत ॥८

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस आधी रात के समय उस प्रलय कालीन मेघ के समान उमड़ते हुए सैन्य समूह को देख कर यादवों को बड़ा असमजस हुआ । सब ओर दीपक जलने आरंभ हुए और शस्त्राम्त्रों में पारगत यादव घोर क्रुद्ध क्षणों में ही युद्ध के लिये सुसज्जित हो गये । सात्यकि, बलराम, हार्दिक, निशठ, उद्धव तथा अन्यान्य महाबलों और रणकुशल यादव गण बात फी बात में तैयार हो गये । वे सब प्रकार के युद्धों में निपुण यादव विभिन्न प्रकार के आयुधों को लेकर रथ, पैदल, घनुर्धर आदि के सहित मशाल लिये हुए नगर से बाहर आकर 'पौण्ड्र कहां है' ऐसा कहते हुए सब ओर फिरने लगे । उस समय रात्रि का सम्पूर्ण अंधकार मशालों के प्रकाश से नष्ट हो गया ॥१-८॥

ततो वित्तिमिरो देशः समन्तात्पद्यत ।

युद्धं समभवद्धोरं वृष्णिभिः शत्रुभिः सह ॥९

ततो महान्समभवत्सन्नादो रोमहर्षणम् ॥

हया हयैः समायुक्ता गजाश्च गजयुधैः ॥१०

रथा रथै समायुक्ता सादिभि सादिनस्तथा ।  
 खङ्गिन खङ्गिभि साद्धं गदिभिर्गदिनस्तथा ॥११  
 परस्परव्यतीकरो रण आसीत्मुदारुण ।  
 महाप्रलयस क्षोभ शब्दस्तेषा महात्मनाम् ॥१२  
 धावन्त प्रहरन्त्येतान्हन्त्येतान्सर्वतो नृपान् ।  
 अयमेव महाबाहु खङ्गी पतति वीयवान् ॥१३  
 अयमेव शरो घोरो वर्ततेऽतिसुदारुण ।  
 गदी चाय महावीर्यं सर्वानो बाधते नृप ॥१४  
 अय रथी शरी चापी गदी तूणी तनुश्वान् ।  
 यादृश सर्वतो याति कुन्तपाणिरय बली ॥१५  
 अयमत्र महाशूली स श्रित सर्वतो दिशम् ।  
 गजोऽय सविपाणामो वर्तते सर्वत प्रति ॥१६

इसके पदचात् पोण्ड्र के सैनिकों और यादवों में भयंकर युद्ध छिड़ गया ।  
 उस समय वीरों ने भीषण सिंहनाद किया जिससे समस्त दिशाएँ गूँजने लगी ।  
 घोड़े, हाथी रथ, गधे आदि सब अपने अपने समान जोड़ वाले से भिड़ रहे थे ।  
 राक्षस बाण खङ्ग वाले से धनुधर धनुधर से युद्ध करते हुए वीर परस्पर में  
 प्रतीकार करते हुए उत्साहपूर्वक सग्राम में जुटे हुए थे । उनके उस समय के  
 घोर शब्द से ऐसा प्रतीत होना था कि प्रलय काल का घोर निनाद हो रहा है  
 ॥६१२॥ उस समय सुनाई पड़ रहा था कि देखो, वे अत्यन्त वेगपूर्वक क्षपट्टा  
 मारते हुए हम पर प्रहार करते हैं । कोई कहता था कि वह देखो उन राजाओं  
 को वह धोड़ा किस बुरी तरह मारे जान रहा है । अरे, वह सङ्गपारी वीर तो  
 इधर ही बढ़ा चला आ रहा है । उधर देतो, उसकी गदा कितनी भीषण और  
 विनाश है, उसने द्वारा यह हम यहाँ तक पीड़ित कर रहा है । देखो यह रथी,  
 यह बाण धारी वीर यह धनुषपारी किस वेग से घूम रहा है । यह गदा पारण  
 किये, वह तरबरा और बचप से गुमजिगत, यह पट्टिण घट्टण किये तथा यह  
 भाला त्रिप हुण इधर उधर बिचर रहा है । यह देखो, महागूम लेकर यह वीर



सब ओर ताक रहा है, वह विशाल दातो वाला गजराज सब ओर झपट कर प्रहार करता हुआ घूमता है ॥१३ १६॥

अतिसर्वज्ञ शूरो वेगवान्वातसन्निभ ।  
 शराञ्छरं समाहन्ति दण्डान्दण्डंजं गत्वते ॥१७  
 कुन्तान्कुन्तं समाजघ्नुर्गदाभिश्च गदास्तथा ।  
 परिधानपरिधं सार्द्धं शूलञ्छूलं समन्तत ॥१८  
 एव तेषा महाराज कुर्वता रणमुत्तमम् ।  
 संग्राम सुमहानासीच्छब्दस्त्रापि महानभूत् ॥१९  
 भूतानि सुबहून्याजी शब्दवन्ति महान्ति च ।  
 प्रादुरासन्सहस्राणि शङ्खाना भीमनि स्वन ॥२०  
 राक्षो प्रादुरभूच्छब्द स ग्रामे रोमहर्षण ।  
 वर्तमाने महायुद्धे वृष्णीना चैव तं सह ॥२१  
 केचिद्ग्रस्ता समापेतु पृथिव्या पृथिवीक्षित ।  
 केचित्पतितश्लिष्टाश्च विप्रकीर्ण शिरोधरा ॥२२  
 पेतुरुर्व्यां महावीर्या राजान शस्त्रपाणय ।  
 केचित्तु भिन्नवर्माण समापेतु सहस्रधा ॥२३  
 परस्पर समाश्रित्य परस्परवर्धयिषण ।  
 न्यस्तशस्त्रा महात्मान समन्तात्क्षतविग्रहा ॥२४

उस योद्धा को देखो—वह वायु जैसे वेग से सब ओर झपटता हुआ बाण से बाण को काटता और दण्ड से दण्ड को ध्वंस करता है ॥१७॥ वह भाले वाला अपने भाले से उसके भाले को काट रहा है, वह गदा वाला विपक्षी की गदा में गदा भार रहा है परिध से परिध और शूल से शूल काटे जा रहे हैं ॥१८॥ हे राजन् ! इस प्रकार कुशलता पूर्वक युद्ध करते हुए वे वीर भयकर रूप से भिड़ रहे थे और उनके शब्द को ग्राह्य बन कर दिशाओं को युजित कर रहे थे ॥ १६ ॥ उस समय हजारों विहट आकार वाले भूत गण भयकर शब्द करते हुए वहाँ आ उपस्थित हुए । उस भीषण रात्रि काल में युद्ध क्षेत्र में होने वाली

धंख-ध्वनि भयंकर हो उठी ॥ २०-२१ ॥ बहुत-से राजागण उस युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होकर गिर गये । कुछ छिन्न केशो वाले नरेश रण भूमि में घराशायी होकर पहिले से ही पतित हुए धीरों के देह से भिड गये थे । २२॥ कुछ योद्धा शस्त्रों के हाथ में रहते हुए भी पतित होगये और अनेक धीर कवच के विदीर्ण होने से मृत्यु को प्राप्त हुए घरती पर गिर गये ॥२३॥ इस प्रकार उस युद्ध क्षेत्र में एक-दूसरे को मार डालने के लिये उद्यत हुए धीरो के शस्त्र प्रहार से आहत हुए बिना कोई भी नहीं रहा ॥२४ ॥

पेतुर्गतासवः केचिद्यमराष्ट्रविवर्द्धनाः ।  
 एवं ते निहता राजन्योद्यिताः सर्व एव तु ॥२५  
 एतस्मिन्नन्तरे शर एकलव्यो निपादपः ।  
 धनुर्गृह्य महाधोरं कालान्तकयमोपमः ॥२६  
 शरं रनेकसाहस्रं रदं यामाम यादवान् ।  
 परं शतैः शराणां तु निशितं मर्मभेदिभिः ॥२७  
 वृष्णीनां च यत् सर्वं शोययामास सर्वतः ।  
 युद्धघतः शस्त्रपाणीश्च क्षत्रियान्धीर्यवत्तरान् ॥२८  
 निशठं पञ्चविंशत्या शराणां नतपर्वणाम् ।  
 सारणं दशमिर्विध्वा हादिक्यं पञ्चभिः शरैः ॥२९  
 उग्रसेनं नयत्याणु वसुदेव च सप्तभिः ।  
 उद्धव दशमिश्च व ह्यक्रूरं पञ्चभिः शरैः ३०  
 एयमेकं कशः सर्वे निहता निशितैः शरैः ।  
 विद्राव्य यादयो सेनां नाम विश्राव्य धीर्यवान् ॥३१  
 एकलव्यो यदुवृषान्धीर्यवान्प्रलयानहम् ।  
 प्रदानो सात्यकिर्योरः क्व यास्याति महावनः ॥३२  
 मदमतो हनी साक्षात्क्य यातीह गदाधरः ।  
 इत्याह गिहगादेन गिहान्विस्मारयन्निव ॥३३

हे रावण ! दारुण पुरी की श्रीगृहि करने वाले अनेकानेक योद्धागण

उस युद्ध क्षेत्र में काम आगये, वे सभी वीरता पूर्वक लड़ते हुए ही सद्गति को प्राप्त हुए थे ॥ २५ ॥ तभी कालान्तक के समान भयंकर निपादो का अधिपति एकलव्य अपने हाथ में एक भीषण तथा विशाल धनुष ग्रहण करके उस पर अत्यन्त तीक्ष्ण और मर्मभेदी हजारो बाणों के सवान द्वारा यादव सेना के सहार में प्रवृत्त हुआ । उसके प्रहार से सभी शस्त्रास्त्र घारी महाबली क्षत्रिय वीर ब्रह्म हो उठे ॥२६-२८॥ फिर उसने अपने पचवीस झुके हुए पर्व वाले बाणों के प्रहार से निशठ को, दस बाणों के प्रहार से सारण को तथा पाँच बाणों के प्रहार से हादिव्य को वीथ दिया ॥२९॥ फिर नवके बाणों से उपसेन को, सात बाणों से वसुदेव को, दस बाणों से उद्धव को और पाँच बाणों से अक्रूर को आहत कर डाला ॥३०॥ इस प्रकार उसने अपने तीक्ष्ण बाणों की मार से एक-एक कर सभी यादवों को वीथ कर गिरा दिया, जिससे समस्त यादव-सेना भाग खड़ी हुई । फिर उसने सिंहाद करते हुए कहा—मैं एकलव्य सम्पूर्ण यादव वीरों का विजेता हूँ । अब वह महाबली सात्यकि, और मदोन्मत्त गदाधर बलराम मेरे हाथों से कैसे बच सकते हैं ! यह कह कर वह बारबार गर्जना करने लगा, उसकी वह गर्जना सिंहीं को भी भयभीत करने वाली थी ॥३१-३३॥

## ॥ पौण्ड्रक सात्यकि संवाद ॥

निवृत्तोऽप्यथ संन्येषु वृष्णिवीरेषु चैव हि ।  
 भीतेष्वथ महाराज हतेषु युधि सर्वतः ॥१  
 शीपिकामु प्रशान्तासु निःशब्दे सति सर्वतः ।  
 जितमित्येव यन्मत्वा वृष्णीना बलमुत्तमम् ॥२  
 ततः पौण्ड्रो महावीर्यो यथापे सैनिकान्स्वकान् ।  
 शीघ्रं गच्छत राजेन्द्राष्टङ्कैः कुन्तः पुरीमिमाम् ॥३  
 कुठारः कुन्तलश्चैव पापार्णः सर्वतो दिशम् ।  
 कर्पणस्थैः सुपापार्णैः सर्वतो यात भूमिपाः ॥४  
 भिद्यन्तां प्राकारक्षया प्रासादाश्च समन्ततः ।  
 गृह्यन्तां कन्दकाः सर्वा दास्यश्चैव समन्ततः ॥५

गृह्यन्ता वसुमुत्पानि धनानि सुवहून्यथ ।  
 ते तथेति महात्मानो राजान. सर्व एव तु ॥६  
 कुठारः सर्वतश्चैव चिच्छिदु पौण्ड्रकाज्ञया ।  
 प्राकाराश्चैव सर्वेन प्रासादान्तरस चयान् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! तब शेष रही यादव सेना और वृष्णिगण भाग खड़े हुए और वहाँ मशालों का प्रकार भी नहीं रहा । सर्वत्र शान्ति छागई, इसलिये पौण्ड्रक ने वृष्णियों को परास्त हुआ समझ लिया और वह अपने सैनिकों से कहने लगा—हे वीरो ! अब तुम टक, कुन्त, कुठार, पापाण और कर्पणों आदि शस्त्रों के साथ द्वारवापुरी में घुस कर वहाँ के सभी प्राकारों और अट्टालिकाओं को गिरा दो और सभी वन्याओं तथा दासियों को पचड लाओ ॥ १-५ ॥ उनकी प्रमुख सम्पत्तियों और श्रेष्ठ धनो पर तुरन्त अपना अधिकार करलो । यह सुनते ही सैनिक कुठारादि औजारों तथा शस्त्रास्त्रों को लेकर वहाँ से चल दिये और उच्च अट्टालिकाओं तथा भवनों को सब ओर से गिराने लगे ॥ ६-७ ॥

अथ तत्र महाशब्दः प्रादुरासीत्समन्ततः ।  
 दृष्ट्वेपु पात्यमानेषु प्राकारेषु महाबलः ॥८  
 पूर्वं द्वारे महाराज भिन्नाः प्राकारसंचयाः ।  
 श्रुत्वा शब्द महाघोरं सात्यकि. क्रोधमुच्छ्रितः ॥९  
 मयि सर्वं समारोप्य केशवो यादवेश्वर. ।  
 गतः वैलामशिखरं द्रष्टुं शंकरमव्ययम् ॥१०  
 अवश्य हि मया गृह्या पुरी द्वारावती दिवयम् ।  
 इति न चिन्त्य मनसा धनुरादाय सत्वरम् ॥११  
 रथं महाशतमारुह्य दास्यस्य महारमनः ।  
 पुत्रेण संसृजतं घोरं यन्ता च स्वयमेव हि ॥१२  
 धनुर्महत्तदादाय क्षरांश्नासीषिषोऽभाम् ।  
 आमुच्य कवचं घोरं दास्यसंपाजुदु.सहम् ॥१३

ते समेत्य यथायोगं स्थितास्तत्र महाबलाः ।  
 स्थिते सैन्ये महाघोरे दीपिकादीपिते पथि ॥२१  
 शिनिर्वीरः शरी चापी गदी तूणीरवान्विभो ।  
 वायव्यास्त्रं समादाय योजयित्वा महाशरम् ॥२२  
 आकर्णं पूर्वं माकृष्य धनु प्रवरमुत्तमम् ।  
 मुमोच परसैन्येषु शिनिर्वीर प्रतापवान् ॥२३

धीरे-धीरे वह दीपक से प्रकाशित हुए क्षेत्र में पहुँच गये और उधर महाबली बलरामजी गदा और बाणादि से सुसज्जित होकर संग्राम के लिये चल पड़े । उस समय वह एक अत्यन्त तेजोमय रथ पर चढ़ कर भीषण गर्जना एवं चीत्कार कर रहे थे ॥१५-१६॥ तभी यादव श्रेष्ठ उद्धवजी भी युद्ध-नीति विषयक विचार करते हुए अपने अत्यन्त प्रिय तथा घोर गर्जन करने वाले श्रेष्ठ गजराज पर चढ़ कर युद्ध क्षेत्र के लिये अग्रसर हुए । उनके अतिरिक्त हादिक्य आदि अनेको यादव भगवान् श्रीकृष्ण के वचनों को याद करते हुए रथों और हाथियों आदि पर चढ़ कर घोर गर्जना करते हुए पुरी के पूर्वीय द्वार पर युद्ध के लिये इकट्ठे होने लगे, उन सभी ने मशालें जला रखी थीं ॥१७-२०॥ इस प्रकार जब सम्पूर्ण यादव-सेना पुरी के पूर्वीय द्वार पर इकट्ठी हो गई तब महाबली सात्यकि ने अपने विशाल धनुष पर वायव्यास्त्र धड़ाया और उसे दानु-सेना को लक्ष्य करके छोड़ा ॥२१-२३॥

वायव्यास्त्रेण ते सर्वे तप्तस्या नरसत्तमाः ।  
 विजित ह्यस्त्रवीर्येण यत्र तिष्ठति पीण्डकः ॥२४  
 तत्र गत्वा स्थिताः सर्वे निद्गृता वातरंहगा ।  
 यत्र पूर्वं स्थिताः सर्वे विद्रुता राजसत्तमाः ॥२५  
 तत्र स्थित्वा च शंभेयः शरमादाय सत्वरम् ।  
 निजिनं गर्भं भोगार्भं वभाषे मात्यकिन्तदा ॥२६  
 नव ददानो महायुधिः पीण्डको राजसत्तमः ।  
 म्यिनोऽस्मिन् व्यवगायेन शरी चापी महाशरः ॥२७

यदि द्रष्टा दुरात्मान नतो हन्ता नृपाधमम् ।

भृत्योऽस्मि केशवस्याह जिघासु पौण्ड्रक स्थित ॥२८

तब उस एक अस्त्र की मार से ही प्राचीर आदि के तोड़ने में लगे हुए शत्रु पक्षीय सैनिक व्याकुल होगये और भयभीत होकर राजा पौण्ड्र के पास तेजी से चले ॥२४॥ वायव्यास्त्र के कारण वायुवेग से उड़ते हुए अनेकों राजागण भी पौण्ड्र के पास जाकर वही खड़े होगये, जहाँ युद्ध से भाग कर आये हुए बहुत से वीर पहिले ही आकर झड़े होगये थे ॥२५॥ उसी समय अपने घनुप पर नाग-फन के समान भयकर विष वाले एक अन्य वाण को चढाते हुए सात्यकि ने उच्च स्वर से कहा—मैं घनुप-वाण धारण करके युद्ध करने के लिये उपस्थित हूँ । इस समय वह महाबुद्धि, राजाओं में श्रेष्ठ पौण्ड्र कहाँ निवास किये हुए हैं ? ॥२६ २७॥ मैं भगवान् श्रीकृष्ण का अत्यन्त तुच्छ सेवक राजा पौण्ड्र को मारने की इच्छा से यहाँ आया हूँ । यदि मैं उस नृपाधम को कहीं भी देख पाऊँ तो तत्काल ही उसका वध कर डालूँ ॥२८॥

छित्त्वा शिरस्तु तस्यास्य सर्वक्षत्रस्य पश्यत ।

बलि दास्यामि गृध्रेभ्य श्वभ्यश्चैव दुरात्मन ॥२९

को नाम ईदृश कर्म चौरवच्च समाचरेत् ।

सुप्तेषु निशि सर्वं त्रयादवेषु महात्मसु ॥३०

चोरोऽथ सर्वथा राजा न हि राजा बलान्वित ।

यदि शक्नो न कुर्याच्च चौर्यमेव नृपाधम ॥३१

अहोऽस्य बलिनो राज्ञश्चौरकायं प्रकुर्वते ।

सर्वथागमन तस्य न हि पश्यामि साम्प्रतम् ॥३२

इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीर प्रजहास महाबल ।

विस्फार्य सुदृढ चाप कार्मुके स दधे शरम् ॥३३

आकर्ष्य वचन वीर सात्यकेस्तस्य धीमत ।

क्व नु कृष्ण क्व गोपाल कुत सोऽथ प्रवर्त्तते ॥३४

स्त्रोहन्ता पशुहन्ता च क्व स्वामीति सेवित ।

स इदानी क्व वर्तेत गृहीत्वा मम नाम तत् ॥३५

में, इन सब क्षत्रियो की उपस्थिति में ही उसका शीश काट कर गिड़ो और श्वानों को भक्षण करा दूँगा ॥२६॥ रात्रि काल मे वीर यादवो के शयन करते हुए ऐसा कौन-सा बहादुर राजा होगा जो इस प्रकार चोर के समान कुत्सित कर्म करेगा ? ॥३०॥ इसलिये वह नृपाघम राजबल से सम्पन्न कदापि नहीं माना जा सकता, क्योंकि राजा कभी चोरो जैसा कार्य नहीं करते, इसलिय वह चोर ही है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार के चौरवृत्ति परायण व्यक्ति के भुजबल को धिक्कार है, इस समय वह कहाँ जाकर छिप गया है ? ॥ ३२ ॥ यह कह कर वीर सात्यकि ने भीषण अट्टहास किया और अपने धनुष को खोल बर उस पर बाण सघान किया ॥३३॥ सात्यकि के वचनो से क्रोधित हुए राजा पौण्ड्र ने तुरन्त ही सामने आकर कहा—वह स्त्री हत्यारा, पशुश्रो का वधिक, गौओ का पालक और स्वय को सर्वकर्ता समझने वाला कृष्ण इस समय कहाँ है, वह मेरे 'वासु-देव' नाम को ग्रहण करके कहाँ जा छिपा है ? ॥३४-३५॥

हन्ता सख्युर्महावीर्यो नरकस्य महात्मन ।  
ममैव तात युद्धे ऽस्मिन्हते तस्मिन्दुरात्मनि ॥३६  
गच्छ त्व कामतो वीर योद्धु न क्षमते भवान् ।  
अथ वा तिष्ठ किञ्चित्तु ततो द्रष्टाऽसि मे बलम् ॥३७  
शिरस्ते पातयिष्यामि शरैर्घोरैर्दुःरासदै ।  
हतस्य तव वीरेह भूमि पास्यति शोणितम् ॥३८  
श्रोप्यते स तथा गोपो हत सात्यकिरित्यपि ।  
यो गर्वंस्तस्य गोपस्य सर्वदा वर्तते महान् ॥३९  
विनश्यति म तु क्षिप्र हते त्वयि यदूत्तमम् ।  
त्वयि रक्षा समादिश्य गोप कैलासपर्वतम् ॥४०  
गत इत्येवमस्माभि श्रुत पूर्वं महामते ? ।  
धार गृहाण निशित यदि शक्तोऽसि सात्यके ।  
इत्युक्त्वा प्राणमादाय ययो योद्धु व्यवस्थित ॥४१

उसो ने मेरे परम सरा नरनागुर की हत्या की बी, आज उत संग्राम

मे उसका वध करके ही मैं अपने घर को लौडूंगा ॥३६॥ हे सात्यके ! तुम मेरे समक्ष युद्ध करने में समर्थ नहीं हो, इसलिये अपने को मेरे समान न समझ कर तुम तुरन्त ही पलायन कर जाओ, अथवा एक क्षण युद्ध मे ठहर कर मेरे पराक्रम को देख लो ॥३७॥ मैं अभी अपने सुतीक्ष्ण शरो के द्वारा तुम्हारे मस्तक को काट डालूंगा और तब यह रण भूमि तुम्हारे शोणित का पान करेगी ॥ ३८ ॥ वह ग्वाला तुम्हारे ही बल से गर्वित हो उठा है, परन्तु जब वह तुम्हारी मृत्यु का समाचार सुन लेगा, तब उसका गर्व नष्ट हो जायगा ॥ ३९ ॥ मुझे मालुम हुआ कि वह ग्वाला तुम पर द्वारकापुरी की रक्षा का भार देकर स्वयं कैलास पर्वत पर भाग गया है । इसलिये, यदि तुम्हे ही युद्ध करना है तो अपने बाण को संभाल कर आजाओ । यह कह कर पौण्ड्र बाण ग्रहण करके युद्ध के लिये प्रस्तुत हुआ ॥४०-४१॥

## ॥ पौण्ड्रक सात्यकि युद्ध [ १ ] ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सात्यकिर्वृष्णिपुञ्जवः ।  
 उवाच वचनं राजन्वामुदेवं स्मरन्निव ॥१  
 अवोचदीदृशं वाक्यं वासुदेवं नृपाधमः ।  
 को नाम जगता नाथमित्थं ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥२  
 मृत्युस्त्वां सर्वथा याति वदन्तं तादृशं वचः ।  
 जिह्वा ते शतधा दीर्याद्विदतस्तादृशं वचः ॥३  
 एष ते पातयिष्यामि शिरः कायाच्च पौण्ड्रक ।  
 यन्नाम वासुदेवेति तव सप्रति वर्तते ॥४  
 यावत्पतति कायात्ते शिरस्तावत्प्रवर्तते ।  
 स एव श्वो न भगवान्वासुदेवो भविष्यति ॥५ ।  
 एक एव जगन्नाथः कर्त्ता सर्वस्य सर्वगः ।  
 दुरात्मन्सर्वथा देवो भविष्यति न सशयः ॥६  
 एष तेऽहं शिरः कायात्पातयिष्यामि राजक ।  
 यदसौ भगवान्निवृणुर्नागमिष्यति साम्प्रतम् ॥७



वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर वृष्णि श्रेष्ठ सात्यकि ने अत्यंत क्रुद्ध होकर भगवान् श्रीवृष्ण का ध्यान करते हुए उससे कहा—अरे, राजाओं में अघम ! ऐसा कौन होगा जो अपने जीवन को इच्छा रहते हुए भगवान् वासुदेव के प्रति ऐसे वचन मुख से निकालेगा ? इस प्रकार के अनगंल प्रलाप के कारण तेरी जिह्वा के सँकड़ो सण्ड हो जायेंगे और मृत्यु तुझे अपना शिकार बना लेगी ॥ १-३ ॥ हे पौण्ड्र ! जब तक तुम्हारा शीश कट नहीं जाता, तब तक तुम अपने वासुदेव नाम के व्यामोह में पड़े रहोगे, इसलिये मैं तुम्हारा शिर उड़ा दूँगा और कल तक तुम्हारे दर्शन भी नहीं होंगे ॥४-५॥ जो एक ही जगदीश्वर, सब प्राणियों के उत्पन्न करने वाले और सर्वत्र गमनशील है, कल से एक मात्र वासुदेव भी वे ही रह जायेंगे ॥ ६ ॥ यदि भगवान् श्रीवृष्ण शीघ्र ही यहाँ नहीं आ सके तो फिर तुम्हारे शिर को मैं ही काट डालूँगा ॥७॥

अस्त्रवीर्यं बलं चैव सर्वं दर्शय साम्प्रतम् ।  
 नातं परतरं राजन्वीर्यं च तव वर्तते ॥८  
 सर्वं दर्शय यत्नेन स्थितोऽस्मि व्यवसायवान् ।  
 शरी चापी गदी खञ्जी सर्वथाऽहमुपस्थितः ॥९  
 नैतन्नगरमायासीः सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ।  
 सर्वथा कृतकृत्योऽस्मि दृष्ट्वा त्वां वासुदेवकम् ॥१०  
 तवाङ्गं तिलशः कृत्वा श्वभ्यो दास्यामि राजक ।  
 इत्युक्त्वा वाणमादाय वासुदेवं महाबलः ॥११  
 आकर्णपूर्णमाकृष्य विव्याध निशितं शरम् ।  
 स तेन विद्धो यदुना वासुदेवः प्रतापवान् ॥१२  
 वमञ्छोणितमत्युष्णमङ्गान्नेत्रान् नृपोत्तम ।  
 ततश्चु क्रोध नृपतिर्वासुदेवः प्रतापवान् ॥१३  
 नवभिर्दशभिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः ।  
 विव्याध सात्याकिं राजा नदंश्च बहुधा किल ॥१४

दुम अपने सम्पूर्ण अस्त्र बल और पराक्रम का भले प्रकार प्रदर्शन कर

लो, क्योंकि थोड़ी देर में ही वह सब नष्ट होने वाला है । इसीलिये तो मैं धनुष, बाण, गदा और खड्ग आदि ग्रहण करके मैं तुम्हारे सामने डट गया हूँ ॥८-६॥ मैं तुमसे यह सत्य ही कह रहा हूँ कि अब तुम इस नगर में अपने प्रवेश करने की आशा को छोड़ दो । अहा, आज मैं तुम्हारे जैसे छद्मवेशी वासुदेव के दर्शन करके धन्य होगया हूँ । ॥१०॥ हे राजन् ! आज जब मैं तुम्हारे देह के खण्ड-खण्ड कर दूँगा, तब श्वानगण इसका भोजन करेगे । यह कह कर सात्यकि ने एक सुतीक्ष्ण बाण का सधान करके पौण्ड्र पर छोड़ दिया । तब उन महाबली सात्यकि के बाण से बिध कर राजा पौण्ड्र अपने सभी अंगों और नेत्रादि से उष्ण रुधिर प्रवाहित करता हुआ अत्यन्त कुपित होगया ॥११ १३॥ तब उसने विह्वल होकर धीरे गर्जना की और झुके हुए पर्व वाले नी या दक्ष बाणों के प्रहार से सात्यकि को वीध डाला ॥१४॥

ततो नाराचमादाय निशित यमसनिभम् ।  
 धनुराकृष्य भगवान्वासुदेवो नृपोत्तम ॥१५  
 विव्याध सात्यकि भूयो निशि प्रह्लादयन्स्वकान् ।  
 नाराचेन समाविद्ध सात्यकि सत्यसङ्कर ॥१६  
 ललाटे सुदृढ वीरो वृष्णीनामग्रणीस्तदा ।  
 निपसाद रथोपस्थे निश्चेष्ट इव सत्तम ॥१७  
 तत स पौण्ड्रको राजा विद्ध्वा दशभिराशुर्गम् ।  
 सारथिम्पञ्चविंशत्या हयाश्च चतुरो नृप ॥१८  
 ते हया रुधिराक्तागा सारथिश्च समन्तत ।  
 विह्वला समपद्यन्त वासुदेवस्य पश्यत ॥१९  
 वासुदेवो रथे चापि सिंहनाद समाददे ।  
 तेन नादेन तन्नाभूद्विबुद्ध सात्यकिनृप ॥२०  
 विद्वान्ह्यास्तथा दृष्ट्वा सारथिं च तथागतम् ।  
 शंनेयोऽय महावीर्यो रूषितो नृपसत्तम ॥२१  
 अल द्रक्ष्यामि ते वीर्यमित्युक्त्वा बाणमाददे ।  
 विव्याध येन बाणेन वक्षस्येन महाबल ॥२२

फिर उसने एक क्षण पीछे ही यम के समान भीषण एक और बाण संधान कर सात्यकि के शिर पर प्रहार किया । उससे वह सत्य-प्रतिज्ञ वीर सात्यकि गम्भीर घाव हो जाने से व्याकुल होकर मूर्च्छा को प्राप्त हुए और उसी अवस्था में अपने रथ पर बैठे रहे ॥ १५-१७ ॥ तभी पौण्ड्र ने दस बाणों के प्रहार से सात्यकि के सारथी को आहत किया और पच्चीस बाण चला कर रथ के अश्वों को वीध डाला ॥१८॥ इस आघात से सारथी और अश्वों के देह से रक्त प्रवाहित होने लगा, इससे वे व्याकुल हो उठे । यह देख कर पौण्ड्र घोर गर्जना करने लगा, परन्तु उसकी गर्जना सुन कर सात्यकि को चेत हो गया और अपने सारथी तथा घोड़ों की इस दशा को देख कर उन्हें अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने कहा — अच्छा, अब तुम्हारे पराक्रम को देखूँगा । यह कह कर उन्होंने एक श्रेष्ठ बाण ग्रहण करके, उसे संधान कर पौण्ड्र के हृदय को लक्ष्य किया ॥१६-२२॥

ततश्चचाल तेनाजी वासुदेवः शरेण ह ।

सुस्राव रुधिरं घोरमत्युष्णं वक्षसो नृप ॥२३

रथोपस्थे पपाताशु निश्वसन्तुरगो यथा ।

कृत्यं चापि न जानाति केवलं निपसाद ह ॥२४

सात्यकिस्तु रथं विद्ध्वा दशभिः सायकैस्तथा ।

ध्वजं चिच्छेद भल्लेन वासुदेवस्य वृष्णिपः ॥२५

हयांश्च चतुरो हत्वा वाणैः सारथिमेव च ।

ययुधानोऽथ राजेन्द्र पौण्ड्रकस्य च पश्यतः ॥२६

सारथेश्च शिरः कायादहरत्स रथात्तदा ।

रथग्रन्थि च चिच्छेद हयांश्च व्यसवोऽभवन् ॥२७

चक्रं च तिलशः कृत्वा वाणं दंशभि रंहसा ।

जहास विपुलं राजन्वामुदेवं महाबलः ॥२८

इस बाण के प्रहार से पौण्ड्र के हृदय से शोणित की उष्ण धारा प्रवाहित होने लगी और वह एक ओर की लुडक गग ॥२३॥ तब वह फुंकार छोड़ते हुए नाग के समान श्वास छोड़ने लगा, उस समय उसका कर्त्तव्य-ज्ञान भी लुप्त

होगया ॥२४॥ यह अवसर देख कर सात्यकि ने दस वाण चला कर उसके रथ को जीर्ण कर दिया और एक भाले के प्रहार से उसकी ध्वजा भंग करके गिरा दी ॥२५॥ फिर उन्होंने बाणों की वर्षा करके पौण्ड्र के रथ के चारो घोडे और सारथी का भी संहार कर दिया और फिर रथ को छिन्न-भिन्न कर डाला ॥२६-२७॥ तदनन्तर दस वाणों के प्रहार से उसके पट्टियों को तिल के समान खण्ड-खण्ड कर दिया और अट्टहास करने लगे ॥२८॥

ततः परं महत्कायं सात्यकिवृष्णिनन्दनः ।  
 शब्दं कृत्वा बली साक्षात्सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥२९॥  
 शरैः साप्ततिसंख्याकैरर्दयामास सत्वरम् ।  
 ते शराः शलभाकारा निपेतुः सर्वशस्तदा ॥३०॥  
 शिरस्तः पार्श्वतश्चैव पृष्ठतः पुरतस्तथा ।  
 केवलं धैर्यनिचयस्तृपार्तः शरवान्यथा ॥३१॥  
 यथा मनस्वी रिक्तश्च तथा तिष्ठति पौण्ड्रकः ।  
 ततश्चक्रोद्य बलवान्वासुदेवः प्रतापवान् ॥३२॥  
 अर्धचन्द्रं समादाय विध्याध युधि सात्यकिम् ।  
 विदुष्वपि सप्तभिरायान्त क्रोधेन प्रस्फुरन्निव ॥३३॥  
 विद्योऽथ सात्यकिस्तेन शरैः पञ्चभिराशुगैः ।  
 चाप चिच्छेद पौण्ड्रस्य सिंहनादं व्यनीनदन् ॥३४॥

फिर उन्होंने भयकर चीत्कार की और समस्त राजाओं के देखते-देखते सत्तर वाणों के प्रहार से उस दृढ़मवेशी पौण्ड्र को बीध डाला । उस समय वे वाण अग्नि के पत्तंगों के समान सब ओर से गिरते हुए पौण्ड्र के भस्तक, पृष्ठ भाग, पार्श्व भाग और सामने की ओर घायल करने लगे ॥ २९-३१ ॥ जिस प्रकार कोई मनस्वी दानी सम्पूर्ण धन का दान करके खाली हाथ हो जाता है, वैसे ही वाणों से बिधा हुआ पौण्ड्र कुछ देर तक निस्तब्ध खड़ा रहा । कुछ कालो-परान्त कुछ स्वस्थ और अधिक क्रोधित होकर उसने अपने सात अर्धचन्द्राकार चारों को चढा कर उन्हें सात्यकि पर थोड़ा १ इस प्रकार घायल होने पर

सात्यकि ने भी क्रोधपूर्वक अपने पाँच वेगवान् बाणों से पौण्ड्र का धनुष काट दिया और घोर गर्जना की ॥३२ ३४॥

वासुदेवो गदा गृह्य भ्रामयित्वा पदात्पदम् ।  
 त्वरित पातयामास सात्यकेवक्षसि प्रभो ॥३५॥  
 सव्येन ता समाकृष्य करेण यदुनन्दन ।  
 शर प्रगृह्य विव्याघ्र सात्यकिर्युधि पौण्ड्रकम् ॥३६॥  
 तमन्तरे गृहीत्वाऽऽशु वासुदेव प्रतापवान् ।  
 शक्तिभिर्दशभिश्चैव सात्यकिं निजघान ह ॥३७॥  
 ताभिर्विद्धो रणे वीर सात्यकि सत्यस गर ।  
 अपास्य घनुरन्यत्तद्धनुरादाय सत्वरम् ।  
 आजघान तदा वीरो वृष्णीनामग्रणीर्नृप ॥३८॥

तभी पौण्ड्र ने अपनी गदा ग्रहण की और उसे वेग पूर्वक घुमा कर सात्यकि के हृदय पर दे मारी ॥३५॥ परन्तु सात्यकि ने अपने हृदय पर लगने से पूर्व ही उस गदा को अपने बाँए हाथ से थाम लिया और फिर अपने बाणों की मार से पौण्ड्र को वीध डाला ॥ ३६ ॥ तदनन्तर पौण्ड्र ने भी दस शक्तियाँ एक साथ ग्रहण कर उनसे सात्यकि पर जोर से प्रहार किया ॥ ३७ ॥ सात्यकि उस प्रहार से अत्यन्त व्याकुल होगये, फिर भी उन्होंने एक धनुष ग्रहण करके पौण्ड्र पर भीषण बाण वर्षा आरम्भ कर दी ॥३८॥

॥ पौण्ड्रक सात्यकि युद्ध [२] ॥

तत क्रुद्धो गदापाणि सात्यकिर्वृष्णिनन्दन ।  
 वासुदेव जवानाशु गदया तीक्ष्णया नृप ॥१॥  
 सात्यकिं वासुदेवस्तु गदयाऽभ्यहनद्वली ।  
 तावुद्यतगदौ वीरो शुशुभाते सुदारुणौ ॥२॥  
 दृप्ती बने यथा सिंही परस्परवधंपिणो ।  
 तत स सात्यकि क्रुद्ध सव्य मण्डलमागमत् ॥३॥

दक्षिण वासुदेवस्तु त जघान स्तनान्तरे ।  
युयुधानोऽथ वीरस्तु बाह्वोर्मध्यमताडयत् ॥४  
दृढ स ताडितो वीरो जानुभ्यामपतद्भ्रुवि ।  
तत उत्थाय वीरस्तु ललाटेऽभ्यहनद्गदाम् ॥५  
विपण्ण किञ्चिदास्थाय तत उत्थाय सत्वरम् ।  
गदयाऽभ्यहनद्वीर सात्यकि पौण्ड्रसत्तमम् ॥६  
वासुदेवो ब्रलिर्वीर साक्षान्मृत्युरिवापर ।  
जघान गदया वृष्णिर्निर्दहन्निव चक्षुपा ॥७

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! तभी वृष्णि श्रेष्ठ सात्यकि ने अत्यन्त क्रोध पूर्वक उस छद्म नाम धारी वासुदेव पर अपनी तीक्ष्ण गदा चलाई ॥१॥ उसी समय पौण्ड्र ने भी सात्यकि पर अपनी गदा से प्रहार किया । इस प्रकार गदा युद्ध करते हुए वे दोनों महावीर परस्पर में वध करने की कामना से वन में घूमने वाले दो सिंहों के ममान प्रतीत होते थे । तभी सात्यकि ने मण्डल बना कर पेटरे बदलना आरम्भ किया और अपने दक्षिण पार्श्ववर्ती पौण्ड्र के हृदय पर गदा या भीषण प्रहार कर दिया । उससे अत्यन्त घायल हुआ पौण्ड्र पृथिवी पर बैठ गया और थोड़ी देर बाद सभल कर उठा, तब उसने तत्काल ही सात्यकि के तिर पर गदा से प्रहार कर दिया ॥२५॥ इस प्रहार से विपण्ण हुए सात्यकि गिर कर तुरन्त ही उठ पड़े और उन्होंने पौण्ड्र पर गदा से भीषण प्रहार किया । उस समय यमराज के समान भयवर हुआ पौण्ड्र सात्यकि पर इस प्रकार दृष्टिपात करने लगा, जैसे उन्हें नेत्रों की अग्नि से ही भस्म कर देगा ॥६-७॥

स तया ताडितो वृष्णिर्गदया बाहुमुक्तया ।  
वालम्ब्य भूमिं सट्टसा मृत्योरङ्कगतो यया ॥८  
सजा पुन समालम्ब्य पाणिश्या दृढमेव च ।  
गदा तन्म्य महाराज गृहीत्या प्रप्रहेण ह ॥९  
द्विधा वृत्त्वा महानुर्वी गदा बालायसी शुभाम् ।  
सन्मृग्य सहसा वीर सिहनाय व्यनीनदत् ॥१०

तत उत्सृज्य राजा तु वासुदेवो महाबल ।  
 सव्येन सात्यकिं गृह्य दक्षिणेन करेण ह ॥११  
 मुष्टिं वृत्वा महाघोरा वासुदेव प्रतापवान् ।  
 ताडयामास मध्ये तु स्तनयो सात्यकेनृप ॥१२  
 शंनेयो वृष्णिवीरस्तु गदामुत्सृज्य सत्वरम् ।  
 तलेनाभ्यहनद्वीरो वासुदेव रणाजिरे ॥१३  
 तलेन वासुदेवोऽपि सात्यकिं सत्यस गरम् ।  
 तयोरव महाघोर तलयुद्ध प्रवर्तते ॥१४

तभी उसने सात्यकि पर पुन गदा-प्रहार किया, जिसके कारण वह बे-  
 होश होकर पृथिवी पर मृतक के समान बैठ गये ॥१॥ हे राजन् ! कुछ देर  
 में ही उनकी झुलझुल नष्ट हो गई और तब उन्होंने उठ कर पौण्ड्र की वह व्यत्यन्त  
 भारी गदा उसके हाथ से छीन ली और उसके दो खण्ड करके घोर गर्जना करने  
 लगे ॥६-१०॥ तभी उस महाबली राजा पौण्ड्र ने अपने बाएँ हाथ से सात्यकि को  
 पकड़ कर उनके हृदय में अपने दाएँ हाथ की मुष्टिका से प्रहार किया ॥ ११-  
 १२ ॥ तभी सात्यकि ने अपनी गदा फेंक दी और पौण्ड्र के मुख पर एक जोर  
 का तमाचा जड़ दिया ॥१३॥ इस पर पौण्ड्र ने भी सात्यकि के थप्पड़ मारा ।  
 इस प्रकार अब दोनों ही वीर थप्पड़-मार युद्ध में प्रवृत्त हुए ॥१४॥

जानुभ्या मुष्टिभिश्चैव बाहुभ्या शिरसा तदा ।  
 उरसोर समाहत्य जानुभ्या जानुनी तथा ॥१५  
 कराभ्या करमाहत्य तौ युद्ध सप्रचक्रतु ।  
 तालयोस्तस्य राजेन्द्र वृक्षयो सनिकर्षयो ॥१६  
 वने यथाऽग्निरुत्पन्नस्तथैवाभून्महास्वन ।  
 तावाजौ प्रथितौ वीरावुभौ पौण्ड्रकसात्यकी ॥१७  
 निशि स्तिमितमूकाया शस्त्र त्यक्त्वा महावली ।  
 युयुधाते महार गे मल्ली द्वाविव विश्रुतौ ॥१८

उभे सेने महाराज्ञोः संशयं जग्मतुस्तदा ।

किं नु स्यात्सात्यकिर्वीरो हतस्तेन भविष्यति ॥१६

आहोस्विद्वासुदेवस्तु हतस्तेन महात्मना ।

अद्य वै तौ महावीरौ परस्परवधैषिणौ ॥२०

युध्यमानौ महावीरौ नरौ स्वर्गं गमिष्यतः ।

अन्यथा नोपरम्येतां युद्धाद्वीरौ सुनिश्चितौ ॥२१

षण्ण्ड-मार युद्ध के पश्चात् दोनों वीर घुटनों से घुटनों में प्रहार करते,

मुक्के से मुक्का मारते, भुजा से भुजा, हृदय से हृदय और मस्तक से मस्तक को

टकराते हुए युद्ध में प्रवृत्त थे । हे राजन् ! जिस प्रकार वन में स्थित दो ताल

वृक्षों के धर्पण से अग्नि उत्पन्न होने पर शब्द होता है, वैसे ही उनके सघर्ष से

शब्द निकल रहा था । फिर उस रात्रि काल में ही वे दोनों प्रसिद्ध रणवाँकुरे दो

प्रसिद्ध मत्तलों के समान युद्ध करने लगे ॥ १५-१८ ॥ वे दोनों ही वीर अत्यन्त

भयंकर रूप से युद्ध में लगे हुए थे, उस समय उभय पक्ष के व्यक्ति यह समझने

लगे कि आज या तो सात्यकि पीण्ड को मार देगा अथवा पीण्ड के द्वारा सात्यकि

मारा जायगा । क्योंकि यह दोनों वीर एक दूसरे का वध करने के लिये कटिबद्ध

हैं ॥ १६-२० ॥ या यह दोनों ही इन युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्ग-गमन

करेंगे अथवा यह दोनों इसी प्रकार न जानें कब तक युद्ध करते रहेंगे ॥२१॥

अहो वीर्यमहो धैर्यमेतयोर्वलशालिनोः ।

एतौ महाबली लोके एतौ प्रवृत्तिसत्तमौ ॥२२

नवं युद्धं महाघोरमासीद्देवामुरेष्वपि ।

न श्रुतो न च वा दृष्टः संग्रामोऽयं कदाचन ॥२३

एते वै सैनिका ग्रूयुः सेनयोरुभयोरपि ।

रासो निशीथे मेघोषे दृष्ट्वा युद्धं गुदारुणम् ॥२४

अयं तौ बाहुभिर्वीरौ संनिपेततुरञ्जसा ।

दशभिमुंष्टिभिर्जघ्ने सात्यकिः पीण्डकं तदा ॥२५

पञ्चभिः सात्यकिः पीण्डः समाजघ्ने महाबलः ।

तयोश्चटचटानन्दो ब्रह्माण्डशोभणो महान् ।

प्रादुरासीत् सयत्न सयोन्यन्नापन्नान्व ॥२६



देखो, यह दोनो वीर कैसे पराक्रमी और धैर्यवान् हैं, यथार्थ रूप से तों सम्पूर्ण जगत् मे यह दो पुरुष ही बल सम्पन्न दिखाई देते हैं ॥ २२ ॥ देवासुर-संग्राम में भी कभी ऐसा युद्ध हुआ हो, यह बात न कभी देखी और न सुनी हो गई ॥ २३ ॥ हे राजन् ! उस भीषण रात्रि काल मे आकाश मे बादल छाये हुए थे, तभी उन्हें वैसा भयंकर युद्ध करते देख कर दोनों पक्ष के सैनिको ने उपरोक्त विचार प्रकट किये थे ॥२४॥ तभी वे दोनो वीर मल्लयुद्ध करते हुए पृथिवी पर गिर पड़े, उस दशा मे भी सात्यकि ने पौण्ड्र पर दस मुक्को से और पौण्ड्र ने सात्यकि पर पाँच मुक्को से प्रहार किया । उस मुष्टिका-प्रहार के शब्द से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड क्षुब्ध होगया, जिससे सभी लोक आश्चर्यं चकित होगये ॥२५-२६॥

## ॥ एकलव्य की सेना संहार ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्ध एकलव्यो निशादपः ।  
 बलभद्रमभि क्षिप्रं धनुरादाय सत्वरम् ॥१॥  
 नाराचं दशभिर्विदुध्वा वाणेश्च दशभिः परैः ।  
 चिच्छेद धनुरद्धं तत्सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥२॥  
 सूतं दशभिराहत्य रथं त्रिशद्भिरेव च ।  
 ध्वजं चिच्छेद भल्लेन निपादस्य जगत्पतिः ॥३॥  
 ततः परं महच्चापं निपादो वीर्यसंमतः ।  
 दृढमौर्व्या समायुक्तं दशतालप्रमाणतः ॥४॥  
 कामपाल शरेणाशु जघान जनमध्यतः ।  
 बलदेवो महावीर्यः सर्पः शेष इव श्वसन् ॥५॥  
 दशमिस्मदनुदिव्यं शरैः सर्पसमैर्वलः ।  
 चिच्छेद मुष्टिदेशे तु माघत्रो माघवाग्रजः ॥६॥  
 एकलव्यो निपादेशः पद्ममादाय सत्वरः ।  
 प्राहिणोद्वलमादाय निशितं घोरविग्रहम् ॥७॥  
 तमन्तरे पटुर्वीरो वृष्णिवीरः प्रतापवान् ।  
 तिलशः पञ्चभिर्वाणेश्चकार यदुनन्दनः ॥८॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उधर निपाद राज गौर बलरामजी का जो युद्ध चल रहा था, उसमें फ्रीधित हुआ एकलव्य धनुष ग्रहण करके बलरामजी की ओर वेग से बढ़ा ॥ १ ॥ तभी बलरामजी ने दस बाणों के प्रहार से एकलव्य को आहत कर दिया और दस बाण पुनः छोड़ कर उसके धनुष के टुकड़े कर दिये ॥२॥ फिर उन्होंने दस बाणों के प्रहार से सारथी को मार डाला और तीन बाणों से उसका रथ ध्वस्त कर दिया । फिर उन्होंने एक भाला मार कर एकलव्य की ध्वजा खडित कर दी ॥३॥ फिर महाबली एकलव्य ने सुहृद प्रत्यक्षा बाला तथा दस ताल ऊँचा एक अन्य धनुष ग्रहण करके बलरामजी को भीषण दिया । तब बलरामजी ने भी एक दीर्घ फुंकार छोड़ते हुए सपें के समान बाणों से एकलव्य के धनुष का मुष्टिदेश क्षिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४-६ ॥ फिर निपादराज ने भी शीघ्रतापूर्वक एक महती खड्ग लेकर बलरामजी पर वेग से प्रहार किया, परन्तु बलरामजी ने उस खड्ग का वार होते होते ही उसे पाँच बाणों के सङ्घ से टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥७-८॥

ततोऽपरं महत्खड्गं सर्वकालायसं शुभम् ।  
 प्राहिणोत्सारथेः कायमालोक्याय निपादजः ॥६  
 तं चापि दशभिर्वीरो माघवो यदुनन्दनः ।  
 बाह्वोरन्तरयोश्चैव निर्विभेद महारणे ॥१०  
 ततः शक्तिं समादाय घण्टामालाकुला नृप ।  
 निपादो बलदेवाय प्रेषयित्वा महाबलः ॥११  
 सिंहनादं महाघोरमकरोत्स निपादपः ।  
 सा शक्तिः सर्वकल्याणी बलदेवमुपागमत् ॥१२  
 उत्पतन्ती महाघोरा बलभद्रं प्रतापवान् ।  
 आदायाय निपादेशं सर्वान्निस्समापयन्निव ॥१३  
 तयैव तं जघानाशु वक्षोदेशे च माघवः ।  
 स तथा ताडितो वीरः स्वशक्त्याय निपादपः ॥१४  
 विह्वलः सर्वगात्रेषु निपपात महीतले ।  
 प्राणसंशयमापन्नो निपादो रामताडितः ॥१५

यह देख कर एकलव्य ने काले लोहे का एक अन्य खड्ग ग्रहण कर उससे बलरामजी के सारथी पर प्रहार किया, परन्तु उन्होंने उस खड्ग को भी दस बाण चला कर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित कर दिया ॥ ६-१० ॥ फिर एकलव्य ने घण्टामाल से युक्त एक शक्ति ग्रहण कर बलरामजी के ऊपर चलाई और फिर घोर गर्जना करने लगा । परन्तु, सब का कल्याण करने वाली उस शक्ति को अपने निकट आते ही बलरामजी ने हाथ से पकड़ लिया और फिर उसी शक्ति से उन्होंने एकलव्य के हृदय पर प्रहार किया । बलरामजी को यह धूरता देख कर सभी उपस्थित जन आश्चर्य करने लगे और एकलव्य अपनी ही शक्ति से धायल होकर अत्यन्त व्याकुल होकर पृथिवी पर लुडक पड़ा, उस समय उसकी मरणासन्न अवस्था होगई ॥११-१५॥

निपादास्तस्य राजेन्द्र शतशोऽथ सहस्रश ।  
 अष्टाशीतिसहस्राणि निपादास्तस्य योधिना ॥१६  
 गदिना । खङ्गिनश्चैव महेष्वासा महाबलाः ।  
 शरं रणेकसाहस्रं । शक्तिभिश्च परश्वधैः ॥१७  
 गदाभिः पट्टिशैः शूलैः परिधैः प्रासतोमरः ।  
 कुन्तैरथ कुठारैश्च यादवाना महौजसाम् ॥१८  
 शलभा इव राजेन्द्र दीप्यमान हुताशनम् ।  
 ते शरैः पातयाचक्रुः राम राममिवापरम् ॥१९  
 केचित्कुठारैराजघ्नुः केचित्कुन्तैः परश्वधैः ।  
 गदाभिः केचिदाघ्नन्ति शक्तिभिश्च तथा परे ॥२०

एकलव्य की ऐसी बुद्धशा देख कर उमके अट्टालको हजार अत्यन्त बलवान् सैनिक गदा, तलवार, धनुष, बाण, परसा, पट्टिश, शूल, परिध, प्रास, तोमर, भाले, कुठार प्रभृति अनेकानेक शस्त्रास्त्र ग्रहण कर शलभा के अग्नि की ओर जाने के समान ही, यादवों पर दोह पटे और तुरन्त ही वे बलरामजी पर अपने विभिन्न शस्त्रास्त्रों से प्रहार करने लगे ॥१६-२०॥

निजघ्नुः सहस्रा रामं स्फुरन्तं पावकं यथा ।  
 ततः क्रुद्धो हली साक्षाद्वलमुद्यम्य सत्वरम् ॥२१  
 सर्वानाकर्षयामास मुसलेन हि पीडयन् ।  
 से हन्यमाना राजेन्द्र निपादाः पर्वताश्रयाः ॥२२  
 निपेतुर्धरुणीपृष्ठे शतशोऽथ सहस्रशः ।  
 क्षणेन तन्महाराज हत्वा सर्वान्महावलान् ॥२३  
 सिहवद्वचनदं स्पत्र तस्थी रामो महाबलः ।  
 ततो रात्रौ महाघोराः पिशाचाः पिशिताशनाः ॥२४  
 आकृष्य शवयूथानि भक्षयन्तः समासते ।  
 पिवन्तः शोणितं कोष्ठात्स छिद्य च शव बहु ॥२५

उस सेना के प्रहारो से क्रोधित हुए बलरामजी ने अपना हल उठाया और उससे उन निपाद-सैनिको को एक-एक कर खींचते और मूल मार कर कुचलने लगे । हे राजन् ! बलरामजी के इस कार्य से कुचले जाते हुए सैकड़ो हजार निपाद मर-मर कर पृथिवी पर गिर गये । इस प्रकार क्षण भर में ही सम्पूर्ण निपाद-सेना नष्ट होगई तब बलरामजी घोर गर्जना करने लगे । उस भयकर रात्रि काल में असंख्य पिशाच रणक्षेत्र में शवो को नोच-नोच कर उनका मास-भक्षण और रुधिर पान करते हुए घूमने लगे ॥२१-२५॥

## ॥ बलदेव-एकलव्य युद्ध ॥

क्रव्यादाः सर्वे एवाशु भक्षयन्तस्तदा शवम् ।  
 हसन्तो विविधं घोरं नादयन्तो वसुंधराम् ॥१  
 राक्षसाश्च पिशाचाश्च पिवन्तः शोणितं बहु ।  
 आशिखं भुञ्जते राजञ्छवस्य पिशिताशनाः ॥२  
 नृत्यन्ति स्म तदा राजन्नगर्या रणतोपिताः ।  
 काका बलाका गृध्राश्च श्येना गोमायवस्तथा ॥३  
 भक्षयन्तः प्रवर्तन्ते राक्षसाश्चैव दारुणाः ।  
 एतस्मिन्नन्तरे वीरो निपादो लब्धसङ्गकः ॥४

हृतान्सर्वान्समालोक्य निपादान्नगचारिणः ।  
 गदामादाय कुपितो राममेव जगाम ह ॥५  
 जघान गदया राजश्छत्रदेशे निपादपः ।  
 ततो रामो गदी राजन्निपाद बाहुशालिनम् ॥६  
 आजघ्ने गदया क्रूरं मदमत्तो हलायुधः ।  
 तयोश्च तुमुलं युद्धं गदाभ्यां समवर्तत ॥७

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस समय वे मातभोजी पिशाचगण जिस प्रकार अट्टहास कर रहे थे, उससे सम्पूर्ण घरातल गुंजित हो गया ॥ १ ॥ सभी मास लोलुप राक्षसगण अत्यन्त रक्त पीकर और मांस भक्षण कर आनन्द से नृत्य करने लगे । उसी प्रकार काक, बलाक, गृध्र, बाज और शृगाल इत्यादि तृप्त होकर इधर-उधर क्षपट रहे थे । इसी अवसर पर निपादपति एबलव्य की चेतना लौट आई ॥ २-४ ॥ तब उसने अपनी सम्पूर्ण सेना को छिन्न-भिन्न और भृत्यु को प्राप्त हुई देता तो उसे अत्यन्त क्रोध हुआ और वह अपनी गदा उठा कर तेजी से बलरामजी की ओर दौड़ा ॥५॥ जैसे ही वह बलरामजी के पास पहुँचा, वैसे ही उसने उनके कंधे पर वेग पूर्वक गदा का प्रहार किया । फिर बलरामजी ने भी अपनी गदा उठा कर वेग से चलाई । इस प्रकार उन दोनों वीरों में गदा युद्ध आरम्भ होगया ॥६-७॥

आकाशे शब्द आसीत्, तयोर्द्वे महाभुज ।  
 समुद्राणां तथा घोषः सर्वेषां सन्निगच्छताम् ॥८  
 कल्पक्षये महाराज शब्दः सुतुमुलोऽभवत् ।  
 क्षोभितो नागराजश्च नागाः क्षोभं समाययुः ॥९  
 पृथिवी चान्तरिक्षं च सर्वं शब्दमयं बभौ ।  
 ततः स पीण्ड्रको राजा सात्यकि वृष्णिनन्दनम् ॥१०  
 गदयैव जघानाणु सत्सरं रणशोचिदः ।  
 युयुधानो बली राजन्वामुदेवं जघान ह ॥११  
 तयोश्च तुमुलः शब्दः प्रादुरासीन्महारणे ।  
 चतुर्णां प्रध्वता राजम्बरस्परवर्धपिणाम् ॥१२

ब्रह्माण्डक्षोभणो राजञ्छब्द आसीत्सुदारुण ।  
 तत रज प्रादुरभूत्तस्मिन्सग्राममूर्धनि ॥१३  
 तारका निष्प्रभा राजस्तमस्येव क्षय गते ।  
 उपसि प्रतिबुद्धाया ततो नि शेषता ययौ ॥१४  
 उदितो भगवान्सूर्यश्चन्द्रश्च क्षयमाययौ ।  
 तयोर्मुद्ध प्रादुरभूच्चतुर्णां बाहुशालिनाम् ।  
 देवासुरसम राजन्नुदिते भास्करे महत् ॥१५

तब वे दोनों ही महावीर उस गदा युद्ध में लगे रहे और उनकी गदाओं की टक्कर अथवा एक दूसरे के शरीर में लगने से जो शब्द होता था, वह आकाश तक को व्याप्त कर देता था। जैसा शब्द प्रलय कालीन समुद्रों के उत्प्लवन से उनकी एकाकारिता द्वारा उठने लगता है वैसा ही शब्द उनके गदा युद्ध में होने लगा था। उस विकराल शब्द से नागगण और उनके अधीश्वर भगवान् क्षेप भी क्षुब्ध होगये थे ॥ ८ ९ ॥ पृथिवी और नभ-सर्वत्र ही वह भीषण शब्द भूँज रहा था। उसी समय पौण्ड्र ने भी सात्यकि पर अत्यन्त वेगपूर्वक अपनी गदा चलाई, तभी युयुधान ने भी राजा पौण्ड्र पर भीषण गदा प्रहार किया ॥१० ११॥ इस प्रकार यह सभी महाबली परस्पर में एक दूसरे को नष्ट करने की अभिलाषा से घोर सग्राम कर रहे थे ॥ १२ ॥ उस सग्राम से उठने वाले भीषण शब्द ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को क्षुब्ध कर दिया था। उस युद्ध क्षेत्र में धारे धीरे उत्पन्न हुईं पूल ने आकाश को व्याप्त कर सम्पूर्ण तारामण्डल को ढक दिया, जिससे सर्वत्र अधकार का साम्राज्य छागया कहीं कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। वह अधकार प्रातः काल होने पर मिट सका ॥ १३-१४ ॥ उस समय पश्चिम में चन्द्रमा अस्त हुआ और प्राची में सूर्योदय होगया, तब भी उन महारथियों का युद्ध भयानक रूप से एक निरंतर चलता रहा ॥१५॥

॥ श्रीकृष्ण पौण्ड्रक युद्ध ॥

तत प्रभाते विमले भगवान्देवकीसुत ।  
 शतुर्मच्छञ्जगन्नाय पुर यदरिक्वाश्रमात् ॥१

नमस्कृत्य मुनीन्सर्वान्ययौ द्वारवती नृप ।  
 आरुह्य गरुडं विष्णुर्वेगेन मङ्गता प्रभु ॥२  
 सुमहाञ्छुश्रु वे शब्दस्तेषा युद्ध प्रकुर्वताम् ।  
 गच्छता देवदेवेन पुरी द्वारवतीं नृप ॥३  
 अचिन्तयज्जगन्नाथ को न्वय शब्द उत्थितः ।  
 संग्रामस भवो घोर आर्यशंनेयसयुत ॥४  
 व्यक्तमागतवान्पीण्डो नगरी द्वारकामनु ।  
 तेनप्युद्धं समभवत्पीण्डकेण दुरात्मना ॥५  
 यदूना वृष्णिवीराणा युद्धचतामितरेतरम् ।  
 शब्दोऽय सुमहान्व्यक्तो नाल कार्या विचारणा ॥६  
 इत्येव चिन्तयित्वा तु दध्मौ शङ्ख महारवम् ।  
 पाञ्चजन्य हरि साक्षात्प्रीणय-वृष्णिपुङ्गवान् ॥७  
 रोदसी पूरयामास तेन शब्देन केशवः ।  
 यादवा वृष्णयश्चैव श्रुत्वा शखस्य ते रवम् ॥८  
 व्यक्तमायानि भगवान्पाञ्चजन्यरवो ह्ययम् ।  
 इति ते मेनिरे राजन्वृष्णयो यादवास्तथा ॥९

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! स्वच्छ प्रभात की उपस्थिति पर जगन्नाथ भगवान् श्रीकृष्ण ने बदरीवन से द्वारकापुरी जाने का विचार किया ॥ १ ॥ उस समय उन्होंने वहाँ उपस्थित हुए मुनिजनों से नमस्कार पूर्वक विदा लेकर अपने गरुड वाहन द्वारा बड़े वेग से प्रस्थान किया ॥२॥ द्वारका के निकट पहुँचने पर उन्हें दूर से ही उस महा भयकर युद्ध का कोलाहल सुनाई देने लगा ॥३॥ उस शब्द को सुन कर वे विचार करने लगे कि यह कोलाहल कहाँ हो रहा है ? मैं समझता हूँ कि उसमें सात्यकि की ललकार का शब्द भी सम्मिलित है ॥४॥ इससे प्रतीत होता है कि पीण्ड अवश्य ही द्वारका पर चढ़ आया है, जिसकी रक्षा के लिये सात्यकि का उससे युद्ध हो रहा है । निस्सन्देह यह कोलाहल उसी संग्राम का है ॥५-६॥ यह सोच कर उन्होंने वृष्णियों का उस्ताह बढ़ाने के उद्देश्य से अपने पाञ्चजन्य को बजा कर घोर शब्द किया, जिससे सम्पूर्ण नम-

मण्डल परिपूर्ण होगया । उस शख-ध्वनि को सुन कर सब यादवों और वृष्णियों ने सोचा कि यह पाञ्चजन्य शंख की ही ध्वनि है, इससे प्रतीत होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ आ पहुँचे हैं ॥७-६॥

निर्भयाः समपद्यन्त वृष्णयो यादवाश्च ते ।  
तस्मिन्नेव क्षणे दृष्टस्ताक्षर्यं च पतता वरः ॥१०

ततश्च देवकीसूनुर्दृष्टैर्याश्वेश्वरः ।  
सूताश्च मागधाश्चैव पुरा यान्ति जगत्पतेः ॥११

स्तुत्या स्तुतं हरिं विष्णुमीश्वरं कमलेक्षणम् ।  
ततश्च यादवाः सर्वे परिव्रूजनादंनम् ॥१२

कृष्णस्तु गरुडं भूयो गच्छ त्व नाक्रमुत्तमम् ।  
इत्यर्वा गरुडं विष्णुविसृज्य यदुत्तमनः ॥१३

दारुकं पुनराहेदं रथमानय मे प्रभो ।

स तथेति प्रतिज्ञाय रथमादाय सत्वरम् ॥१४

रथोज्य भगवन्देव किमत कृत्यमस्ति मे ।

इत्युक्त्वा रथमादाय प्रणम्याग्ने स्थितो हरेः ॥१५

उस समय सभी यादवों में नवीन साहस और उत्साह भर गया, उनका भय दूर होगया । तभी गरुडध्वज भगवान् यादवेश्वर श्रीकृष्ण सब के देखते-देखते वहाँ आगये । उनके आते ही सूतों और वन्दीजनों ने आगे बढ कर उनकी स्तुति की ॥ १०-११ ॥ फिर यादवगण उन्हें सब ओर से घेर कर रुडे होगये । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने गरुड से उनरते हुए कहा—हे गरुड ! तुम अब स्वर्ग सोक के लिये प्रस्थान करो । यह कहने पर गरुड वहाँ से चले गये, तब उन्होंने अपने सारथी को पुकारा—हे दारुक ! तुम मेरे रथ को शीघ्र यहाँ लाओ । दारुक ने 'जो आज्ञा' कह कर तुरन्त ही रथ लाकर उनके आगे खडा कर दिया और बोला ॥१२-१४॥ हे भगवन् ! यह रथ उपस्थित है, अब आगे या कर्त्तव्य बताइये । यह कहता हुआ दारुक उनके सामने न्यित हुआ ॥ १५ ॥



गतेऽथ गरुडे विष्णु रथमारुह्य सत्वरम् ।  
 यत्र युद्धं समभवत्तद्य याति स्म केशव ॥१६  
 तत्र गत्वा महाराज युध्यतां च महात्मनाम् ।  
 पाञ्चजन्यं महाशंख दध्मौ यदुवृषोत्तमा ॥१७  
 पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु कृष्ण दृष्ट्वा रणोत्सुकम् ।  
 सात्यकिं पृष्टतः कृत्वा वासुदेवमुपागमत् ॥१८  
 क्रुद्धोऽथ सात्यकी राजन्वारयामास पौण्ड्रकम् ।  
 न गन्तव्यमितो राजन्नेप धर्मः सनातनः ॥१९  
 जित्वा मां गच्छ राजेन्द्र परं योद्धुं महारणे ।  
 क्षत्रियोऽसि महावीर स्थिते मयि रणोत्सुके ॥२०  
 एष ते गर्वमखिलं नाशयिष्यामि संयुगे ।  
 इत्युक्त्वा चाग्रतस्तस्थौ गच्छतो यादवेश्वरः ॥२१

गरुड के प्रस्थान करने पर भगवान् श्रीकृष्ण उस रथ पर चढ़ कर क्षर्त्तव्य वेगपूर्वक युद्ध क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए ॥१६॥ वहाँ असंख्य वीरों के मध्य में पहुँच कर उन्होंने अपने पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि की ॥१७॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण को युद्ध के लिये तत्पर देख कर राजा पौण्ड्र ने सात्यकि को छोड़ कर श्रीकृष्ण का मामना किया ॥१८॥ तब उसे सात्यकि ने क्रोध पूर्वक ललकारा—हे राजन् ! मुझ लड़ते हुए को छोड़ कर अन्य के पास जाकर भिटना बदायि उचित नहीं है । युद्ध के नियमों के अनुसार तुम मुझे परास्त करके ही अन्यत्र जा सकते हो । हे वीर ध्रेष्ठ ! तुम क्षात्र धर्म के पालन करने वाले हो, जब मैं युद्ध में उत्सुकता पूर्वक सामना कर रहा हूँ तब दूगरे के पास जाना धर्म के विरुद्ध ही है ॥१९-२०॥ अब तुम यहीं ठहरों, मैं तुम्हारे अठवार को चूर्ण लिये डालना हूँ । यह कहते हुए सात्यकि राजा पौण्ड्र के सामने सटे हो-गये ॥ २१ ॥

पौण्ड्रस्य शिनिनप्ता तु पश्यतः केशवस्य ह ।  
 अघज्ञाप शिनेः पौत्रं कृष्णमेव जगाम ह ॥२२

निर्भत्स्य सहसा भूय सात्यकि क्रोऽमूर्च्छितः ।  
 गदया प्राहरत्पीण्ड्रं वासुदेवस्य पश्यत ॥२३॥  
 यथाप्राणं यथायोग सात्प्रति सत्यविक्रम ।  
 हृष्ट्याऽथ भगवानेव सात्तिकं प्रशश स ह ॥२४॥  
 निवार्य सात्यकिं कृष्णो यथेष्टं क्रियतामसी ।  
 उपारमद्याथायोग सात्यकिं कृष्णवारित ॥२५॥  
 स ततः पीण्ड्रकौ राजा वासुदेवमुवाच ह ।  
 भो भो यादव गोपाल इदानीं क्व गतो भवान् ॥२६॥  
 त्वा द्रष्टुं मया संप्राप्तो वासुदेवोऽस्मि साम्प्रतम् ।  
 हत्वा त्वां सबलं कृष्णं बलैर्वहुभिरन्वित ॥२७॥  
 अहमेको भविष्यामि वासुदेवो महीतले ।  
 यच्चक्र तव गोविन्दं प्रथितं सुप्रभं महत् ॥२८॥

यह सम्भाषण श्रीकृष्ण की उपस्थिति में ही हो रहा था । उस समय पीण्ड्र सात्यकि को छोड़ कर भगवान् की ओर ही अग्रसर हो ग रहा ॥२२॥ इस पर सात्यकि ने अत्यन्त क्रोधित होकर उसकी निन्दा की और भगवान् के सामने हा उसके यक्ष स्थल पर गल पूर्वक गदा से प्रहार किया ॥२३॥ सात्यकि के इस साहस और वीरता को देख कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हीं भूरि भूरि प्रशंसा की ॥ २४ ॥ तदनन्तर भगवान् ने सात्यकि को निवारण करते हुए कहा—हे सात्यके ! जैसी उसकी इच्छा हो, वैसा ही उसे करने दो । भगवान् के द्वारा इस प्रकार शान्त किये जाने पर सात्यकि ने उसे छोड़ दिया ॥२५॥ तब राजा पीण्ड्र ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा—हे यादव ! हे भाले ! तुम अब तक कहाँ थे ? देखो, मैं वासुदेव तुमसे मिलने के लिये यहाँ आया हूँ । अभी कुछ देर में तुम्हें रोना के सहित नष्ट करके इस विश्व में मैं ही अकेला वासुदेव रह जाऊँगा ॥ २८ ॥

अनेन तव चक्षणे पीडितोऽस्मि च तद्रणे ।

धममस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम् ॥२८॥

नाशयिष्यामि तत्सर्वं सर्वक्षत्रस्य पश्या ।  
 शाङ्गीति मा विजानीहि न त्वं शाङ्गीति शिष्यते ॥३०  
 शङ्खमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव सम्प्रतम् ।  
 नाशयित्वाऽऽहवे चाह गदी चाह जनाहनम् ॥३१  
 मामेव हि सदा ब्रूयुर्जानन्तो वीर्यशालिन ।  
 आदौ त्वं बलवद् बृहान्हत्वा स्त्रीबालकान्वहून् ॥३२  
 गाश्च हत्वा महागवस्तव सम्प्रति वर्त्तते ।  
 तत्तःऽहं व्यपनेष्यामि यदि तिष्ठसि मत्पुर ॥३३  
 शस्त्रं गृहाण गोविन्द यदि योद्धुं व्यवस्थित ।  
 इत्युक्त्वा बाणमादाय तस्यौ पार्श्वे जगत्पते ॥३४

तुम्हारे अत्यन्त तेजस्वी चक्र ने मुझे बड़ा दुःख दिया है इसलिये तुम्हारे उस चक्र को मैं इन सभी क्षत्रिया की उपस्थिति में नष्ट कर डालूँगा तुम समझने हो कि शाङ्गधर तुम्हीं अकेले हा ? देखो मेरे पास भी शस्त्र वगुण विद्यमान है ॥२६ ३०॥ तुम गाय घारण करने वाले यह जात हो परन्तु मैं तुम्हारे उग गव को भी नष्ट कर दूँगा । क्योंकि मैं भी गाय चक्र और गदाधारी हूँ । विन्व के सभी बल सम्पन्न पुद्गो मे मेरी गाय चक्र और गदाधारी यह कर प्रतिदि है । अपने प्रारम्भ काल में तुमने अनेको बन्हीन वृद्ध, स्त्री और बालको को नष्ट किया था तुम्हारे द्वारा गो-हत्याएँ भी हुई थी इसी कारण तुम अपने वीरत्व के गर्व में फूल गये हो इसलिये यदि तुम युद्ध भूमि से भाग न गये तो मैं तुम्हारे उस गव का सण्डन कर दूँगा । ३१ ३३॥ हे गोविन्द ! यदि मेरे साथ युद्ध करने का साहस हो तो शस्त्र ग्रहण करो । यह कह कर पीण्ड ने धनुष बाण ग्रहण किया और भगवान् जगन्नाथ के सामने तन कर खड़ा होगया ॥३४॥

एतद्वचनमाकर्ण्यं यागुदेवस्य भाषितम् ।  
 स्मितं कृत्वा हरिः कृष्णो बभाषे पीण्डिनं नृपम् ॥३५  
 कामं वद नृप त्वं हि पातक्यस्मि सदा नप ।  
 एती प्राणघाती च स्त्रीरन्ता सर्वथा नृप ॥३६

चक्री भव गदी राजञ्छार्ङ्गी च सततं भव ।  
 नामधेयं वृथा मल्लं वासुदेवेति च प्रभो ॥३७  
 शार्ङ्गी चक्री गदी शंखीत्येवमादि वृथा मम ।  
 किं तु वक्ष्यामि किञ्चित्तु शृणुष्व यदि मन्यसे ।  
 क्षत्रिया वलिनो ये तु स्थिते मयि जगत्पती ॥३८  
 तथाऽनुब्रवते त्वां हि जीवत्येव मयि प्रभो ।  
 यत्तं चक्रं महाघोरमसुरान्तकरं महत् ॥३९  
 तत्काल्यं मम चक्रं तु वृत्तातो न तु वीर्यतः ।  
 आयुधेष्वथ सर्वत्र शब्दसादृश्यमस्ति ते ॥४०

उसकी बात सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने किञ्चित् मुसकाते हुए कहा—  
 'हे राजन् । तुम मुझे गौ, बालक, स्त्री, वृद्ध आदि का हत्यारा और पापी आदि  
 चाहे जो कहलो ॥ ३४-३६ ॥ चाहे मेरा शस्त्र-चक्र गदापाणि नाम निरर्थक ही  
 बशो न हो और चाहे तुम ही शस्त्र-चक्र-गदा-शार्ङ्गधारी क्यों न बन जाओ,  
 परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरी बात सुन लो—मुझ पृथिवी का शासन  
 करने वाले के स्थित रहते हुए कौन-सा क्षत्रिय तुम्हें तुम्हारी इच्छानुसार कह  
 सकता है ? तुमने मेरे असुरान्तक चक्र के विषय में जो बहा है, वह यथार्थ है  
 और तुम्हारा चक्र भी मेरे समान रूप, रंग वाला तो हो सकता है—परन्तु  
 उसकी महिमा ऐसी नहीं हो सकती । तुम्हारे अन्यान्य आयुध भी मेरे आयुधो  
 जैसे रूप वाले हो सकते हैं, परन्तु उनका गुण वंसा नहीं हो सकता ॥३७ ४०॥

गोपोऽहं सर्वदा राजन्प्राणिनां प्राणदः सदा ।  
 गोप्ता सर्वेषु लोकेषु शास्ता दुष्टस्य सर्वदा ॥४१  
 कत्यनं सर्वकार्ये हि जित्वा शत्रून् न पाधम ।  
 अजित्वा किं भवान्त्र ते स्थिते मयि च शस्त्रिणि ॥४२  
 हृत्वा मां व्रूहि राजेन्द्र यदि शयनोऽमि षोडशक ।  
 स्थितोऽहं चक्रमाश्रित्य रथी चात्री गदामिमान् ॥४३

रयमारह्य युद्धाय सन्नद्धो भव मानद ।

इन्युक्त्वा भगवान्विष्णुं सिंहनाद व्यनीनदत् ॥४४

मैं एक तुच्छ खाला होकर भी सदैव सब प्राणियों को जीवन प्रदान करता रहता हूँ । मैं ही इस विश्व में साधुजन का रक्षक और दुष्टों का दमन करने वाला हूँ ॥४१॥ परन्तु, जब मैं शस्त्र ग्रहण करके तुम्हारे सामने युद्ध भूमि में उपस्थित हूँ, तब जब तक तुम मुझे परास्त न कर लो, तब तक इस प्रकार की आत्म प्रशंसा से क्या लाभ है । ॥४२॥ यदि तुम में सामर्थ्य ही तो मेरा वध करने के पश्चात् ही इन प्रकार कहना । जब मैं अपने चक्र, घनुप, गदा, तलवार आदि आयुधों के सहित खारूढ हुआ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, इसलिये तुम भी कवच धारण पूर्वक रथ पर चढ़ कर युद्ध करो । यह कह कर भगवान् श्री-कृष्ण सिंहनाद करने लगे ॥४३-४४॥

॥ श्रकृष्ण द्वारा पौण्ड्रक वध ॥

तत शर समादाय वासुदेव प्रतापवान् ।

पौण्ड्र जघान सहसा निशितेन शरेण ह ॥१

पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु शरैर्दशभिराशुगै ।

वासुदेव जघानाशु वाष्ण्य वृष्णिनन्दनम् ॥२

दारुक पञ्चत्रिंशत्या हयान्दशभिरेव च ।

सप्तत्या वासुदेव तु यादव वासुदेवक ॥३

तत प्रहस्य सुचिर केशव वैशिसूदन ।

दृष्टोऽसाविति मनसा सपूज्य यदुनन्दन ॥४

आकृष्य शाङ्गं बलवान्सधाय रिपुसूदन ।

नाराचेन सुतीक्ष्णेन ध्वज चिच्छेद केशव ॥५

सारथेश्च शिर कायादाहृत्य यदुनन्दन ।

आश्वाश्च चतुरो हत्वा चतुर्भि सायकोत्तमै ॥६

रथं राज्ञः समाहृत्य तदोभौ पाष्णिसारथी ।

चक्रं च तिलश. कृत्वा हसन्किचिदिव स्थितः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसके पश्चात् अत्यन्त पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने तीक्ष्ण बाण से पोण्ड्र पर आघात किया ॥१॥ तब पोण्ड्र ने भी दस बाण चला कर कृष्ण को और पञ्चमीम बाण चला कर उनके सारथी दारुक को भीषण दिया, फिर दस बाणों से घोड़ों पर और सत्तर बाणों से श्रीकृष्ण पर पुनः प्रहार किया ॥२-३॥ उसके इस साहस पर श्रीकृष्ण कुछ समय तक मुसकाते रहे और सोचने लगे कि चलो इसने सामना तो किया ॥४॥ फिर भगवान् ने भी अपने शङ्ख धनुष पर एक सुतीक्ष्ण बाण चढ़ाया और उससे पोण्ड्र के रथ को डबड़ा काट डाली ॥५॥ तथा उसके सारथी का भस्तक भी उसी बाण से कट कर गिर गया । तब उन्होंने चार बाण प्रहार करके पोण्ड्र के रथ में जुड़े हुए चारों अश्व मार डाले ॥६॥ उसी प्रहार के द्वारा उसका रथ विचूर्ण हो गया और दो पाष्णि सारथी भी नष्ट होगये । रथ के पहियों के टुकड़े-टुकड़े हो कर इधर उधर फैल गये । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ खड़े हुए मुसकरा रहे थे ॥७॥

पोण्ड्रको वासुदेवस्तु रथाद्दुत्प्लुत्य सत्वरः ।

आदाय निशित खड्गं प्राहिणोत्केशवाय सः ॥८

स खड्गं शतधा कृत्वा तूष्णीमासीञ्च केशवः ।

ततः पर महाघोरं परिघ काल समितम् ॥९

गृहीत्वा वासुदेवाय वासुदेव. प्रतापवान् ।

प्राहिणोद्वृष्णिवीराय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥१०

तद्विधा जगता नायश्चकार यदुनन्दन. ।

ततश्चक्रं महाघोरं सहस्रारं महाप्रभम् ॥११

त्रिशाद्भारसमायुक्तमायसास्यसममिहहा ।

आदायाथ महाराज केशवं वाक्यमन्नवीत् ॥१२

पश्येदं निशित घोरं तव चक्रविनाशनम् ।

अनेन तव गोविन्द दर्पं दर्पवता वर ॥१३

अपनेप्यामि वाष्ण्य सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।

त्वामुद्दिश्य महाघोरं कृतमन्यद्दुरातदम् ॥१४

यह देव कर राजा पीण्डू अपने दूटे हुए रथ से उछल कर पृथिवी पर खड़ा हुआ और उसने एक तीक्ष्ण खड्ग का प्रहार श्रीकृष्ण पर किया ॥८॥ परन्तु श्रीकृष्ण ने उस खड्ग के सौ खण्ड कर डाले । तब उसने एक भीषण परिघ से उन पर बलपूर्वक प्रहार किया ॥९-१०॥ इस पर उन्होंने उस परिघ के भी दो खण्ड कर डाले । फिर उसने अपना सहस्रधार, अत्यन्त विकट, लौहमय तेजस्वी चक्र हाथ में लेकर उनसे कहा—हे कृष्ण ! मेरे इस अत्यन्त भयानक और तुम्हारे चक्र के नाशक चक्र की ओर देखो । हे गोविन्द ! हे गर्वितो मे श्रेष्ठ ! मैं इसी चक्र से इन राजाओं की उपस्थिति में तुम्हारे अहंकार को नष्ट कर डालूँगा, यह महाघोर चक्र तुम्हारे लिये ही निमित्त कराया गया है ॥११-१४॥

यदि शक्तो हरे कृष्ण दारयेद महास्पदम् ।

इत्युक्त्वा तच्छतगुण भ्रामयित्वा महाबलः ॥१५

चिक्षेपाथ महावीर्यं पीण्डूको नृपसत्तम ।

अवप्लुत्य ततो देशात्तदुत्सृज्य महाबलः ॥१६

सिहनाद महाघोर व्यनद्वीर्यवास्तदा ।

ततो विस्मयमापन्यो भगवान्देवकीसुतः ॥१७

अहो वीर्यमहो धैर्यमस्य पीण्डूस्य दुःसहम् ।

इति मत्वा जगन्नाथ ऽत्पिणतश्च रथोत्तमात् ॥१८

ततः शिला समादाय प्रेषयामास केशवम् ।

ता शिला प्रेषयामास तस्मै यदुकुलोद्बहः ॥१९

हे कृष्ण ! यदि तुम में सामर्थ्य ही तो मेरे इस भयकर चक्र के वेग को रोकें । यह कह कर उसने अपने चक्र को सौ बार घुमाकर भगवान् श्रीकृष्ण पर छोड़ा और सिंहगर्जना करने लगा । उसकी उस समय की वीरता को देख कर भगवान् विस्मित हो उठे ॥१५-१७॥ भगवान् ने पीण्डू के घोर पराक्रम,

साहस और धैर्य की बड़ी प्रशंसा की और अपने रथ पर खड़े हो गये ॥१८॥ फिर उमने एक बहुत भारी तथा बहुत बड़ी शिला लेकर भगवान् के ऊपर फेंकी, परन्तु उन्होंने उसे हाथ में लपक कर पुनः पौण्ड्र पर ही फेंक दिया ॥१९॥

पौण्ड्रेण सुचिरं कालं विन्हीड्य भगवान्हरिः ।  
 ततश्चक्रं समादाय निशित रक्तभोजनम् ॥२०॥  
 दैत्यमांसप्रदिग्धाङ्गं नारीगर्भविमोचनम् ।  
 शातकुम्भमय घोरं दैत्यदानवनाशनम् ॥२१॥  
 सहस्रार शतारं तदद्भुत दैत्यभीषणम् ।  
 ऐश्वर्यवर्भ परम नित्य सुरगणार्चितम् ॥२२॥  
 विष्णुः कृष्णस्तथा शार्गी निन्ययुक्तः सदा हरिः ।  
 जघान तेन गोविन्दः पौण्ड्रक नृपसत्तमम् ॥२३॥  
 तस्य देह विदार्याशु चक्र पिशितभोजनम् ।  
 कृष्णस्याथ करं भूयः प्राप सर्वेश्वरस्य ह ॥२४॥  
 ततः स पौण्ड्रको राजा गतासु प्रापतद्भुवि ।  
 निहत्य भगवान्विष्णुदुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ।  
 प्रतिपेदे सुधर्मा तु यादवैः पूजितो हरिः ॥२५॥

इस प्रकार वे उसके साथ बहुत समय तक लीला करते रहे । फिर उन्होंने दैत्यो को सशक्ति करने वाले तथा देवनाओ द्वारा पूजित अपने अत्यन्त तीक्ष्ण, रक्त-शोषक, गर्भ-विमोचक, दैत्य विदारक, स्वर्ण मण्डित सहस्रघार चक्र को ग्रहण किया ॥२०-२२॥ वह चक्र महान् महिमा सम्पन्न तथा भगवान् श्रीकृष्ण के पास सदैव रहने वाला था । उसी चक्र को उन्होंने राजा पौण्ड्र पर पेरित किया और सभी पौण्ड्र के देह को विदीर्ण करके वह चक्र भगवान् के हाथ में पुनः आगया ॥२३-२४॥ तब मृत्यु को प्राप्त हुआ वह पौण्ड्र धराशायी हो गया और उमकी मृत्यु से हर्षित हुए यादव भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन करने लगे । फिर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सुधर्मा समा में चले गये ॥२५॥



## ॥ पीण्डक वध के पश्चात् ॥

निपादेश ततो राम शक्त्या वीर्यवता वरः ।  
 आजघान स्तनद्वन्द्वे सिंहनाद व्यनीनदत् ॥१  
 तत क्रुद्धो निपादेशो राम मत्त महाबलम् ।  
 गदया लोकविख्यातो जघान स्तनवक्षसि ॥२  
 आहतः स तु तेनाशु बलभद्रो महाबल ।  
 उभाभ्या चैव रामस्तु कराभ्या वृष्णिपुङ्गव ॥३  
 गदा गृह्य महाघोरामायान्ती प्राणहारिणीम् ।  
 दुद्रावाथ निपादेश समुद्र मकरालयम् ॥४  
 धावत्येव तदा राशि एकलव्ये निपादपे ।  
 धावत्येव च रामोऽपि यत्र यातो निषादप ॥५  
 सागर स प्रविश्याशु गत्वा योजनपञ्चकम् ।  
 भीत एव तदा राजन्नेकलव्यो निपादप ॥६  
 कचिद्द्वीपान्तर राजन्प्रविश्यन्यवसत्तदा ।  
 ततो रामो निपादेश जिगाय यदुनन्दन ॥७  
 ता सभा मणिरत्नाढ्या प्रविवेश हृलायुध ।  
 सात्यकियुद्धससक्तस्ता सभा प्रविवेश ह ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजर्ष ! इधर अत्यन्त बलशाली बलरामजी ने एकलव्य के हृदय पर एक अत्यन्त घोर शक्ति का प्रयोग करके सिंहनाद किया ॥१॥ तब उस प्रहार से अत्यन्त क्रोधित हुए एकलव्य ने भी उनके वक्ष-म्यल पर गदा भारी ॥२॥ इस प्रकार धायल हुए बलरामजी ने एक अत्यन्त भयकर और प्राणों के नष्ट करने वाली गदा उठानी, जिसके कारण अत्यन्त भयभीत हुआ एकलव्य युद्धक्षेत्र छोड़ कर समुद्र की ओर भाग गया ॥३-४॥ तब बलरामजी भी गदा ग्रहण किये हुए उसके पीछे-पीछे दौड़े । इस प्रकार पाँच योजन तब भागते से पश्चात् एकनव्य समुद्र में गोता लगाकर अदृश्य होगया और जल से

भीतर ही चलता हुआ एक द्वीप में जाकर रहने लगा । इधर एकलव्य को परास्त और अदृश्य हुआ देख कर बलरामजी वहाँ से लौटे और यादवों की उसी सुघर्षा सभा में जा पहुँचे । उसी समय बनवान सात्यकि भी उस सभा में खा उपस्थित हुए ॥५-८॥

अन्ये च यादवा राजन्यथायोगमुपस्थिता ।  
 आसीनेषु च सर्वेषु वृष्णिवीरेषु सर्वतः ॥६॥  
 अभिवाद्य यथायोग वृष्णि-सर्वांश्च केशवः ।  
 उवाच वचन काले भगवान्देवकीसुतः ॥१०॥  
 दृष्टं कैलासशिखरं शकरो नीललोहितः ।  
 स तु मद्भ्य यदुवराः प्रीतिमाश्च ददौ वरम् ॥११॥  
 तत्र देवा समायाता मुनयश्च तपोधनाः ।  
 दृष्ट्वा मा शंकरश्चैव प्रीतः स्तुत्वा समाययी ॥१२॥  
 अत्यद्भुत मया दृष्टः राज्ञी यादवसत्तमा ।  
 पिशाची द्वौ महाधोरो वदन्ती मामिका कथाम् ॥१३॥  
 मृगया चक्रतुस्तौ तु चिन्तयन्तौ तु मा सदा ।  
 दृष्ट्वा मा तौ तु राजेन्द्राः प्रीतिमन्तौ तपस्विनी ॥१४॥  
 भक्तितनम्रौ महात्मानौ प्रणाम चक्रतुस्तदा ।  
 ततोऽह सर्वथा प्रीतस्तौ नीतौ स्वर्गमुत्तमम् ॥१५॥

कुछ समय में अन्यान्य सभी यादव वहाँ आ-आ कर अपने-अपने स्थान पर बैठ गये । तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उन सब को सत्कारित करके कहा— हे यादव वीरो ! कैलास पर्वत अत्यन्त ही सुरम्य है, मैंने वहाँ भगवान् शंकर के भी दर्शन कर लिये और उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे पर भी प्रदान किया है ॥११॥ उस समय वहाँ अनेको देवगण और मुनिपण भी उपस्थित हुए थे । सभी भगवान् ने शंकर ने वहाँ आकर मेरी स्तुति की ॥१२॥ किन्तु वहाँ मुझे एक अस्मयजनक घटना दिखाई दी । एक रात्रि के समय दो भयंकर पिशाच

मृगया करते हुए वहाँ आकर मेरे विषय में खर्चा करने लगे । फिर उन्होंने मेरे पास आकर अत्यंत हृषं सहित मुझे प्रणाम किया और फिर वहीं तपश्चर्या आरंभ कर दी । उनकी अपने प्रति असाधारण भक्ति देख कर मैंने उन्हें स्वर्गलोक प्राप्त कराया ॥१३-१५॥

तोषयित्वा महादेवं मया चाद्य समागतम् ।  
 ततस्ते वृष्णयः सर्वे देवदेवं शशांसिरे ॥१६  
 सर्वया कृतकृत्यास्ते वृष्णयः केशवाश्रयाः ।  
 यादवाः सर्वे एवैते स्वं स्वं जग्मुर्यथालयम् ॥१७  
 अभ्यन्तरे जगन्नाथः प्रविश्य हरिरीश्वरः ।  
 रुक्मिणीसत्यभामाभ्यामाचचक्षे यथाऽभवत् ॥१८  
 ते प्रीते प्रीतियुक्तेन केशवेन समन्विते ।  
 एतत्ते सर्वं मारयातं केशवस्य विचेष्टितम् ॥१९  
 शशास पृथिवी कृत्स्नां दुष्टान् हत्वा महाबलान् ।  
 नरकं घोरकर्माणं पीण्डकं नृपसत्तमम् ॥२०  
 ह्यग्रीवं निशुम्भं च तथा सुन्दोपसुन्दकौ ।  
 ररक्ष विप्रान्देवेशो मुनीन्मुनिवराचितः ॥२१  
 विप्रेभ्यश्च ददौ वित्तं गाश्च दत्त्वा स केशवः ।  
 अग्निहोत्रं प्रयुञ्जानो ब्राह्मणांश्च सुतर्पयन् ॥२२  
 मृनीश्च ब्रह्माचय ण देवान्यज्ञैरनेकधा ।  
 स्वधया च पितृन्सर्वान्प्रीणयन्नेव सर्वं दा । ॥२३  
 तस्ञ्छासति देवेशे राज्यं निष्कण्टकं प्रभो ।  
 सुखमेव प्रजाः सर्वा जीवन्ति ब्राह्मणादयः ॥२४

इसके पश्चात् मैंने भगवान् शंकर को प्रसन्न किया और फिर आज ही यहाँ आ रहा हूँ । वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! यह सुन कर सभी वृष्णियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा की और कहने लगे—आपका आश्रय प्राप्त करके हम सब धन्य होगये हैं । यह कहते हुए सभी मादव अपने-अपने निवास स्थान

को घने गये ॥१६-१७। फिर भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने भवन में जा पहुँचे और उन्होंने अपनी रुक्मिणी-सत्यभामा आदि रानियों को अपनी यात्रा सब वृत्तान्त सुनाया ॥१८॥ भगवान् के आगमन से वे सब रानियाँ अत्यन्त हर्षित हुईं । हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुम से कहा है ॥१९॥ उन्होंने महाबली नरकासुर, पौण्ड्रक, हयग्रीव, निशुम्म, सुन्द, उपसुन्द आदि को मार फिर पृथिवी का शासन व्यवस्थित किया । उनके इस कार्य से असंख्य मुनि और ब्राह्मण संकट से छूट गये । फिर उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत-सा धन तथा असंख्य गौएँ दान दी और तदनन्तर अग्निहोत्र से ब्राह्मणों को, ब्रह्मचर्य से मुनियों को, यज्ञों से देवताओं को और स्वधा से पितरों को तृप्त किया ॥२०-२३॥ उनके शासन काल में राज्य की सुरक्षा में कोई कष्टक नहीं था और ब्राह्मणादि चारों वर्णों सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे ॥२४॥

## ॥ हंस-डिम्भक उपाख्यान ॥

भूय एव द्विजश्रेष्ठ शंखचक्रगदाभृतः ।  
 चरितं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥१  
 न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतः केशवी कथाम् ।  
 को नु नाम हरेर्विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ॥२  
 शृण्वंस्तथा स्मरन्वाऽपि तृप्तिं याति दिवानिशम् ।  
 पुरुषार्थोऽयमेव को यत्कथाश्रवणं हरेः ॥३  
 कथमासीज्जगद्धेतोर्हंसस्य डिम्भकस्य च ।  
 समितिः सर्वं भूतानां सदा विस्मयदायिनी ॥४  
 विचक्रस्य कथं युद्धं दानवस्य महात्मनः ।  
 स तयोर्मिहतां यात इत्येवमनुशुश्रुम ॥५

राजा जनमेजय ने कहा—हे तपोधन ! भगवान् श्रीकृष्ण के निर्मल चरित्र को बारबार सुन कर भी मैं तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहा हूँ । इसलिये आप उनके पवित्र चरित्र को और भी विस्तारपूर्वक कहिये । उनके चरित्र

को दिन-रात्रि निरंतर रूप से सुनने पर भी कोई पूर्ण तृप्त नहीं हो सकता । क्योंकि प्रभु का चरित्र क्या, वह तो एक महान् पुरुषार्थ ही है ॥१-३॥ हे भगवन् ! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्ण और हस-डिम्भक मे संसार को आश्चर्य मे डालने वाला सग्राम क्यों हुआ था ? दानव श्रेष्ठ विचक्र और उनके मध्य युद्ध होने का क्या कारण था ? सुना जाता है कि विचक्र और वे परस्पर मे मित्र थे ॥५॥

तौ सुतीवीर्यं सपन्नी शिष्यौ भृगुसुतस्य ह ।  
 सर्वास्त्रकुशली वीरो हरेर्लब्धवरो किल ॥६  
 संग्रामः सुमहानासीदित्युक्तं भवता पुरा ।  
 तयोश्च न पयोविप्र केशवस्य जगत्पते. ॥७  
 कस्य पुत्रौ समुत्पन्नी यथाऽभूद्विग्रहो महान् ।  
 अष्टाशीतिसहस्राणि दानवाना तरस्विनाम् ॥८  
 बलान्यथ विचक्रस्य शितशूलधराणि च ।  
 आसन्युद्धे महाराज दानवस्य महात्मनः ॥९  
 यदूनामन्तरं प्रेप्सुर्यदूना युद्धकाङ्क्षया ।  
 देवासुरे महायुद्धे देवाञ्जयति दुर्धरः ।  
 तद्वधार्थं सदा यत्नमकरोच्चैव केशव. ॥१०

वे हस-डिम्भक महाबली, परम शास्त्रज्ञ और भागव के शिष्य थे तथा उन्होंने भगवान् से वर भी प्राप्त किया था ॥६॥ उन दोनों के पिता कौन थे ? उनमे युद्ध किस लिये हुआ था ? विचक्र के पास षट्ठासी हजार दानव सैनिक थे, जिनके पास सुतीक्षण त्रिशूल थे और वे विचक्र की विजय-कामना करते रहते थे । युद्ध की इच्छा से वे सदा ही मादवो के छिद्र खोजते रहते । एक बार जब देवासुर-संग्राम उपस्थित हुआ था, तब उसने देवताओ को हराया था । इधर भगवान् श्रीकृष्ण भी उसे मारने का विचार करते रहते थे । इसलिये मैं इन सब वृत्तांतो को भले प्रकार सुनने के लिये उत्कण्ठित हो रहा हूँ ॥७ १०॥

असीच्छाल्येषु राजेन्द्र ब्रह्मदत्तो नृपोत्तमः ।  
 नाम्ना राजन्स पूतात्मा सर्वभूतदयापरः ॥११

पञ्चयज्ञपरो नित्यं जितात्मा विजितेन्द्रियः ।  
 ब्रह्मविद्वेदविच्चैव सदा यज्ञमयः शिवः ॥१२  
 तस्य भायं महीपाल रूपीदार्यगुणान्विते ।  
 बभूवतुः सुसंपन्ने अनपत्ये नृपोत्तम ॥१३  
 स ताम्ना मुमुदे राजा शक्रा शक्र इवाम्बरे ।  
 नाम्ना मित्रसहो नाम सखा चासीद्द्विजोत्तमः ॥१४  
 तस्य राज्ञो महायोगी वेदवेदान्ततत्परः ।  
 अनपत्यः स विप्रेन्द्रो यथा राजा बभूव ह ॥१५  
 स राजा सहितस्नाम्यामर्चयामास शंकरम् ।  
 पुत्तार्यं शूलिनं शर्वं दश वर्षाण्यनन्यधोः ॥१६  
 स विप्रो वैष्णवं सखं पुत्तार्यं समयोजयत् ।  
 अर्चितस्तेन राजेन्द्र शंकरो नीललोहितः ॥१७  
 आत्मानं दशयामास स्वप्ने राजानमत्रवीत् ।  
 प्रीतोऽस्मि तव भद्रं ते वरं धरय सुव्रत ॥१८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! शाव नामक एक नगर मे अत्यन्त पवित्र विचार वाला ब्रह्मदत्त नामक राजा निवास करता था ॥ ११ ॥ वह पक्ष यज्ञ-रत, जितात्मा, ब्रह्मज्ञानी, वेद विज्ञ यज्ञमय एवं श्रेष्ठ विचारो से युक्त था ॥१२॥ उनकी दो अदम्य रूपवती पत्नियाँ थीं, परन्तु दोनों में से किसी के भी कोई सन्तान नहीं हुई थी ॥१३॥ जैसे स्वर्गस्य सुरपति इन्द्राणी शची के साथ सानन्द रहते हैं, वैसे ही अपनी रानियों के साथ ब्रह्मदत्त भी सुख से जीवन यापन करता था । उसका मित्रसह नामक ब्राह्मण सखा था ॥१४॥ मित्रसह भी वेद-वेदान्तो मे पारंगामी विद्वान् और योग-परायण था, वह भी राजा के ममान ही निःसन्तान था ॥ १५ ॥ राजा ब्रह्मदत्त ने पुत्र-प्राप्ति की कामना से भगवान् शंकर की उपासना करके उन्हें प्रसन्न किया था ॥१६॥ राजा के सखा मित्रसह ने भी पुत्र की कामना से विष्णु भगवान् की आराधना के लिये यज्ञ वा अनुष्ठान किया था । हे राजन् ! राजा ब्रह्मदत्त और उनकी रानियों की आराधना मे प्रसन्न हुए भगवान् शंकर ने एक रात्रि के मध्य स्वप्न मे प्रकट होकर उनसे

कहा था—हे सुव्रत ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न होगया हूँ, इसलिये तुम अपना अभिलषित वर माँगो ॥१७-१८॥

अथ राजा जगन्नाथमुवाचेदं स्मयन्निव ।  
 पुत्रो मम भवेतां हि तथेत्युक्त्वा वृषध्वजः ॥१९॥  
 अन्तर्धानं गतः शम्भुः प्रतिबुद्धस्ततो नृपः ।  
 सोऽपि मित्रसहो विद्वान्देवं केशवमव्ययम् ॥२०॥  
 पञ्चवर्षं जगन्नाथमर्चयामास भक्तिततः ।  
 अर्चितस्तेन विप्रेण देवदेवो जनादनः ॥२१॥  
 पुत्रमेकं ददौ तस्मै स्वात्मना सदृशं हरिः ।  
 ते भार्यो गर्भमाधत्तां तेजसा शंकरस्य ह ॥२२॥  
 विप्रभार्या महाराज वैष्णवं तेज आदधत् ।  
 महिष्यो ते महावीर्यो पुत्री शंकरनिर्मिती ॥२३॥  
 असूयेता महीपाल क्रमेणैव नृपस्य ह ।  
 स तयोश्च महाराज नामकर्मादिकाः क्रियाः ॥२४॥  
 चकार विधिवत्सर्वा विप्रैर्भ्योऽदान्महद्वनम् ।  
 स च विप्रो विनीतात्मा पुत्रमेकं हि लब्धवान् ॥२५॥  
 साक्षादिव जगन्नाथं स्थितं पुत्रात्मना नृप ।  
 जातकर्मादिकं सर्वं ब्राह्मणः स चकार ह ॥२६॥

इस पर प्रसन्न मुख हुए राजा ब्रह्मदत्त ने उनसे निवेदन किया—हे प्रभो ! मैं दो पुत्रों की कामना करता हूँ । यह सुन कर भगवान् शंकर ने 'ऐसा ही होगा' कहा और अन्तर्धान होगये । इस स्वप्न के पश्चात् ही राजा की निद्रा टूट गई । उधर मित्रसह ब्राह्मण भी निरन्तर पाँच वर्ष तक भगवान् विष्णु का आराधन करता रहा, तब उसके आराधन से प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु ने उसे अपने ही समान श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न एक पुत्र होने का वर प्रदान किया । भगवान् शंकर की अनुकम्पा से राजा की दोनों रानियों ने और भगवान् विष्णु की कृपा से मित्रसह ब्राह्मण की भार्या ने गर्भ पारण किया ॥१९-२२॥ फिर समय

आने पर राजा ब्रह्मदत्त की दोनो रानियो ने एक-एक पुत्र प्रसव किया तब राजा ने अत्यन्त आनन्दपूर्वक उन पुत्रो का नामकरण आदि किया और फिर ब्राह्मणो को बहुत-सा धन प्रदान किया । मित्रसह ब्राह्मण की पत्नी ने भी साक्षात् विष्णु भगवान् के समान एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया, तब मित्रसह ने अत्यन्त उमग पूर्वक अपने उस पुत्र का जात कर्मादि संस्कारो को सम्पन्न किया ॥२३-२६॥

तौ कुमारवयं चैव त्रयः सवयसोऽभवन् ।  
वेदानधीष्य ते सर्वाञ्छ्रुत्वा चान्वीचक्षिकी तथा ॥२७  
धनुर्वेदे तथाऽस्त्रे च निपुणास्तेऽभवन्स्तदा ।  
हसो ज्येष्ठो नृपसुतो डिम्भकोऽनन्तरोऽभवत् ॥२८  
स च विप्रसुतो राजञ्जनार्दन इति स्मृतः ।  
अन्योन्यं मित्रतां याताः सर्वे चैव कुमारकाः ॥२९

राजा ब्रह्मदत्त के दोनो पुत्र तथा मित्रसह ब्राह्मण का पुत्र यह तीनो अत्यन्त ही रूपवान् और सम वयस्क थे । धीरे-धीरे वयस्क होते हुए वे तीनो कुमार सभी वेदो और नीति शास्त्रो का अध्ययन करने लगे । इस प्रकार वे कुछ वर्षो मे ही धनुर्वेद तथा सम्पूर्ण शस्त्र-विद्या मे पारगर्त होगये । उन राजा के पुत्रो मे से बडे का नाम हस और छोटे का डिम्भ हुत्रा तथा मित्रसह के पुत्र का नाम जनार्दन पडा । उन तीनो कुमारो मे गहरी मित्रता स्थापित होगई थी ॥२७-२९॥

## ॥ हंस-डिम्भक की तपस्या ॥

हंसश्चै तपश्चतुं तथा डिम्भो महामतिः ।  
मनश्चक्रतुरात्मांशौ शंकरस्य नृपोत्तम ॥१  
गत्वा तु हिमवत्पाश्र्वं तपश्चक्रनुरञ्जसा ।  
उद्दिश्य शंकरं शर्वं नीचग्रीवमुभापतिम् ॥२  
घोर्यास्त्रे चैव नी स्यातामित्याध्याय तु मानसे ।  
एकाग्रौ प्रयती भूत्वा वाय्वम्बुप्राशिनौ नृप ॥३



त्रियज्ञः शंकरः शर्वः शूलपाणिरुमापतिः ।  
 जग्रतः संस्थितं शर्वं चन्द्राढ्यकृतशेखरम् ।  
 तौ दृष्ट्वा प्रीतमनसो नमस्चक्रतुरञ्जसा ॥१०  
 वरं वरय भद्रं वां यथेच्छा वा तथास्तु वै ।  
 तावूचतुस्तदा राजन्प्रीतस्त्वं भगवन् यदि ॥११  
 देवीसुरचमूमुष्यैर्यक्षैर्गन्धर्वदानवैः ।  
 आवामजय्यो सर्वात्मन्नेप नो प्रथमो वरः ॥१२  
 द्वितीयो नो विरूपक्ष रौद्रास्त्राणा च संग्रहः ।  
 माहेश्वरं तथा रौद्रमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत् ॥१३  
 अभेद्यं कवच दिव्यमच्छेद्यं चापि कामुकम् ।  
 परशुं च तथा शर्वं सदा रक्षार्थमेव च ॥१४

इस प्रकार वे दोनों अहंकार और ममता को त्याग कर, मौन के अब  
 सभ्य पूर्वक पाँच वर्ष तक कठोर तपस्या करते रहे तब उन्हें शिवजी की प्रसन्नता  
 प्राप्त हुई । उस समय भगवान् शार उन दोनों के सम्मक्ष प्रकट होगये ॥५-६॥  
 वे भगवान् त्रियज्ञोपवीत और हाथ में शूल धारण किये हुए थे । उन दोनों  
 क्रुमारो ने उन उमापति चन्द्रसेखर भगवान् शकर ने दर्शन करते ही परम प्रसन्न  
 मनसे उनको नमस्कार क्या ॥ १० ॥ तब भगवान् शकर बोले—हे पुत्रो !  
 तुम्हारी जो कामना हो वही मुझ से माँग लो । यह सुन कर उन दोनों ने  
 निवेदन किया—हे भगवन् ! यदि आप हम पर प्रसन्न हुए हैं तो हमारी कामना  
 सुनें—हम देवता, दैत्य, राक्षस, गन्धर्व और असुर आदि से कभी भी न हारें  
 तथा हमारे पाप सब प्रकार के घोर बर्ष वाले महाशस्त्र स्वयं ही एकात्र हो जाय ।  
 माहेश्वरास्त्र, रौद्रास्त्र, ब्रह्मशिरास्त्र, अभेद्य कवच, दिव्य घनुप और परसा हमें  
 बिना प्रयत्न ही उपलब्ध हो जाय ॥११-१४॥

सहायो द्वौ महःदेव भूतो मुद्धे हि गच्छताम् ।  
 एवमस्त्विति देवेश आह भृङ्गिरिटी हरः ॥१५

ततः स्वभवनं गत्वा पितुः पादावगृह्यताम् ।  
 पितुश्च सख्युवलिनी मातुश्च चरणी तदा ॥२३  
 जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कालेन महता नृप ।  
 विद्यापारं महाबुद्धियुक्तेनासावुपेयिवान् ॥२४  
 स च विष्णु हृषीकेश पीतकौशेयवाससम् ।  
 ब्रह्मतत्त्वपरो नित्यमुपास्ते विजितेन्द्रिय. ॥२५  
 ह सश्च डिम्भकश्चैव कृतदारो बभूवतुः ।  
 जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कृतदारो बभूव ह ॥२६  
 सर्वे ते यज्ञनिरताः पञ्चयज्ञपरास्तथा ।  
 स्वदारनिरता. सर्वे गुरुशुश्रूषणे रता. ।  
 धर्म एव परं श्रेय इति ते मेनिरे नृप ॥२७

इसके पश्चात् उन दोनों ने अपने घर जाकर माता-पिता के चरणों में पड़ कर उनकी वन्दना की ॥२३॥ उधर मित्रसह का पुत्र धर्मात्मा जनार्दन भी जितेन्द्रिय रह कर और बुद्धिमत्ता पूर्वक पीताम्बर धारी भगवान् विष्णु की उपासना में तन्मय रह कर ब्रह्मतत्त्व का चिन्तन करने लगा ॥२४-२५॥ फिर हंस, डिम्भ और जनार्दन—इन तीनों का ही विवाह मस्कार सम्पन्न हुआ और तब यह पंच यज्ञ के अनुष्ठान, एक पत्नी व्रत पालन और गुरु-सेवा में तत्पर रहते हुए केवल धार्मिक कार्यों के अनुष्ठान में ही लगे रहते थे ॥२६-२७॥

॥ हंस-डिम्भक का दुर्वासा से वार्तालाप ॥

जनार्दनश्च धर्मात्मा ह मो डिम्भक एव च ।  
 सदः प्रविश्य सप्तस्य नमश्चक्रुर्मुनीश्वरान् ॥१  
 तानागतान्महात्मानो मुनयः शिष्यसयुताः ।  
 अर्घ्यपाद्यासनादीनि चक्रुः पूजा प्रयत्नतः ॥२  
 तौ नृपौ स च विप्रेन्द्रः पर्या प्रतिगृह्य च ।  
 प्रोतात्मानो महात्मान आसते सख्यं नृप ॥३

ततो हंसो बभाषे तान्मुनीन्संयनवाङ् नृप ।  
 पिता हि नौ मुनिश्चेष्टा यष्टुर्मच्छत्ससाधनम् ॥४  
 गन्तव्यं तत्र युष्माभिः सत्रान्ते मुनिसत्तमाः ।  
 राजसूयेन यज्ञेन कृत्वा दिग्विजयं वयम् ॥५  
 याजयिष्याम हे विप्राः पितरं धार्मिकं नृपम् ।  
 आयान्तु तत्र विप्रेन्द्राः न सशिष्याः सपरिच्छदाः ॥६  
 वयमद्यैव सहितौ दिशो जेष्यामहे वयम् ।  
 शक्ता वयमिहैवैतत्कर्तुं सैनिकसंचयैः ॥७  
 आवयोः पुरतः स्यातुं न शक्ता देवदानवाः ।  
 कैलासनिलयाद्देवाद्वरं लब्ध्वा स्वयत्नतः ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर वे धर्मात्मा जनार्दन, हंस और  
 डिम्भक—तीनों ही यज्ञ क्षेत्र में गये और वहाँ पहुँच कर उन्होंने मुनियों को  
 नमस्कार किया ॥१॥ शिष्यो महित स्थित उन मुनियो ने तुरन्त ही उन्हे अर्घ्य,  
 पाद्य और आसनादि देकर उनका सत्कार किया ॥२॥ तब इस प्रकार सत्कृत हुए  
 वे तीनों अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रेष्ठ आसनो पर विराजमान होगये ॥३॥ फिर  
 संयत वाणी वाले हंस ने उन मुनियो से कहा—हे तपस्वियो ! हमारे पिता एक  
 अत्यन्त साधन सम्पन्न यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये इच्छुक है ॥४॥ इसलिये  
 हे मुनिश्चेष्टो ! आप अपने इस यज्ञ को पूर्ण करके मेरे यहाँ पधारने की वृत्ता  
 करें । क्योंकि हम अपने पिताजी के द्वारा दिग्विजय वाले राजसूय यज्ञ को करा-  
 येंगे, इसलिये आप अपने शिष्यो और यज्ञ के उपकरणो के सहित आने का  
 यष्ट करें ॥ ५-६ ॥ हम अपनी सेना के बल पर दिग्विजय की सहज ही आशा  
 करते हैं । हमने कैलास-पति भगवान् शंकर को प्रसन्न करके सब प्रकार के दिव्य  
 वास्त्रास्त्र प्राप्त कर लिये हैं, इसलिये मनुष्य तो क्या, देवता और दैत्य भी हमारा  
 सामना नहीं कर सकते ॥७-८॥

अजय्यौ शत्रुसंघानामस्त्राणि विविधानि च ।  
 इत्युवत्या विररामैव हंसो मदवलान्वितः ॥९

यदि स्तात्तत्र गच्छामो वयं शिष्यैर्नृपोत्तम ।  
 आस्महे वाऽन्यथा राजन्नित्यूचुः किल तापसाः ॥१०  
 ततो देशान्महाराज गन्तुं निश्चितमानसौ ।  
 पुष्करस्योत्तरं तीरं दुर्वासा यत्र तिष्ठति ॥११  
 यतयो नियता भूत्वा मन्त्रब्रह्मनिषेविणः ।  
 ब्रह्मसूत्रपदे सक्तास्तदर्थाभोक्तत्पराः ॥१२  
 निर्ममा निरहंकाराः कौपीनाच्छादनव्रताः ।  
 तमात्मानं जगद्योनिं विष्णुं विश्वेश्वरं विभुम् । १३  
 ब्रह्मरूपं शुभं शान्तमक्षरं सर्वतोमुखम् ।  
 वेदान्तमूर्तिमव्यक्तमनन्तं शाश्वतं शिवम् ॥१४  
 नित्ययुक्तं विरूपाक्षं भूताधारमनामयम् ।  
 ध्यायन्तं सर्वदा देवं मनसा सर्वतोमुखम् ॥१५

हमारे पास असत्य आयुष्य विद्यमान हैं, इसलिये कोई भी शत्रु हमें जीतने में समर्थ नहीं है। यह कह कर बलमद से बन्धा हंस चुप होगया ॥६॥ इस पर मुनियो ने कहा—हे नृपोत्तम ! यदि राजसूय यज्ञ का आपके यहाँ आयोजन हुआ तो हम अपन शिष्यादि के साथ उसमें अवश्य सम्मिलित होंगे ॥१०॥ वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर हंस-डिम्ब ने चलने का विचार किया और फिर पुष्कर क्षेत्र के उत्तरीय तट पर स्थित महर्षि दुर्वासा के आश्रम को चल दिये ॥ ११ ॥ वहाँ ब्रह्मोपासन में तत्पर, वेद निरत, लोकहित की आकांक्षा वाले कौपीन धारी जितेन्द्रिय योगीजन समता और अहंकार को त्याग कर शांत, शुभ, अक्षर, सर्वतोमुख, वेदान्त मूर्ति, अव्यक्त, अनन्त, शाश्वत, शिव, नित्ययुक्त, विरूपाक्ष, भूताधार, अनामय भगवान् विष्णु की सदा आराधना करते रहते थे ॥१२-१५॥

दुर्वाससा सदोपास्यं वेदान्तं करसं गुरुम् ।  
 तर्कं निश्चिततत्त्वार्थां ज्ञाननिर्मलचेतसः ॥१६  
 हंसाः परमहंसाश्च शिष्या दुर्वाससः प्रभो ।  
 गत्वा तत्र महात्मानो ती दृष्ट्वा तूर्ध्वरेतसम् ॥१७

दुर्वाससं महाबुद्धिं विचिन्वानं परं पदम् ।  
 क्रुद्धो यदि स दुर्वासा दग्धुं लोकानिमान्क्षमः ॥१८  
 देवा अपि च य द्रष्टुं क्रुद्धं वै न क्षमाः सदा ।  
 रोपमूर्तिः साद यस्तु रुद्रात्मा विश्वरूपधृक् ॥१९  
 रक्षतकोपीनवसनो हंसः परम एव च ।  
 दृष्टुं न च तयोरेवं बुद्धिरासीन्महामते ॥२०  
 को नामासौ महाभूतः काषायी वर्णवित्तमः ।  
 कश्चायमाश्रमो नाम विहाय च गृहाश्रमम् ॥२१

वहाँ महर्षि दुर्वासा के शिष्य अपने गुरु के सहित भगवान् की उपासना में सदा तत्पर रहते थे । उन दोनों भाइयों ने वहाँ ऊर्ध्वरेता दुर्वासा को परब्रह्म के ध्यान में मग्न देखा, वे महर्षि दुर्वासा यदि क्रोधित हो जाय तो तीनों लोकों को भस्म करने में समर्थ थे ॥१९-२०॥ उस अवस्था में देवता भी उनकी ओर देखने का साहस नहीं कर सकते थे । वे रोप मूर्ति एवं विश्वरूप धारी महर्षि दुर्वासा मूर्तमान् क्रोध जैसे प्रतीत हो रहे थे ॥१९॥ उन महामुनि को इस प्रकार लाल कोपीन धारण किये देख कर हंस-डिम्ब ने विचार किया कि ये काषाय वस्त्र वाला महाभूत कौन है ? जो गृहस्थाश्रम को छोड़ कर अब किस आश्रम का आश्रित है ॥२०-२१॥

गृहस्थ एव धर्मात्मा गृहस्थो धर्मवित्तमः ।  
 गृहस्थो धर्मरूपस्तु गृहस्थो वर्ण एव च ॥२२  
 गृहस्थश्च सदा माता प्राणिना जीवनं सदा ।  
 त विनाऽन्येन रूपेण वर्तन्ते योऽतिमूर्खवत् ॥२३  
 उन्मत्तोऽयं विरूपोऽयमथवा मर्ख एव च ।  
 ध्यायन्निव सदा चायमास्ते वञ्चयिताऽपि वा ॥२४  
 किमेते प्राकृतज्ञाना ध्यायन्त इति किंचन ।  
 वयमेतान्दुरारोहानाश्रमान्तरकल्पकान् ॥२५  
 स्थापयिष्यामहे सर्वान्मन्दबुद्धीनिपत्न्युहे ॥  
 बलादेव द्विजानेताम्बुद्धिविज्ञानतत्परान् ॥२६

असद्ग्राहगृहीतांश्च बालिशान्दुर्मतीनिमान् ।  
 एषा शास्ता च को मूढो न विप्रो वयमत्र ह ॥२७  
 धर्म्यो वर्त्मनि संस्थाप्य पुनर्यास्याव निर्वृती ।  
 इति संचिन्त्य तौ वीरो विप्रेण सहितौ नृप ॥२८  
 जनार्दनेन राजानो मोहाद्भाग्यक्षयान्नुप ।  
 समीप तस्य राजेन्द्र यतेः स यतचेतमः ॥२९  
 गत्वा च प्रोचतुरुभौ दुर्वासिसमतीन्द्रियम् ।  
 यतीश्च नियतान्क्रुद्धौ राजानो राजसत्तम ॥३०

गृहस्थ ही धर्मात्मा, धर्मविद, धर्मरूप और प्रधान वर्ण है। गृहस्थ ही सब प्राणियों के लिये माता स्वरूप है और वही जीवन प्रदान करने वाला है। इस प्रकार श्रेष्ठतम गृहस्थाश्रम को छोड़ कर अन्य आश्रम ग्रहण कर लेने वालों को उन्मत्त अथवा मूर्ख ही समझना चाहिये। इससे हम समझते हैं कि यह तपस्वी नहीं कोई पाखण्डी ही तपस्या के बहाने से यहाँ विराजमान है ॥२२-२४॥ इस प्रकार के साधारण ब्राह्मण आश्रम में अन्तर करके ध्यानासक्त रहते हैं, इन मूर्खों को गृहस्थ बनाया जाना चाहिये। यदि सहज प्रयत्न से यह कार्य न हुआ तो बलपूर्वक इसकी व्यवस्था की जायगी ॥२५-२६॥ इस मूर्ख को न जाने किसने इस प्रकार के ढोंग की शिक्षा दी है? परन्तु, हम इन्हे धर्म मार्ग में प्रवृत्त करके ही अपने घर चलेंगे। हे राजन्! मोह में पड़ कर उन क्षत्रियों ने जनार्दन को अपने साथ लिया और दुर्भाग्य के वशीभूत होकर उन सयत चित्त वाले महर्षि के पास गये ॥२७-२९॥ वहाँ आकर उन्होंने दुर्वासा तथा अन्यान्य यतियों पर क्रोध पूर्वक दृष्टिपात किया ॥३०॥

॥ हस-डिम्भक का दुर्वासा से दुर्व्यवहार ॥

ज्ञानलेशाद्विहीनात्मन् कि ते व्यवसितं द्विज ।  
 कश्चायमाश्रमो विप्र भवता यः समाश्रितः ॥१  
 गृहमेध परित्यज्य कि त्वया साधितं पदम् ।  
 दम्भ एव भवान्व्यवर्तं शङ्को नास्त्यत्र कारणम् ॥२

लोकांश्चेमान्सदा मूढ नाशयिष्यसि निवृत्तः ।  
 एतान्सर्वान्विनेताऽसि नरके पातयिष्यसि ॥३  
 स्वयं नष्टः परान्मुखं नाशयिष्यसि यत्नतः ।  
 अहो शास्ता कथं नास्ति तव मन्दमतेद्विज ॥४  
 सर्वथा त्वद्विनेता च पापो नास्त्यत्र संशयः ।  
 त्यक्त्वेममाश्रमं विप्र गृही भव यतात्मवान् ॥५  
 पञ्च यज्ञान्सदा विप्र कुरु यत्नपरो भव ।  
 ततः स्वर्गं परं गत्वा स्वर्गं हि सुमहत्सुखम् ॥६  
 एष श्रेयः पथो विप्र जीविते चेत्स्पृहा तव ।  
 इत्युक्तवन्ती धर्मात्मा श्रुत्वा विप्रो जनादनः ॥७  
 उवाच च यति दृष्ट्वा प्रणम्यासी सुनीतवन् ।  
 मा ब्रूतामीदृशं वाक्यं राजानो मन्दचेतसौ ॥८

हस-डिम्भक ने कहा—हे ब्राह्मणो ! मैं आपको इस समय ज्ञान-विहीन देखता हूँ । आपका यह कौन-सा आश्रम है, जिसके अनुसार आप यह सब कर रहे हैं ॥१॥ गृहस्थाश्रम को छोड़ कर यह किनकी साधना की जा रही है । इससे स्पष्ट है कि इसमें दम्भ के अतिरिक्त कुछ नहीं है ॥२॥ यह भी प्रतीत होता है कि आपके इस कर्म से सभी लोकों का नाश हो जायगा और इस अकर्म के कारण इन सब ब्राह्मणों को नरक की प्राप्ति होगी ॥३॥ अरे छोटी मति वालो ! तुम स्वयं तो नष्ट हो चुके हो, परन्तु इससे दूसरे भी नष्ट हो जायेंगे । क्या ऐसे कर्म से तुम्हें कोई रोकने वाला नहीं है ? ॥४॥ इससे प्रतीत होता है कि आपको प्रेरित करने वाले पापात्मा हैं, इसलिये आप इस आडम्बरमय आश्रम को छोड़ कर गृहस्थ बनिये और तब पंच यज्ञों के अनुष्ठान को करते हुए आपको यथेष्ट सुख और स्वर्ग की प्राप्ति होगी ॥५-६॥ हे विप्रो ! यदि जीवन की धामना है तो इसी ब्रह्माण मार्ग को अपनाइये । हम-डिम्भक के इन वचनों को सुन कर ब्राह्मण श्रेष्ठ जनार्दन भयभीत होगया और उसने दुर्वागा को प्रणाम करके उन राजकुमारों से कहा कि आप निश्चय ही मन्द बुद्धि वाले हैं ॥७-८॥

अश्राव्यमीदृशं घोरं लोकयोर्भयोरपि ।

को वस्तुमोक्षो मन्दात्मा यदि जीवेत्सवान्धवः ॥६

सर्वथा काल एवायं युवयोर्मन्दचेतसोः ।

समाप्त आयुषः शेषो ब्रह्मदण्डहतौ युवाम् ॥१०

एते हि यतयः शब्दा ज्ञानदीपितचेतसः ।

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥११

ऋते वामीदृशं वावयं कः समर्थो ह्यनुब्रुवन् ।

सर्वथा ज्ञातमस्माभिः समाप्तमिह जीवितम् ॥१२

चत्वार आश्रमाः पूर्वमृषिभिर्विहिता नृपौ ।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ॥१४

तेषामग्रश्चतुर्योऽयमाश्रमो भिक्षुकः स्मृतः ।

आस्ते तस्मिन्महाबुद्धिः स हि पुण्यतरः स्मृतः ॥१४

अब फिर इस बात को आप न बहें, क्योंकि यह वचन इहलोक-परलोक —दोनों में ही सुनने योग्य नहीं है । ऐसा कौन मूर्ख होगा जो बस सहित जीवन की कामना करता हुआ ऐसे वाक्यों को मुख से निकालेगा ? ॥६॥ यह वाक्य तुम्हारे लिये काल के समान हैं । मुझे प्रतीत होता है कि अब तुम्हारी आयु शेष नहीं रही है और तुम पर ब्रह्मदण्ड का आघात होने वाला है ॥१०॥ तुम जिन बुद्ध अन्तःकरण वाले यदियों से ऐसा कह रहे हो, उनके हृदयों में ज्ञान का प्रकाश भर गया है । उस ज्ञानाग्नि से इनके सब कर्म भस्म हो चुके हैं और इस समय यह प्राणों में अपने प्राणों का ह्वन कर रहे हैं ॥११॥ तुम्हारे अतिरिक्त इस प्रकार के वचन और कौन बहेगा ? मैं समझता हूँ कि तुम अब नष्ट जीवन हो चुके हो ॥ १२ ॥ प्राचीन बानीन ऋषियों ने ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ धीर सन्यास यह चार आश्रम कल्पित किये थे ॥१३॥ उन चारों में सन्यासाश्रम को ही सर्वोत्तम माना गया है । इस आश्रम में जीवन व्यतीत करने वाला मनुष्य ही बुद्धिमान एवं पुण्यात्मा है ॥१४॥

नोपासिता भयद्भूयां च वृदाः सम्यग्निनीतवत् ।

ज्ञानं नाप्तं तपस्तेभ्यस्तथा वैवं वदेत् कः ॥१५



अश्राव्यमीदृशं घोरं मया प्राणभृता नृप ।  
 किं करिष्यामि मन्दात्मन्मित्रत्वाद्भवतो नृप ॥१६  
 ज्ञानं यदाप्तं भवता गुरुम्यस्तदत्तं दुःखाय हि केवलं नृप ।  
 ज्ञानं हि धर्मप्रभवं यथेष्टं वलाद्विपापस्य विघातृरूपम् ॥१७  
 युवां विहाय यास्ये वा पतेयं वा शिलातलम् ।  
 पिवेयं वा विषं घोरं पतेयं वा महोर्मिषु ॥१८  
 आत्मानं वात्र संत्यक्त्ये पश्यतां शृण्वतां पुनः ।  
 इत्युक्त्वा विललापैव मा ब्रूतमिति तौ वदन् ॥१९

तुम दोनों ने विनयपूर्वक वृद्ध जनो की कमी सेवा नहीं की है, इसी-  
 लिये तुम्हें उनके द्वारा किसी श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है और तुम्हारे मुख  
 से इस प्रकार के अनर्गल प्रलाप के होने का भी यही कारण प्रतीत होता है  
 ॥१५॥ हे राजन् ! मैं तो अभी अपने जीवन की कामना किये हुए हूँ, इसलिये  
 ऐसे अनिष्टकारी यवनो को सुनने की इच्छा नहीं करता । परन्तु तुम्हारे साथ  
 मित्रता होने के कारण ही आज यह वाक्य सुनने को मिले हैं ॥१६॥ हे राजन् !  
 तुमने गुरुजी से जिस ज्ञान की प्राप्ति की है, वह आज अनुभव न होने के कारण  
 दुःख रूप होगया है, क्योंकि ज्ञान को धर्म का कारण होना चाहिये, परन्तु तुम्हारा  
 ज्ञान पाप का कारण होता हुआ दिखाई देता है ॥१७॥ यदि फिर कभी ऐसी  
 बात हुई तो मैं तुम्हारा त्याग कर दूँगा और पर्वत से गिर कर प्राण दे दूँगा,  
 अथवा भयकर विष-पान करके या समुद्र में गिर कर ही जीवन विसर्जित कर  
 दूँगा ॥ १८ ॥ अथवा तुम्हारे सामने ही मर जाऊँगा । इस प्रकार बहते हुए  
 जनादन ने पुनः वही बात न बहने का उन दोनों राजपुत्रों से अनुरोध किया  
 ॥ १९ ॥

॥ महर्षि दुर्वासा का क्रोध ॥

ततः क्रुद्धोऽयं दुर्वासा घशान्निव तयोरमून ।  
 एकेनाशणाऽयं दुर्वासा रौद्रेणाग्नियजा सदा ॥१

पश्यंस्ती च दुरात्मानो रोपथ्यकुलितेन्द्रियः ।  
 कुर्वन्निव तदा लोकान्भस्मभूतानिमान् नृप ॥२  
 ब्राह्मणं चक्षुषा पश्यन्सीम्येनान्येन केवलम् ।  
 उवाच वचन राजधन्व सत ध्वंसतेति च ॥३  
 इतो गच्छत राजानो कि विलम्बत मा चिरम् ।  
 न वां वचनसम्भूतं रोपं धारयितुं क्षमे ॥४  
 अन्यथा वो महीपालान्सर्वान्दिग्धुमहं क्षमः ।  
 किमतः साहसं वक्तुं कश्च शक्नोति मत्पुरः ॥५  
 दर्पं वा लोकविख्यातः शङ्खचक्रगदाधरः ।  
 व्यपनेष्यति मन्दज्ञी किं वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥६  
 तत उत्थाय धर्मात्मा गन्तुमैच्छद्यतीश्वरः ।  
 ततो निपेद्बुं ह सस्त यतते स्म यतीश्वरम् ॥७  
 तस्य बाहु समादाय हंसो नृपवरोत्तमः ।  
 कौपीन चिच्छिदे क्रूरः कृतान्त इव सत्तम ॥८

वंशम्पादनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर महर्षि दुर्वासा ने दृष्ट होकर उन दोनों को इस प्रकार देखा जैसे उन्हें तत्काल भस्म कर देना चाहते हो । क्रोध के कारण उनकी समस्त इन्द्रियाँ जलने लगी और उस समय वे सब लोको को भस्म करने में उद्यत प्रतीत होने लगे ॥१-२॥ परन्तु, दूसरे नेत्र से उस जनार्दन ब्राह्मण को उन्होंने प्रीति पूर्वक देखा और फिर हंस-डिम्भक से कहा— तुम दोनों यहाँ से अघिलग्य चले जाओ । मेरे वचन मानने में किंचित् भी देर मत करो । क्योंकि तुम्हारे वचनो से मैं इतना क्रोधित हो गया हूँ कि, अब उसके वेग को नहीं रोक पा रहा हूँ ॥३-४॥ मैं क्रोधित होने पर तुम समस्त राजाओं को तत्काल भस्म करने में मैं समर्थ हूँ, मेरे सामने ऐसे वाक्य कौन बोल सक्ता है ? ॥५॥ मैं तुमसे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, तुम्हारे इस गर्व को दाय-पद्म-गदाधारी भगवान् श्रीहरि ही धूँष कर देंगे ॥६॥ यह कह कर धर्मात्मा दुर्वासा यहाँ से चलने लगे तभी राजकुमार हंस ने उन्हें हाथ पकड़ कर रोका और यमराज के समान कर होकर उनकी कौपीन फाड़ दी ॥७-८॥

यतयोऽन्ये पलायन्ति दिशो दश विचेतसः ।  
 कष्टं हंति वदन्विप्रो मित्रभावाज्जनार्दनः ॥८६  
 न्यवारयद्यथाशक्ति किमिदं साहसं त्विति ।  
 दुर्वासाः सत्यधर्मस्तु हन्तुमीशोऽपि तं ततः ॥८७  
 मन्दं मन्दमुवाचेदं हंसं डिम्भकमेव च ।  
 शापेनाहं समर्थोऽपि हन्तुं राजकुलाघमी ॥८८  
 तथापि न करोम्यन्तं यतयो ह्यस्य ते वयम् ।  
 यो हि देवो जगन्नाथः केशवो यादवेश्वरः ॥८९  
 शङ्खचक्रगदापाणिर्गवं वां व्यपनेष्यति ।  
 लोके तस्मिन्यदुश्रेष्ठे रक्षत्येवं जगत्पती ॥९०  
 पुत्रयोः सर्वथा जीवः सञ्जीव इति मे मतिः ।  
 जरासन्धोऽपि वां बन्धुः स च वक्तुं न चेच्छति ॥९१

यह देव कर आश्रम में निवास करने वाले अग्र्यान्व्य मुनिजन वहाँ से भागने लगे । सभी जनार्दन ब्राह्मण ने कहा—कैसे दुःख का विषय है, आप ऐसा दुःसाहस क्यों कर रहे हैं ? यह कह कर उसने राजकुमारों को निवारण करने का बहुत प्रयत्न किया । उसी समय उन्हें भस्म कर देने में समर्थ महर्षि दुर्वासा ने उनसे मधुर शब्दों में कहा—धरे राजकुल में अघम कुमारों ! मैं अपने तपो-बल से तुम्हें अभी नष्ट कर सकता हूँ, परन्तु यदि होने के कारण हम वेंगा नहीं करना चाहते । आज इस पृथिवी का शासन यादवेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण कर रहे हैं, यही तुम्हारे अहंकार मर्द को नष्ट करेंगे । उन जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण के शासन-काल में तुम जीवन धारण विधे हुए हो, यह भी तुम्हारे लिये कम शोभाय की बात नहीं है । यद्यपि राजा जरासन्ध तुम्हारा बन्धु है, परन्तु तुम्हारी जैसी दूषित वाणी तो उगके गुण से भी न निश्चयो ॥८६-९१॥

ईदृशं लोकाविद्विष्टं न हि धर्मपथे सदा ।  
 एतावता स वां बन्धुनं हि भूयो न विप्यति ॥९२  
 विद्वेषो ह्यस्तु वां तस्य मागधस्य महीरतेः ।  
 श्रुत्वेदं घोररूपं तु न हि बन्धुः सरेण चित् ॥९३

धर्मनाशो भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा ।  
 इत्युक्त्वा गच्छ गच्छेति हंसं प्राह पुनः पुनः ॥१७॥  
 जनार्दनमुवाचेद दुर्वासा यतिसत्तमः ।  
 स्वस्त्यस्तु तव विप्रेन्द्र भक्तिरस्तु जनार्दने ॥१८॥  
 संगतिस्तव तस्यास्तु शङ्खचक्रगदाभृतः ।  
 अद्य श्वो वा परश्वो वा साधुरेव सदा भवान् ॥१९॥  
 न हि साधोर्विनाशोऽस्ति लोकयोरुभयोरपि ।  
 गच्छ सर्वं पितुर्ब्रूहि ज्ञात्वा वृत्त यथाऽखिलम् ॥२०॥

तुम्हारे ऐसे व्यवहार को देख कर धर्म पथ पर चलने वाला जरासन्ध भी तुम्हें बन्धु कह कर सम्बोधित न करेगा ॥१५॥ यदि इस वृत्तान्त को यह भगधराज सुन लेगा, तो तुमसे अपनत्व का त्याग कर देगा । यदि ऐसा न करेगा तो उगवा धर्म नष्ट होने में भी सन्देह नहीं है । यह कह कर महर्षि दुर्वासा ने हस-डिम्भक को वहाँ से चले जाने के लिये बारम्बार कहा और फिर विप्र जनार्दन से बोले—हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारा मंगल हो और भगवान् श्रीहरि के चरणों में तुम्हारी अविचल भक्ति बनी रहे ॥१६-१८॥ तुम्हें उन शङ्ख-चक्र-गदाधर भगवान् के दर्शन अवश्य प्राप्त होंगे और तुम आज, कल या परसों में से किसी दिन भी यथार्थ रूप में साधु हो जाओगे ॥१९॥ इहलोक या परलोक में—साधु का विनाश कहीं भी मभव नहीं है । अब तुम अपने घर जाकर अपने पिताजी को भी इस सम्पूर्ण वृत्तान्त से अवगत करो ॥२०॥

## ॥ दुर्वासा का द्वारका जाना ॥

ततस्ती ह सडिम्भको कृद्धी कालेन चोदितो ।  
 शिष्यं कमण्डलु चैव द्विदलं दाहमेव च ॥१॥  
 दण्डान्पात्रविशेषांश्च छित्त्वा भित्त्वा च सर्वराः ।  
 तस्मिन्देसे महाराज व्याघ्रं मीमान्यदीदहन् ॥२॥  
 भक्षयित्वा ततो देशात्स्वपुरी तो प्रजग्मतुः ।  
 जनार्दनश्च धर्मात्मा स्नेहादनुपयी तयोः ॥३॥

नष्टाविमाविति तदा स भेने दुःखितः परम् ।  
 गतेषु तेषु सर्वेषु दुर्वासा यतिसत्तामः ॥४  
 पलायनपरान्सर्वानिदं प्राह यतीश्वरान् ।  
 इतो देशाद्विनिगंत्य पुष्करात्पुण्यसंयुतात् ॥५  
 मन्दं मन्दं समाश्वास्य विश्रम्य च ततस्ततः ।  
 प्रविश्य द्वारका देव शंखचक्रगदाधरम् ॥६  
 दृष्ट्वा च तस्मिन् प्रभवे वक्ष्यामो यतिसत्तमाः ।  
 स हि रक्षञ्जगदिदं धर्मवर्त्मनि सस्थितः ॥७  
 आद्यो लोकगुरुर्विष्णुर्यं तात्मा तस्त्ववितिप्रयः ।  
 उद्धृत्य कण्टकान्सर्वाञ्छशास पृथिवीमिमाम् ॥८  
 स च पापान्महाघोरान्सर्वन्पिपापवृत्तान्प्रभुः ।  
 रक्षोघ्नः सकलान्सर्वाञ्ज्ञानेषु नियतारमनः ॥९

यंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर हस्त-दिम्भक ने बाल के यशी-  
 मूत होकर उन मुनियों के शिष्य, कमण्डलु, दण्ड तथा और भी अनेकों पात्रों को  
 तोड़-फोड़ दिया और फिर अपने नगर में वापिस आगये । उस समय जनार्दन  
 ब्राह्मण भी उनके पीछे-पीछे चल रहा था ॥१-३॥ परन्तु मार्ग में वह मन ही मन  
 विचार कर रहा था कि यह दोनों राजा मृतक जैसे ही होगये । जब यह लोग वहाँ  
 से चले आये, तब महापि दुर्वासा ने वहाँ से भागते हुए यतियों को रोते हुए  
 कहा—हे यतिगो ! भय मत करो । अब इस पुण्यमय पुष्कर क्षेत्र को छोड़ कर  
 हम शीघ्र ही द्वारकापुरी के लिये चल दें और वहाँ शंख-चक्र-गदाधर भगवान्  
 श्रीकृष्ण को यह सब वृत्तान्त गुनावें, क्योंकि ये विश्व-शासक भगवान् सगर में  
 परम के एक मात्र प्रसन्न हैं ॥४-७॥ ये ही गव्य प्रबंध के मूल कारण, सभी के  
 परम गुरु और संयतारमा हैं । तप-जानियों के लिये ये अत्यन्त ही प्रिय हैं ।  
 जब वे कंटकाशील पृथिवी के सभी बाँटों को हटा कर उसका शासन करते हैं,  
 तो वे ही दुराधरण में प्रवृत्त इन पापियों का मर्दन करके हमारी सब प्रचार  
 रसा करेगे ॥८-९॥

इदमद्य क्षमं विप्रा यानमद्य विधीयताम् ।  
 साहसं यत्कृतं ताभ्या पात्रभेदादि सत्तमा ॥१०  
 एतत्सर्वं मशेषेण दर्शयाम जनार्दनम् ।  
 तथेति ते प्रतिज्ञाय यतयो ज्ञानचक्षुषः ॥११  
 छिन्न ताभ्या समादाय शिष्य दाक्षमयं तथा ।  
 द्विदल कर्पटं च व कौपीनमथ बल्कलम् ॥१२  
 कमण्डलु तथा राजन्नर्घं प्रोत्तकपालकम् ।  
 एतानन्यान्समादाय द्रष्टुं केशवमाययु ॥१३  
 पञ्च च व सहस्राणि पुरस्कृत्य महामुनीन् ।  
 दुर्वाससं तपोयोनिमीश्वरस्यात्मस भवम् ॥१४  
 अहोरात्रेण ते सर्वे द्वारका वृष्णपालिताम् ।  
 ययुर्दान्ता महात्मानो लोमशा केशर्वाजिताः ॥१५  
 प्रातः प्रविश्य राजेन्द्र वापिकाया यतीश्वराः ।  
 स्नात्वोपस्पृश्य ते सर्वे यत्नेन महता तदा ॥१६  
 द्रष्टुमभ्युद्यता विष्णु वृष्टकौट्टितितत्परम् ।  
 एकरूप समास्थाय सुघर्मायामवस्थितम् ॥१७

इतलिये अब हमें आज ही यहाँ से चल देना चाहिये । उन पापियो ने हमारे जिन पायादि को तोड़-फोड़ दिया है, उन्हें भी भगवान् को दिखाने के लिये साथ ही ले चलें । ऐसा स्थिर करके उन सभी ज्ञानचक्षु यतिगण ने अपने षाष्ठ्युक्त शिष्य, द्विदल, कर्पट, कौपीन, बल्कल वस्त्र, कमण्डलु आदि वस्तुओं को साथ लेकर द्वारका के लिये प्रस्थान किया ॥१०-१३॥ इस यात्रा में महर्षि दुर्गासा सब से आगे और पाँच हजार यतिगण उनके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥१४॥ केन-रहित और केन-युक्त थे सभी महर्षा दिन-रात यात्रा करते हुए द्वारकापुरी में जा पहुँचे तब उन सब ने प्रातः-राल के समय बाबली में स्नान किया और निश्च नैमित्तिक कर्म से निवृत्त हुए ॥१५-१६॥ फिर उन सब ने अद्भुत और मनोह रवरूप धारण किया और तुरन्त ही सुघर्मा सभा में प्रतिष्ठित भगवान् धीरुष्ण के दर्शनार्थ चल दिये ॥१७॥

## ॥ दुर्वासा का श्रीकृष्ण से सम्भाषण ॥

अथ सर्वेश्वरो विष्णुः पद्मार्कजलकलोचनः ।  
 श्यामः पीताम्बरः श्रीमान्प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥१॥  
 किरीटी श्रीपतिः कृष्णो नीलकुञ्चितमूर्द्धंजः ।  
 अव्यवतः शाश्वतो देवः सकलो निष्कलः शिवः ॥२॥  
 क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद्धरिः ।  
 कुमारैरपरैः साद्धं सात्यकिप्रमुखं नृप ॥३॥  
 गोलक्रीडां सुधर्माया मध्ये यादवसत्तमः ।  
 चकार प्रियकृत्कृष्णो युयुधानेन केशवः ॥४॥  
 ममाय प्रथमो गोलस्तव पश्चाद्भ्रुविव्यति ।  
 इति ब्रू वंस्तदा विष्णुः सात्यकि कमलेक्षणः ॥५॥  
 पाश्र्वस्था यादवास्तस्य वसुदेवपुरोगमाः ।  
 उद्ववप्रमुखा राजन्नासेदुः खवन्निदस्रवै ॥६॥  
 अन्यव्यापाररहितो भूतात्मा भूतभावनः ।  
 विजहार यथा रामः सुग्रीवेण पुरा नृप ॥७॥

वेशम्गायत्री ने कहा—हे राजन् ! उस समय कमल नयन, श्याम वर्ण, पीताम्बर, भृश यतन, थोड़ा अलवार और निरीदगारी, अरुणत कृष्ण वर्ण के निरने और गुंमित केतु वाले सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण सात्यकि आदि यादव पतिपों के साथ लीला करने के लिये उद्यत होकर गुपुर्गा गमा में विराजमान थे ॥१-३॥ यादव थोड़ा भगवान् श्रीकृष्ण उग गमा में विराजमान होकर सात्यकि के साथ गोनी लीला में लगे थे । लीला के आरम्भ में ही उन्होंने सात्यकि से कहा कि—हे सात्यकि प्रथम मैं गोनी लीला, फिर तुम लीला ॥४-५॥ उस समय वसुदेवजी और उद्ववजी प्रमुक्ति यादव गमा गमा में बड़ी अरुणित थे ॥६॥ जंगे वेतागुग में गुपीव के साथ भगवान् श्रीराम के लिये मे, धंते ही बोई बायं न होंगे पर भगवान् श्रीकृष्ण भी गेम में लग जाते थे ॥७॥

मध्यं दिने महाविष्णुः शंनेयेन सहाच्युतः ।  
 विक्रीड्य सुचिरं कृष्ण उपारंसीत्स यादवः ॥८  
 द्वाःस्थेन वारिताः पूर्वं द्वार्येव च समास्थिताः ।  
 इदमन्तरमित्येवं विविशुस्तां सभां नृप ॥९  
 यत्तयो दीर्घतपसः पुरस्कृत्य तपोधनम् ।  
 दुर्वाससं सुमनसो ददृशुर्यादिवेश्वरम् ॥१०  
 गोलक्रोडासमासक्तं करसंस्थितगोलकम् ।  
 पद्मपत्रविशालाक्षं विष्णुं तं सात्त्विकं हरिम् ॥११  
 एकेनाक्षणा ह्लादयन्तं परेणान्येन गोलकम् ।  
 यतयश्च महाराज प्रत्यदृश्यन्त तत्पुरः ॥१२  
 वृष्णिपः पुण्डरीकक्षः सात्त्विकिर्बलभद्रकः ।  
 वसुदेवस्तथाऽक्रूर उग्रसेनस्तथा नृप ॥१३  
 अन्ये च यादवाः सर्वे सभ्रमं प्रतिपेदिरे ।  
 इदं किमिदमित्येवं व्याशङ्कमनसोऽभवन् ॥१४  
 पृष्ठतोऽप्यनुगच्छन्ति दिग्धक्षन्त जगत्त्रयम् ।  
 अर्धकौपीनवसनं स्मरन्तं कमपि द्विजम् ॥१५  
 अन्तस्तापसमायुक्तं छिन्नदण्डधरं यतिम् ।  
 अन्तर्ज्वलन्तं रोषेण हंसासादितकल्मषम् ॥१६

उन श्रीडा के चलते हुए मध्याह्न काल होगया, तब उनकी एक बाजी  
 पूर्ण हुई ॥८॥ उन तपस्वी यतियों को सभा-द्वार पर पहुँचे हुए कुछ देर हो चुकी  
 थी और द्वारपाल द्वारा रोके जाने पर वे सभा स्थल में प्रविष्ट नहीं हो सके थे ।  
 फिर अनुमति प्राप्त होने पर वह सम्पूर्ण मुनि-समूह सभा भवन में आ पहुँचा  
 ॥९-१०॥ तब उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने हाथ में गोली लिये हुए,  
 सात्त्विक के गाय श्रीडा में तन्मय हो रहे हैं ॥ ११ ॥ उस समय वे एक नेत्र से  
 श्रीडा को और दूसरे नेत्र से उन आये हुए यतियों को देख रहे थे ॥ १२ ॥ उन  
 यतियों के सहित महर्षि दुर्वासा को वहाँ आये देख कर भगवान् श्रीकृष्ण, बल-  
 रासरी, सात्त्विक, क्युरेक, क्रूर, उग्रसेनकी तथा अन्यत्र उपस्थित



यादवगण विस्मय पूर्वक उनकी ओर देखने लगे ॥ १३१४ ॥ उस समय महर्षि दुर्वासा की भयकर मुद्रा को देख कर ऐसा प्रतीत होता था कि उनके क्रोधानल में पड़ कर नीनो लोक भस्म हो जायेंगे । उनके मुख पर उनके मन का सन्तप्त और चिन्तनशील होना स्पष्ट आभासित हो रहा था । उनके हाथ में दृढ़ हुआ दण्ड स्थित था तथा वे एक आधी कौपीन धारण किये हुए थे और हस्त के द्वारा तिरस्कृत होने के कारण क्रोधानल का कोप बढ़ रहा था ॥१५ १६॥

नेत्रोत्थितमहार्वाहं प्रेक्षन्त यादवेश्वरम् ।  
 दुर्वासस ते ददृशुर्भीता यादवसत्तमा ॥१७  
 किं करिष्यत्यसौ क्रुद्ध किं वा वक्ष्यति न प्रभु ।  
 इति प्राञ्जलय सर्वे यादवा प्रतिपेदिरे ॥१८  
 इदमासनमित्येव किञ्चिदूचुश्च वृष्णय ।  
 तत कृष्णो हृषीकेश किञ्चिदुत्प्लुत्य तत्पुर ॥१९  
 इदमासनमित्येव स्थीयतामिह निर्वृत ।  
 अहमद्य स्थितो विप्र किंकरोऽस्मीति चाब्रवीत् ॥२०

वे जब भगवान् वृष्ण की ओर देख रहे थे तब उनके नयों से रोप की ज्वाला निकलती प्रतीत हो रही थी । इससे सभी यादव नितान्त भयभीत होकर विचार करने लगे कि अब न जाने कौन-सी वितति आने वाली है और हमारे स्वामी इनसे क्या कहेंगे ? ऐसा तर्क वितर्क करते हुए वे यादव महर्षि के सामने हाथ जोड़ कर खड़े होगये ॥१७ १८॥ फिर उन यादवों ने महर्षि से कहा—हे महर्षे ! आप वृषया इस आसन पर विराजमान हों । तभी सहसा भगवान् श्री-वृष्ण भी शीघ्रता से उठ कर महर्षि के सामने जाकर बोलें—हे ब्रह्मन् ! यह आसन है इस पर सुन्द पूर्वक बैठिये, और अपने मुझ रावण को आशा कीजिये ॥ १९-२० ॥

तत विचिदिवासीन आसने यतिविग्रह ।  
 आसने स स्थिते तस्मिन्वतयो धीतमत्सरा ॥२१

आसनानि यथायोग भेजिरे निर्वृता. किल ।  
 अर्षादिसमुदाचार चक्रे कृष्णः किरीटभृत् ॥२२  
 आह भूयो हृषीकेशो यति दुर्वासस प्रभुम् ।  
 किमर्थं ब्रूहि विप्रेन्द्र अस्मिन्प्रत्यागमा हि वः ॥२३  
 दृष्टं वा ह्यथवा किञ्चित्कारण चास्ति वो महत् ।  
 स-यासिनो द्विजश्रेष्ठा ययं विगतवल्मपा ॥२४  
 निःस्पृहाश्च सदा यूयमस्मतो द्विजपुङ्गवाः ।  
 प्रार्थ्यं नाम न चैवास्ति स्पृहा नैवास्ति वो यत ॥२५  
 स्पृहाप्रैरित्कर्माणि. क्षत्रियान् यान्ति सुव्रताः ।  
 निल्प्यमाणमत्माभिर्विप्र किञ्चिन्न दृश्यते ॥२६  
 न जाने कारण ब्रह्मन्पुष्पमदागमन प्रति ।  
 एतावता चानुमेय किञ्चित्कारणमस्ति वै ॥२७  
 तद्ब्रूहि यदि विद्येत त्वत्तो ज्ञास्यामहे वयम् ।  
 इत्युक्तवति देवेशे चक्रपाणी जनाहने ॥२८  
 तस्यापि राणन्विप्रस्य भूयः कोपो महानभूत् ।  
 तस्मादभ्यधिकः पूर्वात्कोपः सजायते महान् ॥२९

यह सुन कर यति श्रेष्ठ दुर्वासा उम आसन पर बैठ गये तब अन्यान्य  
 यतिगण भी यथा योग्य स्थान पर विराजमान हुए तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण  
 ने अर्घ्य-पादादि देकर यथोचित पूजन के पश्चात् उनसे कहा—हे विप्रेन्द्र ! आप  
 अपने यहाँ पधारने का प्रयोजन बताने की कृपा करिये ॥ २१-२२ ॥ आप सर  
 पाप-रहित देह वाले और स-यास मार्ग पर चलने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं ॥२४॥  
 इतलिये हम से आपकी कुछ कामना तो हो नहीं सकती, फिर आपके आने का  
 क्या कारण, यह बहुत कुछ विचारने के पश्चात् भी हम स्थिर नहीं कर पा रहे हैं  
 ॥२५॥ रतना हो समझ रहे हैं कि अवश्य ही कोई विशेष कारण रहा होगा,  
 अन्यथा इतनी दूर चल कर आने से क्या तात्पर्य था ? कुछ भी हो, आपको इस  
 स्थिति में देख कर हम अत्यन्त दुःखी और उद्विग्न हैं ॥ २६-२७ ॥

कारण कहने की कृपा कीजिये । हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुन कर महर्षि दुर्वासा के हृदयस्थ क्रोध में कई गुणा वृद्धि होगई ॥२६-२६॥

दिग्दक्षन्निव लोकांस्त्रीन्भक्षयन्निव पश्यतः ।

रोपरक्तेक्षण. क्रुद्धो हसन्निव दहन्निव ॥३०

उवाच वचनं विष्णुं दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः ।

न जाने इति कस्मात्त्वं ब्रूषे नी यादवेश्वर ॥३१

जानामि त्वां महादेवं वञ्चयन्निव भापसे ।

पुरातना वयं विष्णो पूर्ववृत्तान्तवेदिनः ॥३२

यथा हि देवदेवोऽसि मायामानुपदेहवान् ।

निगूहसे प्रभुरतः कस्मान्नो जगतीपते ॥३३

सोऽसि ब्रह्माविदां मूर्तिस्तवैतत्परमं पदम् ।

यदभ्यर्च्यं पुरा ब्रह्मा यच्च ज्ञाना वयं पुरा ॥३४

यतो विश्वमिदं भूतं तदेतत्परमं पदम् ।

यच्च स्थूलं विजानन्ति पुरा तत्त्वेन चेतसा ॥३५

उस समय उनकी आकृति ऐसी होरही थी, जैसे वे देखने मात्र से ही तीनों लोकों का भक्षण कर लेंगे अथवा उन्हें भस्म कर डालेंगे । फिर भी उन क्रोधासक्त नयनों वाले महर्षि दुर्वासा ने भगवान् श्रीकृष्ण से हँसते हुए ही कहा — हे यादवेश्वर ! आ१ अनजान क्यों बन रहे हैं ? क्योंकि मैं तो आपको महादेव समझता हूँ, तब आप अपने मायामय वचनों में भ्रमाना क्यों चाहते हैं ? हे विष्णो ! आप पुरातन होने के कारण अनेक प्राचीन वृत्तान्तों के ज्ञाना हैं ॥३०-३२ ॥ आप तो देवताओं के भी देवेश्वर हैं, आपने अपनी माया से ही इस रूप को धारण किया है, फिर हे पृथिवीपते ! आप अपने को हमसे क्यों दिखा रहे हैं ? ॥३३॥ वेद के जानने वाले ज्ञानीजन आपसे जिस रूप को मानते हैं और उन्हें ध्यानागत में जो रूप प्राप्त होता है, आप वही रूप एव वही परमपद हैं । हे प्रभो ! प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने सहित हम सभी मुनिजन जिग तस्य को गठन करते भी न जान सके तदा बहु-से कष्ट उद्यम कर अन्त में हम जिस

सत्त्व का निरूपण कर सके तथा जिसके द्वारा यह सगार उत्पन्न हुआ है, वह परमपद आप ही हैं ॥३४-३५॥

पुराविदोऽथ विश्वेश तदेतत्परम वपु ।  
 कर्मणा प्राप्यते यत्तु यत्स्मृत्वा निर्मृता वयम् ॥३६  
 प्रत्यक्षमपि यद्रूप नैव जानन्ति मानुषा ।  
 नहि मूढधियो देव न वय तादृशा हरे ॥३७  
 न जाने इति यद्ब्रूषे किमत साहम वच ।  
 ये हि मूल विजानन्ति तेषा तु प्रविवेचनम् ॥३८  
 कुर्वत किं फल देव तव केशिनिपूदन ।  
 वेदान्ते प्रथित तेजस्त्व चेद विचार्यते ॥३९  
 ये च विज्ञानतृप्तास्तु योगिनो धीतकल्मषा ।  
 पश्यन्ति हृत्मरोजेऽपि तदेवेद वपु प्रभो ॥४०  
 वेदयंदगीयते तेजो ब्रह्मेति प्रतिपाद्य वै ।  
 तदेवेद विजानेऽह रूपमंश्वरमेव च ॥४१  
 वैष्णव परम तेज इति वेदेषु पठ्यते ।  
 अवगच्छाम्यह विष्णो तदेवेद वपुस्तव ॥४२

हे हरे ! पुरावेत्ताओ ने अपने सत्त्व ज्ञान की शक्ति से शरीर का स्थूल कह कर निरूपण किया है, परन्तु जिसे विविध कर्मों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और जो अत्यन्त आनन्ददायक है, उस रूप के प्रत्यक्ष होते हुए भी सामान्य जीव जानने में समर्थ नहीं होते, उस प्रकार के मूढ बुद्धि मनुष्य हम नहीं हैं ॥३६-३७॥ आपने द्वारा अनभिज्ञता प्रकट किये जाने पर मुझे बड़ा विस्मय है । हे केशव ! जिनके लिये ससार का सभी वृत्तान्त दृष्टिगोचर है, उनसे अपनी अनभिज्ञता प्रकट करने से लाभ भी क्या है ? वेदान्त के अध्ययन द्वारा आपने जिस स्वरूप का विश्रजन चिन्तन करते हैं और जो स्वरूप पवित्र देह वाले ज्ञानी योगियों को हृदय में दिखाई देता है, हे प्रभो ! आरका यह स्वरूप वही जो है ॥३८-४०॥ आपके जिस रूप का वेदों में प्रतिपादन होने के कारण

पण्डितजन सदा गुण गान क्रिया करते हैं, आपके उम ईश्वरीय रूप से मैं भने प्रकार परिचित हूँ ॥ ४१ ॥ हे नाथ ! वेदो ने जिस परम तेजोमय स्वरूप का वर्णन किया है, वह तेज-सम्पन्न देह आपका ही तो है ॥४२॥

य ओमित्युच्यते शब्दो यस्य वागिति गीयते ।  
 स एवासि प्रभो विष्णो न जाने इति मा वद ॥४३  
 परोक्षं यदि किञ्चित्स्यात्तव वक्तुं प्रयुज्यते ।  
 न जाने इति गोविन्द मा वादी साहस हरे ॥४४  
 विश्वं यदा प्रादुरासीद्यस्मिँल्लीनं क्षये सति ।  
 इदं तद् ईश्वरं तेजस्त्ववगच्छामि केशव ॥४५  
 कर्ता त्वं भूतभव्येश प्रतिभासि सदा हृदि ।  
 यद्यद्रूपं स्मरे नित्यं तदादेवासि मे हृदि ॥४६  
 वायुरेव यदा विष्णुरिति मे धीयते मतिः ।  
 तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥४७  
 आकाशो विष्णुरित्येव कदाचिद्धीयते मतिः ।  
 तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥४८  
 पृथिवी विष्णुरित्येतत्कदाचिद्धीयते मतिः ।  
 तदा पार्थिवरूपस्त्वं प्रतिभासि सदा मम ॥४९

जो ओंकार एव वाणीयुक्त वह कर प्रगिष्ट है, वह वाणी मय प्रणव आप ही हैं, इनत्रिये आपको अनजान नहीं धनना चाहिये ॥ ४३ ॥ यदि आप परोक्ष में कुछ कहना चाहते हैं तो अवश्य ही बंसा करें, परन्तु अनजान न बनें ॥४४॥ हे नाथ ! यह सतार त्रिग देह से उत्पन्न होकर उगी में विनीत होता है, वह तेजस्वी देह आपका ही है, इसे मैं भाने प्रकार जानता हूँ ॥४५॥ हे भूत भव्येश्वर ! मैं अपने हृदय में आपको कर्ता रूप में स्थित समझता हूँ और मैं जब त्रिग स्वरूप का स्मरण करता हूँ, तब आप उगी रूप में मेरे सामने प्रत्यक्ष होते हैं ॥४६॥ हे प्रभो ! जब मैं अपने हृदय में आपको वायु के रूप में देखना चाहता हूँ, तब आप मुझे वायु रूप में अवगिष्ट प्रतीत होते हैं ॥ ४७ ॥ जब मैं

आपका आकाश रूप से ध्यान करता हूँ तब आप आकाश स्वरूप ही दिखाई देते हैं ॥४८॥ जब ऐसी भावना होती है कि आप पृथिवी स्वरूप हैं तब आप मुझे पृथिवी के रूप में ही दिखाई देते हैं ॥४९॥

रसोऽयं देव इत्येव कदाचिच्चिन्त्यते मया ।  
 तदा रसात्मना विष्णो हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥५०॥  
 यदा त्वं तेज इत्येवं स्मर्ता स्या पुरुषोत्तम ।  
 तदा तद्रूपस षन्नः प्रतिभासि सदा हृदि ॥५१॥  
 चन्द्रमा हरिरित्येवं तदा चान्द्रमसं वपु ।  
 निरीक्ष्य चक्षुषा देव ततः प्रीतोऽस्मि केशव ॥५२॥  
 यदा सौरं वपुरिति स्मर्ता स्या जगतीपते ।  
 तदा तद्भावनायोगात्सूर्य एव विराजसे ॥५३॥  
 तस्मात्सवं त्वमेवासि निश्चिता मतिरीदृशी ।  
 अतो न जानेऽहमिति वक्तुं नेशो जनार्दन ॥५४॥  
 इत्यर्थे संस्थितो विष्णो पीडा नो नैव चिन्त्यसे ।  
 अत्यन्तदुःखिता विष्णो वयं त्वामनुसंस्थिताः ॥५५॥  
 ईदृशीयमवस्था नो नैता स्मरसि केशव ।  
 एतत्पुनर्भाग्यमतो नष्टमित्येव चिन्तये ॥५६॥

जब कभी आप रस रूप में प्रतीत होते हैं, तब आप रस स्वरूप ही दिखाई देने लगते हैं ॥५०॥ जब आपके प्रति तेज बुद्धि होती है, तब आप हृदय में तेज स्वरूप होकर ही प्रकट हो जाते हैं ॥ ५१ ॥ हे केशव ! जब मैं आपको चन्द्रमा समझता हूँ तब आप चन्द्रमा रूप से प्रत्यक्ष होते हैं ॥५२॥ जब मैं सूर्य रूप से आपका स्मरण करता हूँ, तब आप सूर्य रूप से हृदय में दिखाई देते हैं ॥५३॥ इसीलिये हे जनार्दन ! मुझे विश्वास है कि आप ही सर्व स्वरूप हैं, अतः आप अपने को किसी विषय से अनभिज्ञ मत कहिये ॥५४॥ क्रीडा में तन्मय होने के कारण आप हमारे सक्क की ओर ध्यान नहीं दे पाये हैं, हे विष्णो ! हम अत्यन्त प्रसन्न होकर

घोर विपत्ति की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया है, इसी से हमें प्रतीत होता है कि अब हमारा सौभाग्य नष्ट हो रहा है ॥५६॥

मन्दभाग्या वयं विष्णो यतो नो न स्मरेः प्रभो ।  
 कौचित्क्षत्रियदायादौ गिरीशवरगवितौ ॥५७  
 नाम्ना हंसडिम्भको च वाघे ते नो जनार्दन ।  
 गार्हस्थ्यं हि सदा श्रेयो वदन्ताविति केशव ॥५८  
 इतस्ततश्च धावन्ती वदन्ती बहु किल्बिषम् ।  
 अयुक्तं बहु भापन्ती धर्षयन्ती च नः सदा ॥५९  
 इदमन्यत्कृतं देव असह्यं पापमुच्यते ।  
 पश्येदं बहुधा देव भिन्नं भिन्नं सहस्रशः ॥६०  
 शिष्यं च दारवं पात्रं द्विदलान्वेषुकान्वहून् ।  
 इदमप्यपरं पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥६१  
 कौपीनं बहुधा छिन्नं तदस्माकं महद्दनम् ।  
 कृतं कपालमाक्षेण कमण्डलु जगत्प्रभो ॥६२  
 त्वं तु नो रक्षसे नित्यं क्षालं वं व्रतमास्थितः ।  
 चित्तं चित्रमिमं देव रक्षस्यसि सदाऽनिशम् ॥६३

हे प्रभो ! इन प्रकार अब हम भाग्यहीन होगये हैं, इसीलिये तो आपने भी हमारी ओर ध्यान नहीं दिया है । हे ईश्वर ! हंस और डिम्भक नामक दो क्षत्रिय पुत्र भगवान् शंकर से घर प्राप्त करके अत्यन्त गवित होगये हैं, उन्होंने हमें बड़ा दुःख दिया है । उनका कहना है कि गृहस्थाश्रम ही सदा ब्रह्माण्ड है ॥५७-५८॥ इपर-उपर विचरण करते हुए उन दोनों ने हमसे धनेक अवगान-जनक और अयुक्त शब्द कह कर हमारा घोर त्रिराजार किया है ॥५९॥ यह देखिये हमारे शिष्य, द्विदल, वन-दण्ड तथा अन्यान्य पात्र भी उन्होंने तोड़-फोड़ दिये और हमारे मट्ठापन स्वल्प कौपीन को भी पाड़ डाला । उन्होंने मेरे कमण्डलु को फोड़ कर उसे भी लपार मान रहने दिया है ॥६०-६२॥ धारने क्षत्रिय धर्म

के पालन पूर्वक हमारी सदा रक्षा की है, फिर भी ऐसी विचित्र घटना घटित हो ही गई ॥६३॥

किं करिष्यामि मन्दात्मा मन्दभाग्या वयं विभो ।  
 किन्नः शरणमर्द्यं तद्ब्रूहि जगतां पते ॥६४  
 जीवन्ती तौ यदि स्यातां नष्टा लोका इमे त्रयः ।  
 न विप्रा न च राजानो न वैश्या न च पादजाः ॥६५  
 अत्यन्तबलिनी मत्तौ तीक्ष्णदण्डधरौ नृपौ ।  
 न तयोः पुरतः स्थातुं शक्ना देवाः सवासवाः । ६६  
 न च भीष्मो न वा राजा वाह्लीको भीमविक्रमः ।  
 यो हि वीरो जरासन्धः क्षत्रियाणा भयकरः ॥६७  
 नैव च प्रायशः स्थातुं गिरीशवरदर्पिणोः ।  
 तयोः कृष्ण हरे शक्तौ नित्यमप्रतिसङ्गिनोः ॥६८  
 तस्मात्त्वं जहि तौ वीरौ रक्ष लोकानिमान्प्रभो ।  
 अन्यथा रक्षसीत्येव व्यर्थः शब्दोऽत्र जायते ॥६९  
 बहुनाऽत्र किमुक्तेन रक्ष रक्ष जगत्त्रयम् ।  
 इत्युक्त्वा विररामैव दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः ॥७०

हे विभो ! अब हम अमाने क्या करें ? हम आपकी शरण में आये हैं, अतः हमारी रक्षा का उपाय भी आप ही बताइये ॥६४॥ वे दोनों क्षत्रिय-कुमार नष्ट न हुए तो तीनों लोकों का ही नाश कर डालेंगे और तब विप्र, राजा, वैश्य और शूद्र में से कोई भी शेष न बचेगा ॥६५॥ वे दोनों ही महाबली और घोर दण्ड धारण करने वाले हैं । इन्द्रादि देवता भी उनका सामना करने में समर्थ नहीं हैं ॥ ६६ ॥ भीष्म, राजा वाह्लीक तथा क्षत्रियों के लिये अत्यन्त भयावह महावीर जरासन्ध भी उन शिव-धरदानियों के सामने नहीं टिक सकते । इसलिये हे हरे ! हे कृष्ण ! आप शीघ्र ही उन दोनों को मार कर त्रैलोक्य-रक्षण का कार्य कीजिये । अन्यथा आपके 'रक्षक' नाम का क्या अर्थ रह जायगा ? ॥ ६७-६९ ॥ हे नाथ ! बहुत कष्ट व्यर्थ है, आप शीघ्र ही तीनों लोकों को बचाइये, यह कह कर महर्षि दुर्वासा क्रोध से मूर्च्छित हो गये ॥७०॥



## ॥ भगवान के यहाँ मुनियों का भोजन ॥

यतेर्वचनमाकर्ण्य मन्दमुच्छ्वस्य केशव ।  
 दुर्वाससं समालोक्य बभाषे यादवेश्वरः ॥१  
 क्षन्तव्यं भवता सर्वं दोष एव ममैव हि ।  
 शृणु वाक्यं ममैतत् श्रुत्वा शान्तिपरो भव ॥२  
 जेष्यामि तौ रणे विप्र हंसं डिम्भकमेव च ।  
 गिरीशो वा वरं दद्याच्छक्रो वा धनदोऽपि वा ॥३  
 यमो वा वरुणो वाऽपि ब्रह्मा वाऽथ चतुर्मुखः ।  
 सबली सानुजो हत्वा पुनर्दास्यामि वो रतिम् ॥४  
 सत्येनैव शपाम्यद्य मा रोपवशगो भव ।  
 रक्षा वोऽहं करिष्यामि हत्वा तौ च नृपाघ्नौ ॥५  
 जानामि तौ दुरात्मानौ युष्मद्दोषकरौ हि तौ ।  
 श्रुतं च पूर्वमस्माभिस्तीक्ष्णदण्डधराविति ॥६  
 अत्यन्तबालिनौ मत्तौ गिरीशवरदपितौ ।  
 नात्पप्रयत्नसंसाध्यौ जरासन्धहितं पिणो ॥७

वंशम्पापनजी ने कहा—हे राजन् ! यदि श्रेष्ठ दुर्वासाजी की बात सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने एक दीर्घ श्वास छोड़ी और फिर उनकी ओर देखते हुए बोले ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! यह सभी दोष मेरा है, इसलिये मेरे अपराध को क्षमा करके मेरी बात सुनें ॥२॥ भगवान् दांकर, सुरपति इन्द्र, धनपति पुत्रेय अथवा यम, वरुण, ब्रह्मा आदि में से किसी ने भी उन्हें वर प्रदान किया हो, तो भी मैं सत्यपूर्वक कहता हूँ कि हंस-डिम्भक को मार कर आप सब की अवश्य ही रक्षा करूँगा ॥३-५॥ मुझे शत है कि उन्होंने आपको अत्यन्त बर्षा दिया है, क्योंकि आपने दण्डित किये जाने का समाचार मैं पहिले ही सुन चुका हूँ ॥६॥ वे महाबली भगवान् दांकर के वरदान से अत्यन्त शत्रुकारी हो गये हैं और जरासन्ध के शापव होने से भी न्यून धन द्वारा वर में नहीं किये जा सकते ॥७॥

प्राणानपि तयो राजा दास्यत्येव न संशयः ।  
 जरासन्धो महीपालो विना तौ जयते महीम् ॥८  
 जये तयौविप्रवर्यं तत्र श्रेयो भवेत्ततः ।  
 यत्र यत्र तु तौ गत्वा स्थितावित्यनुशुश्रुम ॥९  
 तत्र तत्र च हन्ताऽहं नास्ति कार्या विचारणा ।  
 गच्छध्वं यतय. स्वरं निजकार्यपरायणाः ॥१०  
 अचिरेणैव कालेन जेष्यामि रणपुङ्गवौ ।  
 ततः प्रीता प्रसन्नात्मा थादवेश्वरमाह स. ॥११  
 स्वस्त्यस्तु भवते कृष्ण जगता स्वस्ति कुर्वते ।  
 किन्तु नाम जगन्नाथ दु साध्य तव केशव ॥१२  
 सिलोकेश त्रिधामाऽसि सर्वसंहारकारकः ।  
 देवानामपि देवेश सर्वत्र समदर्शन. ॥१३  
 विष्णो देव हरे कृष्ण नमस्ते चक्रपाणये ।  
 नमः स्वभावशुद्धाय शुद्धाय नियताय च ॥१४  
 शब्दगोचर देवेश नमस्ते भवतवत्सल ।  
 अज्ञानादथवा ज्ञानाद्यन्मयोक्तं क्षमस्व तत् ॥१५  
 त्वमेवाहं जगन्नाय नवयोरन्तरं पृथक् ।  
 अतः क्षमस्व भगवन्क्षमासारा हि साधवः ॥१६

राजा जरासन्ध उनका प्राणपन से साथ देगा, इस लिये वह उन दोनों का सहायक न हो सके, ऐसा प्रयत्न करना होगा । इसी प्रकार उन्हें जीता जा सकता है, इसके लिये मैं यथोचित उपाय करूँगा । वे जहाँ जहाँ जाय, वही-वहीं उनको मारने का अवसर देवता होगा । अब आप यहाँ से पधारें, मैं अवश्य ही उनका संहार करूँगा ॥८-१०॥ भगवान् श्रीकृष्ण के सान्त्वनापूर्ण वचनों से दुर्वासाजी को अत्यन्त हर्ष हुआ और वे कहने लगे ॥११॥ हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! हे केशव ! आपके द्वारा ही विश्व का कल्याण समभव है, क्योंकि आपके लिये कोई भी कार्य अमंभव नहीं हो सकता ॥१२॥ आप तीनों लोकों के स्वामी, तीन धाम रूप, सर्व संहारी, देवताओं के भी ईश्वर, सर्व व्याप्त तथा समदर्शी

हैं ॥१३॥ हे विष्णो ! हे देव ! हे हरे ! हे चक्रपाणे ! आपको नमस्कार है । मैंने जाने, अनजाने में यदि कुछ अनुचित वचन बहे हों तो उन्हें क्षमा करने की कृपा करें ॥१४-१५॥ हे भगवन् ! हे जगन्नाथ ! आपका ही कहना है कि आप में और मुझ में कोई भेद नहीं है, फिर साधुजन तो वैसे ही क्षमावान् रहते हैं, इसलिये भी आप मुझे क्षमा कीजिये ॥१६॥

क्षन्तव्यं भवता विप्र क्षमासारा वयं सदा ।  
 संन्यासिनः क्षमासाराः क्षमा तेषां परं बलम् ॥१७  
 क्षमा मोक्षकरी नित्यं तत्त्वज्ञानमिव द्विज ।  
 क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः ॥१८  
 क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन क्षमां पालयत स्वकाम् ॥१९  
 प्रत्यक्षज्ञानसंयुक्ता यूयं सर्वे यतीश्वराः ।  
 य एते यतयो विप्राः पूजनीया मयाऽद्य वै ॥२०  
 भोक्तव्या यतयो विप्रा भिक्षुकाः सर्व एव हि ।  
 तथेति ते प्रतिज्ञाय भोक्तुमच्छन्हरेर्गृहे ॥२१  
 ततः स्वभवनं विष्णुः प्रविश्य हरिरीश्वरः ।  
 चतुर्विधं तथाऽऽहारं कारयित्वा यथाविधि ॥२२  
 भोजयामास तान्सर्वान्यतीन्यतिवराचितः ।  
 छित्त्वा छित्त्वा च देवेशो दुकूलानि मृदूनि सः ॥२३  
 ददौ तेभ्यस्तदा विष्णुः सर्वेभ्यो जनमेजय ।  
 ते च प्रीता यथायोगं यथापूर्वं ततो गताः ॥२४

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं तो सदा ही क्षमा-युक्त रहता, हूँ, परन्तु इस समय तो आप मुझे क्षमा करें, क्योंकि संन्यासियों के लिये तो क्षमा ही परम बल है ॥१७॥ हे ब्रह्मन् ! तत्त्व ज्ञान के समान ही क्षमा से भी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि क्षमा ही धर्म, क्षमा ही सत्य, क्षमा ही दान और क्षमा ही यश है ॥१८॥ वेद-ज्ञानियों ने क्षमा को ही स्वर्ग की सोपान कहा

है, इसलिये क्षमाबल की सावधानी से रक्षा करनी चाहिये ॥१६॥ समस्त यतिगण प्रत्यक्ष ज्ञान वाले होते हैं, इसलिये जो यतिगण यहाँ पधारे है, उन सबकी आज पूजा करूँगा ॥२०॥ वैसे भी आप सब भिक्षुक हैं, इसलिये आज मेरे यहाँ भोजन करने की कृपा करें। भगवान् के इस अनुरोध को दुर्वासा आदि यतियों ने मान लिया ॥२१॥ तदनन्तर भगवान् ने अपने भवन में जाकर उनके लिये चार प्रकार की भोजन सामग्री तैयार कराई और उन्हें यथाविधि भोजन से तृप्त किया और श्रेष्ठ मृदु वस्त्र में से फाड़-फाड़ कर उन्हें पहनने को प्रदान किया। हे राजन् ! उनके द्वारा इस प्रकार सत्कृत हुए यतिगण अत्यंत प्रसन्न हुए और उनका गुण-गान करते हुए अपने नियत हुए स्थान को गये ॥२२-२४॥

॥ हंस के दूत का श्रीकृष्ण के यहाँ आना ॥

दुर्वासास्त्वय तत्रैव नारदेन महात्मना ।  
 चिन्तयन्ब्रह्मणस्तत्त्वं विजहार यथासुखम् ॥१  
 भगवानपि गोविन्दस्तयोर्वासिममन्यत ।  
 ततस्तौ हंसडिम्भकौ तस्मिन्काले महीपतिम् ॥२  
 ब्रह्मदत्तं महीपालं पितरं वीर्यशालिनम् ।  
 प्रावोचतामिदं वाक्यं समन्ताज्जनससदि ॥३  
 राजसूयं महायज्ञं पितः कुरु सुयत्नतः ।  
 अस्मिन्मासि नृपश्रेष्ठ यतावो यज्ञसिद्धये ॥४  
 आवा तेऽद्य महाराज दिशा विजयतत्परी ।  
 यतिष्यावो बलैः सार्द्धं गजै रश्वै रथैरपि ॥५  
 संभारा यज्ञसिद्धयर्थं मानेतव्या नृपोत्तम ।  
 तयेति स महाबाहो ब्रह्मदत्तोऽब्रवीत्तदा ॥६  
 जनाहं नस्तु विप्रेन्द्रो दृष्ट्वा साहसतत्परी ।  
 अशक्यमिति मन्वानो वयस्यं हंसमब्रवीत् ॥७

यैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर महर्षि दुर्वासा ने द्वारका में नारदजी के पास निवास किया और उनके साथ ब्रह्मउत्त्व पर चर्चा करते हुए

आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे ॥१॥ भगवान् ने भी उन दोनों के वहाँ रहने का अनुमोदन किया था । इधर हंस-डिम्बक अपने पिता के पास पहुँचे और वहाँ उन्होंने सब सभासदों की उपस्थिति में कहा—हे पिताजी ! अब आप राजसूय यज्ञ का आरम्भ कीजिये । हम इसी महीने में यज्ञ को सम्पन्न कराने के लिये विशेष रूप से प्रयत्नवान् होंगे ॥२-४॥ आज ही हम रथ, अश्व, गज, पंढल सेना और सामन्तों को साथ लेकर दिग्विजय करने के लिये यहाँ से चल पड़ेंगे ॥५॥ हे नृपोत्तम ! अब आप यज्ञ की समस्त सामग्रियों के एकत्रित किये जने विषयक आदेश दीजिये । पुत्रों की यह बात सुन कर राजा ब्रह्मदत्त ने कहा—ठीक है, यही करो ॥६॥ परन्तु उस समय हंस-डिम्बक की इस व्ययं दुःसाहस पूर्ण कामना को सुन कर ब्राह्मण श्रेष्ठ जनार्दन से अपने सखा हंस से इस प्रकार कहा ॥७॥

शृणु हंस वचो मह्यं श्रुत्वा निश्चित्य वीर्यवान् ।

आयुष्मन्साहसं कर्तुं मुद्यतोऽसि नृपोत्तम ॥८

स्थिते भीष्मे जरासन्धे बाह्लीके च नृपोत्तमे ।

किं च वीरेषु सर्वेषु यादवेषु नृपोत्तम ॥९

भीष्मो हि बलवान्वृद्धः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।

सिःसप्तकृत्वः पृथिवी यो जिगाय भृगूत्तमः ॥१०

तं युद्धे जितवान्भीष्मः सर्वक्षस्य पश्यतः ।

जरासन्धस्य यद्वीर्यं तद्भवान्वेत्ति संयुगे ॥११

वृष्णिवीरास्तु ते सर्वे कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।

तत्र कृष्णो हृषीकेशो जितदानुः कृती सदा ॥१२

जरासन्धेन सहितः सदा युद्धे जितश्रमः ।

प्रमुद्ये तस्य न स्यातुं शक्तो जीवन् नृपोत्तमः ॥१३

यत्नभद्रस्तया मत्ताः क्रुद्धो यदि भवेद्बली ।

सोकानिमान्समाहर्तुं शक्नोतीति मतिर्मम ॥१४

हे सगे ! पहले मेरी बात पर विचार करो, फिर अपना बर्ताव्य स्थिर करना । मैं तो गमनात्ता हूँ कि तुम्हारा यह निश्चय केवल एक दुःसाहस मात्र है

॥८॥ इस समय भीष्म, जरासंध, बाह्लीक और वीर श्रेष्ठ यादव इस पृथिवी पर विद्यमान हैं, उन सब के रहते हुए तुम्हारा ऐसे कार्य में उद्यत होना अवश्य ही अनुचित कार्य होगा ॥६॥ जिन भृगुवशी परशुरामजी ने इस पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन किया था, उन्हीं को जितेन्द्रिय भीष्म ने असंख्य क्षत्रियों की उपस्थिति में हरा दिया था । फिर जरासन्ध का पराक्रम भी तुमसे छिपा हुआ नहीं है ॥१०-११॥ वृष्णीवशी वीर भी सब प्रकार के युद्धों में कुशल हैं, उनमें भगवान् श्रीकृष्ण ने तो असंख्य शत्रुओं को जीता है ॥१२॥ उन्होंने अनेकों बार जरासन्ध से युद्ध किया है, रणभूमि में उनका सामना करने वाला कोई भी राजा जीवित नहीं रहता ॥१३॥ बलान्मत्त बलरामजी यदि किसी प्रकार हट्ट हो जाय तो वे अकेले ही त्रिलोकी का विनाश करने में समर्थ हैं ॥१४॥

तथा च सात्यकिर्वीरः शक्तो जेतुं रणे रिपून् ।  
 तथाऽन्ये यादवाः सर्वे कृष्णमाश्रित्य द शिताः ॥१५॥  
 अस्माभिश्च कृतः पूर्वं विरोधो यतिभिः सह ।  
 दुर्वासा यतिभिः सार्द्धं गतो द्रष्टुं स केशवम् ॥१६॥  
 इति श्रुतं नृपश्चेष्ट ब्राह्मणाद्भोक्तुमागतात् ।  
 तथा सति तथा सिद्धयेत्ताया चिन्त्यं च मन्त्रिभिः ॥१७॥  
 ततः पश्चाद्विधास्यामो राजसूयं महाकलुम् ।  
 को नाम भीष्मो मन्दात्मा वृद्धो हीनबलः सदा ॥१८॥  
 आवयोः पुरतः स्यातुं शक्तः स किल वृद्धकः ।  
 यादवा इति चिन्तं न शक्ताः स्यातु रणे द्विज ॥१९॥  
 कश्च कृष्णः पुरः स्यातुं बलदेवश्च मत्तकः ।  
 शंनेयश्चापि विप्रैर्द्र स्यातुं न इति चिन्तय ॥२०॥

यादववीर सात्यकि भी युद्ध में शत्रुओं को परास्त करने की क्षमता रखते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रय में रहने वाले अन्याय यादवगण भी असाधारण वीर हैं ॥१५॥ भोजन करने के लिये यहाँ आने वाले ब्राह्मणों ने बताया था कि हमारे द्वारा दुर्भवंहारप्रसूत महर्षि दुर्वासा अनेकों यतियों के

सहित भगवान् श्रीकृष्ण के पास द्वारका पहुँच गये हैं ॥१६-१७॥ यदि राजसूय यज्ञ ही करना चाहते हो तो प्रथम अपने मंत्रियों से मन्त्रणा करके संभावित सक्तों से बचने का उपाय करलो । जनार्दन के यह विचार सुनकर हंस बोला—अरे, मन्दात्मा भीष्म तो अब बंसे ही बलहीन हो चुका है ॥१८॥ युद्ध क्षेत्र में वह बृद्ध हमारा क्या सामना करेगा ? हाँ, यादवगण हमारा सामना करें तो कोई विस्मय का विषय नहीं है ॥१९॥ परन्तु, तुम यह विश्वास रखो कि बलराम, कृष्ण या सात्यकि में से कोई भी यादव मेरा सामना करने में समर्थ नहीं होगा ॥२०॥

जरासन्धस्तु धर्मात्मा बन्धुरेव सदा मम ।

गच्छ विप्र यदुश्रेष्ठं ब्रूहि मद्बचनात्त्वरन् ॥२१

दीयतां करसर्वं स्वं यज्ञार्थं सुन्दरं बहु ।

लवणानि बहून्यद्य गृह्य केशव मा चिरम् ॥२२

वागच्छ त्वरितं कृष्ण न ते कार्यं विलम्बनम् ।

इति ब्रूहि यदुश्रेष्ठं याहि त्वरितविक्रमः ॥२३

न ब्रूयाश्चोत्तरं विप्र शपेयं त्वां प्रियोऽसि मे ।

मित्रभावादिदं ब्रूहि पश्यामि त्वां पुनः पुनः ॥२४

इति स चोदितो विप्रो नोत्तरं प्रत्यभाषत ।

मित्रभावात्ताया राजन् स्नेहाच्च जनमेजय ॥२५

जनार्दनस्तु धर्मात्मा नित्यं गन्तुं समुद्यतः ।

अद्य श्वो वा परश्वो गा गच्छामीति यतेत सः ॥२६

देवं द्रष्टुं जगद्योनिं दाह्य चमगदाधरम् ।

एक एव च धर्मात्मा ह्यमाहास्य सत्त्वरम् ॥२७

प्रातरेव जगामाणु द्रष्टुं द्वारवती द्विजः ।

हरि कृष्णं हृषीवेशं मनसा संस्मरन्निद्विजः ॥२८

अब जरासन्ध जो सो—ये धर्मात्मा मेरे बन्धु हैं । इसलिये हे विप्र । गम गुरन्त ही कृष्ण के पास जाकर उन्हें मेरी आज्ञा गुनाओ ॥ २१ ॥ हमारे

राजसूय यज्ञ के लिये कर दो और बहुत सा लवण लेकर अविलम्ब यहाँ आजाओ ।  
 उनसे यही कहना है । हे विप्रश्रेष्ठ ! तुम मेरे मित्र हो, इसलिये मेरे इस अनु-  
 रोध को मान कर इसी समय कृष्ण के पास जाने के लिये चल दो । तुम्हे मेरी  
 शपथ है जो धव इस विषय मे तर्क-वितर्क करो ॥२२-२४॥ हंस की बात सुन  
 कर जनार्दन ब्राह्मण ने मित्रता के वश फिर कुछ भी नहीं कहा और तभी से  
 यह विचार करने लगा कि मैं आज, कल अथवा परसो तक द्वारका अवश्य पहुँच  
 जाऊँगा ॥२५-२६॥ वहाँ जाने पर मुझे शख-चक्र-गदाधारी उन भगवान् श्री-  
 कृष्ण के अवश्य ही दर्शन होंगे । फिर उसने प्रातःकाल होने से पहिले ही एक  
 श्रेष्ठ अश्व पर आरूढ होकर अकेला ही द्वारका के लिये प्रस्थान कर दिया  
 ॥ २७-२८ ॥

## ॥ श्रीकृष्ण द्वारा पीण्डक वध ॥

ततः प्रायाद्धरिं विष्णुं ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तम ।  
 ह्येनंकेन राजेन्द्र तरित स ययौ नृप ॥१  
 यथा निदाघसमये सूर्पाशुपरिपीडितः ।  
 पान्थो याति जलं दृष्ट्वा त्वरित तत्पिपासया ॥२  
 धावत्येवं तथा विप्रो हरिं द्रष्टुं जनार्दनः ।  
 गच्छन्स चिन्तयामाम चोदयन्हयमुत्तमम् ॥३  
 हंस एव प्रियो मह्यं कुर्यात्प्रियहित मम ।  
 तथाहि प्रे पितस्तेन हरिं पश्याम्यह प्रभुम् ॥४  
 अहमेव सदा धन्यो मत्तो ह्यभ्यधिको न हि ।  
 यतो द्रक्ष्याम्यह विष्णुं वसन्तं द्वारकापुरे ॥५  
 सा हि मे जननी धन्या हरिं दृष्ट्वा पुनर्गतम् ।  
 कृतार्थं सर्वदा देवी द्रक्ष्यत्येपा मनस्विनी ॥६

श्री वंसम्पायनजी कहने लगे—जिस प्रकार धीमे ऋतु मे सूर्य के ताप  
 तथा प्यास से पीडित कोई पथिक जनार्दन को देखकर शीघ्रतापूर्वक उसकी



तरफ अग्रसर होता है उसी प्रकार हम का मित्र वह जनार्दन ब्राह्मण घोड़े पर सवार श्रीकृष्ण की नगरी द्वारका की ओर जाने लगा ॥१-२॥ चलते-चलते वह अपने मन में सोचता जाता था कि हस वास्तव में मेरा प्रिय मित्र है, क्योंकि उसी की प्रेरणा से ऐसा अवसर आ सका कि मैं द्वारका जाकर भगवान् कृष्ण के दर्शनो का लाभ ले सकूँगा ॥३-४॥ आज जब मैं द्वारका पहुँच कर साक्षात् भगवान् के दर्शन करके अपने नेत्रों को सफल करूँगा तब मुझ से बढ़ कर भाग्यशाली और कौन हो सकेगा ? ॥५॥ जब मैं भगवान् का दर्शन करके घर लौटूँगा तो मेरे पुण्य के प्रभाव से मेरी माता भी कृतार्थ हो जायगी और अपने बौ धन्य मानने लगेगी ॥६॥

मुमुक्षुर्निद्रहेमाब्जकिञ्जल्कसदृशप्रभम् ।  
 द्रक्ष्यामि देवदेवस्य चक्रिण शार्ङ्गधन्वन ॥७  
 वपुर्द्रक्ष्याम्यह विष्णोर्नोलोत्पलदलच्छ्रवि ।  
 शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् ॥८  
 नेत्रे ते देवदेवस्य पद्मकिञ्जल्कसप्रभे ।  
 पश्याम्यहमदीनात्मा नष्टदु खोऽस्मि निर्वृत ॥९  
 अपि द्रक्ष्यति योगात्मा सोम्येनैव स्वचक्षुषा ।  
 अपि वा मत्प्रिय ब्रूयात्स्वस्ति चेति च वा वदेत् ॥१०  
 द्रक्ष्यामि चक्रिणो वर्ष्म ततस्त्रलोक्यसन्निभम् ।  
 पादाब्ज चक्रिणो द्रष्टुं त्वरत्येव च मे मनः ॥११  
 यद्य म्यल सदा विष्णो स्फुरद्दत्तप्रभायुतम् ।  
 पश्यन्निव च गच्छामि स्मरश्चानिशामीश्वरम् ॥१२  
 पीतकौशेयवसनं लम्बहारविभूषितम् ।  
 ईपत्स्मिनाघरं विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः ॥१३  
 स्मरतश्च हरे रूप रोमहर्षोऽयमीदृशः ।  
 गच्छन्तश्च पुरो भाति शङ्खचक्रगदासिमान् ॥१४

मैं परम धन्य हूँ कि आज मैं शार्ङ्ग धनुष तथा मुद्गान् चक्र के धारण

करने वाले जगतपूज्य भगवान के स्वर्ण कमल के समान सुन्दर मुखारविन्द को देखूँगा ॥७॥ आज मैं भगवान का शंख-चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष युक्त तथा वन-माला से विभूषित नील कमल के सदृश्य सुन्दर स्वरूप देख कर कृतकृत्य हो जाऊँगा ॥८॥ जब मैं पद्म किजल्क के समान सुन्दर, उन भगवान के अनुपम नेत्रों को देखूँगा, तो मेरे समस्त दुःख तत्क्षण अवश्य ही दूर हरे जायेंगे ॥९॥ क्या वे योगात्मा महाप्रभु मुझे प्रेमयुक्त दृष्टि से देखेंगे ? मुझसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करेंगे ? मैं उनके मुख से मधुर वाक्यों को सुन सकूँगा ? ॥१०॥ मेरा मन उन चक्रपाणि भगवान कृष्ण के चरण कमलों को देखने के लिये उत्सुक हो रहा है, जिनके भव्य स्वरूप में तत्त्वतः सम्ग्र त्रिलोकी व्याप्त है ॥११॥ मैं उन्हीं महामहिमान्वित भगवान का ध्यान करता चल रहा हूँ जिनका वक्षस्थल सदैव रत्नों से अलङ्कृत रहता है ॥१२॥ पीताम्बर तथा कौशेय वसनधारी और चडे-बडे हारों से सुशोभित, किञ्चित मुस्कराते हुये अघरो से युक्त भगवान का दर्शन मैं बारम्बार करूँगा ॥१३॥ अब भी उनके लोकोत्तर मनोरम रूप का स्मरण करके मुझे रोमाच हो रहा है । यद्यपि अभी मैं मार्ग में चल ही रहा हूँ, पर मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो वे शंख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग धारी भगवान मेरे सम्मुख ही खड़े हैं ॥१४॥

यातीव च पुरो भाति मह्यं देवो जगद्गुरुः ।

एषोऽयमिति, मे वक्तुं जिह्वा प्रस्फुरतीव तम् ॥१५

इदं दुःखतरं मन्ये करं देहीति यद्वचः ।

इदं तत्साहसं मन्ये तद्वचस्तस्य भूपतेः ॥१६

हंसस्यंकरदो विष्णुस्तदाज्ञापरिचारकः ।

तस्य सर्वं पुरो गत्वा वक्ताऽहं किल निर्दयः ॥१७

मूढानामग्रणीरस्मि निर्लज्जश्च तथा वदन् ।

करं देहि हरे विष्णो हंसस्य यदुपुङ्गव ॥१८

लवणानि चहूण्याशु दातव्यानि करात्मना ।

इति वक्तुं न मे युक्तं परतस्तस्य शार्ङ्गिणः ॥१९

तथाऽपि मित्तभावात् हंसस्य घोरमीदृशम् ।  
फष्टो ह्ययं मित्तभावो मनुष्याणां कृतात्मनाम् ॥२०

इतना ही नहीं मुझे तो इस समय भी कि वे सामने ही जान पड़ रहे हैं और मेरी जिह्वा यह कहने के लिये फडक रही है कि 'ये वे ही हैं' ॥१५॥ पर उनके सामने पहुँच कर हंस के आदेशानुसार मैं उनसे ऐसा किस प्रकार कह सकूँगा कि—“हे कृष्ण ! तुम कर दो ।” यह तो मेरे लिये अत्यन्त कष्टकर बात होगी । अथवा उनसे यह पहना कि “तुम राजा हंस के कर-दाता हो—आज्ञाकारी सेवक हो” मेरे लिये किस प्रकार संभव होगा ? ॥१६-१७॥ जब मेरे मुख से ये शब्द निकलेंगे कि “तुम कर प्रदान करो और बहुत-सा नमक इकट्ठा कराके राजा हंस के पास पहुँचाओ—तो उस समय मुझसे बड़ कर मूर्ख और लज्जाहीन और कौन कद्दा जायगा ? उन शाङ्ग घनुधारी भगवान के सामने ऐसी बात निकाला कै ? हस्त्यास्पद होगा ॥१८-१९॥ किन्तु राजा हंस का दूत और मित्र होने के कारण मुझे घोर अनुचित बातें भी भगवान से कहनी पड़ेगी । निस्सन्देह सत्पुरुषों के लिये बड़े लोगो की भिन्नता भी बड़ी कठिन होती ॥२०॥

अथवा सर्वविद्विष्णुः सर्वस्य हृदि सस्थितम् ।  
जानात्येव सदा भावं प्राणिनां शोभने रतः ॥२१  
तथा सति न मे दोषो मित्तभावो यतो ह्ययम् ।  
सर्वथा रक्षतां विष्णुर्घोरं वक्तुं यतस्य मे ॥२२  
द्रक्ष्याम्यह जगन्नाथं नीलकुञ्चितमूर्द्धंजम् ।  
कम्बुग्रीवाधरं विष्णुं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥२३  
स्फुरत्पद्महाबाहुं रत्नच्छायाविराजितम् ।  
द्रक्ष्यामि केशवं विष्णुं चक्रिणं यादवेश्वरम् ॥२४  
अचिन्त्यविभवं देवं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ।  
आत्मेच्छया जगद्रक्षं द्रक्ष्यामि जलशायिनम् ॥२५  
कृतार्थः सर्वथा चाहं भवामि विगतज्वरः ।  
अद्य मे सफलं जन्म साक्षाद्दृष्टवती हरिम् ॥२६

अद्य मे सफला यज्ञा साक्षात्कृतवतो हरिम् ।

नेत्रं मे सफले विष्णुं पश्यतश्च जगन्भयम् ॥२७

पर तो भी वे विष्णु भगवान के रूप में सबके हृदयों में निवास करते हैं और सभी प्राणियों के वास्तविक मनोभाव को अच्छी तरह जानते ही रहते हैं । इसलिये वे स्वयमेव समझलेंगे कि यह कठिन कार्य भुङ्गकी मित्रता के कारण विवश होकर करना पड़ रहा है । हे भगवान् । मेरा मुख जो अत्यन्त भयङ्कर शब्द कहने को उद्यत हो रहा है उसे मेरा दोष न समझ कर क्षमा ही करेंगे ॥२२॥ आज मैं उन भगवान को, जिन्हें जगन्नाथ, कुञ्चितकेश, कम्बुग्रीव, श्रीवत्सलादित, महाबाहु रत्नविम्बधर, के शव, विष्णु, चक्रधर, यादवेश्वर, अचित्या वैभव सम्पन्न, जलशायी आदि अनेक नामों और विशेषणों से स्मरण किया जाता, उनको इच्छा भर के देखूँगा ॥२३-२६॥ उन कृष्ण भगवान के दर्शनो से निःस्सन्देह मैं कृतार्थ हो जाऊँगा, मेरा जीवन सफल हो जायगा, मैंने जो यज्ञादि किये हैं वे भगवान का साक्षात्कार होने से सफल हो जायेंगे और उन जगत्पति विष्णु भगवान को देखने मात्र से मेरे नेत्रों का होना सायंक हो जायगा ॥२६-२७॥

प्रीतिमानस्तु मे विष्णुर्वक्तुर्घोरस्य कर्मण ।

उन्मिषन्नेक्षयुग्मेन द्रक्ष्यामि सकृदीश्वरम् ॥२८

श्रामूलमसकृद्विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः ।

पिबामि नेत्रयुग्मेन वपुः कृष्णस्य केवलम् ॥२९

धारयिष्याम्यहं पांसुं तत्पादप्रभवं शिवम् ।

ततः वृत्तार्थतां यास्ये स्वर्गं मार्गं हि तद्रजः ॥३०

मेघगम्भीरनिर्घोषं श्रोष्यामि च हरेः स्वरम् ।

पादाब्जं चक्रिणोः विष्णो पश्यामि च जगत्पते ॥३१

पश्यामि च हरेर्वक्त्रं पूर्णन्दुसदृशप्रभम् ।

हरेरिदं जगद्रूपं पश्यामीव च सर्वतः ॥३२

प्रसीदतु सदा विष्णुरयुक्तं वक्तुमिच्छतः ।

आलोलकुण्डलयुतं हरिचन्दनचर्चितम् ॥३३

स्फुरत्केयूररत्नार्चिर्बाहुद्वयविराजितम् ।

सव्ये द्योतन्महाशख रश्मिजालविराजितम् ॥३४

प्रोद्यद्भास्करवर्णाभि चक्रज्वालाविराजितम् ।

प्रोज्ज्वलत्कङ्कणयुत तप्तजाम्बूनदाङ्गदम् ॥३५

किन्तु उसी अवसर पर मेरे मुख से जो अशोभनीय वाक्य निकलेंगे उन्हें सुन कर वे अप्रसन्न होंगे या नही, इसका कोई निश्चय नहीं । तो भी आज मैं उनका मन भर कर दर्शन करूँगा इसमें सन्देह नहीं । मैं उनको नख से शिख तक बारम्बार निहारूँगा और अपने दोनो नेत्रों से उनके सौन्दर्य रूपी सुधा का इच्छानुसार पान करूँगा । आज मैं उनकी चरण रज को अपने मस्तक पर चढाऊँगा और उससे अपने जीवन को शान्तिपुञ्ज और शीतल करूँगा । उनका चरण रज तो स्वर्ग प्रदान करने वाला है ॥१८-२०॥ आज मैं उनका वर्षाकाल के मेघों के समान गम्भीर निर्घोष सुनूँगा । मुझे तो अभी ऐसा जान पड़ता है कि मैं उन भगवान के चरण-कमलों के दर्शन कर रहा हूँ । उनका पूर्ण चन्द्रमा के सदृश्य सुन्दर मूख मण्डल मुझे दिखाई दे रहा है और उनका विश्वमय रूप मेरे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित है ॥३१-३२॥ जिन भगवान के कानों में कुण्डल मूल रहे हैं और समस्त शरीर मलय चन्दन से चर्चित है वे भगवान मुझ पर प्रसन्न हो और मेरे अशिष्ट वाक्यों से बुरा न मानें ॥३३॥ उनकी भुजाओं में सदा रत्नजडित केयूर शोभायमान रहते हैं, उनसे दाहिने हाथ में महाद्युति वाल शख विराजमान रहता है । सूर्य सदृश्य तेजस्वी चक्र की प्रभा चारों ओर फैली रहती है । वे हाथों में प्रकाशयुक्त कंकण तथा स्वर्ण अगद धारण किये रहते हैं ॥३४-३५॥

प्रीतकौशेयवसनं विस्तीर्णो रस्वमच्युतम् ।

रुदा द्रव्याणि देवेशानिदानीमवकाञ्चदा ॥३६

सर्वथा कृतकृत्योऽहं यद्वपुर्द्रष्टुमुद्यतः ।

नमो मह्यं नमो मह्यं यतो द्रष्टुमह हरिम् ॥३७

उद्यतोऽस्मि जगन्नाथ बलभद्रकृतास्पदम् ।

द्रक्ष्याम्यवश्यमद्यैव जिष्णु विष्णुं जगद्गुरुम् ॥३८

श्रीकौस्तुभोद्भवर्षिच स्फुरितोरुवक्षः पीताम्बरं मकरकुण्डल-  
पकजाक्षम् ।

कृष्ण किरीटवरचक्रगदोर्ध्वहस्तं तेजोमयं मम हरेर्वपुरस्तु  
भूत्यै ॥३९

वेदोदघौ विशदशास्त्रमहाहियोमे निष्णातशुद्धमतिमन्दरमथ्यामाने ।  
उद्योतमानममरैरनिश निषेव्य नारायणाख्यममृत प्रपिवामि  
चाद्य ॥४०

ध्येयं मुमुक्षु भिरमेयमनाद्यनन्त स्थूलं सुसूक्ष्मतरमेकमनेकमाद्यम् ।  
ज्योतिस्त्रिलोकजनक त्रिदशैकवन्द्यमक्षणोर्ममास्तु सततं हृदये-  
ऽच्युताख्यम् ॥४१

चिन्तयन्निति विप्रेन्द्रो ययी द्वारवती पुरीम् ।

भत्वा कृतार्थमात्मानं वाहयन्हयमुत्तमम् ॥४२

उन पीताम्बर तथा कौशेय वस्त्राधारी भगवान् कृष्ण को मैं शीघ्र ही धवश्य देखूँगा । इससे मैं अपने को कृतकृत्य मानता हूँ और सब प्रकार धन्य मानता हूँ । मैं स्वयं ही इस सौभाग्य के लिये अपने को नमस्कार करता हूँ ॥३६-३७॥ जब मैं बलभद्रजी के साथ विराजमान भुवनपति भगवान् कृष्ण का दर्शन करने को उद्यत हूँ तो मुझ से बढकर धन्य और वीन होगा ? उनका बक्षस्थल की स्तुभ मणि से शोभायमान रहता है, उनका परिधान पीताम्बर है, नेत्र कमल समान है, कानो मे मकराकृति कुण्डल हैं, मस्तक पर किरीट, हाथ मे चक्र और गदा विराजमान है—ऐसे भगवान् मेरा कल्याण करें ॥३८॥ शास्त्र रूपी महासर्प के समीप मे

का मयन करके जो अमृत निकाला गया था और देव स्वरूप ज्ञानी जन सदैव जिस पान करते रहते हैं मैं भी आज उभी अपूर्व सुधा का पान करूँगा ॥४०॥ मुक्ति की कामना करने वाले साधक जिनका ध्यान करते रहते हैं, जो सीमातीत, अनादि और अनन्त हैं, जो स्थूल, सूक्ष्म, अद्वितीय अनेक और सब के मूल कारण स्वरूप हैं, जिनसे इस समस्त त्रिलोकी को उत्पन्न करने वाली ज्योति का आविर्भाव हुआ है, समस्त देवगण जिनकी बन्दना किया करते हैं, वे मन और वाण से अगोचर देवादितेव मेरे हृदय और नेत्रों में विराजमान हो ॥४१॥ हे राजन ! वह हंस का मित्र जनार्दन विप्र मनमें इस प्रकार वे तर्क-वितर्क करता हुआ वेग से चल कर द्वारका पुरी में प्रविष्ट हुआ ॥४२॥

### ॥ विप्रदूत की श्रीकृष्ण से भेंट ॥

स निवेदितसर्वं स्वो द्वाःस्थेन हि जनार्दनः ।  
 अथ प्रविश्य धर्मात्मा सुधर्मा वै द्विजोत्तमः ॥११  
 अपश्यद्देवदेवेशं सुधर्माकृतिसंस्थितम् ।  
 बलभद्रेण संयुक्तमध्यासितमहासनम् ॥२  
 अग्रतः स्थितशंभेयं पार्श्वतः स्थितनारदम् ।  
 दूर्वाससा कृतकथमुग्रसेनपुरस्कृतम् ॥३  
 गायद्वन्धर्वमुख्यं च नृत्यदप्तरसां गणैः ।  
 सेव्यमान महाराज सूतमागधबन्दिभिः ॥४  
 उद्गीयमानयशसं माधव मधुसूदनम् ।  
 उद्गीयमान विप्रश्च सामभिः सामगैर्हरिम् ।  
 दृष्ट्वा प्रीतमना विष्णुं प्रोद्भूतपुलकच्छविः ॥५  
 नाम्ना जनार्दनोऽस्मीति ननाम चरणौ हरेः ।  
 बलभद्र ततो देवं ववन्दे शिरसा द्विजः ॥६  
 दूतोऽस्मि देवदेव नृसस्य द्विभक्तस्य च ।  
 इति ब्रवाण विप्रेन्द्रमिदमाह स माधवः ॥७

आस्वेदं विष्टरं पूर्वं पश्चाद्ब्रूहि प्रयोजनम् ।  
तथेति चाब्रवीद्विप्रो महदासनमास्थित ॥८

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! ब्राह्मण ध्येष्ठ जनार्दन ने द्वारका पहुँच कर द्वारपाल को अपने आने की सूचना देने के लिये भगवान् के पास भेजा और द्वारपाल ने उनसे अनुमति लेकर जनार्दन को मुंषर्मा सभा में पहुँचा दिया ॥१॥ वहाँ जाकर उसने बलरामजी के सहित भगवान् श्रीकृष्ण को बृहद् आसन पर विराजमान देखा ॥२॥ दानेय, सात्यकि और उग्रसेनजी उनके सामने और देवपि नारदजी पार्श्व में विराजमान थे ॥३॥ गन्धर्वगण गायन कर रहे थे और अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं । सूत भागध बदीजन उनका गुण कीर्तन कर रहे थे और ब्राह्मण सामगान में तन्मय थे । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी सभा की अलौकिक छवि देख कर विप्रवर जनार्दन का हृदय आनन्द के अतिरेक से पुलकित होगया ॥४-५॥ फिर ब्राह्मण जनार्दन ने कहा—हे प्रभो ! मैं जनार्दन नामक ब्राह्मण आपको नमस्कार करता हूँ । फिर उसने बलरामजी को भी नमस्कार किया ॥६॥ इसके पश्चात् उसने कहा—हे देवदेवेश्वर ! मैं हस और डिम्भक द्वारा भेजा हुआ दूत हूँ । यह सुन कर भगवान् ने कहा—अच्छा, थाप इस आसन पर बँठ कर अपने आने का प्रयोजन कहिये । तब ब्राह्मण जनार्दन उस श्रेष्ठ आसन पर बैठ गया ॥७-८॥

वाचा स पूज्य विप्रेन्द्रमपृच्छत्कुशल हरिः ।  
ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र हसस्य डिम्भकस्य च ॥९  
श्रुत चापि तयोर्वीर्यं प्रयोजनमती द्विज ।  
अपि वा कुशल विप्र पितुस्तव जनार्दन ॥१०  
कुशल ब्रह्मदत्तस्य पितुश्च मम केशव ।  
तयोरेव जवन्नाथ हसस्य डिम्भकस्य च ॥११  
किमाहर्तुर्महीपाली तौ हसडिम्भकौ नृपौ ।  
ब्रूहि सवमशेषेण नास्त्र शङ्का द्विजोत्तम ॥१२  
वाच्य वाऽप्यथवाऽत्राच्य कतव्यमथ चेतवत् ।  
श्र त्वा तस्य विधास्यामो युक्तरूप द्विजोत्तम ॥१३



दूतोऽसि सर्वया विप्र न वाच्यावाच्यकल्पना ।  
 यत्कर्मकारनिदिष्टं तद्वाच्यं दूतजन्मना ॥१४  
 नात्र शङ्का त्वया कार्या वक्यव्यस्येतरस्य च ।  
 अतो वद यथा प्रोक्तं ताभ्यामिह जनार्दन ॥१५

फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने मधुर वचनों से उससे सत्कारपूर्वक ब्रह्मदत्त और उसके पुत्र हंस-डिम्भक की कुशल पूछी और बोले कि मुझे उनकी वीरता के विषय में पहिले से ही ज्ञात है, और हे विप्र ! आप अपने पिताजी की कुशल भी तो कहिये ॥६-१०॥ तब जनार्दन ने उत्तर दिया—हे जगन्नाथ ! हे केशव ! महाराज ब्रह्मदत्त, हंस, डिम्भक और मेरे पिताजी भी कुशल पूर्वक हैं ॥११॥ तदनन्तर भगवान् ने उससे पुनः पूछा—हे विप्रश्रेष्ठ ! अब हंस-डिम्भक ने जो क्रुद्ध कहा हो, वह मुझसे कहिये । जो बात यथार्थ रूप में हो उसे निःशक भाव से कह दीजिये ॥१२॥ आपकी बातों को सुन कर ही मैं अपने कर्त्तव्य पर विचार और निर्णय करूँगा ॥ १३ ॥ हे द्विजोत्तम ! आप तो दूत हैं, इसलिये इसका विचार मत करिये कि सदेश मे जो कहा गया है, वह कहने योग्य है या नहीं, क्योंकि राजा की आज्ञा-पालन ही दूत का कर्त्तव्य है ॥१४॥ उनका कथन उचित है अथवा नहीं, इस विचार विमर्श मे पढ़ने की आपको आवश्यकता नहीं है, आप तो यथार्थ बात कहने के लिये स्वतंत्र हैं ॥१५॥

केशवेनैवमुक्तस्तु प्रोवाच स जनार्दनः ।  
 अजानन्निव किं ब्रूये सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥१६  
 न चास्ति ते परोक्षं तु जगद्वृत्तान्तमच्युत ।  
 सर्व हि मनसा पश्यान्किं त्वमात्य वदेति माम् ॥१७  
 विद्वद्भिर्गीयसे विष्णो त्वमेव जगतीपते ।  
 इच्छया सर्वमाप्नोपि दृष्टादृष्टविवेचनम् ॥१८  
 त्वमेवेदं जगत्सर्वं जगच्च त्वयि तिष्ठति ।  
 न त्वया रहितो ह्येकः पदार्थः सचराचरः ॥१९  
 नास्ति किञ्चिदवेद्यं ते सर्वगोऽसि जगत्पते ।  
 त्वभिद्रः सर्वभूतानां रुद्रः संहारकर्मकृत् ॥२०

रक्षिताऽसि सदा विष्णुः सर्वलोकस्य माधव ।  
संसारस्य भवान्प्रष्टा किं त्वमात्य वदेति माम् ॥२१

भगवान् श्रीकृष्ण के घचन सुन कर जनादन ने कहा—हे प्रभो ! आप सब कुछ जानते हुए भी मुझसे अनजान की भाँति क्यों पूछ रहे हैं ? ॥ १६ ॥ विश्व का कोई भी वृत्तान्त आपसे छिपा हुआ नहीं है, और आप अपने मन के द्वारा ही सब कुछ देख रहे हैं, तब मेरे मुख से क्यों कहलवाना चाहते हैं ? ॥१७॥ हे जगतीपते ! हे विष्णो ! विमज्जन सदा आपकी महिमा गाया करते हैं और आप एक स्थान पर स्थित होकर भी संसार भर में जो कुछ हो रहा है, उसे देख सकते हैं ॥१८॥ हे नाय ! यह संसार आपका ही स्वरूप है, और जो कुछ है, वह सब आप में ही लीन रहता है, आपसे पृथक् तो इस विश्व का कोई भी पदार्थ नहीं है ॥१९॥ हे जगदीश्वर ! कोई भी पदार्थ आपके लिये अविज्ञात नहीं है, क्योंकि आप ही सब प्राणियों के इन्द्र, संहारकर्ता रुद्र, पालनकर्ता विष्णु तथा जगत्-स्रष्टा ब्रह्मा हैं । फिर उस सन्देश को मेरे मुख से क्यों कहलाना चाहते हैं ॥ २०-२१ ॥

विद्वद्भिर्गीयसे नित्यं ज्ञानात्मेति च माधव ।  
प्राणं प्राणविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ॥२२  
शब्दं शब्दविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ।  
तथा सति हृषीकेश किं त्वमात्य वदेति माम् ॥२३  
तथापि श्रुणु देवेश चोदितोऽस्मि यतस्त्वया ।  
वदेत्यसकृदेवं तत्तास्माद्वक्ष्यामि माधव ॥२४  
राजसूयेन यज्ञेन ब्रह्मदत्तोऽद्य यक्ष्यते ।  
तदर्थं प्रेषितस्ताभ्यां हंसेन डिम्भकेन च ॥२५ .  
करार्थं यदुमुख्येभ्यस्तव चामन्त्रणाय हि ।  
लवणं बहु देयं ते यज्ञार्थं तस्य केशव ॥२६  
इत्यर्थं प्रेषितस्ताभ्यां करं देहि तदाज्ञया ।  
इदं त्वमपरं ताभ्यामुक्तं श्रुणु जगत्पते ॥२७

लवणानि बहून्पाशु प्रगृह्य त्वरितं भवान् ।  
आगच्छतु तयो राज्ञो सेय केशव वाग्विभो ॥२८

हे माधव ! जानी पुरुषो ने आपको जानात्मा कहा है और प्राणतत्त्वज्ञ आपको प्राण बताते हैं ॥२२॥ शब्द शास्त्री आपको 'शब्द' कहते हैं, फिर भी हे पुरुषोत्तम आप मुझ से उस सन्देश को क्यों सुनना चाहते हैं ? ॥२३॥ फिर भी यदि आपका आग्रह ही है तो मैं जो निवेदन करता हूँ, उस पर ध्यान दीजिये ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! इस समय महाराज ब्रह्मादत्त राजसूय यज्ञ करने को उद्यत हुए हैं, उसी कार्य से हंस डिम्भक ने मुझे यहाँ भेजा है ॥२५॥ मेरे यहाँ आने का मुख्य उद्देश्य यही है कि आपसे कर माँगू यज्ञ के लिये लवण प्राप्त करूँ और आपको निमंत्रण दूँ ॥२६॥ इसलिये, इस समय आप मुझे कर दें और बहुत-सा नमक लेकर यज्ञ स्थान में जाकर उपस्थित हो जायँ । यही हंस डिम्भक का आदेश है जो मैंने आपको सुना दिया है ॥२७ २८॥

इत्युक्तवति विप्रेन्दे दूते तत्र तयोन्प ।  
प्रहस्य सुचिर कृष्णो बभाषे दूतमीश्वर ॥२९  
शृणु दूत वचो मह्य युक्तमुक्त द्विजोत्तम ।  
कर ददामि ताभ्या तु करदोऽस्मि यतो नृपे ॥३०  
घाष्ट्यं मेतत्तयोर्विप्र मतो यस्तु करग्रह ।  
अहो घाष्ट्यं महो घाष्ट्यं तयो क्षलियबीजयो ॥३१  
इदमश्रुतपूर्वं मे मत्तो यस्तु करग्रह ।  
इत्युक्त्वा केशवो दूतमिदमाह स्म यादव ॥३२  
हास्यमेतद्यदुश्रेष्ठा मत्तो यस्तु करग्रह ।  
यष्टाऽसौ राजसूयस्य ब्रह्मादत्तो महीपति ॥३३  
तौ त याजयितारौ हि ह सो डिम्भक एव च ।  
बोढा किल यदुश्रेष्ठो लवणस्य दुरात्मन ॥३४  
करदो वासुदेवो हि जितोऽस्मि यदुसत्तामा ।  
हास्य हास्यमिद भूय श्र ण घ्व यादवा वच ॥३५

हस-डिम्भक के दूत जनार्दन की बात सुन कर भगवान् कृष्ण देर तक हँसे और फिर दून से बोले—हे दूत ! आपकी बात मैंने सुन ली, अब आप मेरे घबन सुनिये—मैं आपके राजा को कर अवश्य ही प्रदान करूँगा, परन्तु हे विप्र ! उन क्षत्रिय-पुत्रों की यह घृष्टता विचारणीय है ॥ २६-३०-३१ ॥ आज तक मुझसे कर प्राप्त करने की कभी किसी ने इच्छा की हो, ऐसा इससे पहिले कभी भी सुनने में नहीं आया । यह कह कर उन्होंने वहाँ उपस्थित यादवों को सम्बोधित करके कहा—हे यादवों ! इस आश्चर्यजनक बात को सुनो कि राजा ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करेंगे, इसलिये उन्होंने मुझसे कर की माँग की है ॥ ३२-३३ ॥ हस-डिम्भक उस यज्ञ को पूर्ण करावेंगे और हमें उसके लिये नमक ढोकड़ ले चलना होगा ॥ ३४ ॥ हे यादवों ! मैं महाराज ब्रह्मदत्त को कर देने वाला प्रजाजन हूँ । इससे तो यही प्रतीत होता है, जैसे मुझे उसने परास्त कर दिया हो, कौसी परिहासपूर्ण वार्ता है ? ॥३५॥

इत्युक्तवति देवेशे बलभद्रपुरोगमाः ।

यादवा. सर्वं एव ते हासाय समवस्थिता ॥३६

करदः कृष्ण इत्येव ब्रुवन्तः सर्वंसात्वताः ।

हासं मुमुचुरत्यथ तलं दत्त्वा परस्परम् ॥३७

तलशब्दो हासशब्दो रोदसी पर्यपूरयत् ।

स च विप्रो नृपश्चेष्ट निन्दयन्मित्रमात्मनः ॥३८

अहो कष्टमहो कष्टं दौत्यं यत्कृतवाहनम् ।

इति लज्जासमाविष्टस्तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥३९

भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुन कर बलराम आदि जितने भी यादव वहाँ उपस्थित थे, वे सभी अट्टहास करने लगे ॥३६॥ इसके पश्चात् सभी ने 'भगवान् कृष्ण ब्रह्मदत्त के करदायक हैं' यह कहते हुए परिहासपूर्वक करतल ध्वनि की ॥३७॥ उनकी करतल-ध्वनि और अट्टहास से गगन मण्डल गूँजने लगा । उस समय ब्राह्मण श्रेष्ठ जनार्दन अपने मित्र की निन्दा करते हुए अपने को भी

धिव्कारने लगा और उसने विचार किया कि मुझे ही इस निकृष्ट दौत्य कर्म को करना पड़ा है । फिर उसने सज्जावश अपना मस्तक झुका लिया ॥३८-३९॥

॥ भगवान् कृष्ण का सात्यकि को भेजना ॥

हासं कुर्वंत्सु तेप्वेवं केशवः केशिसूदनः ।  
 उवाच वचनं दूत गच्छ मद्बचनाद्द्विज ॥१  
 तावित्यं हंसडिम्भकौ ब्रुहि त्वरितविक्रमः ।  
 बाणं दास्यामि निशितं शाङ्गं मुक्तः शिलाशितः ॥२  
 असिना वास्य दास्यामि निशितेन महात्मनोः ।  
 शिरो वा छेत्स्यते चक्रं मत्करप्रहितं बलिम् ॥३  
 यो वरं दत्तवान् रुद्रो युवयोर्धाष्टयं कारणम् ।  
 स एव रक्षिता वां स्यात्तं जित्वा वां निहन्यहम् ॥४  
 देशोऽयं संविधातर्णयि यत्न नः संगतिर्भवेत् ।  
 तत्र गन्ता तथा चास्मि सबलः सहवाहनः ॥५  
 भवन्ती निर्भयो भूत्वा गच्छेतां सबली नृपौ ।  
 पुष्करे वा प्रयागे वा मथुरायामथापि वा ॥६  
 तन्नाहं सबलो याता नात्र कार्या विचारणा ।  
 अथवा मित्रभावाच्च वक्तुमेवं न ते क्षमम् ॥७  
 न शक्यं यत्त्वया वक्तुं तच्च वक्ष्यति सात्यकिः ।  
 त्वया सह ततो गत्वा साक्षिभूतो भव द्विज ॥८  
 इदं च जाने विप्रेन्द्र स्नेहो मम सदा त्वयि ।  
 तेन त्वं विजयी भूत्वा संसारे दुःखसंकुले ।  
 मत्कथापरमो नित्यं सदा भव जनार्दन ॥९

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इस पर उपस्थित समोसदों के अट्टहास करने पर भगवान् बोले—हे दूत ! तुम हंस-डिम्भक से जाकर कह दो कि मैं वहाँ पहुँच कर अपने शाङ्ग धनुष बाणों अथवा हीरे खड्ग से उनको कर प्रदान करूँगा । उस समय मेरे द्वारा प्रेरित चक्र उनके मस्तक को काट डालेगा

॥१-३॥ जिन भगवान् शंकर के वर-प्रदान द्वारा वे ऐसे घृष्ट हुए हैं, यदि वे भी उसका पक्ष लेकर युद्ध क्षेत्र में उपस्थित होंगे तो उन्हें भी जीत लूँगा ॥४॥ वे जिस स्थान पर मुझसे युद्ध करना चाहे, उसकी सूचना मुझे दे दें। तब मैं तुरन्त ही अपनी बाहनों से सम्पन्न सेना के सहित वहाँ पहुँच जाऊँगा ॥५॥ तुम उनसे अभी जाकर यह कहना कि वे भय-रहित होकर पुष्कर प्रयाग अथवा मथुरा में मुझसे मिल लें ॥६॥ मैं भी वहाँ अवश्य पहुँच जाऊँगा, परन्तु मैं समझता हूँ कि उनसे तुम्हारी मित्रता होने के कारण तुम मेरे सदेश को उन्हें यथार्थ रूप से न सुना सकोगे, इसलिये मैं इन सब बातों को समझाने के लिये सात्यकि को तुम्हारे साथ भेज रहा हूँ। तुम तो इनके साक्षी ही हो जाना ॥७-८॥ हे प्रिय ! मैं तुम पर अधिक प्रीति रखता हूँ, इसलिये तुम इस दुःखमय जगत् को जीत कर हमारी भक्ति करते हुए आनन्द सहित अपना जीवन निर्वाह कर सकोगे ॥६॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणं कृष्णः सात्यकिं पुनराह सः ॥१०

गत्वा शैनेय विप्रेण ब्रूहि मद्बचनात्तयोः ।

यन्मयोक्तमशेषेण वद गत्वा तयोः पुरः ।

यथा नः संगतिर्युद्धे तथा वद बलात्तादा ॥११

धनुरादाय गच्छ त्वं वदगोधाङ्गुलित्वान् ।

एकेनाश्वेन गच्छ त्वमसहायो यदूत्तम ॥१२

सात्यकिस्तं तथेत्युक्त्वा हयमारुह्य शीघ्रगम् ।

गन्तुमं च्छत्ततो राजन्नसहायः स सात्यकिः ॥१३

जनार्दनं विसृज्याशु दूतं तं यादवेश्वरः ।

अहो घाष्ट्यंमहो घाष्ट्यमित्युवाच जनार्दनः ॥१४

नमस्कृत्य तदा दूतो माघवं माघवेश्वरम् ।

स ययौ शात्वनगरं शैनेयेन समन्वितः ॥१५

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! जनार्दन ब्राह्मण से यह कहने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने सात्यकि से कहा—हे सात्यके ! तुम इन ब्राह्मण के साथ जाकर मेरा सब सदेश उन्हें सुनादो, जिससे रण क्षेत्र में मेरी-उनकी भेंट

हो सके ॥१०-११॥ तुम अंगुली-त्राण बांधकर घनुप धारण करो और अश्वारूढ होकर शीघ्र ही चले जाओ ॥१२॥ भगवान् की आज्ञा होते ही सात्यकि अकेले ही घोड़े पर चढ़ कर हंस-डिम्भक के पास जाने को वहाँ से चल दिये ॥१३॥ इस प्रकार सात्यकि के वहाँ से चले जाने पर वे हंस-डिम्भक के कुकृत्य की निन्दा करने लगे । तभी जनार्दन ब्राह्मण ने भी भगवान् को नमस्कार करके सात्यकि के साथ ही शात्वनगर को प्रस्थान किया ॥१४-१५॥

ततः प्रविश्य घर्मात्मा ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ।  
 आसनं महदास्थाय विसृज्य यादवे पुनः ॥१६  
 आस्ते सुखं यदा विप्रः शंनेयेन समन्वितः ।  
 अथ तं हंसडिम्भयोर्दशं यामास सात्यकिम् ॥१७  
 दूतोऽयं सात्यकिः प्राप्तः सव्यो बाहुरयं हरेः ।  
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हंसः प्राह वचस्तदा ॥१८  
 श्रुतः समागमः पूर्वमद्य दृष्टो मया त्वसौ ।  
 धनुर्वो दे च वेदे च शस्त्रे शास्त्रे तथैव च ॥१९  
 निपुणोऽयं सदा धीर इत्येवमनुशुश्रुम ।  
 अयो दृष्टिपथं प्राप्तः प्रीति नो विदधात्प्रसौ ॥२०  
 कुशलं वासुदेवस्य बलभद्रस्य वा पुनः ।  
 कुशलाः सात्वताः सर्वे उग्रसेनपुरोगमाः ॥२१  
 तथेति सात्यकिः प्राह मन्दमुन्मथिताननः ।  
 ततो जनार्दनं प्राह हंसो वाक्यविशारदः ॥२२  
 अपि दृष्टस्त्वया चक्री सिद्धं नः कार्यमीहितम् ।  
 वद सर्वमशेषेण मा वृथा कालमत्यगाः ॥२३

वहाँ पहुँच कर ब्राह्मण जनार्दन ने सात्यकि के साथ ही राज-भवन में प्रवेश किया और सात्यकि को एक धोँप आसन पर बैठा कर, स्वयं भी बैठ गया फिर उसने हंस डिम्भक से सात्यकि का परिचय कराया कि—यह सात्यकि भगवान् श्रीकृष्ण के दक्षिण हाथ हैं और उनके दूत रूप से यहाँ आये हैं । यह

मुनवर हस बोला—मैंने इनके आने के विषय में तो सुन लिया था, परन्तु अब इन्हें देख भी लिया। ये धनुर्वेद, शस्त्र, शास्त्र, वेद आदि में पारंगत बताये जाते हैं। इन असामान्य वीर से मिलकर मैं अत्यन्त प्रगल्भ हुआ हूँ ॥१६-२०॥ हे सात्यकि जी ! वसुदेव, बलराम और उग्रसेन आदि सब यादव-गण कुशन-पूर्वक तो हैं ? तब सात्यकि ने सिर झिला कर उनके समुच्चल होने की पुष्टि की। फिर वाणी विशारद हस ने जनादन से पूछा—हे विप्र श्रेष्ठ ! अब यह बताओ कि वृष्ण से भेंट हुई या नहीं और कार्य सिद्ध हुआ अथवा नहीं। व्यर्थ समय नष्ट न करके पहिले यही सब कहो ॥२-२३॥

## ॥ सात्यकि का हस के समक्ष भाषण ॥

इत्युक्तवनि ह से च धर्मात्माऽथ जनाहंन ।  
 उवाच प्रहसन्वीर स्तुवन्नारायण तदा ॥१  
 अद्राक्षमद्राक्षमह जनाहंन हस्तस्थशख वरचक्रधारिणम् ।  
 आतप्तजाम्बूनदभूपिताङ्गद स्फुरत्प्रभाद्योतितरत्नधारिणम् ॥२  
 अद्राक्षमेन यदुभि पुरातनं स सेव्यमान मुनिवृन्दमुख्यं ।  
 सस्तूयमान प्रभुभि समागद्यं स्मिनप्रवालाधरपल्लवारुणम् ॥३  
 अद्राक्षमेन कविभि पुरातनं विधिच्य वेद्य विधिवत्सहामरं ।  
 प्रफुल्लनीलोत्पलशोभित श्रिया विनिद्रहेमाब्जविराजितोदरम् ॥४  
 भूयोऽहमद्राक्षमज्ज जगद्गुरु प्रमोदयन्त वचनेन यादवान् ।  
 निरूपयन्त विधिवन्मुनीश्वरं प्रवृत्तावेदार्थविधि पुरातनं ॥५  
 अद्राक्षमद्राक्षमह पुन पुन समस्तलोकं कहितैषिण हरिम् ।  
 वसन्तमस्मिञ्जगतो हिताय जगन्मय तान्परिभूय शत्रून् ॥६  
 भूयोऽप्यपश्यं सह यादवेश्वरं विक्रीड्यमानं च विहारकाले ।  
 रमन्तमीड्य रमयन्तमीश्वरान्यदूत्तमान्यादवमुख्यमीश्वरम् ॥७  
 भूयोऽप्यपश्य सरसीरुहेक्षण समेतया भीष्मतूजया हरिम् ।  
 वसन्तमम्नोनिधिशायिन विभु भक्तप्रिय भक्तजनास्पद शिवम् ॥८



वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! हस्त के वचन सुनकर जनार्दन ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए हर्षपूर्वक कहा—हे सखे ! मैंने वहाँ जाकर शस्त्र-चक्रधारी श्रीकृष्ण को विराजनान देखा । उनके सभी अंगों में स्वर्णभूषण और रत्नादि सुशोभित थे ॥१-२॥ उनके सब ओर बँटे हुए प्रमुख यतिगण और मुनिगण उन्हीं की उपासना में तल्लीन थे । बदीजन उनकी विरदावलि गा रहे थे और उनके पल्लवों जैसे अरुण अघरो पर मन्द मुसकान फँली हुई थी ॥३॥ वही कविगण और अनेक देवगण ध्यान मग्न होकर बँटे हैं । उनकी मुख-कान्ति नीलोत्पल जैसी और स्वर्णों रत्न के समान उदर है ॥४॥ वे अपने प्रमोदमय वचनों से यादवों को प्रसन्न कर रहे थे । प्राचीन मुनि वहाँ गूढ तत्वों के निरूपण में मग्न थे ॥५॥ मैं उन लोक हितकारी भगवान् को बारबार देखता था, तब मेरे मन में विचार उठा कि यह विश्व के कल्याणार्थ ही इस लोक में आकर प्रतिष्ठित हुए हैं ॥६॥ तभी विहार का समय होने पर मैंने उन्हें प्रमुख यादवों के सहित क्रीडा करते हुए भी देखा और यह भी देखा कि उन मगलमय पद्माक्ष भगवान् के साथ साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा हविमणोजी विहार करने लगी हैं । ७ ८॥

अद्राक्षमद्राक्षमह सुनिर्वृत पिवन्पिब स्तस्य वपु पुरातनम् ।  
 नेत्रण मीलद्विवरेण केवल धन्योऽहमस्मीति तदा ह्यचिन्तयम् ॥८॥  
 अद्राक्षमम्भोजयुग दधान प्रभु विभु भूतमय विभावनम् ।  
 आद्य ककुद्यानमुरु विभावसु सस्मृत्य सस्मृत्य तमेव निर्वृत ॥९॥  
 अद्राक्ष जगतामीश वक्षोराजितकौस्तुभम् ।  
 धीज्यमान हरि कृष्ण चामराणा शतं सदा ॥११॥  
 युवा विद्वेषयुक्त्वेन चेतसा यादवेश्वरम् ।  
 स्मरन्त सर्वदा विष्णु क्व चैव क्व च वेत्ति क ॥१२॥  
 क्व च द्रक्ष्यामि तौ मन्दौ कुतो वा मत्पुरोगतौ ।  
 ध्यायन्तमित्य देवेश करे शङ्खवह सदा ॥१३॥  
 हसन्तमेनमद्राक्ष करद हास्यतत्परम् ।  
 वदन्त नारदे वाच दुर्वाससि यतीश्वरे ॥१४॥

उनके दर्शन करते ही अत्यन्त आह्लाद होने के कारण मेरे नेत्र अर्द्ध उन्मीलित से होगये और उनकी रूप-माधुरी का पान करते हुए मेरे मन में प्रतीत होने लगा कि मैं धन्य होगया हूँ ॥१॥ तब उन भूतभावन, सूर्य के समान तेजस्वी और विभु भगवान् श्री कृष्ण का स्मरण कर करके उस समय मुझे अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति हुई ॥ १० ॥ उस समय उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि सुशोभित और सैंकड़ों चमर उन पर ढोरे जा रहे थे ॥११॥ उस समय मेरे मुख से कर प्रदान की बात सुनते ही उन्होंने विद्वेष बुद्धि से कहा—वे कहाँ हैं ? कहाँ मिलेंगे ? मुझे कर-प्रदान का आदेश देने वाला दुष्ट हम है किधर ? फिर वे नारदजी और दुर्वासा से यही वान कह-कह कर अट्टहास करने लगे ॥१२-१४॥

ब्रह्मसूत्रपदा वाणी दापयन्त मुनीश्वरम् ।

दृष्ट्वाऽहं तं हरिं देव पुन पुनरवीवदम् ॥१५

असाध्यमिदमारब्धं ताभ्यामिति नृपोत्तम ।

नारदव्यमिदं कार्यं मितं प्रभृति भूमिप ॥१६

निवृत्ता सा कथा ह साचिन्तयद्ग्रहणं तव ।

तद्वृत्तामखिलं सर्वं वदिष्यति हि सात्यकि ।

एतद्वचनमाकर्ण्य ह स क्रुद्धोऽब्रवीद्वच ॥१७

अरे ब्राह्मणदायाद तन्माया तव वाचि यत् ।

आवयो पुरतो वक्तुं त्रैलोक्यं जेतुमिच्छतो ॥१८

मायया त्वा अमयति कृष्णो लीलविधानवित् ।

तं दृष्ट्वा भ्रम एवैष तव स जायते महान् ॥१९

श खचक्रगदाशार्ङ्गं वनमालाविभूषितम् ।

वृष्णिवीरं समावेश्य समुच्छ्रितयशोधरम् ॥२०

सूतमागधसस्तावप्रकटद्वारबाहुकम् ।

अत्यद्भूतयशोराशिं विक्रमाल्लोकमण्डनम् ॥२१

चतुर्भुजं बलाक्रान्तं वृष्णियादवसं मतम् ।

अहोऽद्य भ्रम एवैष दर्शनो नात्तस्य चक्रिण ॥२२

तब मैं ब्रह्मसूत्र-प्रवक्ता दुर्वासा ऋषि और भगवान् श्रीकृष्ण को देख-देख कर विचार करने लगा कि मेरे मित्रों से यह कैसा अनुचित कार्य होगया

है ? हे नृपोत्तम ! यह कार्य असाध्य है, इससे अब भी विरत हो जाना उचित है ॥ १५-१६ ॥ हे मित्र ! ऐसा विचार उठने पर तुम्हारी बात को यथार्थ रूप से मैं उन्हें नहीं सुना पाया । ये महात्मा सात्यकि सब बात को वास्तविक रूप से कहेंगे । यह सुन कर हम अत्यन्त क्रोधित होकर बोला—अरे, तू यह क्या कहने लगा ? इस समय हम दोनों भाई तीनों लोको को जीतने की तैयारी कर रहे हैं, तब इस प्रकार की बातें करने का साहस तुम मे कैसे होगया ? ॥१७-१९॥ तू उसके शल-चक्र आदि आयुधो और वनमाला के धारण, बन्दीजनों की स्तुति, यादवों द्वारा यश-कीर्तन और उसके चतुर्भुज रूप को देख कर भ्रम में पड़ गया है ॥२०-२२॥

इदानी च महाराज भ्रामयत्येव दुर्मतिः ।

त्वामेव विप्र मन्दात्मन्निन्द्रजालिकता हि ते ॥२३

चापत्यमिदमेवेतत्तव विप्र भ्रमोद्भवम् ।

अहो हि खलु सादृश्यं वक्तव्यं भवता मम ॥२४

अहमेव त्वया विप्र मर्षये प्रोदितं वचः ।

सखिभावाद्द्विजश्रेष्ठ अन्यथा कः सहेदिदम् ॥२५

गच्छ मन्दमते विप्र यथेष्टं साम्प्रतं तव ।

द्विज गच्छ यथेष्टं त्व पृथिवी पृथिवी तव ॥२६

जित्वा गोपालदायादं हत्वा यादवकान्बहून् ।

एष नः प्रथमः कल्पो जेष्याम इति यादवान् ॥२७

गच्छ गच्छेति विप्र त्व घृष्टं परुषवादिनम् ।

शत्रुपक्षस्तुतिपर सह भुक्त्वा सदा मया ॥२८

तू अपने ब्राह्मण मूलभ भोलेपन से उसकी ऐन्द्रजालिकता के चक्कर में पड़ कर चकरा गया है, अन्यथा उम अवम के नाथ मेरी तुलना कैसे हो सकती है ? ॥२३-२४॥ तू मेरा मित्र है, इसीलिये मैंने तेरे कुवाक्यों को सहन कर लिया है, अन्यथा इसका फल चखा देता ॥२५॥ हे मूर्ख ! यह पृथिवी तो अत्यंत विशाल इसमें तुम जहाँ कहीं रहना चाहो, वही तुरंत चले जाओ ॥२६॥ मैं प्रतिज्ञा

करता हूँ कि उस म्दाले कृष्ण को उसके सहायकों सहित बाँध करके यादवों के सम्पूर्ण ऐश्वर्य को जीत लूँगा । २७। तू चिरकाल तक मेरे साथ खाता रहा है और आज शत्रु का गुण गारहा है । तुझे ऐसा करने में किंचित् भी लज्जा नहीं आई ? इमलिये तू अत्र जहाँ चाहे, वही चला जा ॥२८॥

न मे विप्रवधः कायंः कण्टादपि हि सर्वतः ।  
 इत्युक्त्वा ब्राह्मणं भूयो हंसः सात्यकिमब्रवीत् ॥२९॥  
 भो भो यादवदायाद किमर्थं प्राप्तवानिह ।  
 किमग्रीन्नन्दमुतः किं वाऽसौ तेऽदिशत्करम् ॥३०॥  
 इदं सत्यवचो हंस शङ्खचक्रगदाभूतः ।  
 शरं निशितधाराम्रैः शाङ्गं मुक्तैः शिलाशितैः ॥३१॥  
 दास्यामि करसर्वस्वमसिना निशितेन ते ।  
 शिरश्छेत्स्यामि ते हंस करदानस्य संग्रहम् ॥३२॥  
 घाष्ट्यं हि तव मन्दात्मन्किमतोऽपि नृपाधम ।  
 देवदेवाज्जन्नाथात्करमिच्छति यो नृपः ॥३३॥  
 तस्यैव करसंक्षेपो जिह्वाच्छेदो नराधम ।  
 तस्य शाङ्गं रवं श्रुत्वा शङ्खस्य च हरेः पुनः ॥३४॥  
 को नाम जीवितं काङ्क्षेत्तिष्ठेदानी त्वमद्य वै ।  
 गिरीशवरदपेण को ब्रूयादीदृशं वचः ॥३५॥

यह मैं इस कारण कहता हूँ कि घोर सकट उपस्थित होने पर भी मैं ब्राह्मण की हत्या नहीं करना चाहता । यह कह कर हंस ने सात्यकि से कहा— हे यादव दूत ! तेरे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? कृष्ण ने क्या सन्देश भेजा है ? उसने कर दिया अथवा नहीं ? ॥२९-३०॥ इस पर सात्यकि ने कहा— हे हंस ! भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश है कि सुतीक्ष्ण बाणों एवं खड्ग द्वारा तुम्हारा सिर उड़ा कर ही कर प्रदान करूँगा ॥३१-३२॥ अरे नृपाधम ! विश्व के ईश्वर से जो कर प्राप्त करने की इच्छा रखे, उससे बड़ कर घृष्ट पुरुष और कौन होगा ? ॥३३॥ अरे नराधम ! ऐसे मूर्ख की तो जिह्वा का ही उच्छेद कर

डालना चाहिये । उनके शाङ्ग धनुष की टकोर अथवा पाञ्चजन्य की ध्वनि सुन कर बड़े-बड़े वीरो के भी प्राण सकट में पड़ जाते हैं, जिसमें तुम तो एक तुच्छ प्राणी हो । फिर भगवान् शंकर से वर-प्राप्ति के मद में तुम्हारे अतिरिक्त कौन पुरुष ऐसी बात करेगा ? ॥३४-३५॥

सहाया वयमेवैते बलभद्रपुरोगमाः ।

प्रथमो बलभद्रोऽसौ द्वितीयोऽहं च सात्यकिः ॥३६

कृतवर्मा तृतीयस्तु चतुर्थो निशठो बली ।

पञ्चमोऽथ च बभ्रुस्तु षष्ठश्चैवोत्कलः स्मृतः ॥३७

सप्तमस्तारणो धीमान्छशस्त्रविशारदः ।

अष्टमस्त्वथ सारङ्गो नवमो विपृथुस्तथा ॥३८

दशमश्चोद्धवो धीमान्वयमेते बलान्विताः ।

त एते पुरतो गोप्तुः शंखचक्रगदाभृतः ॥३९

देवदेवस्ययुद्धेषु तिष्ठन्त्येव दिवानिशम् ।

यो हि वीरो सुतो तस्य नासत्यसदृशी बले ॥४०

तामेव मा क्षमी युद्धे हन्तुं बलमदान्विता ।

यो गिरीशो गिरा देवो वरं दत्त्वा स तिष्ठति ॥४१

युवां हि किंवली युद्धे तिष्ठतः सशरं धनुः ।

गृहीत्वा शत्रुभिः सार्द्धं युद्धं कर्तुं समुद्यतो ॥४२

ईदृशोऽप्यथ भृत्येषु युद्धं कुर्वन्सु शत्रुभिः ।

त्रैलोक्यं रक्षतस्तस्मात्करमिच्छन्त्रजेत कः ॥४३

देव, बलरामजी जैसे उनके सहायक हैं, फिर मैं, कृतवर्मा, निशठ, बभ्रु, उत्कल, तारण, सारंग, विपृथु, और उद्धव भी तो उनके पारस्यवर्ती रहते हैं ॥ ३६-३९ ॥ युद्ध के उपस्थित होने पर तो हम सब दिन-रात उनके साथ रहते हैं । अश्विनीकुमार के समान अष्ट भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ही तुम मशान्पों को मारने में समर्थ हैं । जब तुम युद्ध भूमि में पहुँचोगे तब तुम्हारे वर-दायक भगवान् शंकर ही संलग्न से आकर तुम्हारी महायत्ना भले ही करें ।

परन्तु जब भगवान् श्रीकृष्ण रणभूमि में उतरेंगे, तब सभी यादव उनके साथ दिखाई पड़ेंगे। इसलिये हमारे रहते किस की सामर्थ्य है जो उनसे कर लेने की इच्छा कर सके ? ॥४०-४३॥

हनिष्यत्येव वां युद्धे त्रैलोक्यं यो हि रक्षति  
 शरेण निशितेनाजौ शाङ्गं मुक्तेन केवलम् ॥  
 क्व नः संग्राम इत्येवं पुनराह जगत्पतिः ।  
 पुष्करे पुण्यदे नित्यमुत गोवर्द्धने गिरी ॥४५  
 मथुरायां प्रयागे वा दशं यन्तो बलानि मे ।  
 शखचक्रधरे देवे जगत्पालनतत्परे ॥४६  
 राजसूयं महायज्ञं कर्तुं मिच्छति कः स्वयम्  
 वदन्वा स्वस्तिमान्मर्त्यस्त्वां विना को व्रजेत्सु ७२ ॥०७  
 इदमिच्छसि चेन्मूढ हास्यतां यासि भूतले ।  
 इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरो हसन्निव भुवि स्थितः ॥४८

तीनों लोको की रक्षा करने वाले वे भगवान् श्रीकृष्ण जब शाङ्ग धनुष लेकर उससे बाण-वर्षा करेंगे, तब तुम्हारा वध करने में वे अकेले ही समर्थ होंगे ॥४४॥ इस प्रकार हमें रणक्षेत्र में जाने का अवसर ही नहीं आयेगा। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि पुष्कर, गिरि गोवर्धन, मथुरा या प्रयाग में से जहाँ कहीं भी चाहे, मेरा सामना करने के लिये आ जाँय। सत्सर के पालनकर्त्ता भगवान् श्रीकृष्ण के रहते हुए राजसूय यज्ञ करने में कौन समर्थ है ? ऐसा अनगल प्रलाप तो तुम्हारे जैसे मूर्ख ही कर सकते हैं ॥४५-४७॥ अरे मूर्ख ! तू इस प्रकार के विचार रख कर जगत् में अपना उपहास करायेगा। यह कह कर सात्यकि कुछ हँसे और फिर मौन होगये ॥४८॥

॥ हंस डिम्भक की गर्वपूर्ण उक्ति ॥

ततः क्रुद्धो महाराज हंसो डिम्भक एव च ।  
 इदं वै प्रोचतुर्बाक्यं रोपव्याकुलितेक्षणौ ॥९

दिग्धक्षन्तौ दिशः सर्वाः सर्वान्वीक्ष्य न पोत्तमान् ।  
 करेण निष्पीड्य करं स्मरन्तौ तद्वचो महत् ॥२  
 वत्र नु क्व वा नन्दसूनुः क्व वा रामो वलोत्कटः ।  
 इति ब्रुवाणो साक्षेपी सात्यकि सत्यसंगरम् ॥३  
 अरे यादवदायाद किं ब्रूये नः पुरो गतः ।  
 इतो निर्गच्छ मन्दात्मन्दूनस्त्वमसि साम्प्रतम् ॥४  
 अन्यथा वध्य एव त्वं प्रलपन्परुषं वच ।  
 सत्यं निर्लज्ज एवाभि यद्ब्रूया ईदृशं वचः ॥५  
 आवामिदं जगत्सर्वं शासितुं संयतौ नृपी ।  
 को नाम मानुषे लोके करदो नैव जीवति ॥६

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! यह सुन कर हंस-डिम्भक दोनों ही क्रोधित होगये और क्रोध से लाल हुए नेत्रों के द्वारा सात्यकि और सब उपस्थित राजाओं को इस प्रकार देखने लगे जैसे वे सब दिशाओं को जला डालेंगे । उस समय रोष के कारण हाथों को मलते हुए उन्होंने कहा—वह नन्द पुत्र ग्वाला कृष्ण और मदोन्मत्त बलराम है कहां ? इस प्रकार गर्व से प्रलाप करते हुए वे दोनों सात्यकि से कहने लगे—अरे यादव-दूत ! तू हमारे सामने क्या बकवाद कर रहा है ? अरे दुरात्मन् ! तू अभी यहीं से भाग जा । क्योंकि दूत है ॥४॥ यदि दूत न होता तो क्या तू ऐसे वचन कह कर जीवित रह सकता था ? अरे, तू अत्यन्त निर्लज्ज है, तभी तो इस प्रकार के वचन कह रहा है ? ॥५॥ हम दोनों भाइयों का इस समय सम्पूर्ण विश्व पर आधिपत्य है, तब हमको कर दिये बिना कौन-सा वीर है जो पृथिवी पर जीवित रह सके ? ॥६॥

हत्वा गोपालकान्सर्वान्विद्ध्वा यादवकान्वहून् ।  
 गृह्णीमः करसर्वंस्वं ततो गच्छ नराधम ॥७  
 अवध्यो दूततां प्राप्तो बह्वबद्धं प्रभापसे ।  
 ईश्वरो नी वरं दाता ह्यज्ञाणामरि च प्रभुः । ८  
 रक्षितारो महामूर्तो संग्रामं गच्छतोरच नी ।  
 पितरं याजयिष्यावो जित्वा गोपालकं रणे ॥९

एते प्रोचता भृशं युद्धे कातराः सर्व एव ते ।  
हृत्वा तान्सबलान्मुद्धे पूनर्जोष्यामि केशवम् ॥१०  
संहतं व्या महासेना प्रगृहीतशरासना ।  
गृहीतप्राममुशला गृहीतकवचा सदा ॥११  
आरूढरथसाहस्रा गदापरिघसङ्कुला ।  
सुप्रभूतेन्वनवतो प्रभूतबल साधना ॥१२  
चाल्यता वाहिनी घोरा बलाध्यक्षा समन्ततः ।  
अवध्य एव गच्छ त्वं न ते मरणतो भयम् ॥१३  
सग्राम पुष्करेऽस्माक श्वः परश्वोऽपि वा नृप ।  
ततो ज्ञास्यामहे वीर्यं केशवस्य बलस्य च  
ये त्योक्ता नृपाः सख्ये तेषामपि च यद्वलम् ॥१४

आज मैं सब गोपों और यादवों का सहार कर उनके समस्त धनो को छीन लूंगा । परन्तु दूत को मारा नहीं जाता, यह जान कर ही तू ऐसी बातें करता है । क्या तू नहीं जानता कि भगवान् शरर ने हमें वर प्रदानपूर्वक सभी प्रकार के शस्त्रास्त्र दिये हैं और वे ही हमारी रक्षा करते हैं ॥७-८॥ आज हम खालों का बंध बरके ही अपने पिता को राजसूय यज्ञ की दीक्षा दिलायेंगे । तूने जिन यादवों का नाम लिया है, उन सभी कायरो को परास्त करके ही तुम्हारे कृष्ण को मारेंगे ॥६-१०॥ उनसे जितना ही सके उतना ही अधिक सैन्य-संग्रह करके हज़ारों धनुर्धरों को प्राप्त, मूसल, कवच आदि से सजालें तथा सहस्रो रथों पर आरूढ होकर गदा-परिघ आदि ग्रहण कर लें, बहुत सा ई धन एकत्रित करें और वाहनो सहित सेना को अधिक से अधिक जुटा कर सब प्रकार तैयार हो जाय ॥११-१२॥ उनके महान् सेनापति अपनी भीषण सेना को लेकर आजाय । हमें तुझसे क्या करना है ? तू दूत होने के कारण अवध्य है, इसलिये जहाँ जाना चाहे, वही तत्काल भाग जा ॥ १३ ॥ कल परसो मे पुष्कर में युद्ध का प्रारम्भ होगा, उसमे तुम्हारे कृष्ण, बनराम जैसे सभी वीर राजाओं के बल का पता चल जायगा और हम मे कितना बल है ? यह भी तू जान सकेगा ॥१४॥



हंसागच्छामि वां हन्तुं श्वः परश्वोऽपि वा नृप ।  
 अद्यैव हि मया वध्यो न चेद्द्रुतो भवाम्यहम् ॥१५  
 नहि श्वो वा परश्वो वा युवां कटुकभाषिणी ।  
 दौत्ये हि दुःखमतुलं वहाम्येव सदा नृणाम् ॥१६  
 अन्ययाऽहं युवा हत्वा ततो यास्यामि निर्वृतिम् ।  
 स्वदीर्यं बाहुदपं च दर्शयन्वां नृपाधमौ ॥१७  
 शंखचक्रगदापाणिः शाङ्गघन्त्रा किरीटभृत् ।  
 नीलकुञ्चितकेशाढ्यो लम्बबाहुः श्रिया वृतः ॥१८  
 स सर्वलोकप्रभवो विश्वरूपः सुरूपवान् ।  
 दैत्यदानवहन्ताऽसौ योगिध्येयः पुरातनः ॥१९  
 पद्मकिञ्जल्कनयनः श्यामलः सिंहविक्रमः ।  
 सृष्टिस्थितिलयेष्वकः कर्ता त्रिजगतो गुहः ॥२०  
 शरेण निशितेनाजी दर्पं वां व्यपनेष्यति ।  
 इत्युक्त्वा रथमारुह्य प्रययौ सात्यकिः किल ॥२१

सात्यकि ने कहा—हे हंत ! हम भी तुम दोनों का प्राण-हरण करने के लिये बल-परसो में वही पहुँच जायेंगे । यदि इस समय मैं द्रुत के रूप में न होता, तो तुम दोनों का आज ही वध कर डालता ॥१५॥ तुम्हारी भाषा जैसी बड़यो है, उसके देखते हुए तो तुम्हें कल या परसों तक का समय देना भी आवश्यक प्रतीत नहीं होता । परन्तु, दौत्य कर्म की बढोरता में योंवा हुआ हूँ ॥१६॥ यदि यह बात न होती तो मैं आज ही अपना भुज-बल दिखाने के लिये तुम्हें टिकाने लगा देता तो मेरा मन अत्यंत शान्ति को प्राप्त होता । १७॥ जो शंख-चक्र-गदा-शाङ्ग-किरीट धारी, नील कुंचित बेजों से गुणोमित मस्तक और विशाल बाहु वाले, लम्बोदर, सब लोहों की मृष्टि के मून कारण, विश्वरूप, सर्व गुह्य, दैत्य-दानव-विध्वंसक, योगियों के ध्यान योग्य, पुराण पुराण, कमल नेत्र, श्यामल, सिंह जैसे पराक्रमी तथा विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कर्ता हैं, वे ही अग्रेगीत अर्थात् सात्यकि नाम के तुम्हारे अहंकार को नष्ट करेंगे । यह कह कर सात्यकि अपने मत्स्य पर चढ़कर द्वारका के लिये चल पड़े ॥१८-२१॥

## ॥ भगवान् कृष्ण की पुष्कर यात्रा ॥

प्रविश्य स पुरं विष्णोः सात्यकिः शिनिपुंगवः ।  
 आचक्षेऽथ कृष्णाय यथा वृत्तं तयोस्तथा ॥१  
 ततः प्रभाते विमले केशवः केशिसूदनः ।  
 बलाध्यक्षानुवाचेदं चक्रपाणिर्गदाधरः ॥२  
 संनह्यतां बलं सर्वं रथकुञ्जरवाजिमत् ।  
 अनेकभेरीपणवं प्रासासिपरिघाकुलम् ॥३  
 सध्वजं सपताकं च सालकारपरिच्छदम् ।  
 ते तथेति प्रतिज्ञाय सर्वं चक्रुरधीनगाः ॥४  
 आदाय सुदृढं चापं रथमारुह्य दशिताः ।  
 अग्रतो जग्मुरत्यर्थं सेनायाः पुरुषोत्तमाः ॥५  
 सात्यकिश्च तथा राजन्प्रगृहीतशरासनः ।  
 चभौ क्रोधसमायुक्तो जगामाल महाबलः ॥६  
 अन्ये च यादवाः शूराः प्रगृहीतमहायुधाः ।  
 सिंहनादं प्रकुर्वन्तो जग्मुरत्यर्थमुत्तमाः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! तदनन्तर सात्यकि ने द्वारकापुरी में पहुँच कर भगवान् श्रीकृष्ण को वहाँ का सब वृत्तान्त यथार्थ रूप में कहा ॥१॥ दूसरे दिन रात्रि के व्यतीत होने पर नित्य-नैमित्तिक कृत्यों से नियुक्त होने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सेनापतियों को बुलाकर उनसे कहा—हे वीर श्रेष्ठो ! आप अश्व रथ, गज तथा पँदलो से युक्त चतुरगिणी सेना को तुरन्त ही सजाओ । शीघ्र ही भेरी, पणव, प्राश, खड्ग, परिष, ध्वजा-पताका और उपयुक्त अलकारादि को एकत्रित कर डालो । यह सुनकर उन सेनाध्यक्षों ने उनकी आज्ञा-पालन-सूचक सिर झुकाकर सहमति प्रकट की ॥३-४॥ फिर वे वहाँ से जाकर युद्ध की लैयारी में लगे और कुछ ही देर में शस्त्रास्त्रों से युक्त होकर चल पड़े, उनमें जो मुख्य-मुख्य वीर थे, वे रथों में बैठ कर आगे-आगे चले ॥५॥ हे राजन् ! वीरवर सात्यकि भी धनुष धारण किये हुए सबसे आगे

चल रहे थे ॥६॥ अन्यान्य यादव भी आयुधो से मुसज्जित हुए सिंहनाद कर रहे थे ॥७॥

हरिस्तु रथमारुह्य संस्कृतं दारुकेण ह ।  
 शागं भारसह घोरं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥८  
 चक्रपाणिस्तदा शंखी गदाशरवरासिमान् ।  
 बद्धगोघांगुलित्राणः पीतवासा जनार्दनः ॥९  
 पद्ममालावृत्तोरस्को नवजीमूतसन्निभः ।  
 ययौ रथगतो विप्रं स्तूयमानो मुदान्वितः ॥१०  
 सूतमगिघपुत्रैश्च गीयमानस्ततस्ततः ।  
 आनीय सेना सकला ययौ काष्ठामयोत्तराम् ॥११  
 पाञ्चजन्यं मुखे न्यस्य सर्वप्राणेन केशवः ।  
 दध्मौ महारथ कुर्वञ्छत्रूणा भयवर्द्धनः ॥१२  
 आधमातस्तेन हरिणा स चक्रे शंखराड् ध्रुवम् ।  
 रवः स रोदसी राजन्पूरयामास सर्वतः ॥१३  
 तस्मिञ्छये तथाऽऽधमाते दध्मुः शंखाः सहस्रशः ।  
 भेर्यश्चापि समाधमाता मृदंगा बहवो नृप ॥१४

सभी पीताम्बर धारी भगवान् श्रीकृष्ण दारुक द्वारा मुसज्जित किये गये रथ पर चढ़ कर चल दिये । उस समय उन्होंने शार्ङ्गधनु, बाण, दंश, चक्र, गदा और लङ्ग हाथों में ले रखे थे । उनकी अगुलियों में अगुलित्राण घंषा हुआ था ॥८-९॥ उनके घदा, रथल में कमल पुष्पों की मालाएँ गुत्तोभित थी, उनका वस्त्र नवीन मेघ के समान स्वाम था । जब ये युद्ध के लिये चले तब ब्राह्मण यर उनकी स्तुतियाँ करने लगे ॥१०॥ सूत, मागप और यदीत्रियों ने उनका गुणकीर्तन किया और तब वे समस्त एतद्विध सेना के साथ उतर दिना की ओर बढ़े ॥११॥ उस समय उन्होंने अपने पाञ्चजन्य बाण को मुग से पूँव कर उगकी ओर ध्वनि की ॥१२॥ हे राजन् ! उस दल-ध्वनि के होते ही गममूत्र नभ-मण्डल उष्वनित होने लगा ॥१३॥ उस दंश के बरते ही हजारों दश एव साथ बज ; और सभी धनेरों भेरी और मृदगादि बाध बजने लगे ॥१४॥

नैदुरत्यर्थमतुल घर्मन्नि जलदा यथा ।  
 अथाययुर्महाराज पुष्कर पुण्यवर्धनम् ॥१५  
 सरसस्तस्य राजेन्द्र पुष्करस्य नृपोत्तमा ।  
 प्रतीक्ष्य ह सडिम्भकौ युद्धाय समवस्थिता ॥१६  
 निवेश कारयामासुर्यादवा सर्व एव हि ।  
 स्व स्व ययु सुध राजन्प्रगृहीतकुटीमठम् ॥१७  
 भगवानपि गोविन्द सरो दृष्ट्वा सुशोभनम् ।  
 उपस्पृश्य जले तस्मिन्प्रणम्य यतिपु गवान् ॥१८  
 तयोरागमन लिप्सुरास्ते तीरे यथासुखम् ।  
 शृण्वन् वेदध्वनिं विष्णुर्ब्राह्मणा समन्तत ॥१९

जैसे वर्षा के प्रारंभ में मेघ गभीर गर्जना करते हैं वैसे ही भेरी मृदग  
 आदि वाजों का शब्द एक साथ गूँज उठा । उपर पुष्कर में हस डिम्भक के  
 आगमन की प्रतीक्षा करते हुए बहुत से राजागण अपने-अपने शिविर स्थापित  
 करके ठहर गये ॥१५-१६॥ तभी भगवान् वृष्ण ने उस शोभा सम्पन्न पुष्कर  
 सरोवर पर जाकर उसके दर्शन किये और आचमन लेकर तीर्थवासी मुनिजनों  
 को प्रणाम किया तथा वेद ध्वनि श्रवण करते हुए वे भी शिविर स्थापित कर  
 हस डिम्भक के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे तथा अयान्य यादव वीरो ने भी  
 शिविर गाढ़ कर निवास किया ॥१७-१९॥

## ॥ हस-डिम्भक का पुष्कर पहुँचना ॥

अथ तौ हसडिम्भकौ जग्मतु पुष्कर प्रति ।  
 प्रगृहीतमहाचापी सरथौ सध्वजौ नृप ॥१  
 पुर सरमहाभूती सहरन्ताविवोल्बणौ ।  
 प्रकुर्वन्तौ सिंहरव भस्मना परिलेपितौ ॥२  
 त्रिपुण्ड्रकललाटान्तौ रुद्राक्षपरिशोभितौ ।  
 अन्यौ द्वाविव रुद्रौ तौ लोकसहारकारकौ ॥३

ततोऽनुजग्मु शतश संन्यानिनूपसत्तम ।  
 अक्षीहिण्यो दशैवासस्तयोरथ समागता ॥४  
 विचक्रस्तु महाराज दानवो नगसन्निभ ।  
 तयोरेव सखा पूर्वमासीच्च बलशालिनो ॥५  
 शक्रो यस्य पुर सर स्थातु शक्तो न वज्रभृत् ।  
 यो हि वीरो महाराज देवदैत्यसमागमे ॥६  
 देवान्निघ्नस्तथा राजन्देवेन्द्रमजयन्महान् ।  
 अकरोच्च पुरा युद्ध विष्णुना प्रमविष्णुना ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! हम और डिम्भव भी महान् धनुषों  
 की प्रहण कर पृथक् पृथक् रथों के द्वारा पुष्कर के लिये चल पड़े ॥१॥ उनके  
 आगे-आगे विकराल शरीर वाले दो भूत सिंहनाद करते हुए चल रहे थे उन  
 भूतों के मस्तक पर त्रिपुण्ड लगा था और देह पर रुद्राक्ष की माला गुणोभित  
 थी । वे दोनों लोक-सहारायं अवतीर्ण दो रुद्र जैसे प्रवीन हो रहे थे ॥२३॥  
 फिर उन हंस डिम्भव के पीछे सैकड़ों सनानी तथा दस अक्षीहिण्यो सेना चल पड़ी  
 ॥४॥ हे राजन् ! बहुत समय हुआ, तब उन दोनों का विचक्र नामक एक पवत  
 के समान दानव से भ्रंश-भाव हो गया था ॥५॥ उस विचक्र के चल के सामने  
 देवराज इन्द्र भी त्रिकत में गमयं नहीं थे । जब देवागुर सग्राम हुआ था तब उग  
 वीर ने देवताओं की बुरी तरह हराया और इन्द्र को भी जीत लिया था उसने  
 पहिले कभी सव नोनेश्वर भगवान् विष्णु से भी सग्राम किया था ॥६-७॥

यो हि द्वारवतीं प्राप्य वधाधे मद्रुपु गवात् ।  
 स तदानो महाराज श्रुत्वा युद्धमुपस्थितम् ॥८  
 अनेकशतसाहस्रं दानवै परिषामुधं ।  
 वृत् समनयदैत्यो वृत्पिण्डेषानुषोत्तम ॥९  
 हसत्य डिम्भवम्याव साहाय्यं यनुंमुद्यत ।  
 विचक्रम्याव दैत्यस्य हि डिम्बो गणसेवर ॥१०

अतीव मित्रतां यातो दद्यात्प्राणांश्च संयति ।  
 राक्षसैरपरैः साढुं शिलाशूलासिपाणिभिः ॥११  
 ययो तस्य सहायार्थं हिडिम्बः पुरुषादकः ।  
 अष्टाशीतिसहस्राणि राक्षसास्तस्य चाभवन् ॥१२  
 अनुयाता महाराज शिलापरिघवाहवः ।  
 तयोस्तत्र महासैन्यं गच्छतोः केशव प्रति ॥१३  
 मिश्रितं दैत्यसंघैश्च राक्षसैश्च समन्ततः ।  
 अत्यद्भुत महारौद्रं वैलोक्यभयदायकम् ॥१४

एक बार उसने द्वारका पर आक्रमण करके यादवों को भी त्तल किया था और इन युद्ध की सूचना मिलते ही यादवों के वंश का स्मरण कर कई हजार दानवों को साथ लेकर हंस डिम्बक का साथ देने के लिये चल दिया । उस विचक्र की हिडिम्ब नामक एक महाराक्षस से मित्रता थी । जब मित्र के लिये प्राणोत्सर्ग कर देने वाले उस हिडिम्ब ने सुना कि विचक्र युद्ध में जा रहा है, तब वह भी उसकी सहायता करने के विचार से शिला, शूल और तलवारों से सुसज्जित भारी सेना को साथ लेकर चल पडा, वह सेना अट्ठासी हजार थी ॥८-१२॥ हे राजन् ! उसके सैनिकों के बाहु परिघ के समान अत्यन्त कठोर और विशाल थे । कुछ दूर जाने पर विचक्र, हिडिम्ब और हंस-डिम्बक की सेनाएँ परस्पर मिलकर एक हो गईं ॥१३॥ तब वह राक्षसों से युक्त हुई सम्पूर्ण सेना तीनों लोहों के लिये घोर सकट दापिनी प्रतीत होने लगी ॥१४॥

दैत्येन सहिनो तौ हि जग्मतुः पुष्करं प्रति ।  
 तावेतौ हंसडिम्बकी हन्तुं केशवमञ्जसा ॥१५  
 ततः श्रुत्वा जरासन्धो विग्रहं यदुभिः सह ।  
 नाकरोन्पसाहाय्यं पापं मे भवितेति ह ॥१६  
 गच्छतोः समितिं राजन्हंसस्य डिम्बकस्य च ।  
 अतित्वरितविक्रान्तास्ते ययुः पुष्करं प्रति ॥१७

सिंहनाद विमुञ्चन्तः कथयन्तः परस्परम् ।  
 अहमेव नृपा युद्धं करोमि प्रथमं हरेः ॥१८  
 इत्यप्रवृत्तनृपा राजञ्छतशः केशवं प्रति ।  
 संप्रान्तास्ते नृपश्रेष्ठाः पुष्करं पुण्यवर्द्धनम् ॥१९  
 मुनिजुष्टं तपोवृद्धं ऋषिभिश्च निपेवितम् ।  
 अत्यन्तभद्रं लोकेषु पुष्करं प्रथमं नृप ॥२०  
 पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेव जगतीपते ।  
 दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव किल्बिषच्छेदिनी नृप ॥२१

उन दोनों असुरों को साथ लेकर हंस-डिम्भक ने यादवों को नष्ट करने के लिये पुष्कर क्षेत्र की ओर वेग सहित कूच किया ॥१५॥ यादवों के साथ होने वाले इस संग्राम का समाचार जरासभ को भी मिला, परन्तु उसने ब्रह्मा शाप के कारण उस युद्ध में भाग नहीं लिया ॥१६॥ हंस-डिम्भक के अनुयायी सभी राजागण सिंह गर्जन करते हुए कहते थे मैं ही सब से आगे बढ़ कर कृष्ण को युद्ध में पछाड़ूँगा । ऐसी गर्वीकृत व्यक्त करते हुए वे राजा अत्यन्त वेगपूर्वक आगे बढ़ने की होड़ करने लगे ॥१७-१८॥ यह कहते हुए वे संकडो भूपाल मुनिजनों द्वारा सेवित एवं पुण्य को बढ़ाने वाले पुष्कर तीर्थ में युद्ध की इच्छा से जा पहुँचे ॥१९-२०॥ हे राजन् ! पुष्कर क्षेत्र और पुण्डरीकाक्ष भगवान् दोनों के ही दर्शन या स्पर्श से पाप दूर हो जाते हैं ॥२१॥

पुष्करं पुण्डरीकाक्षी द्वावेव नृपसत्तम ।  
 सेव्यमानी मुनिश्रेष्ठैरमरीचैर्महात्मभिः ॥२२  
 द्वावेव हि नृपश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशकी ।  
 तावुमी यत्र सहितौ तत्र ते संस्थिता नृपाः ॥२३  
 दृष्टवन्तौ हरिं विष्णुं विष्टरश्चसं परम् ।  
 पुष्करं पुण्यनिलयं तीर्थं ब्रह्मनिपेवितम् ॥२४  
 त्वाग्नां बुरु नमस्कारं मनसा नृपसत्तम ।  
 अहो निःशेषमभवत्तस भूयो न संशयः ॥२५

सैन्य तत्र च सप्राप्त दैत्यरक्ष समाकुलम् ।  
 अनेकभेरीपणवज्जर्जरिडिण्डिमाकुलम् ॥२६  
 नानापणवसमिध्रं रक्षोनाद विनादितम् ।  
 प्रविश्य सरसस्तीरं पुष्करस्य विशापते ।  
 दर्शयामास देवेश युद्धाय समुत्स्रितम् ॥२७

वहाँ तौ वृद्ध महान् तपस्वी और सामवेदाध्यायी ऋषि मुनि पुष्कर और पुण्डरीकाक्ष दोनों की आराधना में तन्मय रहते थे । उसी ब्राह्मणों द्वारा सेवित पुण्य धाम पुष्कर में भगवान् श्रीकृष्ण को शिविर वाले देव्यकर सब राजाओं ने अपने अपने शिविर लगा दिये ॥२२-२४॥ हे राजन् ! आप भी यही बँठे बँठे उस पुष्कर तीर्थ और पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु को प्रणाम करिये, इससे नि सदेह आपके सभी पापों का नाश हो जायगा ॥२५॥ फिर क्षत्रिय राजा, दैत्य, राक्षस आदि सभी भेरी, पणव, झंजर, डिडिम आदि बजाते और भीषण कोलाहल करते हुए जब पुष्कर सरोवर पर गये तो वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण की वीर वेश में अपनी प्रतीक्षा करते हुए देखा ॥२६-२७॥

## ॥ हंस-डिम्भक और यादवों का संग्राम ॥

द्वे सेने सगते राजन्सध्वजे सपरिच्छद्वे ।  
 महापरिघसकीर्णे गदाशवितसमाकुले ॥१  
 भेरीभ्रंजरसपूर्णो डिण्डिमारावसकुले ।  
 प्रगृहीतमहाशस्त्रे शूलासिवरकामुंके ॥२  
 परस्परवृत्तोत्साहे चक्राते युद्धमुल्यणम् ।  
 ते शरा कामुंकोत्सृष्टा निर्भिद्याथ शरीरिणम् ॥३  
 शरीराणि महाराज जग्मुर्द्वरं सहस्रशः ।  
 भटवाहुविनिमुक्ताः पङ्गा निर्भिद्य वक्षसि ॥४  
 स्फुरिताश्व तथा राजञ्छिरास्याहृत्य खं ययुः ।  
 परिघारश्च तथा राजा बाहुनि परिचोदिता ॥५



तिलशश्चक्रु रतुलं शरीरं नृपक्षसाम् ।  
 दैत्याना कुर्वता नादमन्योऽन्यवधकाक्षिणाम् ॥६  
 दैत्या रक्षासि राजेद्र राजानश्च समन्तत ।  
 अन्योऽन्य परिघैर्जघ्नुश्चापमुक्तं शिलाशितं ॥७

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! दोनो पक्ष की सेनाएँ युद्ध सामग्री और ध्वजादि के साथ तथा परिघ, गदा आदि आयुधो सहित भेरी, झंझर, डिण्डिम आदि बजो को बजाते हुए युद्ध क्षेत्र में पहुँच कर भिड़ गई और तब वीरो के धनुषों में छूटते हुए तीक्ष्ण बाण परस्पर में देहो को विदीर्ण करने लगे ॥१-३॥ तलवारो के प्रहार से हजारो योद्धाओ के हृश्य और मन्तक आदि अग छिन्न-भिन्न होने लगे । परिघों के आघात से देहो के टुकड़े उड गये । एक दूमरे को मारने की इच्छा से सैनिकगण घोर गर्जन करने लगे ॥४-६॥ दैत्य, राक्षस तथा राजागण परिघो और तीक्ष्ण बाणो के प्रहार से परस्पर आघात करने लगे ॥७॥

शरैश्च भोगिभोगभैस्तीक्ष्णमन्ये महाबल ।  
 राक्षसा दानवाश्चान्ये मत्तमातङ्गविक्रमा ॥८  
 अन्योऽन्य जघ्नरे राजश्चापमुक्तमहाशरै ।  
 नागा नागैर्महाराज हया अश्वै समन्तत ॥९  
 रथा रथै समाजग्मु सादिन सादिभिस्तदा ।  
 पट्टिशासिशरव्रातै कुन्तै सायकरूपैर्ण ॥१०  
 सशक्तिपरिघप्राप्तपरश्वधसमाकुलै ।  
 मिन्दिपालैर्महारोद्रैर्जघ्नुस्त्रयोऽन्यमाह्वे ॥११  
 अन्योऽन्य जघ्नरे राजश्चापमुक्तं शिलाशितं ॥१२  
 राक्षसा दानवा राजन्क्षत्रियाश्च समन्तत ।  
 इतश्चेतश्च घायन्त कुर्वन्तो विस्वरं रयम् ॥१३

मदमत्त गजराज के समान बली राक्षस और दैत्य नागपत्न के समान विपासत यानों से वीरों को मरिद करने लगे । हाथी हाथियों से, अश्व अश्वों से,

रथ रथों से और पदाती पदातियों से भिडे हुए थे । पट्टिश, तनवार, शर, कृन्त, कर्पण शक्ति, परिघ, प्राण, परश्वध और भिन्दिपाल आदि के प्रहारों से शरीर कट रहे थे ॥८-११॥ हे राजन् ! मत्त वायु के समान बलशाली दैत्य, क्षत्रिय और राक्षस आदि तीखे बाणों से परस्पर में घायल करते हुए तथा भयकर रूप से चीखते हुए घूमने लगे ॥१२-१३॥

हताः केचिन्महाराज पेनुरुव्यां महासिभिः ।  
 केचिन्मथितमस्तिष्का गदाभिर्वीर्यवत्तमाः ॥१४  
 भिन्नग्रीवा महाराज परिघं परिघायुधैः ।  
 यमगष्ट्रं गताः केचित्केचित्स्वर्गं समाययुः ॥१५  
 अप्सरोभिः समासेदुः पश्यन्तः स्वकलेवरम् ।  
 केचित्स्वाश्च पराश्चैव हत्वा भ्रान्ना इवाभवन् ॥१६  
 एतस्मिन्नन्तरे राजञ्छंखा भेर्यः सहस्रश ।  
 सस्वनुः सर्वतः सैन्ये मृदगा बहवस्तथा । १७  
 मध्यंदिनगते सूर्ये ताप दधति घोरवत् ।  
 ततः पिशाचा विकृताः कराला वितततोदराः ॥१८  
 राक्षसाश्च महाघोराः पिशितं केशशाद्वलम् ।  
 मुदिता भक्षयामासुः पिबन्तः शोणितं बहु ॥१९  
 सञ्चितानि शवान्यासन्कवन्धाः खंगपातिताः ।  
 विभज्य देशं बहुशो युद्धभूमी शवाशिनः ॥२०

हे राजन् ! उनमें से कुछ वीर तलवार के प्रहार से छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़े, कुछ के मस्तक गदाओं के आघात से फट गये ॥१४॥ कुछ परिघधारी वीर परिघों के प्रहार से ही मारे गये, कुछ वीर यमलोक को और कुछ स्वर्गलोक को प्राप्त हुए ॥१५॥ जो लोग स्वर्ग पहुँच गये, वे अप्सराओं के साथ विहार करते हुए रण क्षेत्र में पड़े अपने मरे हुए देह को ऊपर से देखने लगे । कुछ व्यक्ति इतने उन्मत्त हो गये थे कि वे अपने पदा के और शत्रु पक्ष के वीरों में कुछ भेद न समझ कर दोनों पक्ष वालों को ही मारने हुए घूम रहे थे ॥१६॥

हे राजन् ! जब सूर्य आकाश के मध्य में पहुँच कर अपनी प्रखर किरणों से धीरे-धीरे ताप पहुँचा रहे थे, तब सब ओर से हजारों शख, भेगी और मृदगादि वज्र उठे । फिर उस रसाक्षेत्र में घूमते हुए विकटाकार पिशाच और राक्षसादि अत्यन्त हृष्य पूर्वक रुधिर-मांस का भक्षण करने लगे ॥१७१॥ बहुत से मर कर गिरे हुए वीर अथवा बिना मस्तक के देह हाथ की तलवारों को घुमा रहे थे ॥२०॥

अथ श्येना मृगाश्चैव कङ्का गृध्रास्तथा परे ।  
 तुण्डै शवान्विनिष्कृष्य भक्षयन्ति ततस्तत ॥२१॥  
 सप्ताशीतिसहस्राणि हता नागा नृपोत्तम ।  
 त्रिंशत्सहस्रमयुतं निहता ह्यसत्तमा ॥२२॥  
 हत लक्ष महाराज रथाना रथिभि सह ।  
 त्रिंशत्सहस्रं हतास्तत्र सादिन सायुधा भृशम् ॥२३॥  
 मध्य दिनगते सूर्ये हता केचन निर्गता ।  
 केचिच्च तृपिता राजन्विविशु पुष्कर सर ॥२४॥  
 केचिद्भूमि समालिङ्ग्य भीना एत्यद्भ्रूयन् नृणे ।  
 मुक्तकेशा पतन्नि स्म रथान्सत्यज्य केचन ॥२५॥  
 सदष्टोष्ठपुटा केचित्मादिन पुरतो हता ।  
 अत्यद्भ्रूत महायुद्धमासीत्पुणरतीर्थने ।  
 यथा देवासुर युद्धमासीत्पूर्वं नृपोत्तम ॥२६॥

उस समय बूनर, बीआ वर और शृङ्गण मृत शरीरों को तोंच-तोंच कर भक्षण कर रहे थे ॥२१॥ हे राजन् ! उग सधाम में गताती हजार हाथी, घानीत हथार अश्व, रथियों के सहित एक साथ रथ और तीस करोड़ सशस्त्र पदच नष्ट हो गये ॥२२॥ उस महायुद्ध का न भ जो भी योद्धा युद्ध में गया वह यहाँ से नहीं लौट सका । उनमें से कुछ वीर पुष्कर मरीचर में ही गिर गये ॥२४॥ कुछ लोग पृथिवी पर पट पड़े ही धीमे रहे थे । कुछ योद्धा अपने दूरे हुए रथों से नीचे गिर गये ॥२५॥ कुछ अपशरोही प्रतिपक्ष के गकारों द्वारा मारे गये । हे राजन् ! पुष्कर क्षेत्र में होने वाला यह सधाम देवागुर मधाम व ममानों में भयकर था ॥२६॥

## ॥ श्रीकृष्ण का महान पराक्रम ॥

मत्स्मिन्नन्तरे राजन्ध्वयुद्धमवर्तत ।  
 विचक्रं योधयामास शाङ्गधन्वा गदाधरः ॥१॥  
 वलभद्रोऽथ हंसेन डिम्भकेन च सात्यकिः ।  
 वसुदेवोऽग्रसेनाभ्यां हिडिम्बः पुष्पादकः ॥२॥  
 शेषाश्च शेषै राजेन्द्र चक्रयुद्धमदीनगाः ।  
 वासुदेत्रस्त्रिसप्तत्या दैत्य वक्षस्यताडयत् ॥३॥  
 शरं निशितवारान्निर्विस्मय दर्शयन्गणे ।  
 दानवो देवदेवेशं दृढेन निशितेन च ॥४॥  
 शरेणाकर्णमाकृष्य धनुःप्रवरमीश्वरम् ।  
 जघान स्तनमध्ये च पश्यतस्तु शचीपतेः ॥५॥  
 तेन विद्धोऽथ भगवान्वक्षोदेशे जनार्दनः ।  
 अवमच्छ्रोणितं विष्णु रादिकाले यथा प्रजाः ॥६॥  
 ततः क्रुद्धो हृषीकेशः धुरप्रेणाहनद्ध्वजम् ।  
 अश्वांश्च चतुरो हत्वा सारथि च शरंस्त्रिभिः ॥७॥

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसके पश्चात् दोनों पक्षों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा और गदा तथा शाङ्ग धनुगरी भगवान् श्रीकृष्ण विचक्र से, बलरामजी हंस से, सात्यकि डिम्भक से और वसुदेव, उग्रसेन दोनों ही असुरराज हिडिम्ब से लड़ने लगे ॥१-२॥ अन्य सभी यादव विपक्ष के अन्यान्य योद्धाओं से भिडे हुए थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने तिहत्तर तीक्ष्ण बाणों से विचक्र का हृदय बीध दिया ॥३॥ फिर जब विचक्र ने अपने तीक्ष्ण बाणों से भगवान् का वक्षस्थल बीधा, तब उसकी बोरता देखकर सभी विस्मित हो गये ॥४॥ उसके पश्चात् उसने अपने धनुष की प्रत्यक्षा की कान तक ले जाकर भगवान् कृष्ण के हृदय पर एक और बाण से प्रहार किया ॥५॥ उस बाण का अत्यन्त कठोर आघात हुआ, जिससे आदिकाल में उनके मुख से सृष्टि उत्पन्न होने के समान ही, इस समय रघिर की धारा निकल पड़ी ॥६॥ फिर भावात् श्रीकृष्ण अत्यन्त

क्रोधित हो गये तब उन्होंने एक सुतीक्ष्ण बाण से विचक्र के रथ की ध्वजा काट कर, उसके चारों अश्व मार डाले, फिर उसके सारथी पर तीन बाणों से प्रहार किया ॥७॥

ततो दध्मी महाशत्रु यथा तारामये रणे ।  
 रथाद्दुत्प्लुत्य सहसा दानवः क्रोऽमूर्च्छिनः ॥८  
 गदा गृह्य महाघोरा दुःसहा वीरशालिनीम् ।  
 तथा जघान दैत्येन्द्र किरीटे केशवस्य ह ॥९  
 ललाटे च पुनर्विष्णुं सिंहनाद व्यनीनदत् ।  
 ततः शिला च महती प्रगृह्य दनुजः किल ॥१०  
 भ्रामयित्वा दशगुणं प्राहरत्केशवोरसि ।  
 तामापतन्ती स प्रेक्ष्य हस्तेनादाय केशवः ॥११  
 जघान च तथा दैत्यं स पपानार्दितः क्षिती ।  
 गतासुरिव सञ्जज्ञे श्वसन्निव पपात ह ॥१२  
 प्राप्य सञ्जा ततो दैत्यः क्रोधाद्द्विगुणमाबभौ ।  
 आदाय परिघं घोरमिदमाह जनार्दनम् ॥१३  
 अनेन तव गोविन्द दर्पजातं निहन्म्यहम् ।  
 विक्रमजस्तदा चासि मम देवामुरे रणे ॥१४  
 तावेव विपुली बाहू स एवास्मि जनार्दन ।  
 तथापि युध्यसे वीर ज्ञात्वा त्वं मामकं बलम् ॥१५

फिर तारक युद्ध में दश-ध्वनि करने के समान ही उन्होंने घोर शंख-ध्वनि की, तभी विचक्र अपने रथ से कूद पड़ा और एक भयंकर गदा लेकर भगवान् के किरीट और ललाट पर प्रहार किया तथा घोर गर्जन करने लगा । फिर अपने एक विशाल शिला ग्रहण कर उसे दश गुने बेग से घुमाई और भगवान् के हृदय पर दे मारी । यह देख कर भगवान् ने उसे बीच में ही हाथों से पकड़ लिया और फिर वही शिला उन्होंने विचक्र की ओर चला दी ॥८-११॥ उस शिला के लगने ही विचक्र दीर्घ निश्वात छोड़ता हुआ निष्प्राण के समान

पृथिवी पर लेट गया ॥११॥ कुछ समय पश्चात् होश आने पर दुग्ने क्रोध से उठा और एक घोर परिघ ग्रहण कर भगवान् से कहने लगा—हूँ गो-द । देवासुर सग्राम मे तुम मेरे पराक्रम को भले प्रकार देव चुके हो, मैं अब इस परिघ से तुम्हारा सभी गर्व खण्डित कर डालूँगा ॥१३ १४॥ मेरे यह भुजदण्ड वही है, मैं भी वही हूँ इस पर भी तुम मुझसे युद्ध करने का दु साहस करते हो ॥१५॥

वारयेन महाबाहो परिघ बाहुनि सृतम् ।  
 इत्युक्त्वा देवदेवेश श खचक्रादाग्रम् ।  
 चिक्षप दैत्यो लोकेश सर्वलोकस्य पश्यत ॥१६  
 त गृह्य बाहुना कृष्णो हतो ऽसीति वदन् हरि ।  
 खण्डश कारयामास खङ्गेन निशितेनह ॥१७  
 उत्पाद्य वृक्ष दैत्येश शतशाख महाशिखम् ।  
 तेन स पोथयामास विष्टरश्रवस विभुम् ॥१८  
 छित्ना त चापि खङ्गेन तिलशश्च चकार ह ।  
 विक्रीडय सुचिर विष्णुस्तेन दैत्येन माधव ॥१९  
 हन्तुमैच्छत्तदा दैत्यमादाय निशित शरम् ।  
 आग्नेयास्त्रेण सयोज्य जघान न महान् हरि ॥२०  
 सदह्य स शरो दैत्य सर्वलोकस्य पश्यत ।  
 यथापूर्वं जगामाशु कर भगवत पुन ॥२१  
 हतशिष्टास्ततो दैत्या पलायन्तो दिशो दश ।  
 अद्यापि न निवर्तन्ते गच्छन्तो वै महोदधिम् ॥२२

हे महाबाहो ! अब मैं इस परिघ से तुम पर प्रहार करता हूँ यदि सामर्थ्य ही तो इतने रोको । यह कह कर विक्र ने जैसे ही अपने परिघ का प्रहार किया वैसे ही उन्होंने उस परिघ को सपक लिया और अपने खङ्ग से उनके टूट-टूट कर डाले ॥१६-१७॥ फिर विक्र ने एक संकड़ों शाखावाला विद्याल वृक्ष उखाड़ कर उन पर फेंका तो उन्होंने उते भी अपने हाथ में पकड़

कर खण्ड-खण्ड कर दिया । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण बहुत देर तक उसे खिलाते रहे ॥१८-१९॥ फिर उन्होंने उसे मारने का निश्चय कर आग्नेयास्त्र ग्रहण किया और उस दैत्यराज विचक्र पर वेग से छोड़ा ॥२०॥ तब उस भीषण आग्नेयास्त्र ने विचक्र का पूरा शरीर तुरन्त ही भस्म कर दिया और फिर वह अस्त्र भगवान् के पाम ही लौट गया ॥२१॥ तब बचे हुए दैत्यगण सब दिशाओं में भागते हुए अन्त में समुद्र में जाकर छिप गये और आज तक लौट कर नहीं आये ॥२२॥

## ॥ हंस और बलभद्र का भीषण युद्ध ॥

बलदेवस्तु धर्मात्मा धनुरादाय सत्वरम् ।  
जघान हंस दशभिर्बाणैर्बाणभृता वर ॥१॥  
त प्रत्यविध्यन्नाराचैर्हंस पञ्चभिराशुगैः ।  
तानन्तरे हली छिन्वा नाराचैर्दशभिः पुनः ॥२॥  
नाराचेनाशु विव्याध ललाटे हंसमोजसा ।  
दृढपतन्स नाराचस्तस्य सजा समाददे ॥३॥  
लब्ध्वा हंसससजा तु विद्वत्त्वा तेन यदुत्तमम् ।  
सिंहवद्व्यनददत्त सो देवान्विस्मापयन् रणे ॥४॥  
तन् क्रुद्धो हली विद्वस्तेन बाणेन माधव ।  
वमञ्छोणितमत्युष्णनिश्वसश्च रणाजिरे ॥५॥  
लोहिताग्निष्ठागस्तु कुङ्कुमाद्रं इवाभवत् ।  
नाराचैः शतसाहस्रैर्दृश्यामास माधव ॥६॥  
हंसससर्गतिं घोरनीलवासा हलामुध ।  
ते मुक्तानिशिता घोरा नाराचाश्च मुञ्चाजिनः ॥७॥  
रथे ध्वजे तथा चापे चक्रे तूणाद्वये नृप ।  
पतिता सर्वतो राजन् व्यथा चैव तथा ददुः ॥८॥

वंशम्पायनजी ने कहा—हंस राजन् ! इसी समय धनुष धारण करने वाली मे श्रेष्ठ बलरामजी ने दस बाणों की म

॥१॥ तब हस ने भी उन पर पाँव बाण छोड़े, जिन्हें बलरामजी ने बीच ही काट दिया और फिर दस बाणों से हस के हृदय में प्रहार किया और एक बाण से उसका ललाट बीच दिया, जिसके कारण वह निश्चेष्ट होकर पृथिवी पर गिर गया ॥२-३॥ जब बहुत देर बाद उसे होश हुआ तब उसने एक बाण से बलराम जी पर प्रहार करके घोर गर्जना की । उसके उस साहस को देखकर देवता भी विस्मित हो उठे ॥४॥ उसके भयंकर आघात के कारण बलरामजी दीर्घ निःश्वास का त्याग करते हुए मुख से रक्त वमन करने लगे ॥५॥ उनका सम्पूर्ण देह रक्त से लयपय हो गया, जैसे धे कुकुम के रंग में सराबोर हो गये हो । फिर नीला-म्बर धारी बलरामजी ने वस जैसी गति वाले हस पर एक साथ ही सात हजार बाण छोड़े, जो उसके रथ, ध्वज, छत्र और दोनों तरफों में जाकर लगे, जिससे हस को बहुत त्रस्त होना पडा ॥६-८॥

ततः क्रुद्धो महाराज ह सो वीयमंदान्वितः ।

शरेण हलिनं विद्ध्वा ध्वजं चिच्छेद कालवित् ॥६

शरंश्चतुर्भिरश्वांश्च सूतं प्रेताधिपं दधी ।

ततः क्रुद्धो हली तस्मै गदां गृह्य महारणे ॥१०

आपपात महाबाहुर्हस शेष इव श्वसन् ।

तथा रथं ध्वजं चक्रमश्वान्मूतं हलायुधः ।

बभञ्ज तिलश सर्वं ननाद च पुनः पुन ॥११

भूयश्च गदया ह सं चिक्षेप च बली किल ।

सोऽपि हंसो गदा गृह्य रथात्तस्मादवापतत् ॥१२

ततस्ती ह सहलिनो युयुधाते महारणे ।

महारथो महाबाहू लोके प्रविततेजसो ॥१३

अत्यद्भुतो सुविक्रान्तो परस्परवर्धयिणी ।

श्रुतश्रमो महापुद्गे ह सविक्रान्तगामिनी ॥१४

यया देवासुरे युद्धे शक्तृश्री पुराऽम्परे ।

उभौ सप्तानसर्वांगौ शोणितेन महारणे ॥१५



तब बल से मदान्ध हुए हंस ने अत्यन्त क्रोध पूर्वक एक बाण से ही बलराम को बीध दिया और दूसरे बाण से उनकी ध्वजा भग कर दी ॥१॥ फिर उसने चार बाणों के प्रहार से उनके चारों अश्वों को सारथी सहित मार दिया । तब बलदेवजी ने भी गदा उठाकर अत्यन्त क्रोध पूर्वक श्वास लेते हुए हंस पर आघात किया, जिससे उसके रथ, चक्र, जुआ और ध्वज आदि खड़-खड़ हो गये ॥१०-११॥ तभी उन्होंने हंस पर गदाघात किया, जिसका प्रतिकार करने के लिये हंस भी गदा ग्रहण करके रथ से नीचे आगया ॥१२॥ इस प्रकार उन दोनों प्रसिद्ध पराक्रम वाले विशाल बाहु वीरों में घोर गदा युद्ध आरम्भ हो गया ॥१३॥ परस्पर एक दूसरे को मारने की इच्छा करते हुए वे दोनों वीर देवासुर संग्राम में इन्द्र और वृत्र के समान युद्ध करते हुए रक्त में भोग गये ॥१४-१५॥

अत्यन्तखेदिनी युद्धे परस्परबलेन ह ।  
 ततश्च दक्षिणं मार्गं बलभद्रोऽग्रहीदथ ॥१६  
 सव्यं तु हंसो राजेन्द्रो व्यगृह्णात्स्वयमेव हि ।  
 पोथयाञ्चक्रतुयुद्धे गदाभ्या गजविक्रमौ ॥१७  
 यथाप्राणं महाबाहू जघ्नतुर्मरणाय तौ ।  
 अतिप्रवृद्धं संग्राम देवासुररणोपमम् ॥१८  
 विदधाते महारणे पश्यतां त्रिदिवीकसाम् ।  
 देवाश्च मुनयश्चैव विस्मयं परिजग्मिरे ॥१९  
 अहो खल्वीदृशं युद्धं दृष्टं पूर्वं न च श्रुतम् ।  
 इत्युचुर्विस्मयवशाद्देवगन्धर्वकिन्नराः ॥२०  
 परस्परकृतोत्साहौ चक्रतुयुद्धमुत्तमम् ।  
 अथ हंसो महारणे दक्षिणं दक्षिणोत्तमः ॥२१  
 व्यचरन्मार्गं मत्पर्यं सव्यं तु बलवान्बलः ।  
 निकुञ्चय् जानुनी पूर्वं चक्रतुर्गदया भृशम् ।  
 रणे रणविदा श्रेष्ठौ पश्यतां त्रिदिवीकसाम् ॥२२

परस्पर प्रहार करते हुए वे दोनों योद्धा मन में खिन्न होकर लड़ रहे थे । बलरामजीने दक्षिण मण्डल और हंसने घाम मंडल बाँध कर पेटरे बदले,

उस समय वे दोनों निर्भय होकर एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे । इस प्रकार युद्ध में देवासुर-संग्राम जैसी ही भयकरता थी ॥१६-१८॥ उस महायुद्ध को देखते हुए देवता, मुनि, गधर्व और किन्नरादि अत्यन्त आश्चर्य व्यक्त करते हुए परस्पर में कहने लगे कि ऐसा युद्ध तो हमने कभी भी नहीं देखा और न सुना ॥१६-२०॥ परन्तु वे दोनों महान् योद्धा पूर्ण उत्साह के साथ युद्ध में जुटे रहे, तभी दोनों ने पुनः अपने-अपने पेटरे परिवर्तित किये । उस समय घुटनों को मोड़े हुए उन वीरों में अत्यन्त भीषण गदा युद्ध हो रहा था ॥२१-२२॥

## ॥ डिम्भक-सात्यकि युद्ध ॥

युद्धं चक्रतुरत्यर्थं ततो डिम्भकसात्यकी ।  
 तावुभौ बलिनी वीरौ विप्यातौ क्षत्रियेषु च ॥१॥  
 कृतश्रमी महायुद्धे सततं वृद्धसेविनी ।  
 सात्यकिर्दशभिर्वीरो डिम्भकं वेदपारगम् ॥२॥  
 अविध्यन्निशितैर्वाणस्तेन वक्त्रे तयोरसि ।  
 स तेन विद्धो बलिना डिम्भकः क्षत्रियोत्तमः ॥३॥  
 नाराचैः पञ्चसाहस्रैर्विव्याद्य युधि गर्वितः ।  
 तानन्तरे वृष्णिवीरो निपिद्धन्निनदन्ब्रुवन् ॥४॥  
 अथ क्रुद्धो नृपवरो विद्धः सप्तभिराशुगैः ।  
 पुनः शतसहस्रेण प्रत्यविध्यत सात्यकिम् ॥५॥  
 सात्यकिस्त्वथ विक्रान्तो घनुश्चिच्छेद तस्य तत्त्वं ।  
 अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन डिम्भकस्य स यादवः ॥६॥  
 आजघ्ने डिम्भको वीरश्चापमादाय चापरम् ।  
 क्षुरप्रेणाय रोद्रेण तैलघौतेन विक्रमी ॥७॥

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! वृद्धजनों की सेवा करने वाले क्षत्रियों में प्रसिद्ध वीर सात्यकि और डिम्भक के मध्य जो युद्ध हो रहा था, उसमें प्रथम सात्यकि ने ही डिम्भक के मुख और हृदय पर दस सुतीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया । तब डिम्भक ने भी एक साथ पाँच हजार बाणों की सात्यकि

पर दृष्टि की। परन्तु सात्यकि ने उन सभी बाणों को बीच में ही काट दिया और घोर गर्जना करने लगे ॥१-४॥ फिर क्रोधित हुए डिम्भक ने हजार बाणों के आघात से सात्यकि को त्रस्त कर दिया ॥५॥ तब सात्यकि ने भी अपने एक अर्द्ध चन्द्राकार बाण से डिम्भक का धनुष काट दिया ॥६॥ यह देख कर डिम्भक ने दूसरा धनुष लेकर अत्यन्त तीक्ष्ण किये गये बाण से सात्यकि पर प्रहार किया ॥७॥

स तेन विद्धो बाणेन वमञ्छोणितकं नृप ।  
 अवीव शुशुभे राजन्वसन्ते किंशुको यथा ॥८  
 धनुश्चिच्छेद भूयस्तु गृहीतं यत्पुरा धनुः ।  
 ततोऽन्यद्धनुरादाय डिम्भको यादवेश्वरम् ॥९  
 जघानं निशितैर्बाणैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।  
 स धनुः पुनरत्युग्र चिच्छेद युधि सात्यकिः ॥१०  
 शरेण तीक्ष्णपुंखेन डिम्भकस्य दुरात्मनः ।  
 ततोऽन्यद्धनुरादाय सत्वरं स नृपोत्तमः ॥११  
 धनुषात्तेन राजेन्द्र सात्यकिं विव्यधे पुनः ।  
 एवं धनूँषि राजेन्द्र शतं पञ्च च पञ्च च ॥१२  
 छित्त्वा ननाद शं नेयः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।  
 धनुषी तौ परित्यज्य वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥१३  
 खड्गौ प्रगृह्य चात्युग्रौ युद्धाय समुपस्थितौ ।  
 तौ हि खड्गविदां श्रेष्ठौ वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥१४

उस बाण से घायल होकर सात्यकि के मुख से रक्त बहने लगा, उस समय वे वसंतकाल में फूलने वाली किमुक के समान प्रतीत होने लगे ॥८॥ तब उन्होंने अपने एक बाण के प्रहार से डिम्भक का यह धनुष भी काट दिया, इससे क्रोधित होकर डिम्भक ने एक अन्य धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढा कर सात्यकि पर प्रहार किये। परन्तु, सात्यकि ने उसका वह धनुष भी काट दिया और डिम्भक ने एक और श्रेष्ठ धनुष ग्रहण किया ॥९-१॥ इसके द्वारा सात्यकि

पर कठिन प्रहार हुए, तब सात्यकि ने उसके उस धनुष को भी काट दिया । हे राजन् ! इस प्रकार सब राजाओं के देखते-देखते ही सात्यकि ने उसके पाँच सौ पाँच धनुष काट डाले और फिर घोर गर्जना की । अब उन दोनों वीरों ने भयंकर तलवारें ले-लेकर युद्ध आरम्भ किया ॥१२-१४॥

दीःशासनिर्महाभाग सोमदत्तिस्तथैव च ।

अभिमन्युश्च विक्रान्तौ नकुलश्च तथैव च ॥१५

एते खड्गविदां श्रेष्ठाः कीर्तिता युधि सत्तमाः ।

एतेष्वेतौ नृपश्रेष्ठी खड्गे हि नृपसत्तम ॥१६

सावेतावासिना युद्धं चक्रतुर्बुद्धलालसौ ।

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्ध प्रविद्धं बाहुनिःसृतम् ॥१७

आकरं विकरं भिन्नं निर्मर्यादममानुषम् ।

संक्रोचितं कुलचितं सव्यजानु विजानु च ॥१८

आहितं चक्रकं क्षिप्तं कुसुम्बं लम्बनं धृतम् ।

सर्वबाहुर्विनिर्वाहः सव्येतरमयोत्तरम् ॥१९

क्षिवाहुस्तुङ्गबाहुश्च सव्योन्नतमुदासि च ।

पृष्ठतः प्रथितं चैव योधिकं प्रथितं तथा ॥२०

इति प्रकारान्द्वात्रिंशच्चक्रतुः खड्गयोधिनौ ।

पुनः पुनः प्रहरन्ती न च श्रममुपेयतुः ॥२१

हे राजन् ! उस समय दुःशासन का पुत्र, सोमदत्त का पुत्र, डिम्भक, सात्यकि, अभिमन्यु और नकुल—यह छ वीर तलवार के युद्ध में प्रथम श्रेणी के समझे जाते थे । उन छ वीरों में से भी सात्यकि और डिम्भक का इस प्रकार के युद्ध में विशेष नाम था । ॥१५-१६॥ इस प्रकार असियुद्ध में अत्यंत प्रसिद्ध इन दोनों वीरों में इस युद्ध का आरम्भ हुआ, उस समय उन्होंने भ्रान्त, उद्भ्रान्त, अविद्ध, प्रविद्ध, बाहुनिःसृत, आकर, विकर, भिन्न, निर्मर्याद, अमानुष,

सकोचित, कुलचित, सव्यजानु, विजानु, आहित, चक्रक, क्षिप्त, कुसुम्ब, लम्बन, घृत, सर्वबाहु, विनिर्बाहु, सव्येतर उत्तर, त्रिबाहु, तुंगबाहु, सव्य, उन्नत, उदासि, पृष्ठ पयित, योधिक और प्रयित, इन वतीस प्रकार की असि-कलाओं के करतब दिखाये । इस प्रकार निरन्तर भीषण असियुद्ध करते हुए भी उन दोनों में से कोई भी पीछे न हटा ॥१७-२१॥

पुष्करस्थो महाराज युद्धाय कृतनिश्चयो ।  
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥२२

तुष्टुवुस्ती महाराज जये कृतपरिश्रमी ।  
अहो वीर्यमहो धैर्यमनयोर्बाहुशालिनो ॥२३

एतावेव रणे शक्तौ खड्गे धनुषि पारगौ ।  
एक. शिष्यो गिरीशस्य द्रोणस्यान्यो हि धीमतः ॥२४

अर्जुनः सात्यकिश्चैव वासुदेवो जगत्पतिः ।  
स एते महाराज प्रथिताः संगरे सदा ॥२५

डिम्भकः शक्तिभृच्छर्वस्त्रय एते महारथाः ।  
प्रसिद्धाः सर्व एवैते वीर्येषु च चलेषु च ॥२६

इति ते देवगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महोरगाः ।  
दिवि स्थिता समं ब्रूयुदुद्धदर्शनलालसाः ॥२७

उन दोनों वीरों का ऐसा पराक्रम देख कर देवता, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, नाग और ऋषिगण आदि परस्पर कहने लगे—देखो, यह कैसे बलवान् है, ये ही असियुद्ध और धनुर्वेद में यमार्थ रूप से पारगम हैं । वास्तव में इनके धैर्य प्रशंसा के योग्य हैं ॥ २२-२३ ॥ इनमें से एक भगवान् शक्र का और दूसरा द्रोणाचार्यजी का शिष्य है, जैसे अर्जुन, सात्यकि और भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध-कला में विशेषज्ञ हैं, वैसे ही डिम्भक, शक्तिकेय और भगवान् रद्र भी महारथी बहू कर प्रसिद्ध हैं । इनके समान बल-वीर्य वाला भी और कोई नहीं है ॥२४-२६॥ इस प्रकार कहते हुए देवताओं और गन्धर्वादि ने उनकी रण-शुशलता की प्रशंसा की ॥२७॥

॥ हिडिम्ब वध वर्णन ॥

वसुदेवोग्रसेनी च वृद्धो युद्धे सुनिवृत्ती ।  
 जराजस्त्रिसर्वांगी पलितागशिरोरुहौ ॥१  
 ज्ञानविज्ञानसंपन्नो राजमार्गं विशारदौ ।  
 युयुधाते महारङ्गे राक्षसेन दुरात्मना ॥२  
 शरं रनेकसाहस्रं र्हयामासतू रणे ।  
 राक्षसेन्द्रं दुरात्मनं हिडिम्ब पुरुपादकम् ॥३  
 हिडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भक्षयन्सर्वतो नरान् ।  
 अतिप्रवृद्धो दुष्टात्मा लम्बवाहूर्महाहनुः ॥४  
 लम्बोदरो विरूपाक्षः पिङ्गकेशो विलोचनः ।  
 श्येन नासो महारौद्र ऊर्ध्वरोमा महाभुजः ॥५  
 पर्वताकारवर्ष्मा च दीर्घदंष्ट्रः शिवाननः ।  
 लम्बोदरो दीर्घदन्तो जगद्ग्रासपरस्तथा ॥६  
 उत्तङ्गासो महोरस्को दीर्घश्रीवो गजोपमः ।  
 भक्षवन्मासपिटकं पिबञ्छोणितसंचयम् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! वयोवृद्ध एव रणकुशल महात्मा वसुदेवजी और महाराज उग्रसेनजी ने उस अरघन्त दुष्ट राक्षसराज हिडिम्ब के साथ उस महायुद्ध में युद्ध करना आरम्भ किया ॥१-२॥ उस समय उन्होंने बहुत-से बाणों की वृष्टि के द्वारा उस मानव मांस का आहार करने वाले महा राक्षस हिडिम्ब को आहत कर दिया ॥ ३ ॥ तब भी वह राक्षस असह्य मानवों का भक्षण करता हुआ युद्ध क्षेत्र में इधर से उधर घूमता रहा । उसके विशाल बाहु, लम्बी हनु, मोटा उदर, पिगल वर्ण के भयावने नेत्र, पीत केश, श्येन के समान नाक और भयानक शरीर था । उसके रोगटे खड़े हुए थे, पर्वताकार भीषण देह, पर बड़े-बड़े दाँत, स्थूल और लम्बा उदर, परन्तु मुखाकृति सुन्दर थी । उस समय वह मुख खोले हुए ऐसा प्रतीत होता था जैसे तीनों लोकों को भक्षण कर लेना चाहता हो ॥४-६॥ उसका चौड़ा वक्ष स्थल, ऊँचा स्कंध प्रदेश और हाथी

के समान बिसाल कंठ था । वह बारम्बार मांस भक्षण और रुधिर पान कर रहा था ॥ ७ ॥

गजान्नागैः समाहृत्य ह्यैरश्वान्नुपोत्तम ।  
 रथान् यैः समाहृत्य सादिनः सादिभिस्तथा ॥८  
 मनुष्यान्स्वपुरो दृष्ट्वा नास्यग्रासं चकार सः ।  
 कांश्चिद्धृत्वा महाराज वृष्णिपालान्समन्ततः ॥९  
 भक्षयामास सहसा हिडिम्ब्यः पुरुषपादकः ।  
 यान्पश्यन्परतो रक्षस्ताञ्जघान विरूपयक् ॥१०  
 भक्षयन्परान्वृष्णीन्यादवान् राक्षसेश्वरः ।  
 चिक्षेप सहसा कांश्चिद्धिडिम्ब्यः पुरुषपादकः ॥११  
 अन्तकाले यथा क्रुद्धो रद्रः प्राणभृतो नृप ।  
 क्षणेन केन सर्वास्तान्भक्षयामास राक्षसः ॥१२  
 केचिद्धीता दिशः प्रापुर्वृष्णयो वीर्यशालिनः ।  
 केचित्तु भक्षितास्तेन रक्षसा वृष्णिपुंगवाः ॥१३  
 कुम्भकर्णो यथा राजन्भक्षयामास वानरान् ।  
 निःशेषं वृष्णिर्मान्यं तु चकार पुरुषपादकः ॥१४  
 निश्चेष्टं वृष्णिसंन्यं तु स्थितं चित्रं पटे यथा ।  
 एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो वृद्धो वादवपुंगवो ।  
 धनुर्गृह्य महाघोरं रादासस्य पुरः स्थितो ॥१५

वह हाथियों से हाथियों को मार देता, भयों को टटा कर उन्हीं के प्रहार से भयों को समाप्त कर देता । इसी प्रकार रथों से रथों को और सवारों से सवारों को मारता हुआ अपने सामने आने वाले को दीर्घभाग लेकर अपनी मादिका के छेद में गीब मेटा था । इस प्रकार वृष्णियों से से जो कोई भी उगरे सामने आता, उसी को वह सब के देता-देता पदा कर भक्षण कर देता ॥८-१० ॥ हे राजन् ! शिव प्रकार प्रसन्नताप उपस्थित होने पर भगवान् राजन् वानरों की ओर उन्मुख करने लगते हैं, वैसे ही वह रादासत्र हिडिम्ब उन

यादव-सैनिकों को मार-मार कर अपने उदर में रखने लगा ॥११-१२॥ यह देख कर बहुत-से यादव वीर वहाँ से भाग गये और बहुत से उसके द्वारा पकड़े जाकर उदरस्थ होगये ॥१३॥ हे राजन् ! पूर्वकाल में जैसे कुम्भकर्ण ने असह्य बन्दरो का भक्षण कर लिया था, वैसे ही इस युद्ध में हिडिम्ब नामक उस राक्षस ने यादवों का आहार करना आरम्भ किया ॥१४॥ इस प्रकार उसने थोड़ी देर में ही सम्पूर्ण वृष्णि सेना को चित्रपट के समान निश्चेष्ट कर दिया तभी अत्यन्त कुपित हुए वसुदेव और उग्रसेन अपने अपने धनुषों को ग्रहण करके उस घोरकृति वाले राक्षस के सामने जा पहुँचे ॥१५॥

यथा क्रुद्धस्य सिंहस्य मृगी वृद्धतमाविव ।  
 व्यादायास्य महारक्षस्तौ वृद्धावभ्यधावत ॥१६  
 चिखादिर्पुर्विरूपाक्ष पाता लतलसन्निभ ।  
 ततो रक्ष पर्यधावत्खादन्खादन्कलेवरम् ॥१७  
 पूरयामासतुर्वीरो शरैर्यदुव्रपौ नृप ।  
 हिडिम्बस्य महघोर व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥१८  
 सर्वास्तान्वारयामास देवशत्रुविरूपधृक् ।  
 धावति स्म ततौ रक्षो व्यादितास्य भयानकम् ॥१९  
 तयोगं हीत्वा धनुषी वभञ्ज युधि सत्वरम् ।  
 बाहू प्रसार्य दुष्टात्मा राक्षसो विकृतानन ॥२०  
 वसुदेव महीपाल राजान वृद्धसेविनम् ।  
 गृहीतु राक्षसश्रेष्ठो यतते नृपससदि ॥२१  
 एष वा भक्षयिष्यामि वसुदेव त्वया सह ।  
 उग्रसेन किमर्थं त्व तिष्ठसे मत्पुरोगम ॥२२

जैसे किसी क्रोधित सिंह के सामने दो वृद्ध हरिणों के जाकर खड़े होते ही सिंह उन पर झपट पड़ता है वैसे ही उन्हें सामने खड़ा देख कर वह दैत्य मुख खोल कर उन पर झपटा ॥१६॥ उस विरूपक्ष राक्षस का मुख पाताल-छिद्र के समान भयंकर था, उस समय उन वृद्धों की ओर बढ़ते हुए उस राक्षस



के समान विशाल कठ था । वह बारम्बार मांस भक्षण और रुधिर पान कर रहा था ॥ ७ ॥

गजान्नागैः समाहृत्य ह्यैरश्वान् नृपोत्तम ।  
 रथान् रथैः समाहृत्य सादिनः सादिभिस्तथा ॥८  
 मनुष्यान्स्वपुरो दृष्ट्वा नास्यग्रासं चकार सः ।  
 कांश्चिद्धृत्वा महाराज वृष्णिपालान्समन्ततः ॥९  
 भक्षयामास सहसा हिडिम्बः पुरुषादकः ।  
 यान्पश्यन्परतो रक्षस्ताञ्जघान विरूपयक् ॥१०  
 भक्षयन्तपरान्वृष्णीन्यादवान् राक्षसेश्वरः ।  
 चिक्षेप सहसा काश्चिद्धिडिम्बः पुरुषादकः ॥११  
 अन्तकाले यथा क्रुद्धो रुद्रः प्राणभृतो नृप ।  
 क्षणेन केन सर्वास्तान्भक्षयामास राक्षसः ॥१२  
 केचिद्धीता दिशः प्रापुर्वृष्णयो वीर्यशालिनः ।  
 केचित्तु भक्षितास्तेन रक्षसा वृष्णिपुंगवाः ॥१३  
 कुम्भकर्णो यथा राजन्भक्षयामास वानरान् ।  
 निःशेषं वृष्णिसैन्यं तु चकार पुरुषादकः ॥१४  
 निश्चेष्ट वृष्णिसैन्यं तु स्थितं चित्रं पटे यथा ।  
 एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो वृद्धो यादवपुंगवो ।  
 धनुर्गृह्य महाघोरं राक्षसस्य पुरं स्थितो ॥१५

वह हाथियों से हाथियों को मार देता, अश्वों को उठा कर उन्हीं के प्रहार से अश्वों को समाप्त कर देता । इसी प्रकार रथों से रथों को और सवारों से सवारों को मारता हुआ अपने सामने आने वाले को दीर्घश्वात् लेकर अपनी नासिका के छेद में खींच लेता था । इस प्रकार वृष्णियों में से जो कोई भी उसके सामने आता, उसी को वह सब के देखते-देखते खा कर भक्षण कर लेता ॥८-१० ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार प्रलयकाल उपस्थित होने पर भगवान् शकट सम्पूर्ण जीवों को उदररूप करने लगते हैं, वैसे ही वह राक्षसराज हिडिम्ब उन

अतः शीघ्रता से मेरे मुख में आ जाओ ॥२४॥ पहिले तुम्हारे रक्त-पान से तृप्त होकर फिर तुम्हारे मांस का भक्षण करूँगा, इस प्रकार मुझे अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होगी ॥२५॥ हे राजन् ! यह कह कर वह राक्षसेन्द्र हिडिम्ब अपने मुख-विवर को फँला कर अत्यन्त वेगपूर्वक उनकी ओर झपटा ॥२६॥ उस समय वसुदेव और उग्रसेन के पास कोई अस्त्र नहीं था और उन्होंने जैसे ही उस विकट-टाकार राक्षस को अपनी ओर आता देखा तो भयभीत होकर वे दोनों इधर-उधर भागने का उपक्रम करने लगे ॥२७॥ तभी बलरामजी ने उनको इस विकट स्थिति में पड़े हुए देखा तो हस के आगे बढ़ कर और श्रीकृष्ण को वहाँ नियुक्त कर स्वयं उस हिडिम्ब राक्षस के पास पहुँच गये और बोले ॥२८-२९॥

मा कृथाः साहसं रक्षो मुञ्चती राजसत्तमो ।  
स्थितोऽस्मि युध्यता रक्षो मया शत्रुं जिघासता ॥३०॥  
अहमेव हतिष्ये त्वां का चेषं तव भीषिका ।  
इति ब्रुवाणं हलिनं तौ विसृज्य महारणे ॥३१॥  
महानयमसौ दुष्टो भक्षयाम्येनमगमतः ।  
विदायं पूर्ववद्वक्त्रं बलभद्रमुपाद्रवत् ॥३२॥  
विसृज्य सशरं चापं रक्षिसस्य पुरः स्थितः ।  
मुष्टि प्रगृह्य बलवान् स्फोटयन्बाहुमुत्तमम् ॥३३॥  
हिडिम्बस्त्वथ दुष्टात्मा मुष्टि कृत्वा भयानकम् ।  
जघान वक्षो रामस्य व्यादितास्य इवान्तक ॥३४॥  
ऋद्धोऽथ बलभद्रस्तु मुष्टिना तेन ताडितः ।  
जघान मुष्टिना तेन राक्षसेशमनिन्दितः ॥३५॥

उन्होंने कहा—अरे दुरात्मन् ! वही खड़ा रह, शत्रुओ को मारने के लिये तो मैं ही बहुत हूँ, तू उन्हें छोड़ कर मेरे साथ युद्ध कर ॥३०॥ अरे, तू ऐसी विभीषिका क्यों प्रकट कर रहा है ? मैं ही तुझे मारूँगा । यह सुन कर हिडिम्ब ने सोचा कि यह सम्बा-चौड़ा पुरुष है, प्रथम इसी का भक्षण क्यों न करूँ ? यह स्थिर कर उसने उन दोनों वृद्धों को छोड़ कर बलरामजी की ओर

ने घीच मे जो भी आया, उसे भक्षण कर लिया ॥१७॥ तब यादव वीर वसुदेव और उग्रसेन ने उस भीषण राक्षस के फँले हुए मुख को भीषण घाण-वर्षा करके उसका मुख भर दिया ॥१८॥ परन्तु, उन बाणों को भी उदरस्थ करता हुआ वह दानव भयानक रूप से उस रण क्षेत्र में दौड़ लगाने लगा ॥१९॥ फिर सहता उसने वसुदेव और उग्रसेन के पास पहुँच कर उनके घनुय तोड़ डाले और सभी राजाओं के देखते-देखते ही अपनी विशाल भुजाओं को फँला कर उन्हें पकड़ने के लिये अग्रसर हुआ और फिर वसुदेवजी से कहने लगा—हे वसुदेव ! तुम दोनों का मैं अभी भक्षण करूँगा । हे उग्रसेन ! तुम इस प्रकार मेरे सामने क्यों स्थित हो ? ॥२०-२२॥

आगच्छ प्रविशास्यं मे प्राप्तभूतो तु वां मम ।  
 विधिना निर्मितो वृद्धो वसुदेवोः हरेः पिता ॥२३  
 बुभुक्षितः श्रमार्तश्च युद्धे त्वरितविक्रमः ।  
 मन्मुखान्त्वं गच्छेता प्रविशेतां त्वरान्वितौ ॥२४  
 युवयोः शोणितं पीत्वा तृप्तिं यास्यामि निर्वृतः ।  
 खादामि च पुनर्मांसं वृद्धयोर्दुवयोः सुखम् ॥२५  
 इति श्रुत्वांस्तथा रक्षो व्यादितास्यं महाहनुः ।  
 धावति स्म तदा क्षिप्रं हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥२६  
 वसुदेवोऽग्रसेनो च भीतो विप्रैश्च सर्वतः ।  
 दिशोऽभ्यमजतां राजन्निःशंखी वृष्णिपुङ्गवी ॥२७  
 एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा बलान्नद्रः प्रतापवान् ।  
 दृष्ट्वा च तो तयाभूतो वसुदेवोऽग्रसेनयो ॥२८  
 वामुदेवं ममादिश्य हसं युद्धयन्तमीश्वरः ।  
 निर्गत्य धान्तरं तस्य राक्षसस्य दुरात्मनः ॥२९

देवो, विषाणा ने तुम दोनों को मेरा घाग बना कर भेजा है, अब तुम मेरे मुग-विषर में सुग जाओ ॥२३॥ अब मैं युद्ध करने-करने श्रमार्त हो गया हूँ और धुषा भी लग रही है, इगतिवे तुम मुगते दिगी प्रहार भी कर गरी गकते,

इस आघात को सहन न करके वह राक्षस घुटनों के बल पृथिवी पर गिरा और मरे हुए के समान लेट गया ॥३७-४०॥ फिर उसे दोनों हाथों से उठा कर बल-रामजी सब उपस्थित राजाओं पर अपना पराक्रम व्यक्त करने के लिये कुछ देर चैसे ही खड़े रहे और फिर उसे इतने जोर से फेंका कि वह मृत्यु को प्राप्त होता हुआ दो कोस की दूरी पर जा पड़ा ॥४१-४३॥

ये केचिद्राक्षसास्तत्र हतशेषा महारणे ।

बलभद्रात्ततो भीता जग्मुश्चैवं दिशो दश ॥४४

अथांशुमाली भगवान् दिनेशः संहृत्य तेजांसि सहस्ररश्मिः ।

अस्तं ययौ चक्षुरपि प्रजानामीपत्तमश्चापि समाविवेश ॥४५

तस्मिन्प्रविष्टेऽथ समुद्रतोयं प्रजापती विश्वमुखे जगद्गुरौ ।

नक्षत्रनाथः समुपाजगाम संध्यातमोऽपि व्यनशन्नूपोत्तम ॥४६

प्रभातकाले नृपसत्तमो रणो गोवर्द्धने किन्नरगीतनादिते ।

इति ब्रुवन्तो नृपसत्तमास्तदा व्युपारमस्तत्र रणोत्सवे नृप ॥४७

यह देख कर श्रेय बचे हुए राक्षस बलरामजी से डर कर तुरन्त ही विभिन्न दिशाओं में भाग खड़े हुए ॥४४॥ तभी भगवान् सूर्यदेव ने अपनी रश्मियाँ समेट ली और उनके पश्चिमी सागर में निमग्न होने पर अन्धकार छागया और तब कुछ भी दिखाई न देने लगा ॥४५॥ भगवान् सूर्य के अस्ताचल गामी होते ही चन्द्रमा प्रकट होगये, इस कारण रात्रि का घोर अंधकार समाप्त होगया ॥४६॥ तब वहाँ उपस्थित सभी राजाओं ने उस दिन के युद्ध को समाप्त करते हुए कहा कि—कल प्रातःकाल किन्नरों के मधुर स्वरो से गूँजते हुए गोवर्धन सर्वत पर उग्राम होगा ॥४७॥

॥ हंस और श्रीकृष्ण का युद्ध ॥

उभौ तौ हंसडिम्भकौ राजावेव महागिरिम् ।

जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्द्धनमथो नृप ॥१

क्षपट्टा मारा ॥ ३१-३२ ॥ तब बलरामजी ने धनुष-बाण तो छोड़ दिया और मुष्टिका तान कर उसके सामने जा खड़े हुए ॥३३॥ यह देख कर राक्षस अत्यन्त क्रोधित हुआ और मुख खोले हुए उनके सामने आकर एक बड़े जोर का मुक्का बलरामजी के वक्षःस्थल पर मार दिया ॥ ३४ ॥ तब उस प्रहार को सह कर उन्होंने भी बड़े वेगपूर्वक उसके हृदय पर मुष्टिका से प्रहार किया ॥३५॥

मुष्टियुद्धं समभवन्नरराक्षसवीरयोः ।

युद्धचतुष्टुं दधतोयुद्धरङ्गस्थ नरराक्षससिंहयोः ॥३६

तयोश्चटचटाशब्दः प्रादुरासीद्भ्रूयानकः ।

अथ राक्षसराजस्तु मुष्टिना राममाहवे ॥३७

जघान वक्षोदेशे तु वज्रेणेव पुरंदरः ।

अथ रामो बली साक्षान्मुष्टि संवत्यं यत्नतः ॥३८

हिडिम्बं ताडयामास वक्षस्यमरविद्विपम् ।

तलाभ्यामथ रामस्तु वक्त्रे हत्वा न राक्षसम् ॥३९

आहतस्तलघातेन हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ।

जानुभ्यामपतद्भूमौ गतासुर्वीरदन्क्षसः ॥४०

तत उत्पाद्य रामस्तु दोभ्यां संगृह्य राक्षसम् ।

आदाय बाहुवेगेन भ्रामयित्वा पदात्पदम् ॥४१

व्याविध्यत्सुचिरं रामो दर्शयन्नात्मनो बलम् ।

उत्क्षिप्य राक्षसेन्द्रं तं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४२

गव्यूतिमात्रं चिक्षेप ततो देशाद्बलायुधः ।

गतासू राक्षसश्चेष्टस्ततो देशान्निराक्रमत् ॥४३

इसके पश्चात् उन दोनों में घोर युद्ध होने लगा और उससे होने वाला भयंकर शब्द आवाज में गूँज उठा ॥३६॥ तभी हिडिम्ब ने एक जोर का धूँसा उनके हृदय में उसी प्रकार मारा जैसे इन्द्र अपने यज्ञ का प्रहार करते हैं, जिसे सह कर बलरामजी ने उस देवताओं के समूह हिडिम्ब पर धूँसे का जोरदार प्रहार किया और फिर उसके दोनों गालों पर एक-एक धप्पड़ भी मार दिया ।

एवं ते सहिता राजंश्चक्रुर्दुग्धमदीनवत् ।  
 अत्यद्भुतं महाघोरं यादवाः सर्वे एव हि ॥१०  
 चक्रुस्ताभ्यां महायुद्धं वासुदेवस्य पश्ययः ।  
 सर्वानपि महाराज यादवान्वलदर्पितान् ॥११  
 तावुभौ हंसडिम्भकौ नृपांस्तान्प्रत्यविध्यताम् ।  
 प्रत्येकं दशभिर्विद्ध्वा वाणं निशितकोमलैः ॥१२  
 जघ्नतुश्च शरैस्तीक्ष्णैरत्यथं यादवेश्वरान् ।  
 व्यथिताः सर्वे एवैते वमन्तः शोणितं बह्वु ॥१३  
 माघवे किंशुका राजन्पुष्पिता इव ते वभुः ।  
 भीताश्च यादवा राजन्पलायनपरायणाः ॥१४

फिर तोस बाण प्रद्युम्न ने, सात बाण साम्ब ने और इकसठ बाण अना-  
 धृष्टि ने चला कर हंस-डिम्भक को विद्ध कर दिया ॥१॥ इस प्रकार सभी यादवों  
 ने एक साथ प्रहार करते हुए उस संग्राम को अपने उत्साह से घोरतर बना दिया  
 ॥ १० ॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण एक स्थान पर खड़े होकर उस युद्ध को देख रहे  
 थे। फिर हंस-डिम्भक ने भी दस-दस बाणोंसे यादवों पर प्रहार किया ॥११-१२॥  
 उस आघात ने यादवों को संत्रस्त कर दिया और वे मुख से रक्त गिराने लगे ।  
 उस समय रक्त से लथपथ उनके देह किशुक के समान शोभा पाने लगे । हे  
 राजन् ! उस भय से डरे हुए यादव युद्ध भूमि को छोड़ कर पलायन करने लगे  
 ॥ १३-१४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन्वासुदेवात्मजी नृप ।  
 वासुदेवो हली युद्धे प्रमुखे धन्विनी तयोः ॥१५  
 चक्रतुर्दुग्धमतुलं स्कन्दशक्राविवाम्बरे ।  
 तयोरेव सगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महर्षयः ॥१६  
 विमानस्थाश्च ददृशुर्दुग्धं देवासुरोपमम् ।  
 ततः प्रादुरमूतां तौ दूतौ भूतेश्वरो नृप ॥१७

अथ प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ।  
 गोवद्धर्धन जगामाशु केशव केशिसूदन ॥२  
 शैनेयो बलभद्रश्च यादवा सारणादय ।  
 गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नादित बहुजा गिरिम् ॥३  
 जग्मतु सहितौ राजन् गोवद्धर्धनमथो गिरिम् ।  
 गायनं रथ सन्धैश्च नादित बहुधा गिरिम् ॥४  
 तस्योत्तर नूपश्रेष्ठ पार्श्वं स प्राप्य यादवा ।  
 निकषा यमुना राजस्ततो युद्धमवर्त्तत ॥५  
 विव्याध हंसडिम्भकौ वसुदेवश्च सप्तभि ।  
 सारण पञ्चविंशत्या दशभि कङ्क एव च ॥६  
 हसेन डिम्भकेनाथ यादवैश्च समन्तत ।  
 उग्रसेनस्त्रिसप्तत्या शराणा नतपर्वणाम् ॥७  
 विराटंश्चिंशता राजन्सान्त्विक्ष्वापि सप्तभि ।  
 अशीत्या विपृथू राजन्नुद्धवो दशभि शरै ॥८

बंसम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस रात्रि बाल की उपस्थिति में ही हंस डिम्भक ने गोवर्धन पर्वत की ओर प्रस्थान किया ॥१॥ दूसरे दिन प्रातः बाल सूर्योदय होने पर मगवान् श्रीवृष्ण भी गिरि गोवर्धन पर जा पहुँचे ॥२॥ उनके साथ ही सात्विक, बलरामजी और सारणादि सभी यादवगण गधर्वों और अप्सराओं से मुगोभित गोवर्धन पर्वत पर गये ॥ ३-४ ॥ इतने पश्चात् गोवर्धन पर्वत के पार्श्व भाग में स्थित यमुनाजी के किनारे दोनों पक्षों में युद्ध होने लगा ॥५॥ उस समय वसुदेवजी ने हंस डिम्भक दोनों पर साथ बाणों से प्रहार किया और पञ्चीग बाण सारण ने, दस बाण बर ने, तिहत्तर बाण उग्रसेन ने, तीस बाण विराट ने, सात बाण सात्विक ने, दस विपृथु ने और दस बाण ही उद्धव ने चलाये ॥६ ८॥

प्रथमस्त्रिसता राजन्सान्त्विक्ष्वापि च सप्तभि ।  
 अनापृष्टिस्त्वेवपृष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥९

एवं ते सहिता राजंश्चक्रुयुं दधमदीनवत् ।  
 अत्यद्भुतं महाघोरं यादवाः सर्वं एव हि ॥१०  
 चक्रुस्ताभ्यां महायुद्धं वामुदेवस्य पश्ययः ।  
 सर्वानपि महाराज यादवान्वलदपितान् ॥११  
 तावुभौ हंसडिम्भकी नृपांस्तान्प्रत्यविध्यताम् ।  
 प्रत्येकं दशभिर्विद्ध्वा वाणं निशितकोमलैः ॥१२  
 जघ्नतुश्च शरं स्तीक्ष्णं रत्यथं यादवेश्वरान् ।  
 व्यथिताः सर्वं एवं ते घमन्तः शोणितं बहु ॥१३  
 माघवे किशुका राजन्पुष्पिता इव ते वभुः ।  
 भीताश्च यादवा राजन्पलायनपरायणाः ॥१४

फिर तीस वाण प्रद्युम्न ने, सात बाण साम्ब ने और इकसठ बाण अना-  
 धुष्टि ने चला कर हंस-डिम्भक को विद्ध कर दिया ॥१६॥ इस प्रकार सभी यादवों  
 ने एक साथ प्रहार करते हुए उस संप्राम को अपने उत्साह से घोरतर बना दिया  
 ॥ १० ॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण एक स्थान पर खड़े होकर उस युद्ध को देख रहे  
 थे। फिर हंस-डिम्भक ने भी दस-दस बाणोंसे यादवों पर प्रहार किया ॥११-१२॥  
 उस आघात ने यादवों को सन्नस्त कर दिया और वे मुख से रक्त गिराने लगे ।  
 उस समय रक्त से लथपथ उनके देह किशुक के समान शोभा पाने लगे । हे  
 राजन् ! उस भय से डरे हुए यादव युद्ध भूमि को छोड़ कर पलायन करने लगे  
 ॥ १३-१४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन्वसुदेवात्मजौ नृप ।  
 वासुदेवो हली युद्धे प्रमुखे घन्विनौ तयोः ॥१५  
 चक्रतुर्पुं द्रमतुलं स्कन्दशक्राविवाम्बरे ।  
 तयोरेव सगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महर्षयः ॥१६  
 विमानस्थाश्च ददृशुयुं दधं देवासुरोपमम् ।  
 ततः प्रादुरभूतां तौ दृती भूतेश्वरो नृप ॥१७



शूलिना प्रेपिता युद्धे रक्षाथं बलिनोस्तयो ।  
 हंसोऽथ वामुदेवश्च युद्धं चक्रतुरीश्वरौ ॥१८  
 रामश्च डिम्भकश्चैव स युक्तौ युद्धकाक्षया ।  
 विश्रुताः सर्वे एवैते ह्यस्त्रे शस्त्रो तथा बले ॥१९  
 शङ्खान्दध्मुः पृथग्घ्राद स्वे स्वे सर्वे रथे स्थिताः ।  
 अथ कृष्णो हृषीकेशः पाञ्चजन्य महारथम् ॥२०  
 दध्मी पद्यपलाशाक्षः सर्वाङ्गिस्मापयन्निव ।  
 अथ भूतो महाघोरो लम्बोदरशरीरिणौ ॥२१  
 दुद्रुवतुर्महाराज शूलमादाय केशवम् ।  
 शूलेन पोथया राजञ्चक्रतुर्यादिवेश्वरम् ॥२२

यादवों को इस प्रकार भागते हुए देख कर श्रीकृष्ण और बलराम उन दोनों के सामने जा डटे । उस समय प्रतीत होने लगा कि स्वयं स्वामि वार्तिकेय और इन्द्र मंदान में आ गये हों । तब उस युद्ध को देवता, गधवं, सिद्ध, महर्षि आदि आकाश मार्ग में स्थित होकर देखने लगे । सभी भगवान् दायर के दो भूत हंस डिम्भक की रक्षा के लिये वहाँ आ उपस्थित हुए । उस समय हंस के साथ भगवान् श्रीकृष्ण और डिम्भक के साथ बलरामजी भिड़ रहे थे । ये चारों ही अपने-अपने बल-यत्नक्रम में प्रतिद्ध थे ॥१५-१६॥ अथ यह सभी घोर अपने-अपने रथों पर चढ़कर शल-ध्वनि करने लगे । उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने सब को आश्चर्य-चकित करते हुए अपने पाञ्चजन्य शर से घोर निनाद किया । जिससे उत्तेजित हुए सम्बे पेट और बिगाल देह वाले दोनों भूत तिसस लेकर भगवान् श्रीकृष्ण की ओर दौड़े और वहाँ जाकर उन्होंने उन पर तिसस पता दिया ॥२०-२२॥

तान्वा समात्तो विष्णुर्देवगन्धर्वम निधौ ।  
 ईपतिमताप्ररो देय त्रिञ्चिदुत्सृज्य सततम् ॥२३  
 रवाद्रशिवरथे हस्तौ प्रगृह्य जनाह्वनः ।  
 धामपितृना शागुणमनामिच येनयः ॥२४

कैलासं च समुद्दिश्य प्रचिक्षेप ततो हरिः ।  
 तावुपेत्य गिरेः शृङ्गं कैलासस्य महामते ॥२५  
 दृष्ट्वा तत्कर्म देवस्य विस्मयं जग्मतु परम् ।  
 हंसश्च दृष्ट्वा तत्कर्म रोपताम्रायतेक्षणः ॥२६  
 उवाच वचन हंसः शृण्वतां त्रिदिवोकसाम् ।  
 किमर्थं राजसूयस्य विघ्नं चरसि केशव ॥२७  
 ब्रह्मदत्तो महीपालो यथा तस्य महाकृत्तो ।  
 करं दिशं यथायोगं यदि प्राणान् हि रक्षसि ॥२८  
 अथवा त्वं क्षणं तिष्ठ ततो ज्ञात्वा करं बहु ।  
 ददासि त्वं नन्दपुत्रं ततो यष्टा स मे गुरु ॥२९  
 ईश्वरोऽहं सदा राज्ञा देवानामिव शूलभृत् ।  
 एष ते वीर्यमत्तुलं नाशयिष्यामि स युगे ॥३०

तब भगवान् श्रीकृष्ण ने रथ से नीचे उतर कर कुछ मुसकराते हुए दोनो मृतो को हाथ से पकड़ कर चक्र के समान सौ बार घुमा कर कैलाश पर्वत पर जोर से फेंक दिया । वे वहाँ गिर कर अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए । तब भगवान् श्रीकृष्ण के इस पराक्रम से क्रोधित हुए हस ने सभी देवताओं की उपस्थिति में कहा—हे केशव ! तुम मेरे राजसूय यज्ञ में बाधक क्यों होना चाहते हो ? इस यज्ञ को महाराज ब्रह्मदत्त अवश्य ही सम्पन्न करेंगे । यदि तुम प्राण रखने की इच्छा करते हो तो तुरन्त ही कर प्रदान कर दो ॥२३-२८॥ अन्यथा कुछ देर में ही तुम्हें मेरे पराक्रम का परिचय मिल जायगा तब स्वयं ही कर देने के लिये तत्पर हो जाओगे ॥२९॥ जैसे भगवान् शकर देवताओं में अप्रगण्य हैं, वैसे ही मैं सब राजाओं का स्वामी हूँ और तुम्हारे पराक्रम के गर्व को मैं इसी युद्ध में नष्ट किये देता हूँ ॥३०॥

इत्युक्त्वा सशरं चापं शालतालोपमं नृप ।  
 आकृष्य च यथा प्राणं नाराचेन च केशवम् ॥३१

ललाटे चिक्षिपे हंसो ललाम इव सोऽभवत् ।  
 उवाच सात्यकिं कृष्णो रथ वाहय मे प्रभो ॥३२  
 दारुकं पृष्ठवाह त कृत्वा देश तमीश्वर ।  
 अथ तेन समादिष्टः सात्यकिर्वाहयन् रथम् ॥३३  
 मण्डलानि बहून्याजी दर्शयामास सत्वरम् ।  
 अथ विद्धो दृढ तेन शरेण हरिरीश्वर. ॥३४  
 आग्नेयमस्त्र सयोज्य शरं कस्मिंश्चिदव्ययः ।  
 उवाच हस राजेन्द्र सात्यकिं प्रेरदन् रणे ॥३५  
 अनेन त्वा दहाम्यद्य यदि शक्तोऽसि वारय ।  
 अल ते बह्ववद्धेन क्षत्रियोऽसि सदा शठ ॥३६  
 मत्तश्चेत्करमिच्छेस्त्वं दर्शयाद्य पराक्रमम् ।  
 यतयो वाधिता ह स पुष्करे सस्थितात्वया ॥३७

यह कह कर हस्त ने अपने ताल वृक्ष के समान विशाल धनुष पर बाण  
 को चढ़ाकर उससे प्रहार किया, जो उनके ललाट में लग कर अलवार स्वरूप  
 हो गया । तब श्रीकृष्ण ने सात्यकि से रथ चलाने को कहा और दारुक को रथ  
 के पीछे बैठाया । इस प्रकार सात्यकि ने रथ हाँकना प्रारम्भ किया ॥३१-३३॥  
 तब सात्यकि ने रथ के ही अनेक पैतरे बदले और हस्त के प्रहार से घायित हुए  
 भगवान् ने आग्नेयास्त्र का सधान किया और हस्त से कहने लगे—अरे दुष्ट !  
 अब अधिक युद्ध नहीं चलेगा । मैं द्रुपदी अस्त्र से तुझे भस्म किये कासता हूँ, यदि  
 तू रामयं क्षत्रिय है तो इससे प्रहार को रोक ॥३४-३६॥ यदि मुझसे कर लेने  
 की इच्छा है तो अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर, तू ने पुष्कर मातियों को बड़ा  
 भय किया था ॥३७॥

मास्ता तरं यनु विप्राणा म्यिते मयि नराधम ।  
 स्थिते मयि जगन्नामे हृत्वा क्षत्रियपुष्टवान् ॥३८  
 सास्ताऽम्भ्यपो त्यां हि त्तोरेदुष्टाना श्रह्यविट्टिपाम् ।  
 सापेन यतिमुष्यानां ह्य एव नृपाधम ॥३९

मृत्यवे त्वा निवेद्याद्य रक्षिता ब्राह्मणानहम् ।  
इति ब्रुव स्तदस्त्र तु मुमोच युधि केशव ॥४०  
तदस्त्र वारुणेनाथ ह सोऽपि प्रत्यपेधयत् ।  
वायव्यमथ गोविन्दो मुमोच युधि ह सके ॥४१

अरे नराधम ! तू मेरे रहते हुए क्षत्रियो को नष्ट करने के स्वप्न देखता और ब्राह्मणों पर शासन करना चाहता है ? ब्राह्मणों से द्वेष करने वालों और पापात्माओं को मैं सदा दण्ड देना हूँ । प्रथम तो पुष्कर वासी मुनियों के शाप से ही तेरी मृत्यु हो चुकी है, दूसरे मैं भी अब तुझे यमराज की सौंप कर ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिये दृढ प्रतिज्ञ हूँ । यह कह कर उन्होंने अपने आग्नेयास्त्र को उस पर छोड़ दिया ॥३६४०॥ परन्तु हस ने अपने वायणास्त्र के प्रयोग से आग्नेयास्त्र को व्यर्थ कर दिया, तब उन्होंने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया ॥४१॥

तदस्त्र वारयामास माहेन्द्रेण नृपोत्तम ।  
अथ माहेश्वर कृष्णो मुमोचात्युग्रमाहवे ॥४२  
ग्रीद्रेण तत्ततो ह सो वारयामास तत्क्षणात् ।  
गन्धर्वं राक्षस चैव पंशाचमथ केशव ॥४३  
ब्रह्मास्त्रमथ कौबेरमासुर याम्यमेव च ।  
चत्वार्येतानि ह सस्तु म्मुमोच युधि सत्वरम् ॥४४  
वारणाथ तदस्त्राणा चतुर्णा माधवस्य ह ।  
अथ ब्रह्मशिरो नाम घोरमस्त्र विनाशकम् ॥४५  
मुमोच ह समुद्दिश्य देवदेवो जनार्दन ।  
अस्त्र वैष्णवमादाय शरे सन्निहिते हरि ॥४६  
योजयामास तद्ध से महाघोरपराक्रमम् ।  
अथ भीतो महारौद्रमस्य दृष्ट्वा नृपोत्तम ॥४७  
ह सोऽपि तेन राजेन्द्र वारयामास त शरम् ।  
यमुनाप उपस्पृश्य देवदेवो जनार्दन ॥४८

देवदेवो जगन्नाथो जगद्विस्मापयन्निव ।

प्राहरत्त महाबाहुः पादाभ्यामथ केशवः ॥६

पादक्षेपं नृपस्तस्माल्लब्ध्वा हंसो नृपोत्तम ।

ममार च नृपश्चेष्टः केचिदेवं वदन्ति हि ॥७

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस वैष्णव नामक महारौद्र अस्त्र को देखते ही हस अत्यन्त भयभीत एवं निश्चेष्ट हो गया ॥१॥ फिर वह रथ से कूद पड़ा और जहाँ श्रीकृष्ण ने कालिय नाग का दमन किया था, उस ओर भागने लगा ॥२॥ वह कालियदह अत्यन्त भयकर था, उसका जल अंजन के समान नीले वर्ण का था और वह पाताल तक गहरा था ॥३॥ उसी भयंकर दह में हंस कूद पड़ा । उस समय उसके कूदने पर वंसा ही शब्द हुआ, जैसा, पहिले कभी इन्द्र के डर से पर्वतों के समुद्र में कूदने पर हुआ था । उसे दह में बूदता देख कर भगवान् श्रीकृष्ण भी अपना रथ छोड़ कर उसके पीछे पीछे उसी दह में बूद पड़े ॥४-५॥ भगवान् श्रीकृष्ण के इस महान् साहस को देख कर सभी उपस्थित जन समूह को बड़ा विस्मय हुआ । भगवान् श्रीकृष्ण ने दह में पुनः हस को पकड़ लिया और उसे लातों मार-मार कर पीड़ित करने लगे ॥५॥ कुछ लोगों का विचार है कि भगवान् श्रीकृष्ण की लातों के प्रहार से नृपोत्तम हंस की मृत्यु हो गई ॥७॥

अन्ये पातालमायातो भक्षितः पन्नग रिति ।

अद्यापि नैव राजेन्द्र दृष्ट इत्यनुशुश्रुम ॥८

यथापूर्वं जगन्नाथो रथं समपजग्मिवान् ।

हते तस्मिन्महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥९

अरुरोद्राजसूयं च तव पूर्वेपितामह ।

यदि जीवेदसौ हंसः को नमस्यति त क्रतुम् ॥१०

स च सर्वास्त्रविन्नित्य रुद्रात्तदध्वर प्रभो ।

क्षणादेव महाराज वात्स्यं गामगाहन ॥११

हतो हंसो हतो हंसः तृप्णेन रिपुमहिना ।

जगुर्गन्धर्वपतयो देवलोके दिवानिभम् ॥१२

कृष्णेन लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।

यमुनाया हृदे घोरे हंसो निहत इत्यपि ॥१३

परन्तु, कुछ जानकारों का कहना है कि हंस कालियदह के मार्ग से पाताल लोक में जा पहुँचा और वहाँ उसे सर्पों ने डस लिया, हे राजन् ! इस वृत्तान्त को मैंने सुना ही है, देखा नहीं है ॥८॥ जिस प्रकार से भी हो, हंस की मृत्यु होगई और भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ से लौट कर अपने रथ पर आ गये । हे राजन् ! उसके मर जाने पर ही तुम्हारे पूर्व पितामह महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था । यदि हंस न मरता तो उस यज्ञ को कौन कर सकता था ? ॥६-१०॥ क्योंकि प्रथम तो हंस सब शस्त्रों का ज्ञाता था, दूसरे उसे भगवान् शंकर से वर मिल चुका था । उस हंस की मृत्यु का समाचार सम्पूर्ण पृथिवी पर क्षणभर में ही फैल गया ॥११॥ शत्रु मर्दन भगवान् श्रीकृष्ण ने हंस को यमुनाजी के कालीदह में मृत्यु के घाट उतार दिया । देवताओं की सभा में इस कथा का गधवों ने दिन-रात निरन्तर गान किया था ॥१२-१३॥

श्रुत्वा निहतमृत्युग्रं भ्रातरं वीर्यशालिनम् ।

वलदेवं परित्यज्य युध्यमानं महारणे ॥१४

डिम्भको वीर्यसंपन्नो यमुनामनुजग्मिवान् ।

तमन्वधावद्वेगेन वलभद्रो हलायुधः ॥१५

हंसो हि यत्र पतितस्तथासौ निपपात ह ।

यमुनाया महाराज विलोक्य जलसंचयम् ॥१६

अथ क्रुद्धः स डिम्भको भ्रामयित्वा जल बहु ।

उन्मज्ज्योन्मज्ज्य सहसा निमज्ज्य च पुनः पुनः ॥१७

न ददर्श तदा राजन्भ्रातरं वीर्यशालिनम् ।

उन्मज्ज्याय महाबाहुर्वांसुदेवं विलोक्य च ॥१८

उवाच वचनं राजन्डिम्भको वीर्यव्रतमः ।

अरे गोपकृश पाद यवापी हंस इति स्थितः ॥१९

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा यमुनापृच्छ राजक ।  
 इत्यन्नवीतप्रसन्नात्मा वासुदेव प्रतापवान् ॥२०॥  
 तच्छ्रुत्वा यमुना भूय प्रविष्य डिम्भक किल ।  
 बहुप्रकारमुद्दीक्ष्य भ्रातर भ्रातृवत्सल ॥२१॥

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अपने भाई हस की मृत्यु का समाचार सुनकर महाबली डिम्भक ने भी युद्ध का परित्याग किया और यमुनाजी की ओर दौड़ पड़ा । वह देखकर बलरामजी भी उसके पीछे-पीछे चले ॥१४-१५॥ जिस दह में कूदने पर हस की मृत्यु हुई थी, उसी दह में डिम्भक भी कूद गया । उसके कूदने के कारण यमुना जल में हलचल सी मच गई ॥१६-१७॥ उसके बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी वहाँ वह अपने भाई को नहीं देख सका । तब वह दह से बाहर निकल आया और भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर उनसे बोला—अरे भाल-मुत्र ! मेरा भाई हस कहाँ है ? यह बता ॥१८-१९॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होते हुए कहा—हे नृप ! इस बात को यमुनाजी से ही पूछो ॥२०॥ यह सुन कर भ्रातृवत्सल डिम्भक पुनः यमुना जल में घुस कर अपने भाई को ढूँढने लगा, परन्तु उसे उसका कहीं भी पता न लगा ॥२१॥

विललाप ततो राजा डिम्भको भ्रान्तमानस ।  
 क्व नु गच्छसि राजेन्द्र विहार्येनमबान्धवम् ॥२२॥  
 कुतो भ्रातरितो गच्छे परित्यज्यैव मामिह ।  
 विनप्यैव नृपश्रुं ष्ठ डिम्भको भ्रातृवत्सल ।  
 आतन्त्यागे मन कुर्वन्यमुनाया महाहृदे ।  
 निमज्ज्योन्मज्ज्य सहसा मरणे कृतनिश्चय ॥२४॥  
 हस्तेन जिह्वामाकृष्ण भूयो भूयो विलप्य च ।  
 तत्र समूलामाकृष्य जिह्वा साहसवृत्स्वयम् ॥२५॥  
 ममारान्तर्जले राजन्डिम्भको नरकाय वै ।  
 एव तु निहते ह से डिम्भके वीर्यशालिनि ॥२६॥

आगमत्पुण्डरीकाक्षो भूतान्विस्मापयन्निव ।  
 ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥२७  
 गोवर्धनेऽथ विश्रम्य बलद्रसहायवान् ।  
 कंचित्कं महाराज पूर्वभुवतमूवास ह ॥२८

हंस के कहीं भी न मिलने पर डिम्बक अत्यन्त आतं होकर विलाप करने लगा—हे राजेन्द्र ! हे हम ! तुम मुझे इस अवस्था में छोड़ कर कहीं चले गये हो ? यह कहता हुआ डिम्बक बारम्बार दृसकी लगाता हुआ यमुनाजी में डूब कर आत्मघात करने के लिये उद्यत हुआ ॥२२-२४॥ फिर वह बारम्बार विलाप करने लगा और अन्त में उसने अपनी जिह्वा को जोर लगाकर हाथ से खींचा, जिससे वह मूल सहित बाहर निकल आई, तब उसी वेदना से छूटपटाते हुए डिम्बक की मृत्यु हो गई । हे राजन् ! इस प्रकार आत्मघात के पाप से डिम्बक की नरक की प्राप्ति हुई । जब हंस और डिम्बक दोनों का ही विनाश हो गया, तब भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए और सभी उपस्थित जन उस पाण्ड को देखकर विस्मय करने लगे ॥२५-२७॥ फिर वे ज्येष्ठ भ्राता बलरामजी के साथ अपने उस पूर्व श्रीडास्यत गोवर्धन पर्वत पर विश्राम करने लगे २८

॥ भगवान का नन्द-यशोदा से मिलना ॥

यशोदा नन्दगोपञ्च कृष्णदर्शनलालसो ।  
 गोवर्धनगतं श्रुत्वा वासुदेवं सहाग्रजम् ॥१  
 नवनीतं च दधि च पायसं कृत्स्नं तथा ।  
 वन्यं पुष्पं महाराज मयूरान्मृगदमेव च ॥२  
 वल्नचैरपरैः सार्द्धं गोपीभिश्च समन्ततः ।  
 जग्मतुः सहसा प्रीतो गोवर्धनमवो नृप ॥३  
 यत्रचिद्वृक्षो समानवनं कृष्णं कृष्णमृगेक्षणम् ।  
 दर्शनं तुमं हावाहूः वासुदेवं सहाग्रजम् ॥४  
 प्रजेमनु-मुमं हृषी तत्र दृष्ट्वा महासुतो ।  
 दनं यामासतुर्वो पायसानि महान्ति ॥५ च



रक्षणान्तव देवेश सदा कुलशिनो वयम् ।  
 सगोधन. सवत्साश्च नीरोगा इव केशव ॥१३  
 एकमेव सदा दुःखं न त्वा द्रक्ष्यामि केशव ।  
 यदेतत्केवलं दुःखमिति धी. शीर्यते सदा ॥१४

वे रस्सियाँ, कील और विभिन्न प्रकार की घासों तो सब पहिले के समान ही होगी ? हे पिताजी ! सुगन्धि से परिपूर्ण छकडे तो उतने ही होंगे ? सन्तान-वती गोपियों के क्या-क्या और कितनी-कितनी सतति हुई है ? ॥५-६॥ ब्रज के घाट जीर्ण-शीर्ण तो नहीं हो गये ? गोएँ उसी प्रकार बहुत-सा दूध देती हैं न ? ॥१०॥ घृत, दुग्ध आदि सब पदार्थ श्रेष्ठ रूप से तो उत्पन्न होते हैं ? ब्रज का गोधन रोग-रहित तो है ? ॥११॥ भगवान् श्रीकृष्ण के ऐसे मीठे वनन सुन कर नन्दजी ने उत्तर दिया—हे केशव ! हे यदुश्रेष्ठ ! सब कुछ कुशल-पूर्वक ही है, सब आनन्द से हैं, गोधन रोग-रहित है, गोएँ भी सकुशल हैं ॥१२॥ हे देव ! हम सब अपने बालक और गोधन के सहित आपके सरक्षण के कारण रोग-रहित तथा कुशलपूर्वक ही हैं, परन्तु आपके दर्शन न कर पाने का ही हमें सदा दुःख बना रहता है, इसी से हमारी बुद्धि नष्ट होनी जा रही है ॥१३-१४॥

एवमादि विलप्यन्त गच्छेत्याह न केशवः ।  
 यशोदा पुनरोद्देह मातर्गच्छ गृह प्रति ॥१५  
 ये च त्वा कीर्तयिष्यन्ति ते च स्वर्गमवाप्नुयुः ।  
 ये केचित्त्वा नमस्यन्ति ते मे प्रियतरा. सदा ॥१६  
 मद्भक्ताः सर्वदा सन्तु गच्छेत्याह च ता हरिः ।  
 इत्युपत्या पितरी देवो वामुदेव सनातनः ॥१७  
 गाढमालिङ्ग्य तौ प्रीतो प्रेपयामास केशवः ।  
 यशोदा नन्दगोपश्च जग्मतु. स्वगृह प्रति । १८  
 तत. कृष्णो हृषीकेशो यादवैः सह वृष्णिभिः ।  
 गन्तुमर्च्छत्तदा विष्णुः पुरी द्वारवती किन् ॥१९

य एतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वापि समाहितः ।  
पुत्रवान्धनर्वाश्वैव अन्ते मोक्षं चङ्गच्छति ॥२०

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! नन्दजी के इस प्रकार दुःख प्रकट करने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने माता यशोदा के सहित उनसे कहा—हे पिताजी ! हे माताजी ! अब आप घर के लिये पधारें । जो यासारिक मनुष्य आपका नाम सकीर्तन करेगा या आपको नमस्कार करेगा, वे हमारे बहुत ही प्रीति-भाजन होंगे और उन्हें स्वर्ग भी मिलेगा, और वे मदा ही मेरे भक्त रहेंगे । सनातन पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ने माता-पिता से हृदय मिल कर उन्हें विना किया । इसके पश्चात् वे अपने घर के लिये चल पडे ॥१५-१८॥ फिर सभी यादवों और वृष्णिगणों के सहित भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ से द्वारकापुरी को लौटने का विचार किया ॥१९॥ इस कथा को सुनने और पढ़ने वाला मनुष्य पुत्रवान् एवं सुखी होता है तथा अन्त फल में उसे मोक्ष की प्राप्ति होता है ॥२०॥

॥ भगवान् कृष्ण का द्वारका प्रत्यागमन ॥

गच्छन्नथ महाविष्णुः पुष्करं प्राप्य यादवै ।  
अपश्यन्मुनिमुख्यास्तु पुष्करस्थान् नृपोत्तम ॥१  
ते समेत्य महादेव मृषयो वीतमत्सरा ।  
अर्घ्यादिसमुदाचारं कृत्वा न यादवोत्तमम् ॥२  
प्रोचु विश्वेश्वरं विष्णुं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ।  
अत्यद्भुतमिदं विष्णो तव वीर्यं जनार्दन ॥३  
येन तौ निहतौ युद्धे हंसो डिम्भक एव च ।  
यो विचक्रो दुराधर्षो देवैरपि सुदुःसहः ॥४  
संगरे निहतो देव दुःसाध्य इति नो मतिः ।  
क्षेमो नः सर्वकार्येषु चरतां तप उत्तमम् ॥५  
निष्कल्मषा भविष्यामस्तव संस्मरणाद्धरे ।  
त्वां हि सर्वस्य दुःखस्य हर्ता त्वां ध्यायतां सदा ॥६

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! द्वारका जाने के विचार से यादवों के सहित चले हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने पुष्कर क्षेत्र में पहुँच कर प्रमुख महर्षियों से भेंट की ॥१॥ उन वीतराग मुनियों ने जैसे ही भगवान् को आते हुए देखा, वैसे ही उन्होंने अर्घ्य पाद्य आदि से उनका पूजन किया ॥२॥ उन भूत-भविष्य-वर्तमान के स्वामी और सम्पूर्ण ससार के ईश्वर की अर्चना के पश्चात् वे मुनि-जन कहते लगे—हे विष्णो ! हे जनार्दन ! आपके पराक्रम पर विस्मय होता है ॥३॥ हे प्रभो ! जो विचक्र देवताओं द्वारा भी नहीं जीता जा सका, वह विचक्र, हंस और डिम्बक के सहित आपके द्वारा ही नाश को प्राप्त हो सका है, यथार्थ में यह अमाध्य कार्य ही सिद्ध होगया है । अब हमारा सब प्रकार से बलयाण प्रत्यक्ष है और हम निर्विघ्न रूप से तप करने में उद्यत हैं ॥४-५॥ हे कृष्ण ! हम आपका स्मरण करते ही पाप रहित होंगे और जो आपका ध्यान करेंगे, उन्हें कभी किसी सबट की प्राप्ति नहीं होगी ॥६॥

त्वदनुस्मरण जन्तो सदा पुण्यप्रद प्रभो ।

त्व हि न सतत धाता विधाता तपसो हरे ॥७

त्वमोषारो वषट् कारस्त्व यज्ञस्त्व पितामह ।

त्व ज्योतिर्ब्रह्मणो भूर्निस्त्व ब्रह्मा रुद्र एव च ॥८

प्राणस्त्व सर्वभूतानामन्तरात्मेति वध्यते ।

उपास्य सर्वभूताना यज्ञं दर्शनं जगत्पते ॥९

नमो विश्वसृजे देव नमस्ते विश्वभूतं ये ।

पाहि लोकमिमं देव हृत्वा ब्रह्मद्विप सदा ॥१०

स तथेति हरिविष्णुयंयो द्वारवती पुरीम् ।

अवसद्बृष्णिभि साढं स्तूपमान सभागधं ॥११

इय च देवदेशस्य चेष्टा हि जनमेजय ।

प्रोक्ता ते पृच्छते राजन् विमन्मच्छ्रीनुमिच्छसि ॥१२

हे नाथ ! आपरा गृहान समस्त जीवों के लिये पुण्य फल का देने वाला है । हमारी तपस्वर्या के मून भी आप ही हैं ॥७॥ हे प्रभो ! आप ही प्रण्य,

षयद्कार, यज्ञ, पितामह, ज्योति, ब्रह्ममूर्ति हैं तथा आप ही ब्रह्मा एव रुद्र हैं ॥८॥ आप ही सब जीवों के अंतर में वास करने वाले आत्मा हैं और यज्ञ तथा दानादि कर्मों के द्वारा आपकी ही आराधना की जाती है ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! हे विश्वमृज्ज ! हे विश्वमूर्ति ! आपकी बारम्बार नमस्कार है । हे ईश्वर ! आप ब्राह्मणों के द्वेषियों का सहार कर त्रैलोक्य का रक्षण कीजिये ॥१०॥ भगवान् ने 'ऐसा ही हो' कह कर प्रस्थान किया और द्वाक्वा जाकर बन्दीजनों की स्तुतियों को सुनते हुए सुखपूर्वक वहाँ निवास करने लगे ॥११॥ हे राजन् ! आपने भगवान् विष्णु के विषय में जो पूछा था, वह सब आप से कहा जा चुका । अब और क्या सुनने की इच्छा है, सो कहिये ॥१२॥

## ॥ हरिवश श्रवण फल ॥

भगवन्केन विधिना श्रोतव्यं भारत बुधे ।  
 फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह ॥१  
 देयं समाप्ते भगवन्वि च पर्वणि पर्वणि ।  
 वाचकं कीदृशश्चास्य यष्टव्यस्नद्ब्रवीहि मे ॥२  
 शृणु राजन्विधिमिमं फलं यच्छति भारतात् ।  
 ध्रुताद्भवन्ति राजेन्द्र यस्त्व मामनुपृच्छसि ॥३  
 दिवि देवा महीपाल क्रीडार्यंभवन्ति गता ।  
 कृत्वा नार्यमिदं चैव तनश्च दिवमागता ॥४  
 हन्त यत्ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः ।  
 ऋषीणां देवतानां च स भव वमुघातल ॥५  
 अत्र रद्रास्त्रया साध्या विश्वदेवाश्च शाश्वता ।  
 आदित्यारवाश्विनो देवो लोमपाला महर्षय ॥६  
 गुह्यवाक्त्र सगन्धर्वा नागा विद्याघरास्तथा ।  
 सिद्धा धर्मः स्वयं भूश्च मुनिः पात्रापापनो यर ॥७  
 गिरयः सागरा नद्यन्तर्यामिपारता गणा ।  
 प्रहा स यत्नारार्यं च अनापात्रवस्तथा ॥८

स्थावर जङ्गम चैव जगत्सर्वं सुरासुरम् ।  
भारते भरतश्रेष्ठ एकस्वामिह दृश्यते ॥६

यह सुन कर राजा जनमेजय ने कहा—हे भगवन् ! इस भारत का श्रवण किस प्रकार से करे ? इसके श्रवण का क्या फल है और इसके पारायण के समय किस देवता का पूजन करे ? ॥१॥ पर्व की समाप्ति पर क्या दान दे ? क्यावाचक कंसा हो ? उसका पूजन किस प्रकार करे ? इस पर आप पूर्ण प्रकाश डालने की कृपा करिये ॥२॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अब मैं इसके पारायण और श्रवण के पूर्ण फल को कहना हूँ, आप सावधान होकर सुनिये ॥३॥ हे राजन् ! स्वर्गवासी देवता पृथिवी पर श्रीडा करने की इच्छा से अवतरित होकर पुन अपने लोक को लौट गये ॥४॥ अब मैं उस कथा को कहता हूँ, जिसमें ऋषियो और देवताओ के पृथिवी पर जन्म-धारण करने का वृत्तान्त है, सुनो ॥५॥ इस ग्रन्थ में रुद्र, सिद्ध, साध्य, विश्वेदेव, आदित्य, अदितीकुमार, लोकपाल, महर्षि, गुह्यक, गंधर्व, गग, विद्याधर सिद्ध, धर्म, स्वयम् बाल्यायन मुनि, गिरि, सागर, नदी, अप्सरा, ब्रह्म, सवत्सर, अयन, ऋतु, स्थावर-जगम, सुर, असुर, आदि के सहित सम्पूर्ण विश्व अथवा और भी जो-जो कुछ आप देखना चाहेंगे, वही मिल जायगा ॥६-८॥

तेषां श्रुतप्रतिष्ठान नामकर्मानुसर्गनात् ।

वृत्त्याऽपि पातक घोर सद्यो मुच्येन मानवः ॥१०

इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वंश ।

स यतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते ॥११

तेषां शृणु त्वं देवानि श्रुत्वा भारतं भारतम् ।

ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ ॥१२

महादानानि देवानि रत्नानि त्रिविधानि च ।

गाय पात्योपदोहाश्च वन्द्याश्चैव ह्यलकृता ॥१३

सर्वं रामगुणोपेता यानाति त्रिविधानि च ।

भाजनानि विनिश्चानि भूमिर्वासासि वाञ्छन्म् ॥१४

वाहनानि च देयानि ह्या मत्ताश्च वारणा ।  
 शयन शिविकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वल वृता ॥१५  
 यद्यद्गृहे वर किञ्चिद्यद्यदन्ति महद्भुसु ।  
 तत्तद्देय द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनव ॥१६

उपरोक्त सब के प्रतिष्ठान, नाम और कर्मादि का गुणानुवाद करने पर तुरन्त ही महा पाप तक से मुक्ति हो जाती है ॥ १० ॥ जो मनुष्य सयत और शुद्ध मन से इसको आदि से अंत तक सुनता है वह भवसागर से पार हो जाता है ॥११॥ हे राजन् ! अब यह कहता हूँ कि भारत को सुन कर क्या दान देना उचित है ? हे राजन् ! उचित तो यह है कि उस समय पूर्ण भक्ति भाव के सहित जो अपनी सामर्थ्य हो, उसी के अनुसार दान दे ॥ १२ ॥ फिर अपनी सामर्थ्य भर रत्न, दूध देने वाली गाय, आभूषणों से सुयज्जित कन्या, पात्र, पृथिवी, वस्त्र, सुवर्ण, वज्र अश्व आदि वाहन, शय्या, शिविका आदि जो वस्तु खोष्ट हो वह सभी दान की जा सकती है ॥१३-१६॥

श्रद्धया परया दत्त क्रमशस्तस्य पारग ।  
 शक्तित सुमना हृष्ट शुश्रूपुरविकम्पन ॥१७  
 सत्याजं वरतो यत्त शुचि शौचपरायण ।  
 श्रद्धधानो जितक्रोधो यथा सिद्धयति तच्छृणु ॥१८  
 शुचिः शीलान्विताचार शुक्लवासा यतेन्द्रिय ।  
 सस्मृत सर्वशास्त्रज्ञ श्रद्धधानोऽनमूयक ॥१९  
 रूपवान्सुभगो दान्त सत्यवादी जितेन्द्रिय ।  
 दानमानग्रहीता च कार्यो भवति वाचक ॥२०  
 अविलम्बमनायस्तमद्रुत धीरमूर्जितम् ।  
 अस सबताक्षरपद न च भावसमन्वितम् ॥२१  
 क्षिपिष्टिवर्णस युवतमष्टस्थानसमीरितम् ।  
 वाचपेद्वाचक स्वस्थ स्वाधीन सुसमाहित ॥२२

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः ।  
 दिव्यागदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥२८  
 तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफल लभेत् ।  
 वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि ॥२९  
 चतुर्थं वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् ।  
 उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम् ॥३०  
 विमानं विबुधी साद्वंमारुह्य दिवि गच्छति ।  
 वर्षायुतानि भवने शक्रस्य दिवि मोदते ॥३१

प्रथम पारण के समाप्त होने पर ब्राह्मणों को सतुष्ट करने पर अग्निष्टोम का फल प्राप्त होता है और अन्त में श्रोता को स्वर्ग-यात्रा के लिये अप्सराओं से परिपूर्ण दिव्य विमान मिलता है ॥२५-२६॥ जब द्वितीय पारण पूर्ण हो जाता है तब सुनने वाले को अतिरात्र का फल मिलता है और वह दिव्य वस्त्र, माला, गन्ध, अलंकार आदि को धारण कर दिव्य यान के द्वारा देवलोक को प्राप्त होकर देवताओं के लिये भी सम्मानीय हो जाता है ॥ २७-२८ ॥ तीसरे पारण की समाप्ति पर श्रोता द्वादशाह का फल प्राप्त करता है, इस फल से उसे देवताओं के समान दस हजार वर्ष तक स्वर्ग सुख भोगने का अधिकार मिल जाता है ॥ २९ ॥ चौथे पारण की पूर्णता पर वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है और पाँचवें पारण की समाप्ति पर उससे भी दूना फल प्राप्त होता है । इसका पृथक् श्रोता को प्रदीप्त अग्नि और उदयशाल के सूर्य के समान लाल वर्ण वाले तेजोमय विमान के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति कराता है, जहाँ वह इन्द्र के विशाल प्रासाद में विहार करता हुआ दस हजार वर्ष तक सुगोपभोग करता है ॥ ३०-३१ ॥

पष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् ।  
 कालासशिखराकारं चंद्रयंमणिवेदिकम् ॥३२  
 परिशिष्टं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् ।  
 विमानं समप्रिष्ठायकामगं साप्तरोगणम् ॥३३

सर्वाल्लोकान्विचरते द्वितीय इव भास्वर ।  
 अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ॥३४  
 चन्द्रोदयनिभ रम्य विमानमधिरोहति ।  
 चन्द्ररश्मिप्रतीकाशं ह्ययं युक्त मनोजवं ॥३५  
 सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रकान्ततरं मुंघः ।  
 मेघलानां निनादेन नूपुराणां च निस्वर्गः ॥३६  
 अद्भ्ये परमनारीणां सुषं सुप्तो विबुध्यते ।  
 नवमे ऋतुराजस्य वाजिमेघस्य भारत ॥३७  
 वाञ्छनस्तम्भनिर्घृंह वैदूर्यं कृतवेदिषम् ।  
 जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गंधाक्षैः सर्वतो दिशम् ॥३८  
 सेवितं चाप्सरसघं गन्धर्वैर्दिविचारिभिः ।  
 विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वनन् ॥३९  
 दिव्यमात्पाम्बरघरो दिव्यचन्दनभूषितः ।  
 मोरते दैवतं सार्द्धं दिवि देव एवापर ॥४०



दिव्य माला, वस्त्र और गन्ध के अनुलेपन पूर्वक बैठा हुआ धोता देवताओं के साथ देवलोक में भ्रमण का आनन्द लेता है ॥३६-४०॥

दशम पारण प्राप्य द्विजातीनिवन्द्य च ।  
 किङ्किणीजालनिर्घोष पताकाध्वजशोभितम् ॥४१  
 रत्नवेदिकस काश वैदूर्यमणितोरणम् ।  
 हेमजालपरिक्षिप्त प्रवालवलभीसुखम् ॥४२  
 गन्धवर्गीतकुशलैरप्सरोभिनिषे वितम् ।  
 विमान सुकृतावास सुकृतावास सुखेनैवोपपद्यते ॥४३  
 मुकुटेनाकर्णैर्न जाम्बूनदविभूषण ।  
 दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमाल्यविभूषित ॥४४  
 दिव्याल्लोकान्प्रचरति दिव्यभोगं समन्वित् )  
 विबुधाना प्रसादेन श्रिया परमया युतः ॥४५  
 अथ वर्षगणानेव स्वर्गलोके महीयते ।  
 ततो गन्धर्वसहित सहस्राण्येकविंशति ॥४६  
 पुर दरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते ।  
 दिव्ययानविमानेषु लोकेषु विविधेषु च ॥४७  
 दिव्यनारीगणावीर्णो निवसत्यमरो तथा ।  
 तत सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा ॥४८  
 शिवस्य भवने राजन्विष्णोर्याति सलोकताम् ।  
 एवमेतन्महाराज नात्र वार्या विचारणा ॥४९

दशम पारण पूर्ण होने पर किङ्कणियों से अलङ्कृत, ध्वजा पताका से युक्त, रत्नमय बंदी और मणिमय तोरण से सुशोभित, गान-विद्या युक्त गधवों और अप्सराओं से भरा हुआ स्वर्ण निर्मित यान धोता जो उपलब्ध होता है ॥ ४१-४३ ॥ तब धोता के मस्तक पर स्वर्णमय और सूर्य के समान तेजोमय मुकुट सुशोभित होता है और दिव्य माला और गन्धादि के अनुलेपन पूर्वक दिव्य मनोहर रूप वाला होकर वह धोता देवताओं के साथ में भ्रमण करता है ॥४४-

४५॥ इस प्रकार कुछ काल स्वर्ग में विहार करके फिर गन्धर्वों द्वारा परिचर्या को प्राप्त होकर आनन्द सहित रहता है । फिर इन्द्र के समान विविध लोको में भ्रमण करने की शक्ति प्राप्त करके इच्छित रूप से घूमता और दिव्याङ्गनाओं के मध्य में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है । फिर वह सूर्य के भवन में, चन्द्रमा के भवन में और भगवान् शिव के भवन में रह कर अन्त में भगवान् विष्णु के सायुज्य मोक्ष को प्राप्त हो जाता है । हे राजन् ! मेरा सब कथन सत्य है, इसमें सन्देह के लिये किंचित् भी स्थान नहीं है ॥४६-४६॥

श्रद्धधानेन वै श्राव्यमेवमाह गुरुर्मम ।  
 वाचकस्य तु दातव्य मनसा यद्यदिच्छति ॥५०  
 हस्त्यश्वरथयानादि वाहनं च विशेषतः ।  
 कटकं कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं तथापरम् ॥५१  
 वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैव विशेषतः ।  
 देवत्वपूजयेत्तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥५२  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते ।  
 वाच्यमानेऽथ विप्रेभ्यो राजन्पर्वणि पर्वणि ॥५३  
 जाति देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ ।  
 धर्मवृत्तिं च विज्ञाय क्षत्रियाणां नराधिप ॥५४  
 स्वस्ति वाच्यं द्विजानादी ततः कार्यं प्रवर्त्तयित् ।  
 समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या तर्पयेद्द्विजान् ॥५५  
 आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम् ।  
 विधिवद्भोजयेद्राजन्मद्युपायससयुतम् ॥५६  
 ततो मूलफलप्रायं पायसं मद्युसर्पिषा ।  
 आस्तिनेः भोजयेद्राजन्दद्याच्चैव गुडोदनम् ॥५७

हे राजन् ! मेरे गुरु का उपदेश है कि भारत का श्रवण श्रद्धा पूर्वक करे और क्या वाचक ग्राहण को गज, अश्व, रथ, यान, वाहन, कटक, कुण्डल, ब्रह्मसूत्र, वस्त्र, गंध आदि जिस वस्तु को भी पट इच्छा करे, वही उसे देकर

देवता के समान ही उसे पूजे । ऐसा करने वाले श्रद्धावान् श्रोता को अन्त में विष्णु लोक की प्राप्ति होती है ॥५०-५१॥ हे राजन् ! महाभारत की कथा के समय प्रत्येक पर्व पर जाति, देश, उत्साह, गौरव, धर्म आदि के अनुसार जो दान देना चाहिये, उसे कहना है, सुभो ॥५३-५४॥ प्रथम स्वस्ति वाचन कराने के पश्चात् ही कथा सुनने में प्रवृत्त हो । आदि पर्व के समाप्त होने पर ब्राह्मणों को शक्ति भर दान दे ॥५५॥ हे राजन् ! पर्व के पूर्ण होने पर कथावाचक को वस्त्र और गघ आदि अर्पित करके मधु से युक्त खीर के भोजन से तृप्त करे ॥५६॥ इस प्रवार फल, मूत्र और घी-सहृद मिश्रित खीर खिलाकर फिर उसे गुठ मिश्रित भात का भोजन करावे ॥५७॥

अपूर्वैश्चैव पूर्णैश्च मोदकैश्च समन्वितम् ।  
 सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद्विजान् ॥५८॥  
 आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेच्च द्विजोत्तमान् ।  
 अरणीपर्व आसाद्य जलकुम्भान्प्रदापयेत् ॥५९॥  
 तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च ।  
 सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥६०॥  
 विराट्पर्वणि तथा वामासि विधिधानि च ।  
 उद्योगे भरतश्चेत् सर्वकामगुणान्वितम् ॥६१॥  
 भोजनं भोजयेद्विप्राङ्गन्धमाल्यै रलंकृतान् ।  
 भोष्मपर्वणि राजेन्द्र दद्या यानमनुत्तमम् ।  
 ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुमं स्मृतम् ॥६२॥  
 द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम् ।  
 शराश्च देवा राजेन्द्र चापान्यसिवरस्तथा ॥६३॥  
 फणं पयंश्चपि तथा भोजनं सावं कामिकम् ।  
 विप्रेभ्यः ससृष्टं सम्यग्दद्यात्सवतमानसः ॥६४॥

जय गन्तव्यं समाप्त हो जाय, तब ब्राह्मणों को पूर, अरूण, मोदन और खीर का भोजन दे ॥५८॥ फिर बनसर्व को सम्पत्ति पर जय से भर दे ॥५९॥

प्रदान करे और फल, मूल आदि विविध प्रकार के पदार्थों से भोजन करावे ॥५६-६०॥ तदनन्तर जब विराट् पर्व समाप्त हो, तब उन्हें विविध प्रकार के वस्त्रों का दान करे और उद्योग पर्व के पूर्ण होने पर श्रेष्ठ वस्त्र आदि देकर सुसचिपूर्ण पदार्थों से भोजन करावे ॥६१-६२॥ फिर द्रोण पर्व की समाप्ति पर ब्राह्मणों को श्रद्धा सहित भोजन करावे और उन्हें धनुष बाण एव तनवार वा दान करे ॥६३॥ कर्ण पर्व समाप्त होने पर संयत चित्त से ब्राह्मणों को श्रेष्ठ भोजन से तृप्त करे ॥६४॥

शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनं ।  
 अपूपैस्तपयेच्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत् ॥६५  
 गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत् ।  
 स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तपयेत्तु द्विजोत्तमान् ॥६६  
 घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐपिके दापयेत्पुनः ।  
 ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम् ॥६७  
 शान्तिपर्वण्यपि गते हविष्य भोजयेद्द्विजान् ।  
 अश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम् ॥६८  
 तथाऽऽश्रमनिनासे तु हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ।  
 मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम् ॥६९  
 महाप्रश्नानिके तद्वत्सर्वकामगुणान्वितम् ।  
 स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥७०  
 हरिवंशममाप्ती तु सहस्रं भोजयेद्द्विजान् ।  
 गामेका निष्कसंयुक्ता ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७१  
 तदद्वौनापि दातव्या दरिद्रेणापि पायिव ।  
 प्रतिपर्वसमाप्ती तु पुस्तकं च विचक्षणः ॥७२  
 सुवर्णं च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत् ।  
 हरिवंशपर्वणि च पायमं तत्र भोजयेत् ॥७३

शल्यपर्व के समाप्त होने पर मोदक, गुड, भाठ आदि के भोजन से

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा ।  
 ब्राह्मणेपु च तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्व देवताः ॥८७  
 ततो हि वरण कार्यं द्विजानां भरतयंभ ।  
 सर्वं कामैर्यथान्यायं साधुभिश्च यथाक्रमम् ॥८८  
 इत्येष विधिर्हृदिष्टो मया ते द्विपदा वर ।  
 श्रद्धधानेन वै भाव्यं यन्मा त्व परिपृच्छसि । ८९  
 भारतश्रवणं राजन्पारणं च नृपोत्तम ।  
 सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥९०

इन उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त ओर भी जो कुछ देने की इच्छा हो, उसे उसी समय दान कर दे । कथावाचक को गुरु के समान भक्ति-भाव पूर्वक सन्तुष्ट करे । तदनन्तर सब देवताओं का तथा भगवान् नर नारायण का नाम सकीर्तन करे ॥८२॥ यदि थोटा गन्ध, माला एवं अन्यान्य उपयोगी पदार्थों के प्रदान द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे तो उसे अतिरान यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है ॥७३-८४॥ मधुर कण्ठस्वर वाला और स्पष्ट रूप से वर्ण-वाक्यादि के उच्चारण में समर्थ व्यक्ति ही कथा वाचने का अधिकारी है । इसलिये ऐसे पुरुष को ही भविष्यादि पर्वों की कथा कहनी चाहिये ॥८५॥ जब ब्राह्मण भोजन पूर्ण हो जाय, तब कथावाचक को भी भोजन करावे और उसकी विधि सहित पूजा करे, क्योंकि कथावाचक के सन्तुष्ट होने से ही सब देवताओं की सन्तुष्टि होती है ॥८६-८७॥ इस प्रकार ब्राह्मणों का विधि पूर्वक वरण करे । हे राजन् ! आपने मुझसे ग्रन्थ के अध्ययन की जो विधि पूछी थी, वह मैंने आपके प्रति कह दी है ॥८८-८९॥ अब भी जो व्यक्ति अपने कल्याण की कामना करके महाभारत को सुनना चाहते हो, उन्हें इसकी श्रवण विधि का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये ॥९०॥

भारत शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत् ।  
 भारत भवने यस्य तस्य हस्तगतो जय ॥९१  
 भारत परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः ।  
 भारत सेव्यते देवैर्भारतं परिकीर्तयेत् ॥९२

भारत सर्वशास्त्राणामुत्तम भरतर्षभ ।  
 भारतात्प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेनद्ब्रवीमि ते ॥६३॥  
 महाभारतमाख्यानं क्षितिं गा च सरस्वतीम् ।  
 ब्राह्मणं केशव चापि कीर्तयन्नावसीदति ॥६४॥  
 वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ।  
 आदौ चान्ते च मध्ये च हरिं सर्वज्ञं गीयते ॥६५॥

मनुष्य मात्र को नित्य प्रति महाभारत कथन और श्रवण करना चाहिये,  
 जिस घर में यह ग्रन्थ सदा निवास करता है उस घर के मनुष्यों के हाथों में  
 विजय सदैव रहनी है ॥६१॥ महाभारत अथवा पुनीत ग्रन्थ है, इसका सभी  
 देवता सम्मान करते हैं तथा यह विविध प्रकार की गाथाओं से परिपूर्ण है ॥६२॥  
 हे राजन् ! यह सभी ग्रन्थों में श्रेष्ठ है और इसमें एक विशेषता यह है कि इसके  
 द्वारा मुक्ति भी प्राप्त की जा सकती है ॥६३॥ महाभारत की कथाओं के कीर्तन  
 से पृथिवी, सरस्वती, धेनु, ब्राह्मण और भगवान् विष्णु के नामों का स्वयं ही  
 सकीर्तन हो जाता है और ऐसा करने वाले प्राणी को दुःख भी कभी व्याप्त नहीं  
 होते ॥६४॥ वेद, रामायण, महाभारत आदि की पुण्य कथा के कथन-श्रवण के  
 आदि, मध्य और अन्त में भगवान् श्रीहरि के नामों का सकीर्तन करे ॥६५॥

यत्र विष्णुकथा दिव्या श्रुतमश्च सनातना ।  
 तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥६६॥  
 एतत्पवित्रं परममेतद्धर्मनिदर्शनम् ।  
 एतत्सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥६७॥  
 क्रियतेऽसारससारे वाञ्छितस्यैव वारणम् ।  
 हरिवंशस्य श्रवणमिति द्वंपायनोऽब्रवीत् ॥६८॥  
 अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतंस्तथा ।  
 यत्फलं प्राप्यते पुम्भिस्तद्वरेवंशपारणात् ॥६९॥  
 अजरममरमेव ध्येयमाद्यन्तश्चून्य

सगुणमगुणमाद्यं स्यूनमत्यन्तसूक्ष्मम् ।

निरुपममनुमेय योगिना ज्ञानगम्य

त्रिभुवनगुरुमीश त्वाप्रपन्नोऽस्मि विष्णो ॥१००

सर्वस्तरत्तु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।

सर्वोपा वाञ्छिता अर्था भवन्त्वस्य च पारणात् ॥१०१

जो पुरुष परमपद प्राप्ति की कामना करते हो, उ हे भगवान् विष्णु की कथाओ और सनानन श्रुतियों क विशद वर्णनों से युक्त महाभारत महाप्रथ का सदा श्रवण करना चाहिये ॥१२५॥ क्योंकि यह ग्रथ परम पुनीत परम धर्म तथा सभी श्रेष्ठ गुणों का घर होने से सुनने के योग्य है ॥१६७॥ महर्षि व्यास देवजी का स्वयं हो यह कहना है कि इस असार समार मे हरिवंश के सुनने से ही सब मनोरथों की प्राप्ति हो सकती है ॥१६८॥ जो फल सहस्रो अश्वमेध यज्ञ और सैंकड़ा वाजपेय यज्ञ करने से मिल सकता है वह फल अकले इस हरिवंश के सुनने से प्राप्त हो जाता है ॥१६९॥ हे प्रभो ? आप अजर अमर और अनन्त हैं । आप ही सगुण, निर्गुण, स्थूल, सूक्ष्म, अनुपमेय, उपमा से परे और केवल योगिया के लिय ही जानने मे आने योग्य हैं । इसलिये हे विष्णो ! हे ईश्वर ! हे अगदुरो ! मैं आपकी शरण मे हूँ ॥१००॥ इस हरिवंश के पारण से सब के सकट दूर हो, सब का बल्याण हो तथा सभी के मनोरथ पूरे हो ॥१०१॥

॥ त्रिपुर वध कथन ॥

श्याहाद्वयमह ब्रह्मज्जोतुमिच्छामि तत्त्वत ।

स्रयाणा पुरसज्ञाना खेवराणा समासत ॥१

शृणु विस्तरत सर्वं यन्मा पृच्छामि नैघनम् ।

दैत्याना बाहुवलिना सर्वंप्राणिविरोधिनाम् ॥२

शक्रेण वध राजन् शूलैस्त्रिभिरजिह्वै ।

वृत्त पुराऽसुरेन्द्राणा सर्वभूतवर्धपिणाम् ॥३

त्रिपुर पुरपव्याघ्र वृहदातुममोरितम् ।

विक्रामति नभोमध्ये मेघवृन्दमिचोत्पितम् ॥४

प्राकारेण प्रवृद्धेन काञ्चनेन विराजता ।  
 मणिभिश्च प्रकाशद्भिः सर्वरत्नैश्च तोरणैः ॥५  
 वभासे नभसो मध्ये श्रिया परमया ज्वलन् ।  
 गन्धर्वाणामिवोदग्रं कर्मणा साधितं परम् ॥६  
 वाजिनः पक्षसयुक्ता वहन्ति बलदर्पिताः ।  
 पुरं प्रभाकरश्चेष्टं मनोभिः कामवृंहणैः ॥७

यह सुन कर राजा जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब मैं भगवान् शंकर  
 द्वारा त्रिपुरासुरके मारे जाने की कथा सुनना चाहता हूँ, उसे आप विस्तारपूर्वक  
 कहिये ॥१॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! तुमने लोगो का अनिष्ट करने  
 वाले महाबली जिस त्रिपुरासुर के सहार के विषय में जिज्ञासा की है, वह त्रिपुर  
 भगवान् शंकर के बाणों से जिस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हुआ था, उस कथा को  
 तुम्हें विस्तार पूर्वक सुनाता हूँ ॥२-३॥ वह अत्यन्त पराक्रमी और बलशाली  
 त्रिपुरासुर सहसा आकाश में छा जाने वाले मेघों के समान नभ मंडल में स्वच्छ-  
 न्दता पूर्वक घूमता फिरता था ॥४॥ उसके पुर में श्रेष्ठ मणिपों और रत्नों से  
 युक्त ऊँचे-ऊँचे स्तूपों निर्मित भवन थे, जिनके तोरण भी विविध प्रकार के  
 रत्नादि से सुसज्जित किये गये थे ॥५॥ आकाश में उस गंधर्वनगरी के समान  
 सजी हुई सुन्दर पुरी की विस्मय उत्पन्न करने वाली शोभा थी ॥६॥ उस पुरी  
 को बहन करने वाले मन के समान वेग से दौड़ने वाले, अत्यन्त बलशाली, सूर्य  
 के समान तेजस्वी और पल वाले उसके अश्व थे ॥७॥

धावन्ति हेपमाणास्ते विक्रमैः प्राणसंभृतैः ।  
 आह्वयन्त इवाकाशं खुरैः श्यामदलप्रभैः ॥८  
 वायुवेगसमैर्वेगैः कालयन्त इवाम्बरम् ।  
 असुराः समदृश्यन्त चक्षुर्भिविदितात्मभिः ॥९  
 ऋषिभिर्ज्वलनप्रज्व्यंस्तपसा दग्धकित्त्वपैः ।  
 गीतवादिस्तवह्वल गन्धर्वनगरोपमम् ॥१०



चिलायुधसमाकीर्णः प्रतप्तकनकप्रभैः ।  
 भवनं बहुभिश्चैव प्रांशुभिः समलंकृतैः ॥११  
 देवेन्द्रभवनाकारैः शुशुभे तन्महाद्युति  
 प्रासादाग्रैः प्रवृद्धैश्च कैलासशिखरप्रभैः ॥१२  
 शुशुभे दैत्यनगरं बहुसूर्यमिवाम्बरम् ।  
 वराट्टालकसम्पन्नं तप्तकाञ्चनसप्रभम् ॥१३  
 प्रदीप्तमिव तेजोभी रराजाथ महाप्रभो ।  
 क्ष्वेडितोत्कृष्टबहुलं सिंहनादनिनादितम् ॥१४

शब्द करते हुए वे अश्व जब अपने पूर्ण पराक्रम से भागते थे, तब उनके वायु जैसे वेग को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि वे अपने हरे रंग के खुरो को चला कर आकाश को चुनौती दे रहे हों और उनके भय से उसका अन्तस्तल कांपने लगा हो। आत्म तत्व के ज्ञाता, प्रदीप्त अग्नि के समान तेजस्वी और वीतकाम ऋषिगण जब, जिधर देखते, तब उधर ही गायन-वादन से परिपूर्ण उस गंधर्व नगरी के समान त्रिपुर की नगरी उन्हें दिखाई पड़ती ॥८-१०॥ उसमें तपे हुए स्वर्ण के समान असह्य तेजस्वी शस्त्राश्रो से परिपूर्ण बहुत-सी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ विद्यमान थीं। ११॥ उनसे आभास होता था कि इन्द्र-भवन या कैलास-शिखर ही विद्यमान हो गया हो अथवा आकाश में असह्य सूर्य एक साथ प्रकाशित हो उठे हों। उसमें तपे हुए सोने के समान तेजोमय वर्ण वाले अनेको भव्य प्रासाद थे। हे राजन् ! वह पुरी अपने ही तेज से प्रकाशित रहती थी और उसमें वही ताल ठोसने का शब्द, वही भर्तृनामय गूँज और वही सिंह जैसा घोर गर्जन सुनाई पड़ता था ॥१२-१४॥

वभी बल्गुजनाकीर्णं वनं चैत्ररथं यथा ।  
 समुच्छ्रितपताकं तदसिभिश्च विराजितम् ॥१५  
 रराज त्रिपुरं राजन्महाविद्युदिवाम्बरे ।  
 सूर्यनाभश्च दैत्येन्द्रश्चन्द्रनाभश्च भारत ॥ ५

तथाऽन्ये च महावीर्या दानवा बलदर्पिताः ।  
 ममृदुश्च बभञ्जुश्च मोहिताः परमेष्ठिना ॥१७  
 पन्थानं देवगमनं पितृयानं च भारत ।  
 तैरेवमसुराग्रैश्च प्रगृहीतशरासनः ॥१८  
 दानवैर्न रशादूर्ल देवयाने महापथे ।  
 पितृवह्निबलोपेते हृते भरतसत्तम ॥१९  
 ब्रह्माणमभ्यधावन्त सर्वे सुरगणास्तथा ।  
 विवर्णवदना दीनाश्छिन्नेव गतिकर्मणि ॥२०  
 अब्रुवश्च गताः स्थित्वा स्वरेणार्त्तनिनादिना ।  
 हन्यामहे शत्रूगणं भृगोच्छेदेन भागद ॥२१  
 तेषां चैव वधोपायं वदस्व वदता वर ।  
 य ज्ञात्वा वाहुवलिनो बाधेम समरे परान् ॥२२

उन शब्दों से प्रतीत होता था कि वह मल्लो से परिपूर्ण चंद्रय उद्यान  
 हो, क्योंकि वहाँ स्थान-स्थान पर पनाकाएँ और तलवारें चमकती हुई दिखाई  
 देती थी ॥१५॥ इससे आकाश के विद्युत् की माला से प्रकाशित हो उठने का  
 भ्रम होने लगता था । हे राजन् ! सूर्य-नाभ और चन्द्रनाभ नामक दो देवों के  
 साथ अन्यान्य दैत्यगण ब्रह्माजी से वर प्राप्त करके अत्यन्त गवित और बल के  
 कारण भ्रमित हो उठे थे । उन्होंने देवलोक और पितरलोक का आवागमन-मार्ग  
 बीच-बीच से तोड़ दिया था और उनके धनुष-बाण की शक्ति के सामने कोई भी  
 नहीं ठहर पाता था ॥१७-१९॥ तब सभी देवता अत्यन्त दीन, हीन, मलीन होकर  
 ब्रह्माजी के निकट पहुँचे और आर्तस्वर में उनसे निवेदन करने लगे—हे प्रभो !  
 आपके द्वारा निश्चित हमारे यज्ञ-भागों को हमारे शत्रुओं ने छीन लिया है, इस  
 लिये हम मरे के समान हो गये हैं ॥२०-२१॥ इसलिये अब आप उनके नष्ट होने  
 का कोई उपाय करें, जिससे हम भी अपने को बल-सम्पन्न करके उन्हें मारने में  
 त्तर हो सकें ॥२२॥

सान्त्वयित्वा तु वरदो ब्रह्मा प्रोवाच देवताः ।

शृणुष्वं देवताः सर्वाः शत्रुप्रतिकृतिं पराम् ॥२३

अवध्या दानवाः सर्वे ऋते शंकरमव्ययम् ।  
 प्रतिगृह्य च तद्वाक्यं मनोमिर्वाग्भिरेव च ॥२४  
 भूमौ प्रपेदिरे सर्वे सह रुद्रैश्च भारत ।  
 विन्ध्यपादे च मेरौ च मध्ये च पृथिवीतले ॥२५  
 तपसोग्रेण योगज्ञाः सर्वे ते मुनयोऽभवन् ।  
 काश्यपेय हरं प्राप्ता जपन्तो ब्रह्मसंहिताम् ॥२६  
 -येषां च परदारणामभवद्विन्ध्यता जने ।  
 विन्ध्यस्तदर्भनिचये ताम्रलोहं च भूपणम् ॥२७  
 परिधानानि चर्माणि मृद्गानि च शुभानि च ।  
 स्वयं मृतानां कृष्णानां मृगाणां कुरुसत्तम ॥२८

देवताओं की पुकार सुन कर ब्रह्माजी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—  
 हे देवगण ! भगवान् शंकर के अतिरिक्त अन्य कोई भी उन असुरों को नष्ट  
 करने में समर्थ नहीं है । यह सुन कर सभी देवता और रुद्रादि उन्हें प्रणाम करके  
 वहाँ से चल दिये । अपने तपोबल अथवा योग बल के कारण विन्ध्य पर्वत, सुमेरु  
 पर्वत, पृथिवी या आकाश का कोई भी स्थान उनसे अपरिचित नहीं था इसलिये  
 वे पृथिवी पर आये और ब्रह्म संहिता को जपते-जपते उन्हें दिखाई दिया कि ताम्र  
 और लौहमय अलंकारों से अलङ्कृत भगवान् शंकर अत्यन्त कोमल मृगचर्म धारण  
 किये कुश के एक आसन पर बैठे हैं ॥२३-२८॥

गृहीतानि विमुक्तानि देहेभ्यो वनचारिणाम् ।  
 अन्तरिक्षमयोपेत्य विविशुर्मायया वृताः ॥२९  
 हारालयं सुराः सर्वे व्याघ्रचर्मनिवासिनः ।  
 प्रणिपत्याथ ते दीना भगवन्तं जगत्पतिम् ॥३०  
 सुव्यवतेनाभिधानेन प्रभापन्त हरं ततः ।  
 हविर्दत्तमविज्ञानाद्भ्रस्मच्छन्नेषु वह्निषु ॥३१  
 यरदानं वृषाऽस्मासु भगवन्विमुक्षे त्वयि ।  
 यथादेश यथावालं क्रियतां ब्रह्मणो वचः ॥३२

यदुक्त देवदेवेन खेचराणा समीपत ।  
 एव देववचोभिश्च भाविनोऽर्थस्य वैभवात् ॥३३  
 समनह्यन्महादेवो देव सह सवासव ।  
 आदित्यपथमास्थाय सन्नद्धा समलवृता ॥३४  
 सर्व काञ्चनवर्णाभा बभुर्दीप्ता इवाग्नय ।  
 रुद्रेण सहिता रुद्रा दहन्त इव तेजसा ॥३५  
 सन्नद्धा कुशला सर्व प्राशव पर्वता इव ।  
 विश्वे विश्वेन वपुषा बलिन कामरूपिण ॥३६  
 समनह्यन्महात्मानो दानवान्त विधिस्सव ।  
 एभि सह घनाध्यक्ष समन्तात्परिवारित ॥३७  
 त्रिपुर योधयत्यक्ष प्रगृह्य सशर धनु ।  
 अथ दैत्या भिन्नदेहा पुराट्टाल गता इव ॥३८

यह देख कर उन सभी देवताओं ने भगवान् शिव को नमस्कार करके  
 हा—हे प्रभो ! यदि आप हमें वर देकर स्वयं उस वर का ध्यान न रखेंगे तो  
 हमें वरदान भस्म से ढँकी हुई अग्नि पर दी जाने वाली आहुति के समान व्यर्थ  
 जायगा । इसलिये, अब ब्रह्माजी ने हमसे जो कहा है, उसके अनुगार कार्य  
 रके उनके वचनों को रलिये ॥३६-३२॥ यह सुनकर देवाधिदेव भगवान् शिव  
 कार्य को महत्वपूर्ण समझ कर तुरन्त ही शस्त्रास्त्र ग्रहण किये और देवताओं  
 ने भी सुसज्जित होने का आदेश दिया, जिसे सुन कर सभी देवता वक्त्रादि  
 ारण कर स्वयं पर चढ़े तत्र उनकी शोभा प्रदीप्ति अग्नि के समान हुई ॥३३-  
 ४॥ विविध शस्त्रास्त्रों और मुकुटादि अङ्गकारों को धारण किये हुए षड्रण भी  
 र्वत के समान ऊँचे आकार बाल तथा तेज से अत्यन्त प्रकाशमान दिखाई देने  
 ली ॥३५॥ दानवों को नष्ट करने की इच्छा से अनेक रूप धारण में समर्थ  
 श्वेदेवता भी विविध शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर चल पडे । इस प्रकार उस  
 भूर्ण देव-सेना से घिरे हुए भगवान् शिव घणुप-बाण ग्रहण पूर्वक त्रिपुरानुर  
 ाय सम्राट् करने के लिये तन्पर हुए ॥३५-३८॥

न्यपतन्त विदेहास्ते विशीर्णा इव पर्वताः ।  
 अतिविद्धाः सुविद्धाश्च रणमध्यगता नृप ॥३६  
 न्यपतन्दैत्यसघाता वज्रणेव हता नगाः ।  
 असिभिश्च हता देवैः शक्तिचक्रपरश्वधैः ॥४०  
 वाणैश्च भिन्नमर्माणो दैत्येन्द्रो युद्धगोचरे ।  
 प्रपेनुः सहिता उर्व्या छिन्नवक्षा इवाचलाः ॥४१  
 तत्र सजा विमुञ्चन्ति दीप्यमानेन तेजसा ।  
 एवं तेऽन्योन्यसवाधे क्षीयन्ते क्षयकर्मणा ॥४२  
 नोपालभ्यन्त चक्षुर्म्यामपि दिव्येन चक्षुषा ।  
 अस्त प्राप्ते दिनकरे सुरेन्द्रास्ते निशामुखे ।  
 छिन्नभिन्नक्षतमुखा निपेतुर्वसुघातले ॥४३

उस युद्ध में भगवान् शक्र द्वारा की जाने वाली बाण वर्षा से बिध-बिध कर घायल हुए दैत्य घराणायी होने लगे । उस समय ऐसा प्रतीत होता था जैसे इन्द्र के वज्र से चूर्ण होकर पर्वत पृथिवी पर गिर रहे हो । उस समय किसी देवता के पास खड्ग, किसी के पास चक्र, किसी के पास परशु और किसी के पास बाण आदि थे । इन सभी शस्त्रास्त्रों के प्रहार से नितान्त पीड़ित हुए दैत्य पर-कटे पर्वत के समान गिर रहे थे ॥३६-४१॥ देवताओं के भारी तेज के कारण दैत्यों में कर्त्तव्य-विचार की शक्ति नहीं रही और उनकी जो सेना उस युद्ध में भारी गई, उनकी सहायका अनुमान दिव्य दृष्टि से भी नहीं हो सकता । इस प्रकार युद्ध करते-करते सायबाल हो गया और सूर्य अस्ताचलगामी हो गये । सब देवताओं में भी किसी ना मुग और किसी का कोई वन्य अग दान विदात हुआ दिखाई दिया । बहुत-से देवता घायल होकर पृथिवी पर पड़े हुए थे ॥४२-४३॥

अय दैत्या जयं प्राप्ता निनाया निशितैः शरैः ।  
 विनेशुर्विपुर्लनार्दिर्मघा इव महारवाः ॥४४

जयंप्राप्तासुराश्चैव तेन्योऽन्यमभिजल्पिरे ।  
 त्रासितास्त्रिदशाः सर्वे संग्रामजयकाक्षिणः ॥४५  
 अस्माभिर्वलसम्पन्नैः सह प्रासासितोमरैः ।  
 विरेजुश्च जय प्राप्ता उशनोहव्यबोधिताः ॥४६  
 समरे बलसम्पन्नाः सायुधा दैत्यसत्तमाः ।  
 सुरैश्च सहितः सर्वे रथमास्थाय शंकरः ॥४७  
 दर्पितान्निनन्दन्दैत्याम्प्रदहन्निव तेजसा ।  
 युगान्तकाले वितते रश्मिवानिव निर्दहन् ॥४८  
 सर्वभूतानि भूताग्न्यः प्रलये समुपस्थिते ।  
 स रथो वाजिभिः शीघ्रैरुह्यमानो मनोजवैः ॥४९  
 विवभी नभसो मध्ये सविद्युदिव तोयदः ।  
 वृषभेण ध्वजाग्रेण गर्जमानेन भारत ॥५०  
 भातिस्म स रथो राजन्सेन्द्रायुध इवाम्बुदः ।  
 ततोऽम्बरगताः सिद्धास्तुष्टुवुर्वृषभध्वजम् ॥५१  
 कर्मभिः पूर्वजं पूर्वेः शुचिभिस्थ्यम्बकं तदा ।  
 ऋपयश्च तपःशान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ॥५२  
 अमृतप्राशिनश्चैव सुरसंघास्तथैव च ।  
 गन्धर्वाप्सरसश्चैव गन्धर्वेण स्वरेण वै ॥५३

रात्रिकाल के उपस्थित होते ही दैत्यगण विजय-घोष करने लगे, उस समय वह घोष मेघों के गर्जन जैसा प्रतीत होने लगा ॥४४॥ इस प्रकार वे विजयोन्मत दैत्य परस्पर में कहने लगे-देखो, विजय की इच्छा से आये हुए सब देवता हमारे पराक्रम, प्राप्त, तलवार और तोंगर आदि शस्त्रास्त्रों को देख कर डर गये हैं । यह कहने हुए शुक्राचार्य के शिष्य वे दैत्य विजयोत्सास में भर कर घूमने लगे । इधर भगवान् दायर भी रथाटढ़ होकर देवताओं सहित युद्ध क्षेत्र में अग्रसर होते हुए अपने वाणों की अग्नि में दैत्यों को उसी प्रकार भस्म करने लगे, जैसे प्रलयकाल में सूर्य अपनी तीक्ष्ण रश्मियों से प्राणियों को भस्म कर डालता है ॥४५-४८॥ मन या वायु जैसे द्रुत वेग वाले अश्व भगवान् दायर

का रथ खींचते हुए तेजी से चल पड़े तब ऐसा लगा जैसे आकाश में विद्युत कौंध रही हो। उनके रथ की ध्वजा में स्थित वैल की गर्जना से प्रतीत होता था जैसे इन्द्र धनुष से युक्त बादलों की ही गर्जना हो। उस समय आकाश में स्थित हुए सिद्ध, सत्यव्रत और तपश्चर्या युक्त ऋषि और अमृत के पान करने वाले देवतागण भगवान् के शक्र गुणों का सकीर्तन करते हुए उनकी स्तुति करने लगे, तभी गधवों ने उनकी महिमा का गान प्रारम्भ किया ॥४६-५३॥

प्रहृष्टवदना सौम्या पश्ये स्थानान्तरे नृप ।  
 चयाट्टालकसम्पन्ने शतघ्नीशतसकुले ॥५४  
 तस्मिस्तु दैत्यनगरे सर्वभूतभयावहे ।  
 ततस्तु शरवर्षाणि मुमुक्षुदैत्यदानवा ॥५५  
 सुराणामरयो मध्ये तीक्ष्णाग्राणि समन्तत ।  
 शतघ्नीभिश्च निघ्नन्तो भल्लै शूलैश्च भारत ॥५६  
 ते चक्रिरे महत्कर्म दानवा युद्धकोविदाः ।  
 गदाभिश्च गदा जघ्नुर्मल्लाश्च चिच्छिद्बु ॥५७  
 अस्त्रैरस्त्राण्यबाघ्नन् माया मायाभिरेव च ।  
 ततोऽपर समुद्यम्य शरशक्तिरश्वघान् ॥५८  
 अशनीश्च महाघोरान्भुक्ताञ्छतसहस्रश ।  
 असिभिर्मायाविहितैर्मृत्योर्विषयगोचरै ॥५९

हे राजन् ! वे दैत्यगण अपनी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं पर चढ़ गये। उन अट्टालिकाओं पर तोपें लगी थीं और उन्हें देखकर सभी प्राणी भयभीत होते थे, उन्हीं अट्टालिकाओं से वे अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों को बरसाने लगे। उस समय शतघ्नी, भाले, शूल आदि हथियारों के प्रयोग से भयानक स्थिति हो गई और दैत्यगण देवताओं के सब प्रहारों को व्यर्थ करने लगे। उनकी गदाओं से अपनी गदाओं से, भालों को भालों से तथा अग्याम्य शस्त्रों को अपने शस्त्रों से और माया को अपनी माया से काटते हुए असह्य दैत्य बाण, शक्ति, परशु, अशनि और भयकर तलवारी से देवताओं पर भोषण प्रहार करने लगे ॥५६-५९॥

ते वध्यमाना विबुधाः शरवर्षैरवस्थिताः ।  
 गन्धर्वनगराकारः सोऽसीदत्सहयो रथः ॥६०  
 हन्यमानोऽसुरगणैः प्रासासिशरतोमरैः ।  
 तैश्च दैत्यप्रहरणं गुं रुभिर्भारसाहिभिः ।  
 चित्रैश्च बहुभिः शस्त्रैरतिष्ठत शचीपतिः ॥६१  
 ततो मध्ये दिव्यशब्दः प्रादुरासीन्महीपते ।  
 ऋषीणां ब्रह्मपुत्राणां महतामपि भारत ॥६२  
 स एष शंकरस्याग्रे रथो भूमिं प्रतिष्ठितः ।  
 अजेयो जय्यता प्राप्तः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥६३  
 तस्मिन्निपतिते राजनूरथानां प्रवरे रथे ।  
 निपेतुः सर्वभूतानि भूतले वसुधाधिप ॥६४  
 विचेलुः पर्वताग्राणि चेलुश्चैव महाद्रुमाः ।  
 विचुक्षुभुः समुद्राश्च न रेजुश्च दिशो दश ॥६५  
 वृद्धाश्च ब्राह्मणास्तत्र जेपुश्च परमं जपम् ।  
 यत्तद्ब्रह्ममयं तेजः सर्वं विजयं पिणाम् ॥६६  
 शान्त्यर्थं सर्वभूतानामिह लोके परस्य च ।  
 समाधायात्मनाऽऽत्मानं योगप्राप्तेन हेतुना ॥६७

उस समय देवताओं को पिटना पड़ रहा था । दैत्यों के तलवार तोमर और प्राप्त आदि के आघात से भगवान् शरवर्ष का रथ भी अविचल हो गया और देवराज इन्द्र ही उस रथ-शेन में अकेले सटे रह गये ॥६०-६१॥ तभी आवाज मार्ग में अवस्थित हुए ब्रह्माग्नी के पुत्र ऋषिगण दश प्रकार बह उठे— भूतनाथ भगवान् के रहते हुए भी उनका रथ भेष्टा-रहित हो गया । तीनों तीर्थों में जिस रथ को कोई नहीं जीत सकता था, वह रथ दैत्यों ने जीत लिया ॥६२-६३॥ हे राजन् ! उस रथ के पतित होते ही जगत् के सभी प्राणी परा-हायी हो गये । उस समय सभी पर्वतों के शिखर क्षिण्य हो उठे, गृध्र गिर गये, समुद्रों का पन क्षुब्ध हो गया और सभी दिशाएँ अरवच्छ हो गई ॥६४-६५॥ उस समय जगत् में शान्ति स्थापित करने के दिव्य रथ योगाभ्यासी विप्रगण



सामवेद के मंत्रों को जपने लगे । क्योंकि उस समय विजय चाहने वाले देवताओं को वह देवमय तेज ही बल-प्रदान कर सकता था ॥६६-६७॥

रथन्तरेण साम्नाऽथ ब्रह्मभूतेन भारत ।  
 तेजसा ज्वलयन्विष्णोस्त्र्यक्षस्य च महात्मनः ॥६८  
 सर्वेषां चैव देवानां बलिनां कामरूपिणाम् ।  
 ऋषीणां तपसाऽऽद्यानां वसतां विजने वने ॥६९  
 अथ विष्णुर्महायोगी सर्वतोदृश्यतस्त्वतः ।  
 वृपरूपं समास्थाय प्रोज्जहार रथोत्तमम् ॥७०  
 समाक्रान्तं देवगणैः समग्रबलपौरुषैः ।  
 बलवांस्तोलयित्वा तु विपाणाभ्यां महाबलः ।  
 ननाद प्राणयोगेन मथ्यमान इवार्णवः ॥७१  
 तृतीयं वायुविषयं समाक्रम्य विपाणवान् ।  
 ननाद बलवान्नादं समुद्र इव पर्वणि ॥७२  
 ततो नादेन वित्रस्ता दैतेया युद्धदुर्मदाः ।  
 पुनस्ते कृतसन्नाहा युयुधुः सुमहाबलाः ॥७३  
 सर्वे वै बाहुबलिनः समर्थबलपौरुषाः ।  
 सुरसैन्यं प्रमदन्तः प्रगृहीतशरासनाः ॥७४

उन ब्राह्मणों के वेदानुष्ठान से भगवान् विष्णु, त्रिलोचन शिव, स्वेच्छा रूपधारी महाबली देवगण और निर्जन वन में रहने वाले तपोनिष्ठ ऋषि अत्यन्त तेजस्वी हो गये ॥६८-६९॥ तब महायोगी भगवान् विष्णु ने वृषभ का रूप धारण किया और देवताओं के सहित उस अत्यन्त विशाल रथ को सींगों पर उठा लिया । उन वृषभ रूप धारी भगवान् ने रथ को उठाकर अत्यन्त घोर गर्जन किया तो जैसा घोर शब्द समुद्र मथन के समय हुआ था, वैसा ही भयंकर शब्द प्रतिध्वनित होने लगा ॥७०-७१॥ फिर उन वृषभ रूपी भगवान् ने रथ सहित आकाश में पड़च कर पुनः घोर निनाद किया, जो पूर्वकाल में समुद्र का गर्जन जैसा प्रतीत हुआ ॥७२॥ उस शब्द को सुन कर युद्ध में कठिनाई से जीते

जाने वाले दैत्यगण भयभीत होकर शस्त्र ग्रहण पूर्वक युद्ध के लिये सुसज्जित हो गये ॥७३॥ तब वे भुजबल रे युक्त एव अत्यन्त पराक्रम वाले दैत्य धनुष ग्रहण करके यथाशक्ति बलते हुए देवताओं को नष्ट करने लगे ॥७४॥

अग्नि संधाय धनुषि शितं वाणं सुपत्रिणम् ।  
 ब्रह्मास्त्रेणाभिस योज्य ब्रह्मादण्डं शिवोऽव्ययः ।  
 मुमोच दैत्यनगरे त्रिधामात्मानुसंज्ञितम् ॥७५॥  
 तं वाणं त्रिविधं वीर्यात्संधाय मनसा प्रभुः ।  
 सत्येन ब्रह्मयोगेन तपसोऽग्रण भारत ॥७६॥  
 मुमोच दैत्यनगर सर्वप्राणहराञ्छरान् ।  
 दीप्तान्कनकवर्णाभान्सुवर्णाश्च सुनिर्मलान् ॥७७॥  
 मुक्त्वा वरशरान्घोरान्सविपानिव पन्नगान् ।  
 सुप्रदीप्तं स्त्रिभिर्वाणं वैगिभिस्तद्विदारितम् ॥७८॥  
 शरघातप्रदीप्तानि विन्ध्याग्राणीव भारत ।  
 गोपुराणि पुरैः साढ्वं व्यशीर्यन्त नराधिप ॥७९॥  
 तानि वैदूर्यवर्णानि शिखराणि गिरेरिव ।  
 शकरेण प्रदग्धानि ब्रह्मास्त्रेणापतन्नुप ॥८०॥  
 हते च त्रिपुरे देवैर्वाचो हर्षात्कलेरिताः ।  
 सर्वाञ्जहीति शल्लंस्त्वं प्रवृद्धान्पुरपोत्तम ॥८१॥  
 विष्णुरेव महायोगी योगेन प्रस्मयन्निव ।  
 स्तूयते ब्रह्मसदृशं ऋषिभिः शङ्करेण च ।  
 ब्रह्मणा सहितं देवैः संपन्नवलपौरुषैः ॥८२॥

इसके पश्चात् भगवान् शर ने अपने अत्यन्त तेजोमय, स्वर्ण जैसे वर्ण वाले, स्वच्छ एवं नयनर ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र और ब्रह्मादण्ड को धनुष पर एक साथ चढ़ाकर सत्य, तप और वेद के बल से दैत्य पुरी पर चला दिये ॥७५-७७॥ उन सर्प के समान अत्यन्त भयंकर सीनों अम्त्रों के नीपण आपात से त्रिपुर के मंदिरों टूटते ही-हीकर इपर-उपर बिखर गये ॥७८॥ उस समय ऐसा प्रतीत

होने लगा जैसे विन्ध्याचल के सभी शिखर एक साथ विचूर्ण होकर बिखर गये हो । तीनों नगरो के गिरते ही उसके सभी गोपुर गिर कर नष्ट हो गये ॥७६॥ उस समय ऐसा लगने लगा जैसे वैदूर्य मणि के समान चमचमाते हुए पर्वत शिखर पृथिवी पर गिर गये हो ॥८०॥ हे राजन् ! भगवान् के ब्रह्मास्त्र की शक्ति से ही वे तीनों पुर भस्मोभूत हो गये । उस समय हर्ष के कारण गद्गद् हुए देवताओ ने भगवान् शिवजी से कहा—हे पुरुष श्रेष्ठ ! आप हमारे सभी वैरियों का सहार कर डालिये ॥८१॥ फिर ब्रह्माजी, ऋषिगण, भूतनाथ भगवान् शंकर और शक्ति से सम्पन्न हुए सभी देवगण एक साथ मिलकर भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे ॥८२॥

## ॥ युग और मन्वन्तर कथन ॥

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् ।  
 तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा जनमेजय ॥१  
 तत्र धर्मश्चतुष्पादो ह्यधर्मः पादविग्रहः ।  
 स्वधर्मनिरताः सन्तो जयन्ते चैव मानवाः ॥२  
 स्थिता धर्मपरा विप्रा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः ।  
 कृप्यामभिरता वंश्याः शूद्राः शुश्रूषवस्तथा ॥३  
 सदा सत्यं तपश्चैव धर्मश्चैव विवर्धते ।  
 सद्भिराचरितं यच्च क्रियते ध्यायते च यत् ॥४  
 एतत्कृतयुगे वृत्तं सर्वेषामेव भारत ।  
 प्राणिना धर्मबुद्धीनामपि चेन्नीचयोनिनाम् ॥५  
 क्षीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते ।  
 तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥६  
 द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां लिभिर्धर्मो व्यवस्थितः ।  
 तत्र सत्यं च सत्त्वं च वृत्ते सर्वं प्रवर्तते ॥७

राजा जनमेजय को युग-परिवर्तन का रहस्य बतलाते हुये वंशम्पादनत्री

ने कहा—सतयुग चार हजार वर्षों का होता है और उससे दुगुने वर्षों की उसके संध्या तथा संध्याश भी होते हैं। उस समय धर्म के चारों पैर होते हैं और अघर्म नाममात्र के लिये एक पैर पर स्थित रहता है। उस काल में सब मनुष्य अपने अपने धर्म में सलग्न रहते हैं और अपना कर्तव्य पालन ईमानदारी से करते हैं ॥१-२॥ उस समय ब्राह्मण पूर्णतः धर्मपरामण होते हैं और राजागण भी अपने प्रजासंरक्षण का कार्य सचाई से करते हैं। वैश्य कृषि-कार्य और शूद्र सेवा-वृत्ति का यथोचित रूप से पालन करते हैं ॥३॥ इस समय में सत्य, तपस्या और धर्म की वृद्धि होती है। सज्जनगण जिस प्रकार का आचरण करते हैं सामान्य जनता को भी उसी का उपदेश करते हैं। सत्युग में छोटे बड़े सबका आचरण शुद्ध रहता है और सब प्राणी धर्म-वृद्धि से ही व्यवहार करते हैं ॥४-५॥ त्रेता का परिमाण तीन हजार वर्ष का कहा गया है और उसकी संध्या छ सौ वर्षों की होती है ॥६॥ इस समय धर्म के तीन और अघर्म के दो पैर रहते हैं और इस कारण सत्य तथा धर्मप्यता की प्रवृत्ति सतयुग से कुछ ही कम होती है ॥७॥

त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णा लौल्येन संयुताः ।

चातुर्वर्ण्यस्य वै कृत्याद्यान्ति दीर्घल्यमाश्रिता ॥८

एष त्रेतायुगविधिर्विहितो देवनिर्मितः ।

द्वापरस्यापि या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ॥९

द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां कुरसत्तम् ।

तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥१०

तस्मात्पथं परा विप्रा ज्ञानिनो रजसाऽऽवृत्तः ।

शठा नैष्टुतिकाः क्षुद्रा जायन्ते कुरुपुङ्गव ॥११

द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्मयामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः ।

विपर्ययं शनैर्यान्ति नृते ये धर्मसेतवः ॥१२

ब्राह्मण्यभावा नश्यन्ति तथाऽऽस्तिक्यं विशीर्यते ।

अतोऽन्यासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये ॥१३

पर त्रेता में मनुष्य भी धर्म वृत्ति में न्यूनता आने लगती है और इससे

फलस्वरूप चारों वर्णों में अनेक प्रकार के विकार उदय होने लगते हैं ॥८॥ यह त्रेता युग का लक्षण बतलाया अब द्वापर की स्थिति से विषय में बतलाते हैं ॥९॥ द्वापर दो हजार वर्ष का होता है और उसकी सध्या इससे दुगुनी अर्थात् चार सौ वर्ष की होती है ॥१०॥ इस युग में ब्राह्मण गण रजोगुण की वृद्धि होने से धन के लोभी, क्षुद्र और ठगपन के स्वभाव के हो जाते हैं । धर्म के दो ही पैर शेष रह जाते हैं और अधर्म के तीन पैर हो जाते हैं । लोग सत्युग के धर्म-नियम, व्रत तथा उपवास आदि को त्याग देते हैं ॥११-१२॥ इसका परिणाम यह होता है कि ग्राह्यणत्व और ईश्वर प्रणिधान का धीरे धीरे नाश होने लगता है और धर्म की वृद्धि करने वाले जो अन्य व्रतोपवास हैं उनको भी लोग त्यागने लग जाते हैं ॥१३॥

तथा वर्षसहस्र तु वर्षाणा द्वे शते तथा ।  
 स ध्यया सह सऽप्यात क्रूर कलियुग स्मृतम् ॥१४  
 तन्नाधर्मश्चतुष्पादः स्याद्धर्म पादविग्रह ।  
 कामनिष्ठास्तमश्छन्ना जायन्ते तस्य मानवा ॥१५  
 नैवोपवासकृत्कश्चिन्न च सधुर्न सत्यवाक् ।  
 आस्तिको ब्रह्मवक्ता वा नरो भवति वै तदा ॥१६  
 अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहवान्धवा ।  
 विप्रा शूद्रसमाचारा शूद्रास्त्वाचारलक्षणा ॥१७  
 दूपकास्त्वाश्रमाणा च वर्णाना चैव स करा ।  
 अगम्येष्वभिरस्यन्ते वत्स्यन्त्येव कली युगे ॥१८  
 एवं द्वादशसाहस्र तदेक यगमुच्यते ।  
 तदेकसप्ततिगुण मन्वन्तरमिहोच्यते ॥१९  
 त्रय्या चैव न स देहो युगान्ते जनमेजय ।  
 दिव्य द्वादशसाहस्र युग तु कवयो विदुः ।  
 एतत्सहस्रपर्यन्त तदेहो ब्राह्ममुच्यते ॥२०  
 ततोऽहनि गते तस्मिन्सर्वेपामेव देहिनाम् ।  
 शरीरनिवृत्तिं दृष्ट्वा लोक स हारबुद्धिमान् ॥२१

द्वापर के पश्चात् कलियुग का आगमन होता है जिसे सबसे अधिक बुरा बतलाया गया है । वह सध्या सहित बारह सौ वर्ष का होता है ॥१४॥ इस समय अधर्म चारो चरणो पर लडा हो जाता है और धर्म का केवल एक चरण शेष रह जाता है । इस समय लोग काम भावना तथा अन्य श्रद्धा से बहुत अधिक प्रेरित होने लगते हैं ॥१५॥ इस समय मे व्रत और उपवास की प्रथा समाप्त-प्राय हो जाती है, सच्चे साधुओ और सत्यवादियो का अभाव हो जाता है । वास्तिक तथा ब्रह्मवादी मनुष्य ढूँढे नहीं मिलते ॥१६॥ सब लोग अहंकार से मत्त होकर बन्धु-बान्धवो की मर्यादा को भुला देते हैं । ब्राह्मण शूद्रो का सा और शूद्र ब्राह्मणो का सा आचार व्यवहार करने लगते हैं ॥१७॥ सभी लोग आश्रम धर्म से विमुक्त होकर वर्णसंकर करने लगते हैं, अगम्या रिषयो से दुरा-चार करने मे कितो को सकोच नहीं होना और शास्त्र-वाक्यों का महत्व नष्ट हो जाता है ॥१८॥ इस प्रकार बारह हजार वर्षों का एक महा-युग होता है और ऐसे इकहत्तर चौकडी युगो का एक मन्वन्तर माना जाता है ॥१९॥ हे जन-मेजय ! ऐसे एक मन्वन्तर वा चौदह गुना समय ब्रह्म का एक दिन होता है, इसमे कुछ भी सन्देह नहीं ॥२०॥ ऐसे ब्रह्म का एक दिन पूर्ण होने पर शंकर भगवान समस्त शरीर जीव प्राणियों का अन्त कर देते है अर्थात् प्रलय-काल आ जाता है ॥२१॥

देवताना च सर्वेषां ब्राह्मणानां महीपते ।

देवत्यानां दानवानां च मक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥२२

देवर्षीणां ब्रह्मर्षीणां तथा राजदिणामपि ।

विन्नराणामप्सरसां भुजङ्गानां तथैव च ॥२३

पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव भारत ।

तिर्यग्योनिगतानां च सत्त्वानां मृगपक्षिणाम् ॥२४

महाभूतपतिदेवः पञ्चभूतानि भूतवृत् ।

जगत्सु हरणार्थाय कृत्वा वैशसं महत् ।

जगत्सु हरणार्थाय कुरते वैशसं महत् ॥२५

भूत्वा मूर्धश्चाक्षुषीं चारुशनीं भूत्वा वायुं स हरन्प्राणिजातम् ।

भूत्वा यद्विदं एते सर्वलोकाग्नेषो भूत्वा भूय एवाग्न्यवर्षां ॥२६

हे राजन् ! ऐसा प्रलय काल आने पर देव,दानव, ब्राह्मण, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, देवर्षि, ब्रह्मर्षि राजर्षि वि नर, अप्सरा, सर्प पवत, नदी पशु, मृग, पक्षी तथा अन्य तियग योनि के जीवो आदि किसी की भी रक्षा नहीं हो पाती ॥२२ २४॥ उस समय समस्त भूतो के महान अधिपति शिव भगवान् समस्त जगत का संहार करने के लिये एक एक करके सब कुछ मष्ट करते चले जाते हैं । उस समय वे ही सुष रूप से दृष्टि शक्ति का अन्त कर डालते, वायु रूप से प्राणियो का संहार करते हैं, अग्नि रूप से सब को भस्म कर डालते है धीरे मेघ रूप से सब को डुबाकर अन्त कर देते हैं ॥२६॥

## ॥ एकाग्रव मे विष्णु भगवान् की स्थिति ॥

भूत्वा नारायणो योगी सप्तमूर्तिविभावसु ।  
 गभस्तिभि प्रदीप्ताभि स शोषयति सागरान् ॥१  
 पीत्वाऽर्णवाश्च सर्वान्सि नदीकूपाश्च सर्वश ।  
 पर्वताना च सलिल सर्वं पीत्वा च रश्मिभि ॥२  
 भित्त्वा सहस्रशश्च व मही नीत्वा रसातलम् ।  
 रसातलजल कृत्स्न पिवते रसमुत्तमम् ॥३  
 अन्सु सृजन्क्लेदमन्यद्दाति प्राणिना ध्रुवम् ।  
 तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तम ॥४  
 वायुश्च बलवान्भूत्वा स विष्टयाखिल जगत् ।  
 प्राणोदय सुराणा च वायुना कुरुते हरि ।  
 ततो देवगणाना च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥५  
 ये चेन्द्रियगणा सर्वे ये चान्ये च यतोद्भवा ।  
 पूय ध्राण शरीर च पृथिवीमाथिता गुणा ॥६  
 जिह्वा रसश्च क्लेदश्च स थिता सलिल गुणा ।  
 रूप चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाथिता गुणा ॥७  
 स्पर्श प्राणश्च चेष्टा च पवन स थिता गुणा ।  
 परमेष्ठिन वरेण्य च हृषीवेश समाथिता ॥८

श्री वैशम्पायनजी ने कहा—‘हे राजन् । उस बाल में वे महायोगी नारायण सात सूर्यों के तुल्य तेजोमय स्वरूप को प्रकट करके अपनी तीव्र किरणों से भूमण्डल के समास्त कूप, नदी, समुद्रों के जल को सोख लेते हैं । पर्वतों में भी जल का नाम नहीं रहता ॥१-२॥ उस समय पृथ्वी के टुकड़े-टुकड़े होकर वह रसातल को चली जाती है और वहाँ का सब जल भी उन्हीं नारायण द्वारा क्षोपण कर लिया जाता है । फिर उस समय अन्यत्र क्षोप रहे प्राणियों के लिये अन्य रसों की सृष्टि करते हैं । अन्त में आगामी सृष्टि करने का विचार करके वे समस्त भूतों और प्राणियों को अपने में लय कर लेते हैं ॥३-४॥ वे भगवान् प्रथम वायु रूप लेकर समस्त देवताओं तथा भूमण्डल के प्राणियों की इन्द्रियों को भय कर रूप से झकझोर कर समाप्त कर देते हैं । इसके फल स्वरूप गन्ध, घ्राण और शरीर आदि पार्थिव गुण पृथ्वी को, रूप तथा नेत्र आदि आग्नेय गुण अग्नि को, जिह्वा, रस तथा क्लेद आदि जल के गुण जल को, स्पर्श, प्राण वायु और अणु की गति आदि वायु गुण वायु को अपित हो जाते हैं । इस प्रकार सभी तत्व और उनके गुण परमेष्ठी, वरेण्य भगवान् हृषीकेश के आश्रित हो जाते हैं ॥५-८॥

ततो भगवता तस्य रश्मिभिः परिवारिता ।

वायुना वृष्यमाणाश्च रूपान्योन्यसमाश्रयात् ॥९

तेषां स धर्षंजोद्भूत पावक शतघाज्वलन् ।

अदहन्निखिलांल्लोकानुग्रहं सवर्तकोऽनल ॥१०

सपर्वतामृत्तुल्युल्माल्लतावत्तीस्तृणानि च ।

विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ॥११

आश्रमाश्च तथा पुण्याग्निदिव्यान्यायतनानि च ।

यानि चाश्रमणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ॥१२

भस्मीभूतास्ततः सर्वान्लोकान्लोकगुरुरहेरि ।

भूयो निर्वापयामास जलयुक्तेन वर्मणा ॥१३

सहस्रहृद्महातेजा भूत्वा वृष्णो महाधन ।

दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम् ॥१४



तत क्षीरनिकाशेन स्वादुना परमाम्भसा ।  
शिवेन पुष्येन मही निर्वाणमगमत्परम् ॥१५

उस समय भगवान् पाँचों प्रकार के गुणों और तत्वों को एकत्र कर देते हैं । उन सबके सघर्ष महाभयकर अग्नि का उद्भव हो जाता है जो अत्यन्त भयकर वेग से जलने, लगती है । उसका नाम 'सम्बर्तक' अग्नि है । वह अग्नि अपनी हजारों विशाल लपटों से ससार के समस्त पेड़ पौधे, लता, बेल, घास दिव्य विमान, बड़े-बड़े नगर, आश्रम पुण्य तीर्थ, दिव्य स्थान सबको भस्म कर देता है ॥६-१२॥ इस प्रकार जब, सब लोक भस्म हो जाते हैं तो वह जल के द्वारा शान्त की जाती है । वे सहस्राक्ष भगवान् ही काले महामेघ के रूप उमड़ पड़ते हैं और समस्त पृथ्वी को जल रूपी हवि से तपण कर देते हैं ॥१३-१४॥ तब भूमण्डल दूध स्रष्टव्य सुम्वाद जल से परिपूरित हो जाता है और पृथ्वी बड़ा कल्याणमयी रूप धारण कर लेती है ॥१५॥

ते नगा जलसंछन्ना पयस सर्वतोधरा ।  
एकार्णवजला भूत्वा सर्वसत्त्वविवर्जिता ॥१६  
महाभूताम्यपि च त प्रविष्टान्यमितौजसम् ।  
नष्टाकपवनाकाशे सूक्ष्मे जनविवर्जिते ॥१७  
स शोपयित्वा पीत्वा च वसत्येक सनातन ।  
पौराण रूपमास्थाय किमप्यमितबुद्धिमान् ॥१८  
एकार्णवजले ह्यासीद्योगी योगमुपागत ।  
अयुताना सहस्राणि गतान्येकार्णवेऽम्भसि ।  
न चैन कश्चिदव्यवत वेदितुमर्हति ॥१९  
एकार्णवविधिः कोऽय यश्चैव परिकीर्तित ।  
क एष पुरुषो नाम कियोग कश्च योगवान् ॥२०  
एतावन्तमसौ कालमेकार्णवविधिं प्रति ।  
वरिष्यतीम भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते ॥२१  
• न य माता न च द्रष्टा न ज्ञाता नैव पाश्र्वंग ।  
ततोऽव्यजायते कश्चिदृते त देवमीश्वरम् ॥२२

नमः क्षिति पवनमय प्रकाशयन्प्रजापति भुवनचरं सुरेश्वरम् ।  
पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं शशास भू-शयनमरोचयत्प्रभु ॥१३

उस समय पृथ्वी के समस्त पर्वत और अन्यान्य पदार्थ उस दुग्ध सदन  
जल में लीन होकर सर्वत्र जल ही जल दृष्टि गोचर होना है और किसी जीव  
का वहाँ चिह्न नहीं रहता । उस अवसर पर पचनूत, सूर्य और पवन भी जन्ही  
महाप्रभु में विलीन हो जाते हैं ॥१६-१७॥ उस अवस्था में वे सनातन प्रभु सब कुछ  
अपने भीतर लय करके उस अनन्त जलराशि के बीच लकेले ही स्थित रहते हैं  
॥१२॥ इस प्रकार महायोग की दशा में उस जल पर स्थित रहते हुये उनको  
असह्यो वषं ष्यतीत हो जाते हैं, पर कोई उन अव्यक्त प्रभु के विषय में कुछ  
जान नहीं पाता ॥१६॥ यह सुन कर राजा जनमेजय ने प्रश्न किया कि हे  
ब्रह्मन् । जिग एकार्णव का आपने वर्णन किया उसका क्या रूप है ? क्या उसकी  
कोई सीमा रहती है ? फिर यदि जब अन्त में हम स्वयमेव उन महा प्रभु में  
लीन हो जायेंगे तब ससार में रहते हुये, अनेक प्रकार की साधन करने की क्या  
आवश्यकता है ? और वे परम पुरुष कौसे हैं और उनका योग किस प्रकार का  
है ? ॥२०॥ वंशम्पायनजी ने कहा—महाराज । उन महाप्रभु का कोई परिमाण  
या सीमा नहीं है । इसलिये उस एकार्णव की स्थिति की भी कोई सीमा नहीं  
बताई जा सकती । उन परम प्रभु की न कोई माता होती है, न कोई परिवृत  
होता है और न कोई पास में रहने वाला होता है । 'इस लिये उनको यदि कोई  
सुरेश्वर, वेदों तथा पितामह महामुनि के आधार स्वरूप महाप्रभु उस एकार्णव  
में शयन करते हैं ॥२३॥

॥ नारायण और मार्कण्डेय सम्वाद ।

एवमेकार्णवीभूते शीते लोके महायुति ।  
प्रच्छाद्य सलिलं सर्वं हरिनारायणः प्रभु ॥१  
महतो रजसो मध्ये महार्णवसमस्य वं ।  
विरजस्वो महाबाहुरक्षरं ब्रह्म यं विदु ॥२

आत्मरूपप्रकाशेन तपसा संवृतः प्रभुः ।  
 त्रिकमास्थाय कालं तु ततः सुष्वाप सोऽव्ययः ॥३॥  
 पुरुषो यज्ञ इत्येवं यत्परं परिकीर्तितम् ।  
 यच्चान्यत्पुरुषार्थं स्यात्सर्वं तत्पुरुषोत्तमः ॥४॥  
 ये च यज्ञपरा विप्रा ऋत्विजा इति संज्ञिताः ।  
 आत्मदेहात्पुराभूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तदा ॥५॥  
 ब्रह्माणं परमं वक्रादुद्गातारं च सामगम् ।  
 होतारमथ चाध्वयुं बाहूम्यामसृजत्प्रभुः ॥६॥  
 ब्राह्मणो ब्राह्मणत्वाच्च संप्रस्तारं च सर्वशः ।  
 तन्मित्र वरुणं सृष्ट्वा प्रतिष्ठातारमेव च ॥७॥  
 उदरात्प्रतिहर्तारं पीतारं चैव भारत ।  
 अच्छावाकमनोरुभ्यां नेष्टारं चैव भारत ॥८॥  
 पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रं सुब्रह्मण्यं च यज्ञियम् ।  
 ग्रावाणमथ बाहूभ्यामुन्नेतारं च याज्ञिकम् ॥९॥

वैशम्पायनजी कहने लगे—राजन्! जब समस्त विद्वान् इस प्रकार जलामयी हो जाता है तो उसमें एकमात्र वही महाप्रभु हरिनारायण महान् धृति रूप में शयन करते हैं ॥१॥ वे रजोगुण स्त्री महान् समुद्र के बीच में रहते हैं किन्तु स्वयम् तीनों गुणों रहित होने के कारण विद्वानों द्वारा 'अक्षर-ब्रह्म' कहे जाते हैं ॥२॥ जब वे प्रभु तपस्या द्वारा आत्मरूप को प्रकट करने का विचार करते हैं और त्रिबाल व्यापक निद्रा में मग्न हो जाते हैं, उस समय उनको किसी भी अग्न्य विषय वा स्मरण नहीं रहता ॥३॥ वे ही प्रभु परम-पुरुष, यज्ञस्वरूप और पुरुषोत्तम के नाम से कीर्तित किये जाते हैं ॥४॥ प्राचीन काल में उन्हीं के देह से यज्ञपरायण, रागद्वेष से शून्य ऋत्विजगण अविभूत हुये थे । उन सब के नाम तुमको सुनाता हूँ ॥५॥ ब्रह्मा, उद्गाता, होता तथा अध्वयुं उनके मुख से; ब्राह्मण वा प्रतिपादन करने वाले प्रस्तोता, मित्रावरुण तथा प्रस्थाता बाहु से, प्रतिहर्ता तथा पीता उदर से; अम्पायक तथा नेता उरुसे आग्नीध्र तथा

तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते ।  
 देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं चागमत्परम् ॥१८  
 संचिन्तयति मध्यस्थो मार्कण्डेयोऽतिशाङ्कितः  
 किंस्विद्भूवेदिय चिन्ता मोहः स्वप्नोऽनुभूयते ॥१९  
 व्यक्तमन्यतमो भावो ह्युतेषां भविता मम ।  
 न हीदृशमसंक्लिष्टमयुक्तं सत्यमर्हति ॥२०  
 नष्टचन्द्रार्कपदने छन्नपर्वतभूतले ।  
 कतमः स्यादय लोको इति चिन्ताव्यवस्थितः ॥२१

जब वे भगवान के मुख से बाहर आये तो उनको सर्वत्र जलामयी ही दृष्टि-गोचर हुआ । भगवान की माया से उनको 'किसी पूर्व वृत्तान्त का स्मरण न रहा और सब लोको को शून्य तथा जल से आच्छन्न देख कर उनके मन में एक अभूतपूर्व भय का संचार हो गया । तभी उन्होंने धीर सागर शायी भगवान को देखा जिससे उन्हें बड़ा हर्ष और साथ ही विस्मय भी हुआ ॥१६-१७॥ तब अपने मन को शान्त करके वे विचार करने लगे कि यह कौनसा लोक है जिसमें सूर्य, चन्द्र, तारागण, पर्वत, पृथिवी कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता । क्या मुझे किसी प्रकार का ध्रम हो गया है अथवा मैं कोई स्वप्न देख रहा हूँ ? अन्यथा ऐसी असंगत और असम्भव बात किस प्रकार दिखाई पड़ती ॥१६-२१॥

अपश्यच्चापि पुरुषं शयानं पर्वतोपमम् ।  
 तोयाढ्यमिव जीमूत मध्ये मग्नं महार्णवं ॥२२  
 तपन्तमिव तेजोभिर्भास्विन्तमिव वर्चसा ।  
 जाग्रन्तमिव गाम्भीर्याच्छ्वसन्तमिव पन्नगम् ॥२३  
 स देवं प्रष्टुमायाति को भवानिति विस्मयात् ।  
 तथैव च घनं भूयो मुनिः कुक्षिं प्रवेशितः ॥२४  
 वर्षाणां शतसाहस्रं मार्कण्डेयो महामुनिः ।  
 तिस्रस्यष्टिवी वस्त्रां न च कश्चिन्तर्ष्यत ॥२५

ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिःसृतः ।  
 सुप्तं न्यग्रोधशाखाया बालमेक निरीक्षते ॥२  
 यथा चैकार्णवजले नीहारेण वृत्तान्तरे ।  
 अव्यक्तभीषणे लोके सर्वभूतविवर्जिते ॥२७  
 स भूयो विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ।  
 बालमादित्यसकाशं न शक्नोत्पुसपितुम् ॥२८

इस प्रकार का विचार मन में आने पर वे चारों तरफ दृष्टिपात करने लगे तो देखा कि महान् पर्वत के समान एक प्रकाण पुरुष जल में शयन कर रहा है । उसका वर्ण वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामल और अत्यन्त तेजस्वी है । उन्नी की कान्ति से वह सब स्थान प्रकाशमान हो रहा है । वे ऐसे जोर से निदवास परित्याग कर रहे थे जैसे कोई महारूपी श्वासोच्छ्वास कर रहा हो ॥२२-२३॥ उसे देख कर मार्कण्डेय यह पूछना ही चाहते थे कि आप कौन हैं कि फिर उसके उदर में प्रविष्ट हो गये ॥२४॥ वहाँ अनेक वर्षों तक विविध दृश्यों को देख कर भी भगवान् के उदर का अन्त नहीं पा सके ॥२५॥ अन्त में जब वे फिर मुख के बाहर निकले तो देखा कि बरगद के वृक्ष पर एक शिशु सो रहा है ॥ २६ ॥ वहाँ सर्वग जल ही जल था और कोहरा-सा छाया था । सब प्रकार के जीवों से रहित वहाँ का दृश्य बड़ी भयानक-सा लग रहा था ॥२७॥ महर्षि मार्कण्डेय ऊँच के वहाँ अकेला देख कर भय करने लगे और उस सूर्य के समान प्रकाशमान बालक के समीप जाने का साहस न कर सके ॥२८॥

सोऽचिन्तयदथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ।  
 पूर्वदृष्टमिदं नेति शङ्कितो देवमायया ॥२९  
 अगाधे सलिलस्तब्धे मार्कण्डेयः प्लवन्मुनिः ।  
 न शान्तिं लभते तत्र श्रमात्सप्तस्तविकलवः ॥३०  
 तथैव भगवान्हृत्सो गतो योगेन बालताम् ।  
 वभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तम ॥३१

माभैर्वत्स न भेतव्यमिहैवायाहि चान्तिकम् ।  
 मार्कण्डेय मुने धीर वाद्यस्त्वं श्रमपीडितः ॥३२  
 को मां नाम्ना कीर्तयते तपः परिभवन्मम ।  
 बहुवर्षसहस्रायुर्द्धर्षयश्चैव मे वयः ॥३३  
 न ह्येपु समुदाचारो देवेष्वपि समाहितः ।  
 मा ब्रह्मापि स विश्वेशो दीर्घायुरिति भापते ॥३४  
 कस्तपो घोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवितः ।  
 मार्कण्डेयेति मां प्रीयत्वा मृत्युमीक्षिनुमिच्छति ॥३५

तब वे उसी महानंभ के एक स्थान में उठे होकर विचार करने लगे कि क्या मैंने जिस पुरुष को पहले देखा था मत वही है अथवा कोई अन्य है ? इस प्रकार से देवमाया से सशक्ति होकर वे महासलिल में तैर रहे थे, उनको अत्यंत श्रम जान पड़ रहा था और चित्त भी आशान्त हो रहा था ॥२६-३०॥ वास्तव में वे बालक का रूप योगबल से हंस भगवान ने ही धारण कर रखा था । मार्कण्डेय को भयभीत देख कर वे गम्भीर वणी से बोले—हे वत्स ! तुम अकेले होने से किसी प्रकार का भय मत करो । तुम बालक हो और श्रम करने से थक गये हो, इसलिये मेरे पास आजाओ ॥३१-३२॥ मार्कण्डेय कहने लगे—कौन मेरे हजारी वर्षों के तपस्वी-जीवन की उपेक्षा करके मुझे मार्कण्डेय के नाम से बुला रहा है । जब ब्रह्माजी भी मुझे दीर्घजी की कहते हैं तो कौन देवता अथवा मनुष्य हो जो इस प्रकार मेरी तपस्या का निरस्कार करने का साहस कर सकता है, और अपने आप मृत्यु की कामना करता है ॥३३-३४-३५॥

एवमाभापते क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः ।  
 अर्थन भगवान्भूयो वभाषे तत्परायणम् ॥३६  
 अहं ते जनको वत्स हृषीकेशः पिता गुरः ।  
 आयुःप्रदाता पीराणः किमर्थं नोपसर्पसे ॥३७  
 मा पुत्रकामः प्रथमं पिता ते ह्यङ्गिरा मुनिः ।  
 पूर्वमाराधयामास तपस्वीब्रमुपाश्रितः ॥३८

ततस्त्वा घोरशिरसं दहनीर्षमतेर्जसम् ।  
 दत्तवानहमात्मेष्टं महर्षिममितायुषम् ॥३९  
 तत्र नोत्सहते चान्यो यो न भूतो ममात्मक ।  
 द्रष्टुमेकार्णवगत क्रीडत योगधर्मिणम् ॥४०  
 ततः प्रसन्नवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचन ।  
 मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपा ॥४१  
 नामगोक्षे ततः श्रुत्वा दीर्घायुर्लोकपूजित ।  
 अथाकरोन्मिस्कारं प्रणतः शिरसा प्रभुम् ॥४२

३९ ॥ -जब मार्कण्डेय मुनि ने क्रोध पूर्वक ऐसे वचन कहे तो भगवान ने पुनः  
 उनको संबोधित करके कहा—वत्स ! मैं ही वह पुरातन पुष्य नारायण हूँ  
 जिसने तुम्हें जीवन और आयु प्रदान की है, फिर तुम मेरे पास क्यों नहीं आते ?  
 ॥ ३९-३७ ॥ तुम्हारे पिता अगिरा ऋषि ने घोर तपस्या करके मुझसे पुत्र की  
 याचना की थी । उसी के फल-से तुम अग्नि के सदृश्य तेजस्वी, महान तपस्वी,  
 महर्षि और दीर्घायु बन सके हो ॥३९-३९॥ अब जब कि मैं क्रीडा करता हुआ  
 इस बालक रूप में एकाणव में शसन कर रहा हूँ तो ऐसा कोई प्राणी मेरा दर्शन  
 नहीं कर सकता जो मेरी आत्मा से ही उत्पन्न नहीं हुआ हो ॥४०॥ वैशम्पायन-  
 जी कहने लगे—तब महा तपस्वी, लोकमाय, दीर्घजी की महामुनि मार्कण्डेय  
 ने अत्यन्त प्रसन्न होकर और आश्चर्य से नेत्रों को विस्फारित करते हुये, मस्तक  
 पर अजालि बाँध कर भगवान को अत्यन्त विनीत भाव से प्रणाम किया  
 ॥ ४१-४२ ॥

इच्छेऽहं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं तवानघ ।  
 यदेकार्णवमध्यस्य शेषे त्वं बालरूपवान् ॥४३  
 किसज्ञं वक्ष्ये भगवाँल्लोके विज्ञायसेऽनघ ।  
 तवये त्वां महाभूतं न भूतमिह निष्ठति ॥४४  
 अहं नारायणो ब्रह्मा स भव सर्वदेहिनाम् ।  
 सर्वभूतोद्भवकर सर्वभूतविनाशन ॥४५

अहमैन्द्रं पदे शक्र ऋतूनामपि वत्सरः ।  
 अहं युगे युगाध्यक्षो युगस्यावर्त्त एव च ॥४६  
 अहं सर्वाणि सत्वानि देवतान्यखिलानि च ।  
 भुजगानामहं शेषस्ताक्षर्योऽहं सर्वपक्षिणाम् ॥४७  
 अहं सहस्रशीर्षा द्यौर्यः पदैरभिसवृतः ।  
 आदित्यो यज्ञपुरुषो देवो यज्ञमयो मखः ।  
 अहमग्निर्हव्यवाहो यादसा पतिरव्ययः ॥४८  
 यत्पृथिव्या द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् ।  
 बहुजन्मनिरद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुच्यते ॥४९  
 ज्ञानवान्दृष्टविश्वात्मा योगिना योगविज्ञमः ।  
 कृतान्त सर्वभूताना विश्वेषा कालसञ्जितः ॥५०

भार्कण्डेयजी कहने लगे—हे भगवन् मैं आपको तात्त्विक रूप से जानना चाहता हूँ, इस समय तो यहाँ पर समुद्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं जान पड़ता और उसके बीच में आप बालक के रूप में शयन कर रहे हैं। मैं यह जानना चाहता हूँ कि जगत आपको किस रूप में जानती है—आपका नाम क्या है ? आप कृपा करके स्वयं ही अपनी भाषा के सम्बन्ध में परिचय दें ॥ ४३-४४ ॥ भगवान् कहने लगे—हे भार्कण्डेय ! मैं ही नारायण हूँ, मैं ही गृष्टि का रचयिता ब्रह्मा हूँ। समस्त प्राणवारी मुझसे उत्पन्न होते हैं और मैं ही उनका विनाश करता हूँ ॥४५॥ मैं ही इन्द्र हूँ, मैं ही शक्र कहा जाता हूँ, ऋतुओं के लिये वर्ष मैं ही हूँ, युग-युगाध्यक्ष, युगावर्त भी मैं ही हूँ ॥४६॥ मैं ही समस्त जीवों में व्याप्त हूँ और समस्त देवता भी मुझसे ही होते हैं। सर्पों में मैं शेष नाग हूँ और पक्षियों में मैं गरुड हूँ ॥ ४७ ॥ मैं ही सहस्रशीर्ष, सप्तसपाद, आदित्य, यज्ञपुरुष, देव, यज्ञमय नामों से प्रकाश जाना हूँ। मैं ही द्रव्य-वाहक अग्नि और कभी नाश न होने वाला समुद्र हूँ ॥४८॥ पृथ्वी पर जितने बड़े-बड़े ज्ञानी तपस्या के लिये प्रसिद्ध हैं, जिनके जन्म-बन्धन मट्ट ही चुके हैं और जो आत्म ज्ञान सम्पन्न हो चुके हैं, उस ज्ञान का साक्षात् स्वरूप मैं ही हूँ। मैं समस्त योगियों में परम



श्रेष्ठ योगी हूँ । मैं समस्त प्राणियों के लिये कृतान्त और ससार के लिये काल हूँ ॥४६-५०॥

अहं कर्म क्रिया जीवः सर्वेषा धर्मदर्शनः ।  
 निष्क्रियः सर्वभूतेषु स्वात्मज्योति समाननः ॥५१  
 प्रधानं पुरुषो देवोऽहमाद्यस्त्वक्षयोऽव्ययः ।  
 प्रधानं पुरुषो देवोऽहमाद्यस्त्वक्षयोऽव्यययः ।  
 अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥५२  
 अहं ह्यशिरो देवः क्षीरोदे यो महार्णवे ।  
 ऋतं सत्य च परममहमेकं प्रजापतिः ॥५३  
 अहं साख्यमहं योगमहं तत्परमं पदम् ।  
 अहमिज्यो भवश्चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥५४  
 अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः ।  
 अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ।  
 अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः ॥५५  
 क्षीरोदः सागरश्चाहं समुद्रो वडवामुखः ।  
 वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमहं रविः ॥५६

मैं ही कर्म, क्रिया और समस्त जीवों के लिये धर्मसाधन स्वरूप हूँ । पर  
 मैं कर्म-बन्धन से परे रहता हूँ और अनादिकाल से आत्म-ज्योति सम्पन्न हूँ  
 ॥ ५१ ॥ मैं प्रधान पुरुष, आद्यदेव, अक्षय और अविनाशी हूँ । मैं ही समस्त  
 आकाश बालों के लिये धर्म और तप हूँ ॥ ५२ ॥ मैं ही क्षीर महासागर का  
 ह्यर्णव देव हूँ और मैं ही ऋत, सत्य और परम प्रजापति हूँ ॥ ५३ ॥ मैं ही  
 साख्य-ज्ञान और योग-शरण का निर्देशित परमपद हूँ । लोग मेरे लिये ही यज्ञ  
 करते हैं, मैं ही विद्यानिधान हूँ ॥ ५४ ॥ मैं प्रकाश, वायु, पृथ्वी, जल, समुद्र,  
 नक्षत्र और दशों दिशा, सम्बतसर, सोम, पर्जन्य और सूर्य हूँ ॥ ५५ ॥ मैं ही  
 क्षीरसागर और समुद्र का वडवानल हूँ और मैं ही सम्बर्तक अग्नि होकर सम-  
 स्त जलों को शोषण कर लेता हूँ ॥५६॥

अहं पुराण परम तथैवेह परायणम् ।  
 अहं भूतस्य भव्यस्य वतमानस्य समव ॥५७  
 यत्किञ्चित्पश्यसे चैव यच्छणोपि च किञ्चन ।  
 यच्चवानुभवसे लोके तत्सर्वं मामकं स्मृतम् ॥५८  
 विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेय चाद्यं पश्य माम् ।  
 युगे युगे च त्वक्ष्यामि माकण्डेयाखिल जगत् ॥५९  
 तदेतदखिलं सर्वं माकण्डेय वधारय ।  
 शुश्रूषममं धर्मेषु कुक्षी चर सुखी भव ॥६०  
 मम ब्रह्मा शरीरस्यो देवाश्च ऋषिभिः सह ।  
 व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छाणराजितम् ॥६१  
 अहमेवाक्षरो मन्त्रस्यैव अक्षरश्चैव सर्वशः ।  
 त्रिपदश्चैव परमस्त्रिवर्गार्थनिदर्शन ॥६२

मैं ही सबसे पुरातन परम पुरुष हूँ और भूत भविष्य और वर्तमान भी मैं ही हूँ ॥५७॥ जो कुछ तुम देखते और सुनते हो, जो कुछ अनुभव करते हो, वह, सब मुझ ही उत्पन्न होता है ॥५८॥ हे माकण्डेय ! इस समस्त ससार को मैंने ही बनाया है और आगे भी, प्रत्येक युग में मैं ही इसको सृष्टि करने वाला हूँ ॥५९॥ यह समस्त जगत् मेरा ही रूप है, मैं ही इसको धारण करता हूँ, इस लिये तुम किसी प्रकार का भय न करके सुखपूर्वक मेरे उदर में विचरत रहो ॥६०॥ मेरे ही शरीर में ब्रह्मा और अन्य सब देवगण निवास करते हैं । मैं ही व्यवक्त, अव्यक्त, अपराजेय अक्षर और त्र्यम्बर मन्त्र, त्रिपाद गायत्री और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरुषार्थं चतुष्टय का निदर्शन हूँ ॥६१-६२॥

एवमेतत्पुराणेषु वेदान्ते च महामुनि ।  
 वक्त्रे व्याहृतवानाशु माकण्डेय महामुनिम् ॥६३  
 प्रवेशयामास ततो जरठं विश्वरूपधृक् ।  
 ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तम ।  
 रराम सुपमासाद्य शुश्रूषुहं समव्ययम् ॥६४

तदक्षरं विविधमथाश्रितौ वंपुमंहाणवे व्यपगतचन्द्रमास्करे ।  
शनश्चरन्प्रभुरेपि हंससंज्ञितोऽसृजंजगद्विसृजति कालपर्यये ॥६५

वैशम्पायनजी कहते लगे—हे राजन् !- नारायण ने मार्कण्डेयजी के सम्मुख जो सत्य ज्ञान प्रकट किया था उसी को भगवान वेद ने व्यासजी पुराणों के रूप में प्रकाशित कर दिया ॥६३॥ तब मार्कण्डेय मुनि पुनः उही विश्वरूप धारी नारायण के उदर में प्रविष्ट हो गये और वहीं रहते हुये सूखपूर्वक हसयोग की साधना करने लगे ॥६४॥ वे हम नाम वाले महाप्रभु ही युग-युग में विविध रूप धारण करते हैं और जब सूर्य-चन्द्रमा प्रलय कालीन महार्णव में लोप हो जाते हैं तो वे महाप्रभु ही पुनः क्रम से सृष्टि रचना करके उनमें विचरण करने लगते हैं ॥६५॥

॥ नारायण की नाभि से कमल की उत्पत्ति ॥

आपवः स विभुर्भूत्वा कारयामास वै तपः ।  
छादयित्वात्मनो देहमात्मना कुम्भसम्भवः ॥१  
ततो महात्माऽतिबलो मतिं लोकस्य सर्जने ।  
महतां पञ्चभूतानां विश्वभूतो व्यचिन्तयत् ॥२  
तस्य चिन्तयतस्तत्र तपसा भावितात्मनः ।  
निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे ॥३  
ईपत्संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिले स्थितः ।  
सोऽनन्तरोमिणा सूक्ष्ममय छिद्रमभूत्तदा ॥४  
तत्र द्वादशगतिर्भूत्वा भारतद्रवसंभवः ।  
स लब्ध्वाऽन्तरमक्षोभ्यो व्यवर्द्धत समीरणः ॥५  
विवर्द्धता बलवता तेन संक्षोभितोऽर्णवः ।  
अन्योन्यवेगाभिहता ममन्धुश्चोर्भयो भृगम् ॥६  
महार्णवस्य ध्रुवस्य तस्मिन्नग्नि मध्यति ।  
गृष्णवर्मा समभवत्प्रभुश्च्यवनरोऽर्चमान् ॥७

वैष्णवपायनजी कहने लगे—'हे राजन् ! उस एकाग्रबोध में भगवान् अपने कुम्भसंभूत रूप को गुप्त रखते-हुए 'आपवः' के रूप में व्यस्त्या करने लगे ॥१॥ जब इस प्रकार तप करने से उनको अत्यन्त बल की प्राप्ति हो गई तो सृष्टि निर्माण के लिये पवभूतादिक की, रचना का विचार करने लगे ॥२॥ उनके इस प्रकार चिन्तन करने से तपोबल के प्रभाव द्वारा वहाँ एक सूक्ष्म छिद्र हो गया । तब उन्होंने उस महासागर के जल को रुचित क्षोभित कर दिया तो वही सूक्ष्म छिद्र आकाश के रूप में परिणत हो गया ॥३-४॥ इसके पश्चात् भगवान् सर्वमय रूप धारण करके आकाश में व्याप्त हो गये, जिसमें वायु का आविर्भाव होने लगा गया और वह समीर के रूप में निरन्तर बढ़ने लगा ॥५॥ आकाश और वायु का दबाव पड़ने में सनुद्र बहुत अधिक क्षुब्ध होने लगा और उसकी तरंगें बड़े वेग से उठने लगी । इसके कारण सम्पूर्ण जल भयंकर रूप से मथने लगा और तब उससे अत्यन्त विकराल और सहायकारी अग्नि तद्रव का उद्भव हुआ ॥६॥

तत्र सशोपयामास पावकः सलिलं द्रुह ।  
 क्षयाज्जलनिधेः छिद्रमभवान्नः सृतं नभः ॥८॥  
 आत्मतेजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसो नमाः ।  
 आकाश छिद्रसंभूत वायुराकाशसभवः ॥९॥  
 आज्यसघर्षणोद्भूतं पावकं चाज्यसभवम् ।  
 दृष्ट्वा प्रीतियुतो देवो महाभूतादिभावनः ॥१०॥  
 दृष्ट्वा भूतानि भगवान्लोकसृष्ट्यर्थं तत्त्वं वित् ।  
 ब्रह्माणो जन्मसहितं बहुरूपो विचिन्वति ॥११॥

'वह अग्नि तीव्रता के साथ समुद्र के जल का शोषण करने लगा, जिससे उसकी गहराई बढ़ने लगी ॥८॥ इस प्रकार उन महाप्रभु ने आत्मतेज से एक विशेष पवित्र अमृत स्वरूप जल को उत्पन्न किया और फिर उससे आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वी, पाँचों तत्वों की सृष्टि क्रमशः की ॥९-१०॥ उन पवभूतों को देख कर सृष्टि रचना के तत्त्वज्ञ भगवान् नारायण बहुत प्रसन्न हुए

और सृष्टि रचना करने के लिये ब्रह्माजी के उत्पन्न होने के सम्बन्ध में विचार करने लगे ॥११॥

चतुर्गुणादिस र्यान्ते सहस्रयुगपर्यये ।

यत्पृथिव्या द्विजेन्द्राणा तपसा भावितात्मनाम् ॥१२

बहुजन्मनिष्ठात्मा ब्रह्मणो षत्तिरत्तम ।

ज्ञानवान्दृष्टविषवात्मा योगिना योगवित्तम ॥१३

त योगवन्त विज्ञेय स पूर्णश्रयं विक्रमम् ।

देवो ब्रह्मणि विश्वे च नियोजयति योगवित् ॥१४

ततस्त्वस्मिन्महानीये हविषो हरिरच्युत ।

स्वपत्नीइषच विविध मोदते चैष पावकि ॥१५

पद्म नाभ्यद्भव चैक समुत्पादितवास्नदा ।

सहस्रात्र विरजो भास्कराभ हिरण्यमयम् ॥१६

हुताशन ज्वलितशिखोज्ज्वलत्प्रभ

सुगन्धिन शरदमलाकंतेजसम् ।

विराजते कमलमुदारवचसं

महात्मनस्तनुरुहचारदर्शनम् ॥१७

इसके लिये नारायण ने प्राचीन काल में जिन महान तपस्वी ब्राह्मणों ने ज्ञान प्राप्त के विश्व बटके रहस्य को पूरा रूपमें प्राप्त कर लिया था और जो समस्त विद्वत्प्रपञ्च को अपने मनो से देखते थे उन्हीं में से जो परम ऐश्वर्यवान्, पराक्रमी तथा पूजनीय को ब्रह्मा नियुक्त करने के वेद की रचना और भूमण्डल की व्यवस्था का भार सौंप दिया ॥१२-१३-१४॥ तब भगवान् नारायण निश्चिन्त होकर फिर उसी महागन्धर्व शयन करने लगे और ब्रह्माजी कभी सृष्टि रचना में और कभी आनन्द से कातक्षेप करने लगे ॥१५॥ तत्पश्चात् भगवान् की माभि से एक देवी यमस उत्पन्न हुआ जिसकी प्रभा अत्यन्त तेजस्वी और सूर्य के समान प्रकाशमान थी तथा जिसमें सहस्रों पैरुटियाँ थीं । उगरी गन्ध बड़ी मनोहारिणी थी और उम पर घूल आदि का तेज भी नहीं था ॥१६—१७॥

## ॥ सृष्टि-रचना के निमित्त पुष्कर का प्रादुर्भाव ॥

अथ योगविदा श्रेष्ठ सर्वभूतमनोमयम् ।  
 स्रष्टारं सर्वभूतानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥१  
 तस्मिन्हरणमये पद्मे बहुयोजनविस्तृते ।  
 सर्वतेजोगुणमयं पार्थिवैर्लक्षणं यत्ते ॥२  
 तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरुहमुत्तमम् ।  
 नारायणाङ्गसंभूतं प्रवदन्ति महर्षयः ॥३  
 या तु पद्मासना देवी पृथिवी तां प्रचक्षते ।  
 ये गर्भं साराङ्कुरतस्तान्दिव्यान्पर्वतान्विदुः ॥४  
 हिमवन्त च मेरुं च नीलं निपथमेव च ।  
 कैलासमुज्ज्वन्त च यथाद्रिगन्धमादम् ॥५  
 पुण्यत्रिशिखरं चैव कान्तं कन्दरमेव च ।  
 उदयं कन्दरं चैव विन्ध्यमस्तं च पर्वतम् ॥६  
 एते देवगणानां च सिद्धानां च महात्मनाम् ।  
 आश्रमाः पुण्यशीलानां सर्वकामयुताद्रयः ॥७

वैशम्पायनजी कहने लगे—हे राजन् ! भगवान् नारायण ने सृष्टि-रचना के उद्देश्य से उस कमल को रच कर उसके ऊपर योगियो से श्रेष्ठ समस्त जीवों के स्रष्टा, सर्वतोमुख थीब्रह्माजी के विराजमान कर दिया । वह स्वर्ण-रूप वाला कमल अनेक योजन विस्तार वाला, सूर्य के समान तेजस्वी और सुगन्धयुक्त था और उसमें समस्त पार्थिव गुण पाये जाते थे । पुराणों के ज्ञाता विद्वान् उस कमल को नारायण के अंग का एक अंश ही कहते थे और वह पृथ्वी के रूप में ही था । इस लिये उसकी जो पद्मासनी देवी थी वह पृथ्वी ही थी और उसके गर्भाङ्कुर ही पर्वतों के रूप में परिणित हुये ॥१-४॥ हिमाचल, सुमेरु, नील, निपथ, कैलास, गन्धमादन, मन्दर, विन्ध्य और पर्वत

हरिवंशे पुराणे तु श्रुते च भारतोत्तम ।

कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपाजितम् ॥१२

तत्सर्वं नाशमायाति हिम सूर्योदये यथा ।

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं भवेत् ॥३

तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र सशयः ।

श्लोकाद्धं श्लोकपाद वा हरिवंशसमुद्भवम् ॥४

शृण्वन्ति श्रद्धया युवता वैष्णव पदमाप्नुयुः ।

जम्बुद्वीप समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभा कलौ ॥५

राजा जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् । इस हरिवंश के सुनने से क्या क्या फल मिलता है और इसके लिये कौन कौन सी वस्तुओं का दान किया जाता है ? ॥१॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् । जैसे सूर्योदय होते ही बरफ गल जाता है वैसे ही हरिवंश सुनने वाले मनुष्य के दैहिक, वाचिक और मानसिक सभी पाप एक साथ धीरे धीरे जाते हैं । जो फल अठारह पुराणों के सुनने से मिलता है, वह फल अनेके हरिवंश के श्रवण से मिल जाता है । जो पुरुष हरिवंश के एक, आधे या चौथाई श्लोक को भी भक्ति सहित सुनते हैं, वे भगवन् विष्णु के परमपद को प्राप्त होते हैं । परन्तु, मैं यह बात सीगन्ध पूर्वक कर रहा हूँ कि कलियुग में यदि जम्बूद्वीप छान डाला जाय तो भी सच्चा श्रोता एक भी मिलना दुस्तर है ॥२-५॥

नविप्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।

स्त्रीमिश्रं पुत्रकामाणि श्रोतव्यं वैष्णव यशः ॥६

दक्षिणा चास देया वै निष्कत्रयमुवर्णकम् ।

वानराय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता ॥७

स्वर्णशृङ्गी च कविला सद्यत्मा वस्त्रसमुत्तमम् ।

वाचकाय प्रदद्याद्वा आत्मनः श्रेयसांक्षया ॥८

अलंकारं प्रदद्याच्च पाण्डुर्यं भरतपुत्रम् ।

वर्णस्याभरणं दद्याद्यानं वत्स विशेषतः ॥९

भूमिदानं समाश्च्यद्ब्राह्मणाय, नराधिप ।

भूमिदानसमं दानं न भूतं, न भविष्यति ॥१०

हे राजन् ! पुत्र प्राप्ति की कामना वाली नारियो को हरिवंश का अवश्य श्रवण करना चाहिये । यदि किसी मनोरथ की सिद्धि के लिये हरिवंश का श्रवण करे तो कथा पूर्ण होने पर कथा वाचक को तीन स्वर्ण मुद्राएँ अथवा जितनी शक्ति हो, उतना धन प्रदान करे ॥६-७॥ कथा की समाप्ति पर वस्त्र से ढकी हुई, सोने से मढे हुए सींगों वाली, बछड़े से युक्त कपिला गौ का दान अवश्य करे, इससे सुतने वाले का मंगल होता है ॥८॥ हरिवंश का पारायण पूर्ण होने पर आभूषण प्रदान करे, जिनमे कान का आभूषण अवश्य दे । हाथ का आभूषण अथवा वस्त्र-दान भी अत्यन्त मंगलकारी होता है ॥९॥ हे राजन् ! हरिवंश सुनने के बाद यदि भूमि दान करे तो वह भी प्रशसनीय होता है । क्योंकि भूमिदान से बढ कर कोई भी दान नहीं कहा गया ॥१०॥

शृणोति श्रावयेद्वापि हरिवंश तु यो नरः ।

सर्वथा पापनिर्मुक्तो वृष्णव पदमाप्नुयात् ॥११

पितुः सुदूरंते सवनिकादश समुद्भवान् ।

आत्मानं समुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥१२

शांशश्चात्र होमो वै कार्यः श्रोत्रा नराधिप ॥

इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ ॥१३

इस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

पुत्रः पुत्रमाप्नोति अद्यतो धनमाप्नुयात् ॥१४

इरमेघाश्वमेघाभ्यां यत्फलं प्राप्यते नरैः ।

यत्फलं लभते नूनं पुराणश्रवणाद्वरे ॥१५

इह्याहा श्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरतत्वगः ।

इष्टपुराणश्रवणात्पूतो भवति नान्यथा ॥१६

मया ते परिकीर्तितं महच्छ्रीकृष्णमाहात्म्यमपारमद्भूतम् ।

यन् पठन्नाशु समाप्नुयात्फलं यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत् ॥१७



श्रेष्ठ उदयाचल तथा अस्ताचल ये सब पर्वत बड़े पवित्र और पुण्यदायक हैं तथा देवता, महात्मा, सिद्ध तथा अन्धान्य जीवों के आश्रय स्थान हैं ॥५-७॥

एतेषामितरो देशो जम्बूद्वीप इति स्मृतः ।  
 जम्बूद्वीपस्य संख्यातं याज्ञिया यत्र चक्रिरे ॥८  
 गर्भाद्यत्स्रवते तोय देवामृतरसोपमम् ।  
 दिव्यतीर्थशतापाङ्गयस्ता दिव्याः सरितः स्मृतः ॥  
 यान्येतानि तु पद्मस्य केसराणि समन्तत ।  
 असंख्याताः पृथिव्या तु विश्वे ते धातुपर्वताः ॥१०  
 यानि पद्मस्य पत्राणि भूरीण्यूर्वा नराधिय ।  
 ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः ॥११  
 यान्यधः पद्मपत्राणि वासार्य तानि भागशः ।  
 दैत्यानामुरगाणा च पातालं तन्महात्मनाम् ॥१२  
 तेषामधोगत यत्तदुदकेत्यभिसंजितम् ।  
 महापातककर्माणा मज्जन्ते यत्र मानवाः ॥१३  
 पद्मस्यान्ते कुशं यत्तदेकार्णं वज्रं महत् ।  
 प्रोषतास्ते दिक्षु संघाताश्चत्वारो जलसागराः ॥१४

इन पर्वतों का मध्यवर्ती स्थल ही जम्बूद्वीप के नाम से प्रसिद्ध है । यही द्वीप यज्ञो का स्थल और कर्मभूमि है । इसमें यज्ञ के निमित्त जो देवामृत के सदृश्य जल निकलता है, यही नदी के रूप में अनेक तीर्थों में पहुँच कर प्रवृत्त होता है ॥८-९॥ उसी नामि कमल की जो शेर हैं, वे ही पृथ्वी के भीतर वाले धातु पर्वतों के रूप में मगजाने पाहिये । उग कमल के पत्र, वे छोटे-बड़े पर्वतों के भाग्य, अत्यन्त दुर्गम स्थल हैं जो म्लेच्छों के दलों में स्थित थे ॥१०-११॥ कमल के नीचे की तरफ जो पत्तों के वृक्ष ही देवों के तथा वृक्ष सरो के निपात के निमित्त थे । यही स्थल पाताल कहा जाता है । इनके

भी नीचे उदक नाम का स्थान है जिसे नरक कहा गया है । सबसे घोर पापकी व्यक्ति उसी में डाले जाते हैं ॥१२ १३॥ नाभिकमल के चारो तरफ जो केसर थे उसी को एकाणव कहा जाता है और उसको चारों ओर पाई जाने वाली जलराशि का चार समुद्र कहा गया है ॥१४॥

ऋषेर्नारायणस्याय महापुष्करस भव ।

प्रादुर्भावोऽप्यय तस्मान्नाम्ना पुष्करस भव ॥१५

एतस्मात्कारणात्तजं पुराणं परमविभि ।

यज्ञियैर्वेददृष्टार्थयज्ञ पद्मचिती कृत ॥१६

एव भगवता पद्मे विश्वस्य परमो विधि ।

पवनाना नदीना च देवताना च निर्मित ॥१७

विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभाव

प्रभाकरो वै भगवान्महात्मा ।

स्वय स्वयं भू शयनेऽसृजत्तादा

जगन्मय पद्मनिधिं महाण वे ॥१८

तत्त्वज्ञान से सम्पन्न प्राचीन महर्षियों ने भगवान नारायण के महापुष्कर प्रादुर्भाव का वृत्तान्त इसी प्रकार बतलाया है । उनका यह नाभिकमल ही सत्कार की उत्पत्ति का मूल होता है ॥१५ १६॥ उन भगवान के इसी नाभिकमल द्वारा पर्वत नदी और जगत के विभिन्न प्रदेशों का आविर्भाव हुआ था । जब अमित प्रभावशाली स्वयम्भू विष्णु भगवान उस अनन्त एकाणव में शयन कर रहे थे उसी समय उन्होंने उस विश्वस्वरूप मृत्ति के मूल अत्रैव ममत्त को उत्पन्न किया था ॥१७ १८॥

॥ त्रयं श्रवण फल ॥

हृदियं मे पुराणं तु श्रुते मुनिवरोत्तम ।

किं पन्न हि च दयं वै तद्ब्रूहि त्व ममाग्रत ॥१९

जो मनुष्य हरिवंश की कथा को सुनाता या जो कोई श्रवण करता है वह पाप से सर्वथा छूट जाता और मरणान्त में उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है ॥११॥ उसकी ग्यारह पूर्व पीढ़ियाँ, स्त्री और पुत्र तक युक्त हो जाते हैं तो अपनी मोक्ष का तो कहना ही क्या है ? ॥१२॥ हरिवंश सुनने वाले को दशाश्वत्थ करने का आवश्यक विधान है । हे राजन् ? इस प्रकार मैं तुम्हें सभी कुछ बता चुका । इसके सुनने पर सम्पूर्ण पापों का नाश अवश्य प्राप्ति है । पुत्र-द्वीन-पुरुष सुने तो पुत्रवान् और निधन पुरुष सुने तो उसे दिपुत्र वन् की प्राप्ति होती है ॥१३-१४॥ जिस फल की प्राप्ति नरमथ अथवा अश्वमेध यज्ञ के करने से हो सकती है, वह सम्पूर्ण फल एकमात्र हरिवंश के सुन लेने से ही मिल जाता है । ॥ १५ ॥ यदि किसी पुरुष से ब्रह्म हत्या, गो हत्या गर्भपात, मदिरापान जैसा महागुण भी बन गया हो तो एकाम्र चित्त से हरिवंश के श्रवण करने पर, उन घोर पापों से उसका छुटकारा हो जाता है ॥१६॥ हे राजन् ! इस प्रकार यह अत्यन्त विस्मय जनक और अत्यन्त उदार भावान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य मैंने तुम्हें सुना दिया । इसका स्वाध्याय करने अथवा सुनने से दुर्लभ से दुर्लभ पदार्थ भी बनायास ही प्राप्त हो सकता है ॥१७॥